आचार्य तुलसी का काव्य वैभव

- डॉ. समणी कुसुमप्रज्ञा

आचार्य तुलसी का काव्य-वैभव

डॉ. समणी कुसुमप्रज्ञा

कंधों पर मेरे सदा, धर्मसंघ का भार।
पर तनाव बिल्कुल नहीं, रहता मैं निर्भार॥

जैन विश्व भारती प्रकाशन

ज्यादा अच्छी है नहीं, सुख-सुविधा की चाह।
शास्ता के नाते तुम्हें, 'तुलसी' नेक सलाह॥

प्रकाशक : जैन विश्व भारती,
लाडनूं-३४१३०६ (राज.)

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

I S B N. ८१-७१९५-१०७-०

सौजन्य : समणीवृंद के हांगकांग आने के उपलक्ष्य में मानराज एवं विमला नाहटा (हांगकांग, जयपुर) के आर्थिक सौजन्य से

प्रथम संस्करण : सन् २००७

पृष्ठांक सं. : ४००

मूल्य : ८० रुपये

टंकण सहयोग : श्री जैन श्वे. तेरापंथी सभा, गुवाहाटी

मुद्रक : कला भारती,
नवीन शाहदरा, दिल्ली -३२

सत्यम्

कुछ व्यक्ति नैसर्गिक प्रतिभा के धनी होते हैं, कुछ व्यक्ति आधिगमिक प्रतिभा के धनी होते हैं। आधिगमिक प्रतिभा वाले लोग बहुत कम मिलते हैं तो नैसर्गिक प्रतिभा वाले बहुत विरल। आचार्य तुलसी विरल की सूची के एक व्यक्ति थे। उन्हें व्यक्ति की अपेक्षा समुदाय कहना अधिक संगत होगा। उनका जीवन बहुआयामी था इसलिए वे सामुदायिक चेतना का प्रतिनिधित्व करते थे।

चेतना की समग्रता का एक पक्ष है—सृजनात्मक शक्ति। सृजनात्मक शक्ति का एक पक्ष है—काव्य-रचना। आचार्य तुलसी का काव्य-रचना पर जन्मसिद्ध अधिकार था। वे जितने शब्द शिल्पी थे, उतने ही भाव शिल्पी थे। उनकी रचनाओं में शब्द और भाव का द्विवेणी योग है। उस योग की कुछ रश्मियों को जन-सुलभ बनाने का प्रयत्न किया है समणी कुसुमप्रज्ञा ने।

समणी कुसुमप्रज्ञा में कल्पना है, उत्साह है और गुरुदेव के प्रति श्रद्धापूर्ण समर्पण का भाव है। श्रद्धा के सुधा कणों से अभिषिक्त यह पुस्तक सहृदय व्यक्तियों के मानस को आह्लाद देने वाली होगी।

किनाना (जींद) हरियाणा
आचार्य महाप्रज्ञ
२८ दिसम्बर २००५

शिवम्

पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री तुलसी बीसवीं सदी के एक महान् संत थे। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे साधक भी थे और एक बड़े धर्मसंघ के अनुशास्ता भी। उसके साथ-साथ वे एक महान कवि भी थे। उनके काव्यों को पढ़ने से जहां विभिन्न जानकारियां प्राप्त होती है, वहीं एक सुन्दर कवित्व का प्रशिक्षण भी प्राप्त किया जा सकता है।

समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने वक्तृत्व, गायन आदि अनेक क्षेत्रों में विकास किया है। 'आचार्य तुलसी का काव्य-वैभव' पाठकों को सुन्दर अवबोध प्रदान कर सकेगा। मंगल कामना।

हिसार (हरियाणा) **युवाचार्य महाश्रमण**

१५.६.२००६

सुन्दरम्

कुछ लोग साहित्य का सृजन करते हैं और कुछ साहित्यकारों का सृजन करते हैं। कुछ व्यक्तित्व ऐसे होते हैं जो साहित्य और साहित्यकार—दोनों के सृजन में सफल हो जाते हैं। बीसवीं सदी के संत साहित्यकारों में आचार्य तुलसी एक ऐसे ही महान् साहित्यकार थे, जिनका साहित्य-संसार बहुआयामी है और उन्होंने सुप्त प्रतिभाओं को जगाकर विशिष्ट साहित्यकारों का भी निर्माण किया।

आचार्य तुलसी निसर्ग कवि थे। उनकी काव्यधाराएं किसी सीमा में आबद्ध नहीं थीं। जिन क्षणों में उनकी सृजन-चेतना स्पन्दित होती थी, भाव स्वयं शब्द खोज लेते और कभी-कभी तो कागज एवं कलम के बिना ही कृति रूपायित हो जाती।

समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने आचार्य तुलसी के साहित्य-संसार में मनोहत्य भ्रमण किया है। **'एक बूंद : एक सागर'** उसका जीवन्त साक्ष्य है। आचार्यश्री का काव्य-संसार भी अद्‌भुत है। विदुषी समणी ने उसका बार-बार अवगाहन कर उस पर गहरी निष्ठा के साथ काम किया है। उन्होंने भाषा, छंद, शैली, अलंकार आदि अनेक बिन्दुओं को सामने रखकर अपनी बुद्धि को व्यायाम करने के लिए खुला आकाश दिया है।

किसी कवि के काव्य-संसार पर पी-एच.डी. करने वाले विद्वान् भी उसमें इतना अवगाहन नहीं करते होंगे, जितना समणी कुसुमप्रज्ञा ने किया है। उनकी अध्यवसायशीलता की निष्पत्ति है—**'आचार्य तुलसी का काव्य-वैभव'।** यह ग्रंथ काव्य-रसिक पाठकों के मन में आचार्य तुलसी को पढ़ने की ललक पैदा कर सका तो उनके प्रयास की सहज सार्थकता है।

हिसार **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

१५-६-२००६

यह कृति

प्रस्तुत ग्रंथ समणी कुसुमप्रज्ञाजी का शोधपरक समीक्षाग्रंथ है, जिसमें आचार्य तुलसी के काव्य का विस्तृत और विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ में आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व, संस्कृत, हिन्दी तथा राजस्थानी में रची गई उनकी समस्त काव्यकृतियों का परिचय, उन कृतियों की विषय-वस्तु, मूल्यबोध, दर्शन, धर्म, राजनीति तथा संस्कृति संबंधी उनका चिंतन, देश तथा समाज को उनका प्रदेय इत्यादि पर विशद विचार कर उनके उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। उनकी कृतियों का काव्य के तत्त्वों के आधार पर सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। भाषा, शब्द-शक्तियों, छंद और अलंकार इत्यादि की कसौटी पर आचार्यश्री की रचनाओं को गंभीरतापूर्वक कसा गया है। कहीं यह विश्लेषण परिचयात्मक है और कहीं कवि की महत्ता को स्थापित करने वाले तत्त्वों का उद्घाटन करने वाला है।

मेरी अपनी धारणा है कि समणी कुसुमप्रज्ञा को अथवा साधु-संन्यासी का जीवन जीने वाले किसी भी व्यक्ति को विश्वविद्यालय की उपाधियों की आवश्यकता नहीं होती। वे तो अपनी साधना के क्षेत्र में आध्यात्मिकता के एक शिखर से दूसरे शिखर पर चढ़ते चलते हैं। स्वयं भगवान महावीर हों या आचार्य भिक्षु, उन्हें किसी राजसत्ता अथवा विश्वविद्यालय द्वारा मान्य किसी उपाधि की आवश्यकता नहीं पड़ी। उपाधियां सांसारिक लोगों के लिए हैं क्योंकि उनको अपनी आजीविका के लिए उनकी आवश्यकता होती है। कभी-कभी स्वयं को दूसरों से बड़ा विद्वान् सिद्ध करने के लिए भी उपाधि का महत्त्व होता है, कभी यश की लिप्सा के कारण भी उसकी अपेक्षा होती है। ऐसे में मैं यह मानता हूं कि समणीजी ने यह सारा परिश्रम न तो उपाधि के लिए किया है, न शोधकर्ता के रूप में महत्त्व पाने के लिए। न वे स्वयं को काव्य की पारखी सिद्ध करना चाहती हैं, न काव्यालोचक के रूप में अपने लिए कोई स्थान चाहती हैं। यह अध्ययन स्वांतः सुखाय है या अधिक से अधिक इसका लक्ष्य गुरु के ऋण से उऋण होना हो सकता है।

मैं यह भी मानता हूं कि आचार्य तुलसी की भी न तो यह महत्त्वाकांक्षा रही होगी कि उनकी कृतियों पर शोध हो अथवा उन्हें साहित्य-क्षेत्र में स्थापित करने के लिए उन पर समीक्षात्मक ग्रंथ लिखे जाएं। न उन्होंने स्वयं को महान् सिद्ध करना चाहा होगा, न उनकी यह स्पृहा रही होगी कि उन्हें कवियों की पांत में महत्त्वपूर्ण स्थान मिले और सरकार उन्हें महती पुरस्कारों से अलंकृत और विभूषित करे। अपने नाम और रूप को विस्मृत कर 'स्वरूप' का साक्षात्कार करने के लिए ही उन्होंने संन्यास धारण किया होगा। उनकी सफलता उसी क्षेत्र में हो सकती है तो फिर काव्यरचना क्यों?

स्पष्ट है कि साधु अपनी वाणी और अपने कर्मों से मानव के कल्याण का प्रयत्न करता है। उसका लक्ष्य अपना यश अथवा धनोपार्जन नहीं है। स्वामी विवेकानन्द द्वारा शिकागो में हिन्दू धर्म संबंधी व्याख्यान के विश्वव्यापी प्रभाव को देखते हुए कलकत्ता के नागरिकों ने उनके प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा था कि वाणी के माध्यम से इतना बड़ा काम कर सकना संभव नहीं था किन्तु स्वामी जी के शब्दों ने वह कर दिखाया।

मैं यह मानता हूं कि वैसे तो वाणी का लक्ष्य ही यही है, किन्तु साधु की वाणी का तो एकमात्र लक्ष्य यही है। ऐसा कोई तपस्वी अथवा धर्माचार्य नहीं हुआ, जिसने समाज को अपना संदेश नहीं दिया अथवा अपने भावों को शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया। प्रवचन भी तो शाब्दिक अभिव्यक्ति ही है किन्तु साधना से तो शब्द, काव्य में तो क्या, मंत्र में भी ढल जाते हैं। सघन आध्यात्मिक चिंतन अपने आप ही ऋचाओं के रूप में प्रकट होता है। आचार्य तुलसी ने समय-समय पर अपने प्रवचनों के साथ-साथ काव्य का सहारा भी लिया। यह उनका अतिरिक्त गुण अथवा महत्त्व था।

समणी कुसुमप्रज्ञा को न अपने अहंकार की पुष्टि करनी थी, न उनके गुरु आचार्य तुलसी को यश की लिप्सा थी तो फिर यह समीक्षाग्रंथ क्यों? सरल सा उत्तर तो यही है कि अपने गुरु के गौरव को प्रतिष्ठित करने के लिए समणी कुसुमप्रज्ञा को यह कार्य अपने हाथ

में लेना पड़ा किन्तु साथ ही प्रश्न यह भी है कि जब आचार्य तुलसी को उनके सारे शिष्य पढ़ रहे थे, उनकी बात सारे समुदाय तक संप्रेषित हो रही थी तो फिर बाधा कहां थी? वस्तुतः किसी भी कवि का उनके अपने मित्रों तथा शिष्यों तक सीमित रह जाना ही तो काव्य का लक्ष्य नहीं है। यदि आचार्य तुलसी केवल अपने शिष्यों के लिए लिख रहे थे, उनका अपना संगठन उनकी कृतियों को प्रकाशित कर रहा था और उनका अनुचर समाज उनकी कृतियों को पूर्ण निष्ठा से पढ़ रहा था तो फिर किसी आलोचक या शोधकर्त्ता की आवश्यकता ही कहां थी? इसके उत्तर में यह भी कहा जा सकता है कि समणी जी ने अपनी समझ को साफ करने के लिए यह परिश्रम किया या अपने समाज के लोगों को आचार्य तुलसी के काव्य का मर्म और सौन्दर्य समझाने के लिए यह ग्रंथ लिखा।

यह भी एक लक्ष्य हो सकता है, किन्तु मेरा मंतव्य यह नहीं है। मेरा अनुभव है कि हमारे प्रायः आलोचक काव्य और सौन्दर्यशास्त्र के नियमों को भुलाकर कुछ अन्य कारणों से साहित्य का मंथन और मनन करते हैं। वे या तो अपने संबंधों के कारण किसी साहित्यकार को स्थापित करने के लिए उसकी चर्चा करते हैं अथवा अपनी राजनीतिक विचारधारा के आधार पर अपने राजनीतिक स्वामियों के संकेतों पर साहित्य और साहित्यकार की चर्चा करते हैं। परिणामतः वे समाज और साहित्य के बीच दीवार बनकर खड़े हो जाते हैं। अच्छा साहित्य भी है और अच्छे पाठक भी हैं किन्तु आलोचकों की बेइमानी के कारण न सत्साहित्य पाठक तक पहुंच पाता है और न पाठक साहित्य तक जा पाता है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि समणी कुसुमप्रज्ञा जैसे लोग आलोचना का बीड़ा उठाएं और सत्साहित्य को सुधी पाठकों तक पहुंचाएं।

एक प्रश्न और भी है और प्रश्न नया नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में इस सन्दर्भ में चर्चा की है। उन्हें भी कहा गया था कि अध्यात्म, धर्म, साधना और दर्शन के क्षेत्रों के साधकों अथवा उन विषयों संबंधी जो रचनाएं हैं, वे साहित्य से निष्कासित कर

दी जानी चाहिए। आचार्य शुक्ल ने इस विचार से अपनी सहमति प्रकट नहीं की। उनका कहना था कि यदि हम इस दिशा में सोचेंगे तो हमें सूर, तुलसी, कबीर और मीरा इत्यादि कवियों को भी साहित्य के क्षेत्र से बाहर ही रखना पड़ेगा। उसके पश्चात् हमारे पास उदात्त साहित्य के नाम पर बचेगा ही क्या? क्या केवल सांसारिक संघर्षों और काम संबंधों को ही साहित्य माना जाएगा, जिसके अध्ययन से पाठक को पतनोन्मुखी वृत्तियों के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

आचार्य शुक्ल को जो करना था, वह उन्होंने किया। किन्तु प्रश्न की स्थिति आज भी वही है। मैं चकित भाव से सोचता रहता हूं कि स्वामी विवेकानन्द की इतनी कविताओं के होते हुए भी कवियों की किसी सूची में उनका नाम क्यों नहीं होता? आचार्य तुलसी को किसी भी साहित्यिक चर्चा में क्यों स्मरण नहीं किया जाता? जबकि हम जानते हैं कि अध्यात्म के प्रभाव से हमारे सामाजिक चिंतन, कलात्मक बोध और सौन्दर्य दृष्टि का परिष्कार होता है। मैं समझता हूं कि हमें इस विषय में गंभीरता से सोचना चाहिए कि साहित्यिकता हीन प्रवृत्तियों, वामपंथी चिंतन और भोगी मस्तिष्क की ही जागीर क्यों मान ली गई? यह प्रवृत्ति न केवल हमारे समाज, वरन् सम्पूर्ण मानवता के लिए हानिकारक है।

मैं प्रसन्न हूं कि समणी कुसुमप्रज्ञा ने एक साहसपूर्ण पग उठाया है। मेरी कामना है कि संतों के साहित्य का शोधपरक अध्ययन हो, उनमें जो श्रेष्ठ है, वह समाज के सामने महत्त्वपूर्ण ढंग से ससम्मान प्रस्तुत हो और जो साहित्य की सौन्दर्यपरक कसौटी पर खरा नहीं उतरता, उसे उसके उचित स्थान पर पहुंचा दिया जाए।

नरेन्द्र कोहली

१७५, वैशाली, पीतमपुरा

नान्दीवाक्

तेरापंथ के नवम आचार्य, अणुव्रत के प्रवर्तक तथा सच्चे अर्थों में लोकबन्धु एवं लोक-अनुशास्ता की भूमिका निबाहने वाले आचार्य-प्रवर तुलसी ने एक युगपुरुष का जीवन जिया। उनकी जीवनचर्या स्फटिक सी धवल तथा पूर्णतः पारदर्शी थी। वे रूढ़ियों, ग्रंथियों एवं गोपनों से मुक्त थे। क्या अमीर, क्या गरीब! क्या ग्रामीण श्रद्धालु श्रावक और क्या ज्ञान-विज्ञान मण्डित विश्वविद्यालय का आचार्य! आचार्य तुलसी का सबके प्रति समान अनुग्रह था।

आचार्य तुलसी एक जंगम तीर्थ थे। वह एक ऐसे धर्म-महीरुह थे, एक ऐसे पार्थिव कल्पवृक्ष थे, जिसकी छाया के संस्पर्श मात्र से पथिक ताप-भय से मुक्त हो जाता था। वे एक ऐसे प्रभविष्णु स्पर्शमणि (पारस) थे, जो लौह-व्यक्तित्व को चञ्चत्चामीकर की आभा से श्रीमण्डित कर देते थे। वस्तुतः अपने लोकोत्तर सद्गुणों के कारण आचार्य तुलसी अपने जीवनकाल में ही पुरा कथा के पात्र (Legend) बन गये थे। उनकी धर्माचार्यता का ऐन्द्रजालिक सम्मोहन जिस किसी भी विद्वान्, पण्डित, उद्योगपति एवं राजनेता को बरबस आकृष्ट कर लेता था, जिनमें विदेशी यायावर भी होते थे।

शहंशाह शाहजहाँ के राजकवि, दुर्घर्ष आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ का एक मर्मस्पर्शी पद्य आचार्य तुलसी का यशोविग्रह निष्ठापूर्वक अभिव्यक्त करता है—

अन्या जगद्धितमयी मनसः प्रवृत्ति-
रन्यैव कापि रचना वचनावलीनाम्।
लोकोत्तरा च कृतिराकृतिरार्तहृद्या,
विद्यावतां सकलमेव गिरां दवीयः॥

विद्याविभासित सन्तों का सब कुछ वाणी से परे होता है। संसार के हित में डूबी उनकी मनोवृत्ति कुछ और ही प्रकार की होती है। उनकी बातचीत की शैली भी, सबसे अलग-थलग होती है। उनके सारे आचरण (मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक) लोकोत्तर होते हैं और अन्ततः उनकी आकृति (व्यक्तित्व) भी दीन-दुःखियों के लिए परम विश्वसनीय होती है। आचार्य तुलसी इस पद्य द्वारा परिभाषित 'शलाकापुरुष' थे, इसमें कोई शक नहीं। **मेरी तो यह विनम्र प्रस्तावना है कि अब युगनिर्माता आचार्य तुलसी को भी सम्मिलित कर हमें चतुःषष्टि शलाकापुरुषों की चर्चा करनी चाहिए।**

अनेकान्त–दर्शन की प्रतिष्ठा मात्र से आतंकवाद को समाप्त कर देने का उद्घोष करने वाले आचार्य तुलसी साक्षात् 'अनेकान्त' ही थे क्योंकि उनके विराट् व्यक्तित्व के अनेक अन्त या पक्ष (Phases) थे। एक पंथनायक, अनुशास्ता, सुधारक, विचारक, ओजस्वी वक्ता, उद्भट विद्वान्, प्रतिभोद्धुर कवि, गहनचिन्तक, सहृदयमनीषी, सहानुभूति–प्रवण सद्बन्धु, सर्वधर्मसहिष्णु सन्त तथा बहुभाषी मौलिक साहित्यकार — सब कुछ थे और वह भी एक ही व्यक्तित्व में, एक ही कालखण्ड में यही उनके व्यक्तित्व की अनेकान्तता है।

लोकवन्द्य शास्ता कालूगणी के शिष्य तथा आचार्य महाप्रज्ञ के विद्या गुरु आचार्य तुलसी राजस्थान की मरुधरा के रत्न थे। जैन विश्वभारती, लाडनूँ (राज.) की महीयसी समणी कुसुमप्रज्ञा ने '**आचार्य तुलसी का काव्यवैभव**' शीर्षक स्वोपज्ञ विपुल कलेवर ग्रन्थ में आचार्यश्री की सारस्वत–साधना की विस्तृत समीक्षा की है, जिससे मैं अभिभूत हूँ। विदुषी समणी ने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, महीयसी महादेवी वर्मा एवं आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी सरीखे विद्वानों के काव्य–निकषों पर आचार्य तुलसी की रचनाधर्मिता की सोदाहरण समीक्षा की है। समणीजी ने आचार्यश्री को मात्र पढ़ा ही नहीं है, प्रत्युत उनके आलोकवृत्त में चिरावधि रही भी हैं। सौभाग्य से उनका जन्म भी गृहस्थयोगी श्री नेमीचन्दजी मोदी के परिवार में हुआ है, जो आचार्य कालूगणि के स्नेहभाजन एवं आचार्य तुलसी के समसामयिक निष्ठावान् श्रावक थे। इन्हीं पारिवारिक संस्कारों ने समणी कुसुमप्रज्ञा की प्रसुप्त साहित्य–चेतना को उद्बुद्ध किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ का आमूलचूल अनुशीलन कर मेरा यह विश्वास दृढ़ हुआ है कि यह ग्रंथ किसी भी व्यक्ति को आचार्य तुलसी का प्रत्यक्षानुभव कराने में समर्थ है, जो कि मैं स्वयं आचार्य–प्रवर से प्रत्यक्ष नहीं मिल पाया, मात्र संयोग की बात है। तथापि, इस ग्रंथ को पढ़ने के बाद लगा कि मानो मैं कई दशक उनके साथ रह चुका हूँ। यह सब संभव हुआ है समणी कुसुमप्रज्ञा की समीक्षाशैली एवं हृदय–अनवद्य प्रस्तुति के कारण। यह ग्रंथ आचार्य तुलसी की संस्कृत, हिन्दी एवं राजस्थानी में प्रणीत कृतियों की सांगोपांग व्याख्या एवं समीक्षा प्रस्तुत करता है।

मैं इस महनीय साहित्यिक कृति एवं इसकी लेखिका समणी कुसुमप्रज्ञा का भूयोभूयः अभिनन्दन करता हूँ। किञ्च,

आचार्यतुलसीकाव्यवाङ्मयानि समीक्षितुम्।
प्रज्ञा कुसुमप्रज्ञायाः सुक्ष्मेति मतं मम॥

वाराणसी — **भूतपूर्व कुलपति**
२४ अप्रैल, २००५ **अभिराज राजेन्द्रमिश्र**
दिल्ली–११००८८

स्वकथ्य

वेदों में कवि को स्वयंभू की उपमा से उपमित किया गया है क्योंकि वह अपनी कल्पना से नए संसार की सृष्टि करता है। कवि को किसी सांचे में ढ़ालकर निर्मित नहीं किया जाता, बल्कि प्रकृति से प्रेरणा लेकर उसकी प्रतिभा स्वतः काव्य-सृजन में लग जाती है। प्रायः रचनाकार कालान्तर में सृजनात्मक परिपक्वता से सम्पन्न बनते हैं लेकिन आचार्य तुलसी की काव्य-कला उन्मेष काल में ही काव्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से प्रौढ़ थी। उसमें न भावगत शैथिल्य था और न ही कलागत एकांगीपन । महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी के शब्दों में— ''जब कभी बीसवीं शताब्दी के राजस्थानी कवियों का इतिहास लिखा जाएगा, सबसे पहला नाम आचार्य तुलसी का रहेगा। इतिहासकारों की पैनी दृष्टि किसी ऐसे अन्य नाम को खोजकर प्रस्तुत कर सकी तो मैं अपनी अवधारणा को बदलने में विलम्ब नहीं करूंगी।[१]'' आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में आचार्य तुलसी में प्रतिभा की प्रखरता है, बहुश्रुतता का गाम्भीर्य है, शान्त रस की ऊंचाई है और वह सब कुछ है, जो एक महाकवि के अंदर होना चाहिए।

आचार्य तुलसी ने अपने आध्यात्मिक नेतृत्व, ऊर्जस्वल व्यक्तित्व और सृजनशील कर्तृत्व से युग को नई दिशा दी। विशाल धर्मसंघ का नेतृत्व करते हुए भी उन्होंने विपुल मात्रा में काव्य-सृजन किया। काव्य शास्त्र के प्रतिमानों का अध्ययन न करने पर भी उनके काव्य में नए मूल्य, नए बिम्ब एवं नए शिल्प का प्रयोग मिलता है। आचार्य तुलसी के पास पीठिका के रूप में गहरा जीवन-दर्शन और व्यापक दृष्टि थी अतः वे आंतरिक सत्य के रहस्यों को मूर्त्त रूप प्रदान कर सके। उन्होंने जो कुछ देखा, समझा और अनुभव किया, उसे काव्य में उतार दिया। कबीर की भांति बिना किसी लाग-लपेट के उन्होंने सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में पनपने वाली विकृतियों को प्रस्तुत कर दिया। आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में, ''आचार्यश्री ने कवित्व का सहज स्पर्श किया है। उनकी काव्य कृतियों में शब्दों का चयन, भावों की गंभीरता, वर्णन की प्रौढ़ता, परिस्थितियों का प्रकाशन और घटनाओं का चुनाव ऐसी भावुकता के साथ हुआ है कि वह अपने परिचय के लिए पर-निरपेक्ष है।''

आचार्य तुलसी की काव्यधारा विविध स्रोतों एवं विविध रसों

में बही है। काव्य में कहीं वे भक्ति रस में डूबे हुए मिलते हैं तो कहीं चारित्रिक वैशिष्ट्य को उजागर करते हुए, कहीं सामाजिक असंगतियों एवं विसंगतियों पर प्रहार करते हुए तो कभी संसार की विविधरूपता एवं नश्वरता को प्रकट करते हुए। विषयों का वैविध्य होते हुए भी सम्पूर्ण काव्य-साहित्य उनकी सन्तता और आध्यात्मिक व्यक्तित्व की परिक्रमा करता हुआ दिखाई देता है।

इस पुस्तक का लेखन पूज्य गुरुदेव की उपस्थिति में सन् १९९३ में ही प्रारम्भ कर दिया था। सन् १९९४ में जब गुरुदेव को पुस्तक के कुछ प्रारम्भिक पृष्ठ दिखाए तो उन्होंने कहा—''अभी तुमको इस कार्य में समय नहीं लगाना है। आगम का कार्य महत्त्वपूर्ण है, तुम्हारी शक्ति और समय उसमें लगना चाहिए।'' सन् १९९७ तक यह कार्य स्थगित रहा फिर सन् १९९८ से २००६ तक प्रतिवर्ष सलक्ष्य लगभग तीन महीने का समय इसमें लगाया। प्राच्य और आधुनिक कवियों पर लिखे गए सैकड़ों समीक्षात्मक ग्रंथों को पढ़ने से पुस्तक में परिवर्तन एवं परिवर्धन का क्रम चलता रहा। साथ ही पूज्य गुरुदेव के काव्य-साहित्य से उदाहरण देने के लिए भी उनकी काव्य कृतियों का अनेक बार पारायण करना पड़ा। यह पूज्यवरों के आशीर्वाद का ही प्रभाव है कि उपयुक्त संदर्भों का चयन करने में कभी आलस्य, निराशा या अधीरता का अनुभव नहीं हुआ।

गुड़ की भेली और मिश्री की ड़ली के समान आचार्य तुलसी के काव्य का पौर-पौर माधुर्य रस से आप्लावित है। अपने स्वकथ्य में उनके काव्य के कुछ बिन्दुओं को प्रस्तुत करके मैं पाठकों की अतृप्ति को बढ़ाना नहीं चाहती। इस पुस्तक में आचार्य तुलसी के काव्य ग्रंथों से लगभग २००० उद्धरण दिए गए हैं। मेरा अपना विश्वास है कि जिसने आचार्य तुलसी को गाते देखा है या नहीं देखा है, वह जब भी पुस्तक का कोई पृष्ठ खोलकर पढ़ेगा, वह पूरी पुस्तक पढ़ने का लोभ संवरण नहीं कर सकेगा।

यद्यपि आज गुरुदेवश्री तुलसी प्रत्यक्ष रूप से हमारे साथ नहीं हैं पर मैंने उनको परोक्ष रूप में सदैव अपने निकट अनुभव किया है। हर उलझन भरी परिस्थिति में उनके नाम का स्मरण मेरे लिए प्रकाश की किरण बनकर प्रकाश बिखेरता रहा है।

आचार्य महाप्रज्ञ एवं युवाचार्य महाश्रमण प्रेरणास्रोत ही नहीं, शक्तिस्रोत भी हैं। सामूहिक रूप से दी गई उनकी हर प्रेरणा मुझे व्यक्तिगत रूप से अनवरत क्रियाशील बनाए रखती है। पूज्यवरों के आशीर्वाद से भविष्य में भी मैं श्रुत और आत्मा की आराधना में अपने क्षणों का सदुपयोग करती रहूं, यही अभीप्सा है। महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी की आंखों से बहता अमृत का निर्झर मेरे लिए अमूल्य निधि है। यदि उनके द्वारा सम्पादित विशाल काव्य-साहित्य मेरे समक्ष नहीं होता तो यह कार्य संभव नहीं था। पूज्य गुरुदेव भी अनेक बार इस स्वर को अभिव्यक्ति देते थे—"मेरी कृतियों को बाहर लाने का श्रेय साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा को है। आदरणीया मुख्य नियोजिका विश्रुतविभाजी, नियोजिका अक्षयप्रज्ञाजी एवं समस्त समणी परिवार का आत्मीय भाव तथा कुसुम सुराणा, मीनाक्षी मारु एवं पिंकी पटेल का सहयोग भी स्तुत्य है। जैन विश्व भारती के पदाधिकारियों की उदारता तथा पुस्तक के टंकण में श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, गुवाहाटी का सहयोग उल्लेखनीय है।

मुझे प्रसन्नता है कि अनेक आरोहों और अवरोहों को पार करने के बाद इस वर्ष यह पुस्तक सम्पन्नता के शिखर तक पहुंच सकी है। जैसे मुझे लिखने में आनंद का अनुभव हुआ, वैसे ही अनेक काव्य रसिक इस ग्रंथ रत्न को पढ़कर आनंद-सागर में डुबकी लगा सकेंगे, यह दृढ़ विश्वास है।

इस पुस्तक पर दो मूर्धन्य विद्वानों की समीक्षा प्राप्त हुई है। उपन्यासकार नरेन्द्र कोहली, जो पौराणिक उपन्यासों के लेखन में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं और दूसरे राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त भूतपूर्व कुलपति राजेन्द्र मिश्र, जो आधुनिक कालिदास के रूप में विख्यात हैं। मैं इन दोनों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी की जन्म शताब्दी सामने है, तब तक पूज्य गुरुदेव के विविध आयामी जीवन के कितने पक्षों पर लिखा जा सकेगा, यह तो मैं नहीं कह सकती पर प्रयत्न निरन्तर जारी रहेगा क्योंकि हमारे अपने अधीन तो इतना ही है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।

डॉ. समणी कुसुमप्रज्ञा

विषय सूची

आचार्य तुलसी का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व १
काव्य का स्वरूप एवं उसके तत्त्व १६
- भाव १७
- कल्पना २२
- बुद्धि २६
- अनुभूति २७

काव्य का प्रयोजन ३१
काव्य की प्रेरणा ३७
काव्य का विषय ४१
काव्य-गुण ४५
- प्रसाद-गुण ४५
- माधुर्य गुण ४६
- ओजगुण ४७

काव्य का वैशिष्ट्य ४८
गीतिकाव्य ५८
- लोकगीत ६०
- गीतिकाव्य के तत्त्व ६१
- आत्माभिव्यक्ति ६१
- भावाभिव्यञ्जना ६३
- संगीतात्मकता ६५
- संक्षिप्तता ६६
- गीतों की शैली ६७
- गीतिकाव्य के विषय ६८

आशुकवित्व ७०
काव्य-भाषा का वैशिष्टय ८३
- संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का प्रयोग ८७
- तद्‌भव शब्दों का प्रयोग ९१

- देशज शब्दों का प्रयोग ९३
- विदेशी शब्दों का प्रयोग ९४
- प्रान्तीय भाषाओं का प्रयोग ९६
- अनुकरण ९७
- पुनरुक्ति एवं युग्म शब्दों का प्रयोग ९८
- परिभाषाएं १०३
- पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग १०४
- शब्द-शक्तियां १०५
  - अभिधा शक्ति १०५
  - लक्षणा शक्ति १०६
  - व्यञ्जना शक्ति १०७
- शब्द-चयन १०८
- विशेषण का सम्यक् प्रयोग ११३
- वर्ण-मैत्री ११५
- शब्द-निर्माण की कला ११६
- क्रिया रूपों के विविध प्रयोग १२०

शैली-विधान की नव्यता १२३
- समानान्तरता का प्रयोग १२७
- प्रश्नवाचक शैली १२९
- विरोधी शब्दों का प्रयोग १३३

विचलन एवं वक्रोक्ति के प्रयोग १३६
- क्रिया विचलन १३७
- विशेषण विचलन १३९
- भाषा विचलन १४०
- पर्याय विचलन १४१
- ध्वनि विचलन १४२
- पदक्रम विचलन १४२
- लिंग एवं वचन विचलन १४३
- मुहावरा विचलन १४४

- प्रकरण विचलन १४४

बिम्ब–विधान १४५

प्रतीक योजना १५३

सम्प्रेषणीयता १६१

कथानक रूढ़ि १६८

सूक्तियों का प्रयोग १७१

काव्यानुवाद १७६

रहस्यवाद १७९

रसों का हृद्य परिपाक १८३

- वीररस १८४
- रौद्ररस १८५
- बीभत्सरस १८६
- भयानकरस १८७
- करुणरस १८८
- श्रृंगाररस १९०
- हास्यरस १९१
- शान्तरस १९१
- वात्सल्यरस १९२
- अद्‌भुतरस १९४

सौन्दर्य–बोध १९६

अलंकार–योजना २०२

- शब्दालंकार २०३
- अनुप्रास २०३
- यमक २०५
- श्लेष २०७
- अर्थालंकार २०७
- उपमा अलंकार २०८
- रूपक अलंकार २१४
- उत्प्रेक्षा अलंकार २१५

- अर्थान्तरन्यास २१७

छंद-विधान २१९

पात्र एवं चरित्र-चित्रण २२६

लोकोक्तियां एवं मुहावरे २३१

काव्य में संगीत तत्त्व एवं लय २४१

प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण २४७

- आलम्बन रूप प्रकृति २४८
- उद्दीपन रूप प्रकृति २५१
- प्रकृति का मानवीकरण २५२
- उपदेशिका रूप प्रकृति २५४
- उपमान रूप प्रकृति २५५
- प्रतीक रूप प्रकृति २५६

भक्ति के स्वर २५७

सामाजिक चेतना का दिग्दर्शन २७२

नारी के विविध रूपों की प्रस्तुति २८४

- नारी का मातृत्व रूप २८६
- शीलवती पत्नी का रूप २८९
- उद्बोधिका एवं शक्तिस्वरूपा नारी का रूप २९१
- उच्छृंखल एवं पतिता नारी का रूप २९३

राष्ट्रीय चेतना के स्वर २९५

दार्शनिक विवेचन ३०७

युग-चेतना की प्रस्तुति ३१२

काव्य में संस्कृति के स्वर ३१५

धर्म और अध्यात्म के स्वर ३२४

काव्य में मूल्यबोध ३४०

काव्य-साहित्य का परिचय ३५२

- अग्नि-परीक्षा ३५३
- अणुव्रत-गीत ३५७
- अध्यात्म-पदावली ३५८
- अर्हत् वाणी ३५८
- आचार-बोध ३६०

- आत्मा के आसपास ३६१
- कालूयशोविलास ३६२
- चन्दन की चुटकी भली ३६४
- डालिम चरित्र ३६६
- तेरापंथ-प्रबोध ३६७
- नंदन निकुंज ३६९
- पानी में मीन पियासी ३७०
- प्रेक्षा-संगान ३७२
- भरत-मुक्ति ३७३
- मगन चरित्र ३७५
- मां वदना ३७७
- माणक महिमा ३७८
- मैं तिरूं म्हांरी नाव तिरै ३७९
- व्यवहार बोध ३८३
- शासन सुषमा ३८४
- श्रावक संबोध ३८६
- शैक्ष-शिक्षा ३८७
- संस्कार बोध ३८७
- सम्बोध ३८९
- सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति ३८९
- सुधारस ३९०
- सेवाभावी ३९२
- सोमरस ३९३
- संस्कृत साहित्य ३९४
- कर्त्तव्य षट्त्रिंशिका ३९५
- जैन सिद्धान्त दीपिका ३९६
- पंचसूत्रम् ३९७
- मनोनुशासनम् ३९७
- श्री भिक्षुन्यायकर्णिका ३९९
- शिक्षा षण्णवति ४००

आचार्य तुलसी द्वारा रचित काव्य ग्रंथ ४०१

प्रयुक्त सहायक ग्रंथ सूची ४०२

आचार्य तुलसी का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

''अपने आपको पूर्णता के साथ अभिव्यक्त करना, चाहे वह कर्म द्वारा हो अथवा वाणी द्वारा या किसी भी अन्य माध्यम के द्वारा, व्यक्तित्व की सबसे बड़ी सफलता है।'' आचार्य तुलसी जैसे सहज, पवित्र और पारदर्शी व्यक्तित्व को देखकर ही डॉ. नगेन्द्र ने व्यक्तित्व की यह परिभाषा दी होगी।

आचार्य तुलसी का अवतरण इस संसार में तब हुआ, जब भारत वर्ष चारित्रिक एवं नैतिक संक्रांति के दौर से गुजर रहा था। भारतीय समाज कुरूढ़ियों से जकड़ा हुआ था। सामन्ती वातावरण होते हुए भी राजतंत्र का प्रभाव ढ़ीला पड़ रहा था। सम्प्रदाय उपासनाप्रधान धर्म के ऊपर आसन जमाए बैठा था। नारी समाज अशिक्षा के कुहरे से आच्छन्न था। घर की चार दिवारी ही उसकी सीमा-रेखा थी। वैसी परिस्थितियों में आचार्य तुलसी का जन्म नागौर जिले के लाडनूं नगर में सन् १९१४ में खटेड़ परिवार में हुआ। ग्यारह वर्ष की अल्पायु में उन्होंने संन्यास के विकट पथ पर चरणन्यास किया। २२ वर्ष की अवस्था में एक विशाल धर्मसंघ का नेतृत्व संभाला। ३३ वर्ष की अवस्था में देश में चारित्रिक एवं नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हेतु अणुव्रत आंदोलन का प्रवर्तन किया। उनके फौलादी व्यक्तित्व ने विकास के अनेक नए क्षितिज उन्मुक्त किए, जैसे—अणुव्रत, नया मोड़, आगम-संपादन, समण दीक्षा, अहिंसा सार्वभौम, प्रेक्षाध्यान, जीवन-विज्ञान आदि।

आचार्य तुलसी अप्रतिम और अलौकिक व्यक्तित्व के धनी थे। डॉ. निजामुद्दीन के शब्दों में ''धवल केश, गौर वर्ण, सत्य और तेज से प्रदीप्त विशाल नेत्र, भव्य प्रशस्त मस्तक, प्रसन्न स्मित वदन, आत्मीयता के सागर, समभाव के साधक, सहजता की मूर्ति, युग के तत्त्ववेत्ता, मानवता के मसीहा, राष्ट्रीय चेतना के प्रहरी, अणुव्रत के प्रवर्तक, मृदुभाषी, अनुशासन में डूबा व्यक्तित्व और अध्यात्मज्योति—यह है प्रथम-दर्शन में आचार्यश्री तुलसी का आकर्षक भव्य व्यक्तित्व।''[1] दक्षिणयात्रा के दौरान जब आचार्य तुलसी महर्षि रमण के आश्रम में पहुंचे तो वहां एक साधक ज्योतिष् विद्या का ज्ञाता था। आचार्य श्री तुलसी के चित्र को देखकर वह उनके पास आया। आचार्य श्री के भव्य व्यक्तित्व के बारे में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उसने कहा—

१. आपके विशाल कान दिव्य हैं, ऐसे कान वर्तमान में लाखों व्यक्तियों में कहीं नहीं देखे। इनकी आकृति से आपके दिव्य व्यक्तित्व का पता लगता है।

---

१. सं. साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा; आचार्य तुलसी : विचार के वातायन में, पृ. ४२।

२. आपके चक्षु अत्यन्त तेजस्वी और अलौकिक हैं। इनसे अमृत बरसता है, जो एक महान् आत्मा के अवतरण के प्रतीक हैं।
३. हाथ की मुद्रा और रचना विश्व को आशीर्वाद देने की सूचक है।
४. आपका हृदय पवित्र और विशाल है। हृदय की एक ग्रंथि जरूर छोटी है पर अब उसका भी क्रमश: विकास हो रहा है। आपके द्वारा विश्व का कल्याण होगा।''[१]

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी का अनुभव है कि थोड़े या अधिक समय के लिए जिन लोगों ने उनको देखा या सुन लिया, वे उन्हें कभी विस्मृत नहीं कर पाए। जिन्होंने उनके उपपात में बैठने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया, जिनको उनके साथ विचार-विमर्श का मौका मिल गया या जिनकी ज्वलन्त समस्याओं का समाधान हो गया, उनके लिए तो वे चिरस्मरणीय बन गए।'' आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर भदन्त आनंद कौशल्यायन ने कहा— ''मेरी प्रसन्नता उस दिन और अधिक हो जाएगी, जब हमारे देश में, हमारी बौद्ध परम्परा में आचार्य तुलसी जैसा व्यक्ति पैदा होगा।''

आचार्य तुलसी का विराट्, व्यापक एवं चुम्बकीय व्यक्तित्व किसी विशेषण विशेष के अधीन नहीं था। कोई भी उपमा उनके व्यक्तित्व के सम्मुख नगण्य प्रतीत होती थी। बीकानेर के प्रसिद्ध अस्थि विशेषज्ञ डॉ. आर. एन. माथुर आचार्य तुलसी के प्रति अत्यन्त आस्था रखते थे। एक दिन वे गुरुदेव से बोले—''हम डॉक्टर तो बाह्य चिकित्सा करते हैं लेकिन आप आंतरिक चिकित्सा से व्यक्ति की अन्तरात्मा को स्वस्थ बनाते हैं।'' बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा—''गांधी महात्मा कहलाते हैं पर आपमें और गांधी में अंतर है। उन्होंने देश को बाह्य स्वतंत्रता दिलाई पर आप आंतरिक विकारों से मुक्ति दिलाते हैं। हम आपका महत्व विशेषणों से आंकें, यह ठीक नहीं। आप निर्विशेषण तुलसी ही रहिए। 'राम' राम के रूप में सबके दिल में प्रतिष्ठित हैं, उन्हें 'बलवान् राम' कहकर कोई नहीं पुकारता है।'' साहित्यकार रत्नेश कुसुमाकर इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि यह भूमितिक सच्चाई है कि आचार्य तुलसी के दुग्धोज्ज्वल व्यक्तित्व को विश्व वाङ्मय का

१. आचार्य तुलसी ; मेरा जीवन : मेरा दर्शन, भाग-८, पृ. १९७।

ऐसा कोई विशेषण या विरुद नहीं है, जो उन्हें बांध सके या तोल सके।''

आचार्य तुलसी कुशल अनुशास्ता थे, समाज का नियमन और अनुशासन करने की उनमें अद्‌भुत क्षमता थी। निग्रह और अनुग्रह का समन्वित प्रयोग कर उन्होंने अनुशासन के क्षेत्र में एक कीर्तिमान स्थापित किया। एक नेता के दायित्व को सहज-सरल राजस्थानी भाषा में अभिव्यक्ति देते हुए आचार्य तुलसी कहते हैं—

उचित बात अवसर पर कहणी, ओ तू फरज बजा।
फिर कोई मानै नहीं मानै, मत कर तू परवा॥ सुधा पृ. ४८

प्रशासन-कौशल के साथ काव्य के मर्म को समझना और उसकी रचना करना उनकी विरल विशेषता थी। उनके व्यक्तित्व में काव्यमयी कारयित्री और भावयित्री दोनों प्रतिभाओं का मणिकांचन संयोग था। महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी उनके व्यक्तित्व के इसी पक्ष को रेखांकित करती हुई कहती हैं— 'प्रशासक और कवि—ये दोनों भिन्न दिशाएं हैं। कवित्व व्यक्ति के अंत:करण में पलने वाली कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति है, जबकि प्रशासन के साथ भावुकता का कोई सम्बन्ध नहीं है। आचार्य तुलसी प्रवचनकार थे, लेखक थे, प्रशासक थे पर सबसे पहले कवि थे।'' विशाल धर्मसंघ का एकछत्र नेतृत्व करते हुए भी अंतिम समय तक उनकी काव्य-साधना अबाध गति से चलती रही।

पूज्य गुरुदेव जब बनारस पहुंचे, तब दोपहर के समय एक दिन प्रसिद्ध साहित्यकार हजारीप्रसाद द्विवेदी उनकी उपासना में पहुंचे। वे घंटों तक गुरुदेव के साथ धर्म एवं काव्य विषयक चर्चा करते रहे। उठते-उठते उन्होंने कहा—''आचार्यजी! मैं आपको केवल प्रचारक के रूप में ही जानता था। आपके इस रचनात्मक रूप से सर्वथा अनभिज्ञ था। यदि यह परिचय पहले होता तो मैं अब तक कितनी ही बार आपसे मिल चुका होता।''

आचार्य तुलसी युगद्रष्टा और युगप्रधान आचार्य थे, अपने युगान्तकारी व्यक्तित्व से उन्होंने युग की परिस्थितियों को सजग दृष्टि से केवल देखा ही नहीं, अपितु साहित्य और वक्तव्य के द्वारा उसे प्रभावित एवं परिवर्तित भी किया। उनकी प्रेरणा में प्रबल इच्छाशक्ति और दुर्घर्ष आत्मबल निहित था इसलिए उससे समाज की जड़ता, शुष्कता और कठोरता विलीन हो जाती थी। उनकी प्रेरणा से लाखों लोगों ने अपने जीवन की दिशा बदल दी।

आचार्य तुलसी लोकनायक थे क्योंकि उन्होंने समाज की कटुता, वैमनस्य और घृणा आदि के नासूरों को पारस्परिक सौहार्द, स्नेह, प्रेम, करुणा और समन्वय के मरहम से भरा। वे दूरद्रष्टा थे, उनमें भविष्य की आकांक्षाओं, अपेक्षाओं और आवश्यकताओं को समय से पूर्व जानने की अद्‌भुत क्षमता थी। वे धर्मक्रान्ति के सूत्रधार थे, धर्मक्षेत्र में फैली अनेक विसंगतियों पर उन्होंने तीखे प्रहार किए। तीर्थंकर पत्र के सम्पादक डॉ. नेमीचन्द जैन उनके इस क्रांतिकारी व्यक्तित्व का रेखांकन करते हुए कहते हैं—''धर्म के बंद दरवाजों, खिड़कियों और उजालदानों को खोलने तथा ताजगी को भीतर आने की अनुमति देने का काम आचार्य तुलसी ने किया है। उन्होंने धर्म को किसी एक बाड़े में कैद नहीं होने दिया वरन् उसे एक स्वाधीन पक्षी की तरह पंख पसारने का हर मौका दिया।''[1] आचार्य तुलसी कहते थे—''धर्म गुरुओं की पारस्परिक ईर्ष्या, कलह और विद्वेष देखकर लगता है कि पानी में आग लग गयी। मैं इस आग को बुझाना चाहता हूं और इसके लिए आप सबका सहयोग चाहता हूं।'' उन्होंने क्रियाकाण्ड और उपासना प्रधान धर्म के स्थान पर वर्ण, जाति, समुदाय एवं वर्गभेद से ऊपर उठकर आचरणप्रधान मानवधर्म की स्थापना की। धर्म के आधार पर मानव जाति को विभक्त कर सामाजिक विषमता पैदा करने वाले धार्मिकों के समक्ष प्रखर तर्क प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा—

मिसरी स्यूं मुख मीठो होसी, कोई खावै।
जात-पांत रो पचड़ो फिर क्यूं, बिच में आवै॥ शासन पृ. ९८

आचार्य तुलसी मानवता के मसीहा थे, पीड़ित और शोषित मानवता को उन्होंने त्राण और गति प्रदान की। समाज-सुधारक के रूप में वे जीवन भर रूढ़ियों, कुरीतियों और अंधविश्वासों को चुनौती देते रहे। सामाजिक असंगतियों और विसंगतियों पर प्रहार करने हेतु उन्होंने जो गीत लिखे, उनमें केवल तीखापन ही नहीं, अपितु उदात्त जीवन-मूल्य स्थापित करने का प्रशस्य उपक्रम तथा कुछ नया निर्माण का स्वर भी है। उनके काव्य रूपी दर्पण में समाज अपनी विकृतियों एवं कुरूढ़ियों को देखकर स्वयं को बदलने के लिए विवश हो जाता है। उनके विरोध और क्रांति में किसी का अपकर्ष नहीं अपितु अमिय रस का निर्झर है। नए मोड़ के द्वारा उनकी

१. आचार्य तुलसी ; विचार के वातायन में, पृ. ५२।

ललकार ने न केवल समाज को झकझोरा बल्कि उसे रूढ़िमुक्त भी किया। जैसे विनोबा भूदान के द्वारा समाज में सर्वोदय लाना चाहते थे, वैसे ही आचार्य तुलसी अणुव्रत के माध्यम से समाज में सर्वोदय लाना चाहते थे। काव्य की पंक्तियों में अपने लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं—

सर्वांगी व्यक्तित्व उदय हो।
लक्ष्य सामने सर्वोदय हो॥ अणु पृ. ११४

आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व में गगनचुम्बी ऊंचाई और अमाप्य गहराई—दोनों का अद्भुत संयोग था। उनका बहुरंगी व्यक्तित्व अनेक आयामों को संपादित करते हुए गतिमान रहा क्योंकि उनका जीवन-दर्शन चरैवेति चरैवेति सूक्त से प्रतिध्वनित था। सतत गति और प्रवाह ही उन्हें प्रिय था। वे जीवन की अंतिम श्वास तक अविश्रान्त गति से उद्यम करते रहे। विषम से विषम परिस्थितियों में भी मंजिल तक पहुंचना उनके जीवन का प्रमुख ध्येय था। इसमें संदेह नहीं कि साध्य को प्राप्त करने हेतु वे अपने प्राणों तक की बलि करने को उत्सुक थे—

- साधना के उच्च शिखरों पर, विजय अभियान हो अब।
  प्राप्त करने साध्य को ये, प्राण भी बलिदान हों अब॥ नंदन पृ. ४३
- दृढ़-निष्ठा नियम निभाने में, हो प्राण बलि प्रण पाने में। शासन पृ. ३५
- प्राण विसर्जन कर चरणों में, होगा निज पर नाज। नंदन पृ. ५

निम्न पंक्तियों में कवि के हिमालयी मनोबल की पुष्टि हो रही है—

- हो सफल आत्मानुशासन, तिमिर को कर दें उजाला। नंदन पृ. ४५
- निश्चित है विश्वास, नया सूरज धरती पर लाएं। नंदन पृ. ४१
- क्यूं अंग सुरंगै पर फुणसी, फोड़ै रो आईठाण रहै?
  होणो चावै संकल्प सबल, ओ प्राण गए पिण आण रहै॥ डालिम पृ. २००

आचार्य तुलसी के महनीय व्यक्तित्व का रेखाकंन प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रजी के शब्दों में उल्लेखनीय है—''मैं लेखक हूं। कलम चलाना मेरा काम है। मुझमें मानसिक स्वतंत्रता है अत: किसी के प्रति सहज झुकने को तैयार नहीं हूं। मैं अच्छा खासा आलोचक हूं और इस धंधे में मैं विफल भी नहीं हूं। इन सबके बावजूद आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व के प्रति मेरी सच्ची आत्मीयता है।····आचार्य तुलसी उन महापुरुषों में हैं, जिनके व्यक्तित्व से पद कभी ऊपर नहीं हो पाता····। आचार्य तुलसी इतने जीवन्त और प्राणवन्त व्यक्ति हैं कि उस

आसन का गुरुत्व स्वयं फीका पड़ जाता है। वेशभूषा से वे जैनाचार्य हैं किन्तु आंतरिक निर्मलता और संवेदन-क्षमता से वे सभी मत और वर्गों के आत्मीय बन सके हैं। मैंने उन्हें सदा जागृत और तत्पर पाया है। शैथिल्य कहीं देखने में नहीं आया।''[१]

रस सिद्ध कवि के साथ-साथ आचार्य तुलसी सुमधुर संगायक भी थे। उनके अणु-अणु से संगीत प्रस्फुटित होता रहता था। उनका कंठ बचपन से ही सुरीला था। उनका गायन सुनकर लोग उन्हें 'बांसुरी महाराज' कहते थे। जब वे मधुर और उच्च स्वरों में गीत गाते, तब उनका अंग-अंग थिरकने लगता था। आंखें और अंगुलियां मानों लय के साथ-साथ नृत्य करती थीं। उनकी मुख-मुद्रा के भावों को देखकर श्रोता उसमें तन्मय और तच्चित्त हो जाते थे। एक बार अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान् डॉ. नथमल टांटिया ने युवाचार्य महाप्रज्ञ के समक्ष प्रश्न उपस्थित करते हुए कहा—''आचार्यश्री का ज्ञान तो आप सब लेने का प्रयत्न कर रहे हैं पर इनका सुरीला गला कौन लेगा?''

आचार्य तुलसी जन्मजात कुशल अध्यापक थे। अध्यापन उनकी नैसर्गिक रुचि का विषय था। अध्यापन को अपना आत्मधर्म मानकर वे जीवन की अंतिम सांस तक विद्यार्थी साधु-साध्वियों को अध्यापन करवाते रहे। व्यक्तिगत विकास एवं अध्यापन हेतु वे सतत स्वाध्याय करते रहते थे। वे कहते थे—''अध्यापन के समय भी मैं अपने आपको विद्यार्थी अनुभव करता हूं।''

आचार्य तुलसी आध्यात्मिक ऊर्जा के अक्षय स्रोत थे, वे जीवन भर जन-जन में उस ऊर्जा का संप्रेषण करते रहे। वे कहते थे—''अध्यात्म से भिन्न मेरा अस्तित्व नहीं है। मेरे लिए अध्यात्म ही सब कुछ है।'' अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी वे आसन, प्राणायाम, ध्यान एवं जप में नियमित रूप से समय लगाते थे। उनका खाद्य-संयम बहुत सधा हुआ था। उनके संयमपूर्ण व्यक्तित्व में मन और इंद्रिय-नियंत्रण की प्रबल शक्ति अन्तर्निहित थी। आचार्य तुलसी ने कवि-कर्म की अपेक्षा आध्यात्मिकता को ही सर्वोपरि स्थान दिया। इसका प्रमाण है उनकी उत्कृष्टतम काव्य कृति 'अग्निपरीक्षा' का न्यायालय द्वारा निर्दोष सिद्ध हो जाने पर भी पुस्तक को वापिस लेना। कुछ साहित्यकारों और संतों ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए आचार्य तुलसी से कहा—''आपकी कृति

---

१. आचार्य तुलसी ; विचार के वातायन में, पृ. २७।

सच्ची है उत्कृष्ट साहित्यिक कृति है, फिर उसको वापिस क्यों लिया गया? इस पुस्तक को वापिस लेकर आपने साहित्य-जगत् का अपमान किया है।'' आचार्य तुलसी ने उनको समझाते हुए कहा—''मैं पहले संत हूं, साधक हूं बाद में साहित्यकार या कवि। इस प्रश्न पर मैंने पहले साधक की दृष्टि से विचार किया, फिर कवि की दृष्टि से। अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए मैंने ऐसा उपक्रम किया है। मुझे नहीं लगता कि मैंने कोई भूल की है।''[१] उनके सम्पूर्ण काव्य-साहित्य में जन-जन में आत्मनिष्ठा, आध्यात्मिकता और आत्मविश्वास जगाने की अनुगूंज व्याप्त है। लोगों की आध्यात्मिक दृष्टि जगाने वाली निम्न पंक्तियां किस सहृदय का मानस झकझोरने में समर्थ नहीं हैं—

- तू स्वयं है दिव्य ज्योति, है विलक्षण शक्ति तेरी,
  पर तुझे करती हतप्रभ, मोह-माया की अंधेरी।
  अपरिमित-विभुता-प्रपूरित, हो रहा क्यों तू भिखारी?
  जो अतुल संवेदना वह, क्यों हुई है सुप्त सारी?॥ भरत पृ. २८
- जिसने ब्रह्म पा लिया, उसने सब कुछ पाया,
  त्वरित असंभव को भी, संभव कर दिखलाया।
  शूली को सिंहासन, अहि को हार बनाया,
  वज्र-कपाटों को पल भर में तोड़ गिराया॥ परीक्षा पृ. १६२

आचार्य तुलसी की चेतना सदैव सहजानंद के सागर में निमग्न रहती थी। संतुलन को वे सतत आनंद का कारण मानते थे। वे कहते थे—मेरे जीवन में आलोचना और प्रशंसा दोनों का प्रकर्ष रहा पर मैं इन दोनों से ऊपर उठकर काम करता रहा इसीलिए मेरी प्रसन्नता अखण्डित रही। यह आनंद उनके काव्य में भी स्थान-स्थान पर प्रस्फुटित हो गया है। राष्ट्रकवि दिनकर की अनुभूति है कि मानव का अंतरंग जब रस और आनंद से आप्लावित हो जाता है तो वह गा उठता है, काव्य करने बैठता है, प्रवचन देता है तथा तथ्यात्मक जगत् से सामग्री एकत्रित करके छंदों में, स्वरों में, अनुच्छेदों में, परिच्छेदों में, सर्गों में, अंकों में अपना उच्छलित आनंद भर देता है और श्रोता तथा पाठक को भी उस आनंद से सराबोर कर देता है।''

प्राचीन यूनानी दार्शनिक हेराक्लाइट्स मानते थे—''यदि संघर्ष समाप्त हो

---

१. आचार्य तुलसी ; आदिवचन, पृ. ६।

जाए तो जीवन ही समाप्त हो जाए। संघर्ष ही विकास को हरकत देता है।'' कला का संबंध ऐसे जीवन से है, जो संघर्षरत होने के कारण प्राणवन्त हो। पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी का जीवन विविधता के साथ संघर्षों से ओत:प्रोत रहा। वे जीवन भर भावात्मक शक्तियों के लिए संघर्ष करते रहे। वे संघर्षों में तप कर निर्मित हुए इसलिए उनका मन फौलादी बन गया। वे सदैव संघर्षों को वरदान और विनोद के रूप में स्वीकार करते रहे। उनका उद्घोष था—'जो हमारा हो विरोध, हम उसे समझें विनोद।' संघर्षों का सामना करने के लिए आचार्य तुलसी के पास अद्भुत आत्मबल और साहस था। संघर्षों ने उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को अमाप्य ऊंचाइयां प्रदान कीं। उनकी कविता में मात्र संघर्ष के स्वर ही गुंजित नहीं हुए, अपितु उनसे हंसते-हंसते मुकाबला करने की शक्ति भी निहित है। संघर्षों के साथ वे अपने तरीके से जूझना जानते थे। अपनी सृजनात्मक शक्ति, क्रान्त विचार एवं निर्भीक सहनशीलता से उन्होंने विरोधियों के हर प्रतिकूल प्रहार को व्यर्थ कर दिया। अपने आराध्य आचार्य भिक्षु के लिए लिखी गयी पंक्तियां कवि के इस व्यक्तिगत वैशिष्ट्य पर पूर्णतया चरितार्थ होती हैं—

- आग से खेले सतत, अपमान का विष भी पिया।
  घोर संकट के क्षणों में, शांतिमय जीवन जिया॥ नंदन पृ. १४९
- सृजन चेतना से गागर में, भरा समूचा सागर। नंदन पृ. १३०

दिनकर के शब्दों में जीवन न केवल भावना है और न बुद्धि। आदर्श मनुष्य वह है, जिसकी बुद्धि और भावना दोनों संतुलित होती हैं।'' आचार्य तुलसी ने बुद्धि को उतना ही महत्त्व दिया, जब तक वह भावना पर आघात न करे। उनकी बुद्धि तर्क से संपृक्त होकर भी श्रद्धा, भावना और विवेक से संवलित थी।

पुरुषार्थ त्रैकालिक जीवन-मूल्य है। इसकी मूल्यवत्ता हर धर्म में उद्गीत है। आचार्य तुलसी पौरुष के पर्याय थे। जीवन की अंतिम सांस तक उनका पुरुषार्थ प्रदीप्त रहा। उनका पुरुषार्थ भाग्यवाद से ऊपर था। संघर्षों से सामना करने के लिए उनके पास अपरिमित साहस और अटूट शक्ति थी। इसीलिए वे भाग्य की सत्ता को पुरुषार्थ के ऊपर नहीं आने देते थे। पुरुषार्थ के बारे में उनकी मौलिक टिप्पणी भाग्य के भरोसे अकर्मण्य बैठे रहने वाले लोगों को प्रकाश दिखाने वाली है—'भाग्य को मैं ठुकराता नहीं हूं किन्तु पुरुषार्थ भाग्य

को बनाता है, भाग्य पुरुषार्थ को नहीं, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।'' केवल भाग्य के भरोसे बैठे रहने वाले व्यक्ति काम करने की क्षमता खो बैठते हैं। उनके आगे-पीछे निराशा मंडराती रहती है। भाग्य में लिखा ही नहीं है तो सफलता कहां से आएगी? इस प्रकार की सोच उनकी कर्मशक्ति को कुंठित कर देती है। ओजस्वी स्वरों में कवि का पुरुषार्थ मुखरित हो उठा—

- पुरुष बने पुरुषार्थहीन, है बड़े शर्म की बात अरे!
  बिना परिश्रम के पैसे पर, क्यों अपना अधिकार करे॥ अणु पृ. २१
- सृजन का अवकाश 'तुलसी' नव सृजन के गीत गाऊं। नंदन पृ. ३४
- हो लक्ष्य मोक्ष परमात्मपदं, पुरुषार्थ स्वयं का संसाधन। श्रावक पृ. ३०

व्यापक क्षेत्र में काम करने के कारण आचार्य तुलसी को जो अनुभव-संपदा प्राप्त हुई, उसका प्रयोग उन्होंने काव्य में भी कर दिया। यही कारण है कि उनकी रचना के साथ पाठक एवं श्रोता का गहरा तादात्म्य स्थापित हो जाता है। अरस्तू ने कहा था कि कवि केवल अनुकरण ही नहीं करता, वह स्रष्टा भी होता है।'' आचार्य तुलसी स्रष्टा के साथ द्रष्टा भी थे। उनकी दृष्टि व्यापक और सर्वग्राही थी। यद्यपि उनकी दृष्टि अध्यात्म पर टिकी थी लेकिन परिवार, समाज और राष्ट्र को भी उन्होंने अपनी दृष्टि से ओझल नहीं किया। जहां उन्होंने समाज की गति में त्वरा भरी, वहीं राष्ट्र के चारित्रिक उन्नयन का भी भरसक प्रयत्न किया। समाज के विकृत स्वरूप को बदलने के लिए उन्होंने कोई कसर नहीं रखी। बम्बई में कवि सम्मेलन में कवियों को प्रतिबोधित करते हुए आचार्य तुलसी ने कहा—''कवि जगत् का स्रष्टा होता है। वह अपनी कविताओं से संसार को झंकृत ही नहीं, स्वरित कर सकता है। वह अपने काव्य से ऐसी लहर लाए कि अनीति नीति में बदल जाए। उसके काव्य में अध्यात्म की इतनी गहरी पुट हो कि मधुशाला अध्यात्मशाला बन जाए।''[1]

आचार्य तुलसी का दबंग और निर्भय व्यक्तित्व काव्य में भी झलकता है। उनका आत्मविश्वास काव्य में अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। कभी पात्रों के मुख से तो कभी औपदेशिक गीतों के माध्यम से। आराध्य के सम्मुख संकल्पनिष्ठा को व्यक्त करने में कवि का आत्मविश्वास उच्च स्वरों में उद्गीत हुआ है। निम्न पंक्तियों में उनकी अदम्य आत्मविश्वास से भरी

१. आचार्य तुलसी ; मेरा जीवन : मेरा दर्शन, भाग-७, पृ. ३८६।

संकल्प शक्ति और संघर्ष की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है—

- प्राणों की परवाह नहीं है, प्रण को अटल निभाएंगे।
  नहीं अपेक्षा है औरों की, स्वयं लक्ष्य को पाएंगे॥ शासन पृ. ४७
- समय पर कड़े परीक्षण में भी, हम साहस दिखलाएंगे॥ नंदन पृ. ६८
- आत्मशक्ति का स्रोत जिधर भी बह चलता है।
  उधर निरन्तर हरा-भरा उपवन खिलता है॥ परीक्षा पृ.१६२

स्रोत के माध्यम से कवि का आत्मविश्वास और साहस इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है—

स्रोत बिना पत्थर को चीरे, बह न सकेगा,
स्रोत मार्ग की बाधाओं को, सह न सकेगा।
स्रोत कभी भी मौन धारकर, रह न सकेगा,
अपनी अन्तर्वाणी पूरी, कह न सकेगा॥ परीक्षा पृ. १६२

कवि अन्याय के समक्ष झुकने के लिए हरगिज तैयार नहीं। बड़े भाई के द्वारा अन्याय का आश्रय लेने पर बाहुबलि के मुख से अन्याय के प्रतिकार में कवि की चेतना हुंकार के साथ गूंज उठी—

दुष्टता के सामने बिल्कुल, झुकूंगा मैं नहीं,
अटल है संकल्प मेरा, दृढ़ प्रतिज्ञा है यही।
लोह के इस चक्र से तू, क्या डराता है मुझे?
ले खड़ा तैयार कर ले, वही जो भाता तुझे॥ भरत पृ. १३३

आचार्य तुलसी प्रगतिशील व्यक्तित्व के धनी थे। उन्होंने किसी रूढ़ परम्परा या मान्यता को स्वीकृति नहीं दी। युगीन परिस्थितियों के अनुसार न केवल उन्होंने अपने जीवन और विचारों में परिवर्तन किया, प्रत्युत् संघ में भी मौलिकता की सुरक्षा करते हुए प्रगति के नए-नए उन्मेष उद्घाटित किए। उन्हें न प्राचीनता से विद्रोह था और न नवीनता का आग्रह। जो कुछ उन्हें उचित लगा, उसकी बेबाक और सटीक अभिव्यक्ति दे दी। सत्य को प्रकट करने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया, चाहें वह किसी को अप्रिय ही क्यों न लगे। उनके युगीन चिंतन की झलक निम्न पंक्तियों में देखी जा सकती है—

नया मोड़ हो उसी दिशा में, नयी चेतना फिर जागे,
तोड़ गिराएं जीर्ण-शीर्ण जो, अंधरूढ़ियों के धागे,
आगे बढ़ने का यह युग है, बढ़ना हमको सबसे प्यारा॥ शासन पृ. ४७

आचार्य तुलसी एक व्यक्ति नहीं, अपितु गौरवान्वित संस्कृति थे। उनका जीवन प्राच्य और प्रतीच्य दोनों संस्कृतियों का अद्भुत समन्वय था। वे अध्यात्म संस्कृति के अग्रणी संवाहक थे। उनके लिए सम्प्रदाय गौण एवं मानवता मुख्य थी। आचरणहीन उपासना एवं संस्कृतिविहीन व्यवहार को वे अनाचरणीय पाखण्ड मानते थे। अणुव्रत के माध्यम से उन्होंने ऐसे नैतिक एवं संस्कृतिपरक पथ का निर्माण किया, जिस पर चलने वाले कोटि-कोटि पांव हों किन्तु लक्ष्य केवल एक हो-शांति, चरित्र और नैतिकता की प्रतिष्ठा। वे कहते थे—'अणुव्रत शब्द की दृष्टि से छोटा हो सकता है पर उसमें सृजन की असीम क्षमता है। वह ऐसे समाज की रचना करना चाहता है, जिसमें मनुष्य जाति की एकता स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो। कोई व्यक्ति पूजा-पाठ करे या नहीं, दान-पुण्य करे या नहीं पर अपना व्यापार शुद्ध रखे, नैतिकता को आधार मानकर चले तथा मानवता को सुरक्षित रखे, यह अणुव्रत को अभीष्ट है।''

गीतों में एक ओर उनका भक्त हृदय प्रकट हुआ है तो दूसरी ओर उपदेशक स्वरूप और भी अधिक निखरा है। उनका उपदेश केवल वाग्विलोड़न नहीं था, वे आचरण की कसौटी पर कसकर किसी बात को प्रकट करते थे। अप्रत्यक्ष उपदेश का सुंदर नमूना निम्नलिखित अभिव्यक्तियों में देखा जा सकता है—

- सूरज चांद सितारों ने कब, निज मर्यादा छोड़ी।
  और समन्दर धरती अम्बर, ने कब सीमा तोड़ी॥ नंदन पृ. ५३
- मस्जिद में जाते नमाज की, रखते पूरी पाबंदी,
  लेकिन यदि नापाक रहा दिल, और वृत्तियां भी गंदी,
  तो बोलो तुम हुक्म खुदा का, अदा कहां कर पाते हो? अणु पृ. ४३

वाणी के साथ जब भी आचरण का योग होता है, तभी कवि या साहित्यकार क्रांति करने में सफल होता है। आचार्य तुलसी ने अखण्ड और समग्र जीवन जीया। वे जीवन की सम्पूर्णता में विश्वास करते थे। उनके व्यक्तिगत जीवन और काव्य की अभिव्यक्ति के बीच में किसी प्रकार का व्यवधान या अंतराल नहीं था इसीलिए उनकी कविताओं में उनके सरल एवं सरस हृदय की अनुगूंज सुनाई देती है।

आचार्य तुलसी की निस्पृह चेतना न पदार्थ से प्रतिबद्ध हुई और न ही बाह्य प्रसिद्धि से प्रभावित हुई। ६० साल तक तेजस्विता से जिस पद पर

आसीन रहे, उसे एक झटके के साथ त्याग कर अपने उत्तराधिकारी को वह ताज देते हुए उन्होंने कहा—"मैं अब केवल संत तुलसी रहकर मानवता की सेवा में अपने जीवन को समर्पित करना चाहता हूं।" उनकी यह निष्पृह चेतना काव्य में भी प्रकट हो गयी है—

- राज्य और पद-यश की लिप्सा, सारा भान भुलाती।
  क्या जाने मानव से कितने, यह अनर्थ करवाती॥ भरत पृ. १३६

आचार्य तुलसी का व्यक्तित्व अनेक विरोधी युगलों का संगम था। आदर्श और व्यवहार, कठोरता और कोमलता, परम्परा और प्रगति, भावना और तर्क तथा पुरातनता और नवीनता का सुंदर सामंजस्य उनके व्यक्तित्व में था। वे अन्तर्मुखी साधक थे पर बाह्य से उदासीन नहीं थे। वे अनुशासनहीनता के प्रति कठोर थे पर सुविनीतों के लिए मक्खन से भी अधिक कोमल थे। उनका हृदय श्रद्धा से आपूरित था पर तर्क और बुद्धि का साथ भी उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। उनमें मौलिक पुरातन संस्कारों के प्रति निष्ठा थी पर युग-चेतना के अनुसार सड़ी-गली एवं निरर्थक परम्पराओं को बदलने का साहस भी था। वे विषपायी आचार्य थे अत: शंकर बनकर जन-जीवन का तीव्र हलाहल पीते रहे पर बदले में सबको अमृत बांटते रहे। भूतपूर्व उपराष्ट्रपति श्री बी. डी. जत्ती आचार्यश्री के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर इसी बात का समर्थन करते हैं—'आचार्य तुलसी संसार के उन विरल महानुभावों में एक हैं, जिन्होंने स्वयं विष पीकर समाज एवं मानवता को अमृत-पान कराया। स्वयं कांटों के पथ पर चलकर दूसरों के लिए फूलों का मार्ग प्रशस्त किया।"[१] वे जीवन भर समाज, संघ और राष्ट्र को अपनी सेवाएं समर्पित करते रहे। सदैव कुछ नया सोचते रहे, नया करते रहे और नया बांटते रहे।

आचार्य तुलसी ने काव्य-साधना उस समय प्रारम्भ की, जब भारत में पूंजीपति और जमींदारों द्वारा शोषण का उत्पीड़न चल रहा था। सामाजिक विषमता, जातिगत भेद और छूआछूत आदि का सर्वत्र साम्राज्य फैला हुआ था। धर्म के नाम पर भोली-भाली जनता को गुमराह किया जा रहा था। शोषण के द्वारा धन कमाकर पुण्य करने वाले धार्मिकों पर किया गया व्यंग्य मर्म का भेदन करने वाला है—

शोषण से धन कमाया, दीनों का खून चूसा।
कैसे हो पाप मुक्ति, अब तुच्छ दान द्वारा? अणु पृ. ४४

---

१. जैन भारती ११/१/७६।

आचार्य तुलसी महान् परिव्राजक थे। उन्होंने भारत के लगभग सभी प्रान्तों की पदयात्राएं कीं। वे कहते थे—"मैं देश की चप्पा चप्पा भूमि का स्पर्श करना चाहता हूं। अपनी पदयात्राओं के द्वारा मैं देश के हर वर्ग, जाति या संप्रदाय के लोगों से इंसानियत और भाईचारे के नाते मिलकर उन्हें जीवन का लक्ष्य परिचित कराना चाहता हूं।" पदयात्रा के दौरान जीवन को निकटता से देखने के कारण उनका अनुभव जगत् विशाल हो गया। गरीब की झौंपड़ी से लेकर राष्ट्रपति के भवन तक उन्होंने नैतिकता की आवाज को बुलंद किया। यात्राओं के दौरान उनके उपदेशों को सुनकर प्रसिद्ध पियक्कड़ों ने शराब पीना छोड़ा, धूम्रपान करने वालों ने धूम्रपान करना छोड़ा, व्यापारियों ने झूठा माप-तोल तथा खाद्य-पदार्थों में मिलावट न करने का संकल्प लिया। कृतज्ञ राष्ट्र एवं समाज ने उन्हें अनेक सम्मानों एवं उपाधियों से सुशोभित किया लेकिन वे कभी सम्मान के पीछे नहीं चले। भारत-ज्योति अलंकरण प्राप्त होने पर उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—"राजस्थान विद्यापीठ ने मुझे 'भारत-ज्योति' अलंकरण से सम्मानित किया पर मैं चाहता हूं कि मैं 'आत्मज्योति बनूं', यही मेरा लक्ष्य है।"

अपनी प्रतिभा और लगन से ज्ञान की विविध शाखाओं पर अपना अधिकार करके वे बहुश्रुत बन गए। उन्होंने अपने अध्यवसाय से व्याकरण, दर्शन, संस्कृत एवं प्राकृत के अनेक गंभीर ग्रंथों का अध्ययन किया साथ ही उन्होंने २० हजार पद्य प्रमाण श्लोक कंठस्थ करके प्राचीन गुरुकुल-विद्या को पुनरुज्जीवित कर दिया। उनकी यह बहुज्ञता काव्य-साहित्य में भी परिलक्षित होती है। व्यापक ग्रंथ अनुशीलन के साथ विभिन्न वर्गों के लोगों के साथ सम्पर्क ने भी उनके अनुभवों में वृद्धि कर दी।

यद्यपि आचार्य तुलसी ने किसी विद्यालय में जाकर काव्यशास्त्र या उसके प्रतिमानों का अध्ययन नहीं किया और न ही वे किसी शास्त्र की श्रृंखलाओं में बंधे, फिर भी उन्होंने इतने उन्मुक्त, अकृत्रिम, मार्मिक और अनुभूतिपरक ग्रंथों का प्रणयन कर दिया। उनकी काव्यमयी कारयित्री प्रतिभा के लिए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की निम्न पंक्तियों को प्रस्तुत किया जा सकता है—'जिस व्यक्ति के मन में मानवता के स्वाभाविक धर्म की उपलब्धि का आनंद उच्छल हो गया होता है, जिसमें कहने योग्य बात कहलाने की बेचैनी पैदा होती है, वह नया छंद बना लेता है, नए अलंकारों

की योजना कर लेता है, नयी शैली बना लेता है, परन्तु जिसे इन बातों का ज्ञान हो लेकिन मूल बात का स्पर्श ही नहीं, वह साहित्यकार नहीं हो सकता।''[१]

आचार्य तुलसी की प्रेरणा और प्रोत्साहन से तेरापंथ धर्मसंघ में आचार्य महाप्रज्ञ एवं महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी आदि अनेक साधु-साध्वियां उत्कृष्ट कोटि की कविता लिखने लगे। दूसरों की कविता सुनने और परिमार्जित करने में भी वे उतना ही रस लेते थे, जितना स्वयं काव्य लिखने में।

सन् १९६४ का प्रसंग है। कन्हैयालालजी फूलफगर ने अर्द्धरात्रि में आचार्य भिक्षु पर एक कविता बनाई। कविता बनाकर उनका मन तत्काल किसी को सुनाने के लिए बेचैन हो गया। उनके मन में विकल्प उठा कि मैं अपनी कविता उस महायोगी को सुनाऊंगा, जो स्वयं चोटी के विद्वान् हैं, सुरीले गायक हैं तथा काव्य के रसिक एवं मर्मज्ञ हैं। वे रात्रि में लगभग एक बजे आचार्य तुलसी के पट्ट के पास पहुंचे और उनके पैर का अंगूठा दबा दिया। आचार्य तुलसी उठकर बैठ गए। कन्हैयालालजी ने कहा—'' मेरी धृष्टता क्षमा करें। मैंने आपके आद्य गुरु आचार्य भिक्षु के बारे में एक कविता लिखी है, उसे मैं आपको इसी वक्त सुनाना चाहता हूं क्योंकि मेरी दृष्टि में आपसे अधिक उत्कृष्ट काव्य-पारखी और कोई नहीं है। कविता की चार पंक्तियां इस प्रकार हैं—

जब भी आता नाम तुम्हारा, श्रद्धा से मस्तक झुक जाता।
झुक जाते हैं चांद सितारे, घन-गर्जन तूफां रुक जाता॥
सुख-वैभव भावी पीढी को, कालकूट तुम स्वयं पी गए।
मृत्यु भला क्या तुम्हें मारती, मरकर भी तुम पुनः जी गए॥

कविता के बोल सुनते ही आचार्य तुलसी के चेहरे पर प्रसन्नता उभर आई। उन्होंने प्रोत्साहन के द्वारा उनका उत्साह बढ़ाया। आचार्य तुलसी के स्थान पर कोई सामान्य व्यक्ति होता तो अर्द्धरात्रि में नींद से उठा देने पर प्रतिक्रिया करके उसके उत्साह को क्षीण कर देता पर आचार्य तुलसी उन विरल व्यक्तित्वों में थे, जिन्होंने समता और संतुलन को साक्षात् जीया था।

आचार्य तुलसी अग्रणी साहित्यकारों के भी मार्गदर्शक थे। प्रसिद्ध बंगाली उपन्यासकार विमलमित्र का कहना था कि हमारा परम सौभाग्य है कि हमें

---
१. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावलि, भाग-७, पृ. १५५।

आचार्य तुलसी जैसे महापुरुष उपलब्ध हैं। मेरे जीवन एवं साहित्य में उनके उपदेशों ने ही सही आदर्श बताए हैं। वे मेरे अति पठनीय और अनुकरणीय बन गए हैं।''

किसी भी सजग कलाकार की रचनात्मक जिजीविषा कभी समाप्त नहीं होती। आचार्य तुलसी की रचनात्मक ऊर्जा इतनी समृद्ध और अखूट थी कि वह जीवन के अंतिम समय तक कम नहीं हुई। वे जीवन के सान्ध्य काल तक मौलिक काव्य-रचना करते रहे। श्रावक समाज के नाम श्रावक-सम्बोध उनकी अंतिम रचना है। उसकी कुछ पंक्तियां अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी हैं—

- मृत्यु को भी सहज सुंदर साधना कर देखना। श्रावक पृ. ८६
- कर समय शक्ति का दुरुपयोग, बेमतलब ही बेहाल बनें। श्रावक पृ. २१४
- परस्पर संवादिता से ग्रंथियां मन की खुलें। श्रावक पृ. २११

हाथ में लेखनी लेकर जब आचार्य तुलसी लिखते थे, तब उनका सारा शरीर तेजोदीप्त हो जाया करता था। उनके जीवन का हर क्षण लयबद्ध और रसमय था। उनके काव्यमय प्रातिभ व्यक्तित्व को शब्दों में बांधना सरल कार्य नहीं है। यद्यपि आज उनका पार्थिव शरीर हमारे बीच में नहीं है किन्तु सारस्वत और यश:शरीर से वे अमर हैं क्योंकि उनका काव्य काल की सीमाओं से परे है। उनकी काव्य-साधना अनेक साधकों को साधना के पथ पर प्रस्थित करती रहेगी, ऐसा विश्वास है।

यह विशरणधर्मा विश्व, न कुछ भी स्थायी,
है कौन यहां स्थिरता का उत्तरदायी।
इस जंगम-स्थावर जग को काल निगलता,
चाहे-अनचाहे यह सबको ही छलता॥

है सब कुछ जहां अनित्य, नित्य क्या जग में?
बनना मिटना ही लिखा हुआ हर मग में।
हो भावित उक्त भावना से जो साधक,
बनता है अपनी मंजिल का आराधक॥

आत्मा पृ. ८७

काव्य का स्वरूप एवं उसके तत्त्व

काव्य सत्यं, शिवं, सुंदरं की समष्टि कहलाता है। वह सस्ता एवं क्षणिक मनोरंजन न होकर भावों को झंकृत एवं तरंगित करता है, जिससे मन में उदात्त भावों एवं संवेदनाओं का संचार होता है। प्राचीन मनीषियों ने काव्य को चरम आनंद की सीमा तक पहुंचने की शक्तिशाली सीढ़ी के रूप में स्वीकार किया है क्योंकि यह हृदय को रस से आप्लावित करने की क्षमता रखता है।

यद्यपि भिन्न-भिन्न विद्वानों ने काव्य को भिन्न-भिन्न परिभाषाओं में रूपायित किया है फिर भी इसकी सर्वांगीण व्याख्या करने वाली किसी परिभाषा को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। काव्य के संबंध में प्राचीन आचार्यों की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं—

परिभाषा	आचार्य
◆ वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।	पं. विश्वनाथ
◆ रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।	पं. जगन्नाथ
◆ सहृदयाह्लादशब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम्।	आनंदवर्धन

प्रसिद्ध समालोचक गुलाबराय ने भावात्मक सम्बन्ध रखने वाले अनुभवों की आनंदप्रदायिनी, सुंदर और शब्दमयी अभिव्यक्ति को काव्य माना है।''[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मुक्त हृदय के समुच्छलन को काव्य के रूप में स्वीकार किया है। जैनेन्द्रजी एवं महादेवी वर्मा के अनुसार काव्य द्वारा व्यक्ति अपने भीतर का प्रयोजन और अनुभूत सत्य को प्रकट करना चाहता है, उसकी अभिव्यक्ति के रूप में कविता का आविष्कार हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी अंतःकरण की वृत्तियों के चित्र को कविता मानते हैं। आचार्य रामचंद्रशुक्ल का अनुभव है कि हृदय की मुक्ति-साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, वह कविता है।''[२]

पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के बारे में पर्याप्त चिंतन किया है। मैथ्यू आर्नोल्ड जीवन की आलोचना[३] तथा हडसन कल्पना और भावना के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति को कविता कहते हैं। डाइड्रेन का मानना है कि कविता विचारों की संगीतमयी अभिव्यक्ति है। काव्य के बारे में डॉ. जानसन

१. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा पृ. १२९।

२. आ. रामचन्द्र शुक्ल ; चिंतामणि, भाग-१, पृ. १४१।

३. Poetry is at bottom the criticism of life.

की परिभाषा अधिक व्यापकता लिए हुए हैं— 'कल्पना और विवेक की सहायता से मनोरंजन, प्रसन्नता और सत्य के समन्वय की कला ही कविता है।''[१] सिडनी के विचार से काव्य अनुकरणात्मक कला है, जिसका लक्ष्य शिक्षा और आनंद प्रदान करना है।''

काव्य के तत्त्व

कवि मन की प्रसन्नता और शांति उत्तम काव्य-रचना के अनिवार्य तत्त्व हैं इसीलिए पाश्चात्त्य विद्वान् वर्डस वर्थ ने शांति के समय रची गई उत्कृष्ट भावनाओं के सहज उद्रेक को कविता माना है।''[२] विद्वानों ने काव्य के चार तत्त्व निर्धारित किए हैं—1. भाव, 2. कल्पना, 3. बुद्धि, 4. शैली। अनुभूति भाव के साथ जुड़ा हुआ तत्त्व है पर कुछ विद्वान् अनुभूति को भी काव्य का प्रमुख तत्त्व स्वीकार करते हैं।

भाव

कवि भाव जगत् का स्रष्टा होता है। भाव काव्य की आत्मा है। भावशून्य कविता कितनी ही सुंदर क्यों न हो, प्रेरक नहीं हो सकती। भावों को आंदोलित करने की जो शक्ति काव्य में होती है, वह साहित्य की अन्य किसी विधा में संभव नहीं है। बिना भाव के कोई भी वाक्य, विचार या तर्क गतिशील होकर काव्य का रूप धारण नहीं कर सकता।''[३] प्रो. विल्सन के अनुसार कविता भावनाओं की मंजी हुई बुद्धि है। समाज में जो कुछ अनुभव कवि को प्राप्त होते हैं, उन्हें वह अपनी भावनाओं के सांचे में ढालकर कला द्वारा सरल अभिव्यक्ति देता है तथा साथ ही वह घटना के पीछे छिपी भावना का अंकन करता है। यही कारण है कि जिस आवेग से कवि अपने भावों को प्रस्तुत करता है, वैसी प्रस्तुति दार्शनिक और वैज्ञानिक के लिए संभव नहीं होती। साहित्य में केवल निर्जीव या शुष्क तथ्यों का वर्णन ही नहीं होता अपितु भावनाओं और अनुभूतियों का प्रकाशन भी होता है। प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीयर कहते हैं—''जहां विज्ञान के तथ्य हमारे मस्तिष्क को ही प्रभावित करके रह जाते हैं, वहां साहित्य में चित्रित भावनाएं हमारे हृदय को आंदोलित करती हैं। अपनी भावोत्पादिनी क्षमता

१. नरेन्द्र कोहली ; प्रेमचन्द पृ. १४०।

२. Poetry is the Spontenious overflow of powerfull feelings.

३. गणपतिचन्द्र गुप्त ; साहित्यिक निबन्ध पृ. ५७।

के कारण ही साहित्य साहित्य की संज्ञा प्राप्त करता है।''[१] साहित्य की सारी पूंजी भावों को लेकर है। यदि भावना का सरोवर सूख गया तो कवि और पाठक, दोनों के लिए साहित्य बेकार है।''[२] प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचंद कहते हैं—''साहित्य न चित्रण का नाम है, न अच्छे शब्दों को चुनकर सजा देने का, न अलंकारों से वाणी को शोभायमान बना देने का। ऊंचे और पवित्र विचार और भाव ही साहित्य की जान है।''[३] अगर साहित्य में अभिव्यक्त भाव अशुद्ध एवं संकुचित होंगे तो लोक-कल्याण की बात संभव नहीं हो सकती। भाव जितने उदात्त होंगे, पाठक के हृदय का विस्तार भी उसी मात्रा में हो सकेगा।

पाश्चात्त्य विद्वान् विंचेस्टर काव्य में भावनाओं की पांच विशेषताएं बतलाते हैं—

१. भावनाओं की विविधता।
२. भावनाओं की विशदता और शक्तिमत्ता।
३. भावनाओं का औचित्य।
४. भावनाओं की स्थिरता और उनका सातत्य।
५. भावनाओं की पवित्रता और उनका औदात्य।

आचार्य तुलसी भावाभिव्यक्ति की कला में बेजोड़ थे। अपनी अनुभूति और कल्पना को हुबहू प्रेषित करने में वे पूर्णतः सफल रहे। उनके काव्य में कोमल, मधुर और सरस भावनाओं का ऐसा अजस्र प्रवाह प्रवाहित है, जिसमें बाल-वृद्ध, साक्षर-निरक्षर सभी अभिस्नात हो सकते हैं। उनके भाव-प्रकाशन का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि भाव जितनी सूक्ष्मता और मार्मिकता के साथ चित्रित हुए हैं, उतनी ही तीव्रता से वे दूसरों की भावनाओं को तरंगित और उल्लसित भी करते हैं। यह इसलिए संभव हुआ कि किस परिस्थिति में किस चरित्र के माध्यम से कैसे भाव प्रकट करवाने हैं, इस कला में वे सिद्धहस्त थे। युद्ध में अपने पुत्रों को विदा करते अभिभावकों के आशीर्वाद में भावसंप्रेषण एवं मुहावरेदार भाषा का स्वाभाविक उच्छलन द्रष्टव्य है—

---

१. गणपतिचन्द्र गुप्त ; साहित्यिक निबंध पृ. ५७।
२. दिनकर, चक्रवाल ; भूमिका, पृ. १४।
३. नरेन्द्र कोहली ; प्रेमचन्द, पृ. १८०।

बोले अभिभावक पीठ ठोंक, पुत्रो! कुल-शान बढ़ाना है,
अपने उज्ज्वल यश-अम्बर में, अब चार चांद चमकाना है।
संगर में लड़ना साहस से, मरने से क्या घबराना है,
डंके की चोट विजय पाकर, हंसते-हंसते घर आना है॥ भरत पृ. ८२,८३

मानव हृदय में प्रस्फुटित होने वाले गुह्यतम अगम्य भावों की कुशलतापूर्वक अभिव्यक्ति से आचार्य तुलसी का काव्य-साहित्य विशिष्टतम बन गया है। उनकी मान्यता थी कि जो कलाकार काव्य के अंतरंग पक्ष की उपेक्षा करके बहिरंग को सजाने-संवारने में ही विशेष प्रयत्नशील रहते हैं, उनसे जीवन-मूल्यों की बहुत बड़ी आशा नहीं करनी चाहिए। उनके काव्य में विशद एवं पवित्र भावों का ऐसा सूक्ष्म वर्णन है कि पाठक उन्हें अपने भाव मानकर आनंद की अनुभूति में डूब जाता है। उन्होंने प्राचीन भावों एवं विचारों को आधुनिक भावों एवं विचारों के परिप्रेक्ष्य में सुंदर प्रस्तुति दी है।

भाव-संप्रेषण की कला से उनके काव्य साहित्य में अनूठापन और चमत्कार उत्पन्न हो गया है। भाव द्वन्द्व के अनेक उदाहरण उनके काव्य में मिलते हैं। जनापवाद को सुनकर राम के मानसिक द्वन्द्व की स्थिति द्रष्टव्य है—

तो फिर यों अपवाद भयंकर, क्यों जनता में छाया?
कुछ न समझ में आता किसने, भारी भ्रम फैलाया?
कहते हैं जो चर उसमें भी, झलक रही सच्चाई।
बिना बात हार्दिक दु:ख इतना, देता नहीं दिखाई॥ परीक्षा पृ. ३३

भाव-संप्रेषण की दृष्टि से स्वयं कवि के युवराज अभिषेक के बाद गुरु के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन का वर्णन परम उत्कर्ष का क्षण है—

पद-युवराज-रिवाज साझ सब, मुझनै दीधो स्वामी।
रजकण नै क्षण में मेरू, बणवायो अन्तर्यामी॥
जलबिंदू इन्दूज्ज्वल मानो, शुक्तिज आज सुहायो।
मृन्मय-पिण्ड अखण्ड पलक में, कामकुम्भ कहिवायो॥
साधारण पाषाण शिल्पिकर, दिव्य देवपद पायो।
किं वा कुसुम सुषमता योगे, महिपति-मुकुट मढ़ायो॥
कालू भा. २ पृ. २०३

शिष्यों के स्वर्ग से वापस न आने पर आषाढ़भूति की मानसिक स्थिति के चित्रण में भावों की तीव्रता हृदय को छूने वाली है—

- टूटा धीरज का धागा, कोई न सांधने वाला,
  फूटा है बांध हृदय का, कोई न बांधने वाला,
  उठ-उठ कर दौड़ रहे हैं, आ कौन उन्हें अब रोके,
  उठते मानस-अम्बुधि में, हा! प्रलय-पवन के झोंके,
  हार्दिक दुख बाहर आता नयनों से बनकर पानी।
  यों नव-नव नाच नचाती, कर्मों की अलख कहानी॥ पानी पृ. ४७

जनापवाद के समय राम के हृदय के आवेग एवं अन्तर्द्वन्द्व का सजीव चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है—

- मोह मन में मैथिली का, इधर जन-विद्रोह है।
  किसे छोडूं? क्या करूं?, कर रहे ऊहापोह हैं॥ परीक्षा पृ. ४३
- सोच लूं अब कौन सा पथ, मुझे लेना चाहिए?
  क्या सुशीला जानकी को, छोड़ देना चाहिए? परीक्षा पृ. ४२

आचार्य तुलसी के काव्य में मानवीय संवेदना की अनुगूंज सुनाई देती है। उन्होंने मनुष्य की शाश्वत मनोवृत्तियों एवं मन की अनेक गुत्थियों का अत्यन्त स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया है—

- देख और री कायरता, कमजोरी ताणो कसणो।
  बड़ो सरल दु:ख दरद ऊपरे, हुंसियारी स्यूं हंसणो॥ चंदन पृ. ११९
- स्पर्धा से दिल जलता रहता, कितना दम्भ परस्पर लता।
  यह खलता, दुर्बलता है या, प्रबल मोह की मार॥

भावों की विविधता आचार्य तुलसी के काव्य की प्रमुख विशेषता है। एक ओर उन्होंने क्रोध, मान या असूया आदि निषेधक भावों का वर्णन किया है तो दूसरी ओर अहिंसा, सत्य, संयम, त्याग और करुणा आदि विधायक भावों का भी सफल चित्रण किया है। मनोभावों की अभिव्यंजना में उनकी भाषा भी भावों का स्पंदन पाकर ही आगे बढ़ी है। मानसिक पीड़ा और चिन्ता को कवि ने अनेक उदाहरणों एवं उपमाओं से साकार रूप में प्रस्तुत कर दिया है—

फूट पड़ा यों घड़ा अचानक, व्रण पर हुआ प्रहार जो,
पकने वाली खेती पर हा!, भीषण गिरा तुषार यों,
हार्दिक दु:ख किसे सुनाए? पानी पृ. ३०

आषाढभूति आख्यान में अपने बालकों के विरह में माताओं की हृदयद्रावक स्थिति का चित्रण भावोद्रेक पैदा करने वाला है—

अरे! कहां हैं प्राणों के आधार वे,
फूट फूटकर यों रोती हैं नारियां।
हाय! कहां जीवन तंत्री के तार वे,
रोती-रोती मूर्च्छित होती नारियां॥ पानी पृ.८८

बाहुबलि द्वारा उछालने पर भरत के मूर्च्छित होने से बाहुबलि विषण्ण हो जाते हैं। कवि की लेखनी से क्रिया-विचलन के साथ भाव और बिम्ब दोनों साकार हो उठे हैं—

कोमल कर स्यूं भाई रो, शिर सहलावै,
ले उत्तरीय निज हाथां, स्वेद सुकावै।
बंधव! मैं तो कह दियो, दूत नै पेली,
म्हांरै स्यूं लड़ मत भ्रात!, आग स्यूं खेली॥ चंदन पृ.१६

कवि ने कहीं कहीं शरीर और चेतना के भावों को एक साथ सानुप्रासिक भाषा में निबद्ध कर दिया है—

- शिथिल सी दोनों भुजाएं, ग्रथिल सा चैतन्य है। परीक्षा पृ. १३५
- उलझन में तन, मन, वचन क्लान्त श्रान्त विभ्रान्त। परीक्षा पृ. १३९

नारद ने अध्योध्या से आकर कौशल्या और सुमित्रा का जो भावपूर्ण चित्र राम, लक्ष्मण और सीता के समक्ष प्रस्तुत किया है, वह भावों को उद्दीप्त करने वाला है—

राम लक्ष्मण राम लक्ष्मण, एक ही बस ध्यान है,
और सीता के लिए, उलझे नसों में प्राण हैं।
सूखकर कांटा हुआ तन, रह गया कंकाल है,
नींद भोजन सभी छूटे, हाल भी बेहाल है॥ परीक्षा पृ. ५

जहां भाव गंभीर हैं, वहां कवि की भाषा भी गंभीर हो गई है। काव्य-भाषा की शब्द-योजना में उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि वे तत्सम शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं या तद्भव शब्दों का। विदेशी शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं या देशी शब्दों का। अपने भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति पर ही उनका सारा ध्यान केन्द्रित रहा इसीलिए उनकी अभिव्यक्ति स्पष्ट और वेधक बन गई। आचार्य तुलसी का शब्दकोश अत्यन्त विस्तृत था। शब्दों के अधिष्ठाता

एवं निर्माता होने के कारण वे मनोनुकूल भावों की अभिव्यक्ति अत्यन्त सुंदर और आकर्षक ढ़ंग से कर सके। नि:संदेह कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी भाव और शब्द-साधना से एक रससिद्ध कवि के रूप में उभरे हैं।

कल्पना

कल्पना काव्य का बोधपक्ष है। डॉ. जानसन के अनुसार कविता सत्य और आनंद के सम्मिश्रण की वह कला है, जिसमें बुद्धि की सहायता के लिए कल्पना का प्रयोग किया जाता है। कथावस्तु का निर्माण, घटनाओं की सृष्टि एवं भावनाओं का सही-सही चित्रण कल्पना-शक्ति द्वारा ही संभव है। क्रोचे काव्य में कल्पना तत्त्व को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं।''कल्पना एक ऐसी मानसिक सृष्टि है, जिसमें सौन्दर्य-बोध के साथ सम्मूर्त्तन की क्षमता और भावोद्‌बोधन का गुण रहता है।''[१] शुक्लजी के अनुसार धर्मक्षेत्र में जो स्थान उपासना का है, साहित्य-क्षेत्र में वही स्थान कल्पना का है।'' अनुभूति और कल्पना जितनी तीव्र होगी, कला उतनी ही सफल, सार्थक, रमणीय और संवेदनशील होगी। काका कालेलकर कहते हैं कि भीतर या बाहर की किसी भी वस्तु या तथ्य को एक विशेष भावदृष्टि की सहायता से अभिनव रूप में प्रकट करने की जो काव्यवृत्ति है, उसी का नाम कल्पना है।''[२] महादेवी वर्मा के शब्दों में कलाकार वह है, जो विश्व की अपूर्णता को अपनी कल्पना से पूर्ण करता है और उसके सौन्दर्य के आवरण में सत्य की झांकी दिखाकर हमारे हृदय में आनंद उत्पन्न करने में समर्थ होता है।''[३] उत्कट और विशद कल्पना के बिना कविता में आकर्षण पैदा नहीं किया जा सकता। वह केवल तथ्यपरक इतिहास की घटना मात्र रह जाती है। कवि इतिहास की छोटी सी घटना को भी अपनी कल्पना की तूलिका में रंगकर उसे इतना भव्य और मनोहारी बना देता है कि हृदय स्वत: उसके प्रति आकर्षित हो जाता है। काव्य में रमणीयता एवं चमत्कार की सृष्टि कल्पना द्वारा ही संभव है।'कवि अपनी कल्पना शक्ति से दूसरों के दु:ख-सुख और मानसिक अवस्थाओं का इस प्रकार चित्रण करता है कि वह हमारा दु:ख और सुख बन जाए। परोक्ष घटना को प्रत्यक्ष रूप में, अतीत की घटना को वर्तमान में तथा स्थूल भाव को सूक्ष्म

---

१. एस. टी. नरसिंहाचारी ; सूर की सौन्दर्य-चेतना, पृ. १७२।

२. डॉ. नगेन्द्र ; भारतीय काव्य सिद्धान्त, पृ. १११।

३. महादेवी वर्मा ; क्षणदा, पृ. ४९।

रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय कवि की कल्पना शक्ति को ही है।''[१] कल्पना वही प्रेरक हो सकती है, जिसका कोई यथार्थ आधार हो। भावशून्य, हवाई और ऊहापोहात्मक कल्पना क्षणिक रूप से चमत्कृत तो कर सकती है पर उसका संवेदना और हृदय के साथ कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता।

कविता में यथार्थ और आदर्श दोनों ही स्थितियों के निर्माण का कार्य कल्पना द्वारा संभव होता है।''[२] आचार्य तुलसी केवल कल्पनावादी कवि नहीं थे। वे आदर्श और यथार्थ को छूकर चले और कल्पना को भी यथार्थ का बाना पहनाया। आधुनिक कल्पनावादी कवियों को प्रेरणा देते हुए दिल्ली के कवि सम्मेलन में उन्होंने कहा—''आज के कवि केवल कल्पना जगत् में विचरण करने में ही पटु हों, यह अच्छा नहीं। वे केवल नख-शिख का वर्णन करें, यह पर्याप्त नहीं। वे केवल प्रकृति, पर्वत व समुद्र की शोभा का वर्णन करें, यह उचित नहीं। इस समय वे लोगों में सदाचार का प्रचार और उनकी मनोवृत्ति को पवित्र बनाने में अपनी कला एवं कल्पना का प्रयोग करें, तभी वे सच्चे अर्थों में काव्य की सेवा कर पाएंगे।'' डॉ. जी.वी. रमण के अनुसार गेंद की तरह कल्पना समाज की धरती पर जितने जोर से धक्का खाती है, उतनी ही ऊपर उठती है।''[३] श्री अरविन्द की दृष्टि में काव्य लयात्मक आंतरिक उक्ति है, जिसमें चेतना के सर्वोच्च धरातल से जीवन और जगत् का अनुभव कल्पना के सहारे रूपायित होता है।

आचार्य तुलसी की कल्पना उनके भावों की सहचरी थी। आध्यात्मिक संत होने के कारण उनकी कल्पना सूक्ष्म, अन्तर्मुखी और कोमल है। कल्पना का पुट देकर उन्होंने अनुभूत सत्यों एवं जीवन-मूल्यों को अधिक ग्रहणीय और प्रेषणीय बना दिया तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नूतन विचारों का आविष्कार कर दिया। उन्होंने कल्पना के पंखों पर चढ़कर अतीत की यात्रा की और उसे नवीन, रोचक और मौलिक बना दिया। भरत और बाहुबलि जब बाहुयुद्ध में उतरते हैं, उस समय प्रकृति को सम्बोधित करती कवि की कल्पना एक अलौकिक अनुभूति को प्रकट करने वाली है—

वसुंधरा! जरा तू स्थिर रहना, दिग्गज! मत जाना डोल कहीं,

१. गणपतिचन्द्र गुप्त ; साहित्यिक निबंध, पृ. २९।
२. डॉ. सुशीला मिश्रा ; दिनकर की साहित्य-दृष्टि, पृ. ४३।
३. कवित्रय समाज-दर्शन, पृ. ४।

हे शेष! फणों को दृढ़ रखना, अचलो! हो जाना चलित नहीं।
दर्शको! साक्षियो! मनुज-सुरो ! पलकें मत कर लेना चंचल,
उतरे भुज-युद्ध अखाड़े में, मानो यों कहते भ्रात-युगल॥

भरत पृ. १२७

उपर्युक्त पंक्तियों में वसुंधरा और दिग्गज आदि प्राकृतिक वस्तुओं में मानवीय व्यापारों का चित्रण कवि की विशिष्ट प्रातिभ कल्पना का द्योतक है।

'सपणै रै संसार' में भद्रा और शालिभद्र का वार्तालाप काल्पनिक और हास्यरस मिश्रित होते हुए भी सजीव है। कल्पना-शक्ति से उनकी भाषा व्यंजक, मार्मिक और चमत्कारपूर्ण बन गई है। कल्पना द्वारा उन्होंने अप्रत्यक्ष विषय के भी ऐसे मानसिक चित्र उपस्थित कर दिए, जिससे वर्ण्य विषय का मानसिक साक्षात्कार होने लगता है। आषाढ़भूति काव्य में कल्पना ही उन्हें दिव्य लोक के सौन्दर्य का दर्शन कराती है।

एक ही प्रसंग की अनेक बार प्रस्तुति को उन्होंने अपनी प्रौढ़ प्रतिभा या कल्पना के द्वारा नया जैसा बना दिया। उदाहरण के लिए माणकगणी का स्वर्गवास और डालगणी के निर्वाचन-प्रसंग को प्रस्तुत किया जा सकता है। डालिम चारित्र, माणक चरित्र, मगनचरित्र और कालूयशोविलास—इन चार चरित काव्यों में इस प्रसंग को कल्पना का पुट देकर नया-नया रूप दिया है। बिना उत्तराधिकारी का चयन किए माणकगणी का स्वर्गवास होने पर कवि तेरापंथ संघ की स्थिति का उपमा वैशिष्ट्य से काल्पनिक चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

दुधारू गायां गोकुल री, ओ सूनी छोड़ गयो ग्वालो,
खेती लहरावै खड़ी-खड़ी, पण आज कठै है रखवालो,
है सेना सगली कड़ाजूड़, पण सेनापति कोनी आगै,
शासण रा सारा साध-सत्यां, शोभै शासणपति रै सागै॥ डालिम पृ. ६९

अपने गुरु कालूगणी के जीवन पर लिखे गए काव्य में उन्होंने कल्पना के ऐसे बारीक चित्र खींचे हैं, जिन्हें पढ़कर श्रोता विस्मय विमुग्ध हो जाता है। रात्रि में मरुस्थल के बालू के टीले में कवि का कल्पना-गौरव अत्यन्त मनोहारी बन पड़ा है—

रयणी रेणुकणां शशि किरणां, चलकै जाणक चांदी रे। कालू भा. १ पृ. ६१

उपमान एवं प्रतीक योजना में भी कवि का कल्पना वैभव स्थान-स्थान

पर प्रकट हुआ है। उपमा-वैशिष्ट्य में कवि की कल्पना के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- देव! हमारी अनगिन संख्या, मानो गणना में आई,
  पतझड़ के पत्तों की ज्यों यह, सारी सेना अलसाई॥ भरत पृ. १०१
- करते किल्लोलें मद झरते, वे मस्त मतंगज मतवाले।
  हो घिरी अभ्र में अभ्रघटा, या शैल शिखर काले-काले॥ भरत पृ. ७९
- कड़वाहट की बात न सबको, मीठी गुड़ की भेली। श्रावक पृ. १२०

अनिलवेग ने जब चक्री सेना पर आक्रमण किया, उस समय समरांगण में होने वाली स्थिति का वर्णन कवि के कल्पना वैभव को प्रकट करता हुआ साक्षात् बिम्ब सा प्रस्तुत कर रहा है—

समर-सागर में उमड़ कर, आ गया अब ज्वार-सा,
हुआ भू-नभ यान से, भू-व्योम एकाकार-सा।
पता तक लगता न था, हम कौन किसको मारते,
उभय दल बढ़ने लगे, नर-मेदिनी संहारते॥ भरत पृ. ९१

राजा की गोद में बैठे शालिभद्र के शरीर की स्थिति का कल्पना-शक्ति से उत्पन्न बिम्ब हृदय को आकृष्ट करने वाला है—

आगी पर ज्यूं माखण है, चुवै पसीणो छण-छण है॥ चंदन पृ. ११७

सीता के प्रति झूठा दोषारोपण करने वालों के लिए कवि कल्पना करते हैं—

अम्बुज उगा दिया अम्बर में, कैसी हाय! अनीति। परीक्षा पृ. ८३

तीन प्रहर वाली रात लम्बी हो गई। इस बात की अभिव्यक्ति कवि की कल्पना में पठनीय है—

वह त्रियामा राम! उनको, लक्ष-यामा हो रही॥ परीक्षा पृ. ५

अयोध्या के राजमहलों की ऊंचाई को कवि ने अपनी कल्पना-शक्ति से इस रूप में प्रकट किया है, मानो वे राजमहल स्वर्ग की राजधानी अलकापुरी से बातें कर रहे हों—

राजमहल के शिखर समुन्नत, नभ से करते थे बातें।
ऐसा लगता वनिता का वैभव, अलका को बतलाते॥ भरत पृ. २२

वन में सीता के न मिलने पर राम के मस्तिष्क में उठने वाले चिन्तन के अनेक विकल्पों को सहज सरल भाषा में कवि ने मार्मिक प्रस्तुति दी है—

वह अब नहीं विश्व में जीवित, श्वापद चाट गया होगा।

निगल गया होगा अजगर, या विषधर काट गया होगा॥ परीक्षा पृ. ८८

अपनी बात को विशेष रूप से सिद्ध करने के लिए भी कवि ने कल्पना का सहारा लिया है। तीर्थंकर के समवसरण में अहि-नकुल तथा शेर और बकरी एक साथ मैत्रीभाव से बैठते हैं। कवि कल्पना करते हैं कि जिनेश्वर भगवान् की वाणी के आधार पर ही वैयाकरण पाणिनी ने 'नित्यवैरिणाम्' सूत्र बनाया है अर्थात् नित्य वैरी में द्वन्द्व समाप्त होकर एकत्व हो जाता है। कवि की कल्पना- प्रौढ़ता निम्न पंक्तियों में पठनीय है—

अश्व-महिष अहि-नकुल किल, हिलमिल करत मिलाप।
जिण वाणी रो ही सकल, अद्भुत प्रौढ़ प्रताप॥
मनु संस्कृत वैयाकरण, सुमरत मन जिन-तत्त्व।
कियो द्वन्द्व में उचित ही, नित्य-वैरि-एकत्व॥

कालू भा. १ पृ. १७६

कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी ने कल्पना के लगभग सभी उपादान समाज से ग्रहण किए हैं। उनकी कल्पना आकाश कुसुम की भांति निरर्थक एवं जीवन से कटी हुई नहीं है इसलिए उनका काव्य सजीव और प्राणवान् बन गया है।

बुद्धि

काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग है— बुद्धि। बुद्धि के बिना कवि-कर्म में प्रवृत्त होना असंभव है। बुद्धि का सम्बन्ध तथ्यों, विचारों एवं सिद्धान्तों के संकलन से है। बुद्धिशून्य कोरी कल्पना पागल-प्रलाप की भांति अस्त-व्यस्त होती है। बुद्धि और भावना दोनों विरोधी तत्त्व हैं क्योंकि बुद्धि का सम्बन्ध मस्तिष्क से है तथा भावना का सम्बन्ध हृदय से है पर विद्वानों का मानना है कि बुद्धि से रहित भाव बिना शरीर के आत्मा है अत: काव्य में चमत्कार एवं सामञ्जस्य बुद्धि और मनोभाव दोनों के सम्मिश्रण द्वारा ही संभव है। बुद्धि के द्वारा ही उपयुक्त शब्दचयन और उक्ति-वैचित्र्य के प्रयोग किए जा सकते हैं। आचार्य तुलसी के काव्य में मस्तिष्क और हृदय अर्थात् बुद्धि और भावना का सुंदर सामंजस्य है। एक ओर बौद्धिकता का प्रकर्ष है पर वह भावना से भीगा हुआ है।

शालिभद्र को प्रव्रजित होने के लिए सम्बोधित करता हुआ धन्ना सेठ का प्रत्येक शब्द कवि के बुद्धि-चातुर्य एवं शब्द-चयन की निपुणता को प्रकट करने वाला है—

अरे शाल! खुशहाल करै क्यूं, भैया डांवांडोली,
कायरता मत झाल, झालणी है यदि ओघा-झोली,
ताकाताकी छोड़ मोड़ मन, मत तू यूं घबरा रे॥ चंदन पृ. १२१

बुद्धि प्रधान होने से उनके काव्य में तर्क है पर भावना के योग से वे शुष्क नहीं, अपितु सरस हो गए हैं। भावना भी इतनी तरल नहीं बनी है कि वह यथार्थ को भूलकर केवल प्रवाह में बहती रहे।

अनुभूति

साहित्य की सबसे प्रचण्ड और अद्‌भुत शक्ति अनुभूति है।[१] वह वस्तु जो कल्पना के विविध अंगों और मानस छवियों का नियमन और एकान्वयन करती है, अनुभूति कहलाती है।''[२] आचार्य नंददुलारे वाजपेयी अनुभूति को ही काव्य का प्रेरक तत्त्व मानते हैं। उनके अनुसार कल्पना अनुभूति का ही क्रियाशील रूप है। अनुभूति की तीव्रता में ही कल्पना की व्यंजना शक्ति प्रकट होती है। वर्णन-कौशल में वही कवि सफल होता है, जिसके पास अनुभवों की संपदा हो क्योंकि आंतरिक अनुभूति ही सजीव होकर काव्य में माधुर्य का संचार करती है तथा काव्य को प्रभावी बनाती है। अनुभूति का माहात्म्य राष्ट्रकवि दिनकर के शब्दों में पठनीय है—''अभिव्यक्ति के धुंधलेपन को मैं इस बात का प्रमाण मानता हूं कि कवि भावों की स्पष्ट अनुभूति नहीं कर सका है।''[३] महादेवी वर्मा ने काव्य में अनुभूति को प्रथम तथा कल्पना को द्वितीय स्थान प्रदान किया है। जीवन के सुख-दु:ख, आशा-निराशा एवं उत्थान-पतन के बीच कवि की अनुभूति जन्म लेती है। इस अनुभूति में ही सामान्य व्यक्ति अपने जीवन के सुख-दु:ख की अनुभूति करता है। इसी मत की पुष्टि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने की है। उनके अनुसार कवि अपने सीमित व्यक्तित्व के भीतर जिस सुख-दु:ख का अनुभव प्राप्त किए होता है, उसे जब वह कल्पना की सहायता से, छंद, उपमा आदि के संयोग से और निखिल विश्व की मर्म-व्यथा की चिंता करके निर्वैयक्तिक करके प्रकट करता है तो उसे हम अनुभूति अवस्था कहते हैं।''[१] संवेदन अनुकूल हो या प्रतिकूल, जब तक कवि की अनुभूति उसके साथ नहीं जुड़ती, रचनाकर्म

---

१. डॉ. सुशीला मिश्रा ; दिनकर की साहित्य-दृष्टि, पृ. १०।
२. राममूर्ति त्रिपाठी ; भारतीय काव्य शास्त्र के नए क्षितिज, पृ. ३१९।
३. दिनकर ; चक्रवाल ; भूमिका, पृ. २९।

संभव नहीं है। यही कारण है कि एक ही वस्तु या विषय पर भिन्न-भिन्न साहित्यकारों की भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियां होती हैं अतः साहित्य में होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना हमें कैसा लगता है और कैसा अनुभव होता है, यह महत्त्वपूर्ण है। साहित्य का सृजन किसी फैक्ट्री में नहीं, अपितु अनुभूतिपूर्ण एवं संवेदनशील मानस द्वारा संभव है। जगदीशचन्द्र गुप्त अनुभूति और अभिव्यक्ति की सच्चाई को ही काव्योचित नवता का मूलमंत्र कहते हैं।''[२]

आचार्य तुलसी के शब्दों में कवि के हृदय की अनुभूतियां और संवेदनाएं जब विचारों के रूप में ढलती हैं, तब कविता बनती है।''[३] उनके पास जीवन और जगत् की प्रत्यक्ष अनुभूति थी। उनकी प्रतिभा में अनुभूतिजन्य गंभीरता एवं व्यापकता का सम्मिश्रण था। उनके प्रत्येक शब्दों की अभिव्यक्ति अंतर के तारों से ध्वनित होकर निकलती थी। अनुभूति और अभिव्यक्ति के कलात्मक संस्पर्श ने उनकी हर रचना को प्राणवान् और मार्मिक बना दिया। आचार्य तुलसी की अनुभूति के साथ औचित्य, आदर्श और नीतिपरकता जुड़ी हुई थी इसीलिए उनका काव्य जनमानस पर अमिट छाप छोड़ सका। भोलानाथ तिवारी के अनुसार ओढ़ा हुआ कथ्य, जो भोगा या जिया हुआ न हो, काव्य को महान् नहीं बना सकता और न ही काव्य-भाषा में अपेक्षित गरिमा आ पाती है। डॉ. नगेन्द्र का मंतव्य है कि अनुभूति सत्य के मंथन एवं विलोड़न से ही प्राप्त की जा सकती है। आचार्य तुलसी जीवन भर सत्य की खोज में लगे रहे। उन्होंने दूसरों की अनुभूतियों का उपयोग अपने काव्य में किया लेकिन जीवन के अनेक पक्षों पर उनकी निजी अनुभूतियां अधिक मुखर हुई हैं। गद्य साहित्य में उन्होंने अनेक अनुभूतियों को शब्दों का आकार दिया है। आचार्य काल के पचास वर्ष पूर्ण होने पर साहित्यिक भाषा में कवि अपनी अनुभूतियों को संप्रेषित करते हुए कहते हैं—''मैं अपनी धर्मशासना के पचासवें वर्ष में प्रवेश कर रहा हूं। इस सत्रह हजार नौ सौ चौबीस दिनों की यात्रा में मैंने एक-एक क्षण को जागरूकता से जीया है, इतना दर्प तो नहीं कर सकता। फिर भी इतना जरूर मानता हूं कि इस अवधि में मैंने कई खूबसूरत ख्वाब देखे। कुछ पूरे हुए, कुछ टूटे और कुछ अधूरे रह गए। उस स्वप्न-यात्रा को सत्य का

---

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-७, पृ. २०९।

२. नयी कविता : स्वरूप और समस्याएं, पृ. १०८।

३. आचार्य तुलसी ; घर का रास्ता, पृ. १०७।

परिवेश देने के लिए मुझे कभी वेग से चलना पड़ा, कभी जान-बूझकर पीछे हटना पड़ा और कभी संघर्षों को आमंत्रित करना पड़ा। जीवन के हर पड़ाव की कथा कहीं मुस्कानों से निखरी है तो कहीं व्यथा के भार से बोझिल भी हुई है।''

अनुभूति की मार्मिकता से संपृक्त होने के कारण उनका काव्य-साहित्य चिंतन की नयी दिशाओं को उद्घाटित करने वाला है। किसी भी घटना या परिवेश को सम्पूर्णता के साथ चित्रित करने के कारण उनकी अनुभूति व्यापक एवं शक्तिशालिनी बन गई है। अपने आह्वान से सबके रक्त में नव-संचार करने की विलक्षण क्षमता कवि को प्राप्त थी। लोगों की अनुभूति को जगाने वाली निम्न पंक्तियां आनंद की अनाहत ऊर्मियां स्फुरित करने वाली हैं—

- सुन्दरं सत्यं शिवं तू, परमुखापेक्षी बना क्यों?
  सहज आत्मानन्दमय तू, विविध कष्टों में सना क्यों?
  तू समुज्ज्वल विमल उत्पल, पंक में हा! क्यों फंसा है?
  सर्वतंत्र स्वतंत्र बन्दी, सोच यह कैसी दशा है? भरत पृ. २८
- प्रतिदिन अपना आपा परखें, धरकर हृदय हथेली। श्रावक पृ. ११२

जीवन के बारे में अपनी तीव्र अनुभूति को गीत के स्वरों में गूंथकर कवि गा उठे—

मूढ बण क्यूं मुरझावै रे,
क्षणभंगुर इण दुनिया में, थिर रहणो चावै रे।
पाणी रो लोटो पण, हाथां स्यूं न उठावै रे।
बै धोले दोफारां माथै, लकड्यां ल्यावै रे॥ सुधा पृ. ५

अग्नि-परीक्षा में सीता का वन-गमन और वहां व्यक्त विचार पाठक को बार-बार रुला कर उसकी अनुभूति को झकझोरने वाले हैं—

टूटे मन के तार हैं, छूटे सब आधार हैं।
पत्थर को पिघलाने वाले, सीता के उद्गार हैं॥ परीक्षा पृ. ७२

राम के वापस आने पर भरत की मानसिक संवेदना की प्रस्तुति पाठक की अनुभूति को झकझोर कर रख देती है—

कभी किसी के साथ न करना, जैसी की है मेरे साथ,
टुकड़े-टुकड़े हृदय हो रहा, किसे उलाहना दूं मैं नाथ!

की न कल्पना जैसी, वैसा मेरे साथ हुआ व्यवहार,
तब न सुनी अब तो सुन लेना, पीड़ित मन की करुण पुकार॥ परीक्षा पृ. १०

संवेदनशीलता और अनुभूति का चरम रूप करुणा है। निम्न पंक्तियों में आषाढ़भूति की वेदना अनुभूति को जगाने वाली है—

शिष्यों के उपकरण पड़े हैं, ये भी खाने आते,
उनकी याद दिला दिल के, टुकड़े-टुकड़े कर जाते,
टूटा मन किसे दिखाऊं रे? दुःख किसे सुनाऊं रे? पानी पृ. ४६

स्वयं संन्यस्त जीवन जीने पर भी आचार्य तुलसी ने सांसारिक प्राणियों की अनुभूति को सजीव बनाकर प्रस्तुत कर दिया है—

- कहना कुछ है करना कुछ है, दंभी दुनिया का आचार।
  भीतर घुस कर जड़ें काटना, दिखला प्रेमपूर्ण व्यवहार॥
- क्षुद्र स्वार्थवश बन मतवाले,
  चलते हाय! दुरंगी चालें,
  क्रन्दन करती मानवता की सुनता कौन पुकार? भरत पृ. १३५

आचार्य तुलसी की अनुभूति में हृदयगत सूक्ष्मता, मौलिकता, सहजता और स्पष्टता है अतः उनका अनुभूतिगत सत्य मनोहारी बनकर सबके हृदयों को झंकृत करने में समर्थ है।

काव्य में जब भावना, अनुभूति, कल्पना और बुद्धि सहवर्ती होकर चलते हैं, एक दूसरे के पूरक बनते हैं, तभी काव्य में सौन्दर्य की उत्पत्ति हो सकती है। केवल एक तत्त्व से आकर्षण शक्ति की उद्दीप्ति संभव नहीं है। गुरुदेव तुलसी के साहित्य में ये सभी तत्त्व स्वाभाविक रूप से सक्रिय हैं इसीलिए उनका काव्य अलौकिक, आध्यात्मिक और रस से परिपूर्ण है।

हर कठिन समस्या का हल गुरु की आस्था,
दिग्भ्रान्त मनुज को मिल जाता है रास्ता।
गुरुदेव द्वीप है, शरण प्रतिष्ठा गति है,
गुरु-दृष्टि जगत् में सबसे बड़ी प्रगति है॥ सम्बोध पृ. २

काव्य का प्रयोजन

कोई भी कवि बिना किसी प्रेरणा या प्रयोजन के काव्य में प्रवृत्त नहीं होता क्योंकि निरुद्देश्य लिखा गया काव्य अपनी अर्थशक्ति को खोकर केवल शब्द-समूह मात्र रह जाता है, वह जीवन को कोई नयी प्रेरणा नहीं दे सकता। समय की गति एवं कवि की रुचि के अनुसार काव्य का प्रयोजन बदलता रहता है। आचार्य मम्मट, हेमचन्द्र आदि प्राचीन काव्य-मर्मज्ञों ने काव्य के प्रयोजन पर व्यापक और विस्तृत प्रकाश डाला है। कुंतक के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अतिरिक्त व्यवहार और औचित्य का परिज्ञान, आनंद तथा अंतश्चमत्कार की उत्पत्ति काव्य का प्रयोजन है। आचार्य वामन आनंद और कीर्ति को काव्य का मूल प्रयोजन स्वीकार करते हैं। पंडित जगन्नाथ प्रतिभा को ही एकमात्र काव्य का हेतु मानते हैं। जैनेन्द्रजी साहित्य का प्रयोजन स्वलाभ एवं स्वान्तः सुख स्वीकार करते हुए कहते हैं—''अनुभवों से मैं कहूंगा कि साहित्य का पहला श्रेय है अपने जीवन का लाभ। अपनी अंतरंगता की स्वीकृति और प्राप्ति, अपने भीतर के विग्रह की शांति, उलझन की समाप्ति और व्यक्तित्व की उत्तरोत्तर एकत्रितता।''[१] अरस्तू मनोविकृतियों के विरेचन को काव्य का प्रयोजन मानते हैं।

आधुनिक युग के साहित्यकारों ने काव्य के प्रयोजन के बारे में विभिन्न मत प्रस्तुत किए हैं—''साहित्य का उच्चतम आदर्श है कि उसकी रचना केवल कला की पूर्ति के लिए की जाए। जब साहित्य की रचना किसी सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक मत के प्रचार के लिए की जाती है तो वह अपने पद से गिर जाता है।''[२] महर्षि अरविंद ईश्वर के साथ तादात्म्य को काव्य का मूल प्रयोजन स्वीकार करते हुए कहते हैं—'कविता न कीर्ति के लिए लिखी जानी चाहिए, न स्वान्तः सुख के लिए और न दिव्य मनोरंजन के लिए। वह केवल भागवत सत्ता के साथ सम्पर्क बढ़ाने के लिए लिखी जानी चाहिए।''[३] कामरेड यशपाल कहते हैं कि मेरे विचार में कला का उद्देश्य जीवन की पूर्णता की प्राप्ति है।''[४] अच्छी से अच्छी कविता भी यदि समाज पर अस्वस्थ प्रभाव डालती है तो वह प्रथम श्रेणी के स्थान को खो बैठती है।

---

१. जैनेन्द्र कुमार ; साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ. १८, १९।

२. सं. सच्चिदानंद वात्स्यायन ; साहित्य और समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया, पृ. १२१।

३. रामधारीसिंह दिनकर ; शेष निःशेष, पृ. ४४८।

४. दादा कामरेड ; दो शब्द, पृ. ५।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल केवल मनोरंजन या आनंद को ही कला का प्रयोजन नहीं मानते, उनका अभिमत है कि मन को अनुरंजित करना, उसे सुख या आनंद पहुंचाना ही यदि कविता का अंतिम लक्ष्य माना जाए तो कविता केवल विलास की सामग्री हो जाएगी। कविता एक दिव्य अनुभूति प्रदान करने वाली शक्ति है। कवि का लक्ष्य होना चाहिए जगत् के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उनके साथ मनुष्य के हृदय का सामञ्जस्य स्थापित करना।''[१] महावीर प्रसाद द्विवेदी नैतिक मूल्यों की स्थापना को ही काव्य का मूल मानते हुए कहते हैं—''पाशविक तथा विकारों को उत्तेजित करने वाला, अश्लील और अनैतिक साहित्य समाज का शत्रु होने के कारण दंडनीय है अतः मनुष्य को देवता बनाना ही काव्य का सबसे बड़ा उद्देश्य है।''[२] हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसी मत की पुष्टि की है—''जो रचना संकीर्ण स्वार्थों के बंधन से मुक्त होने की प्रेरणा नहीं देती, उसका मूल्य दो कोड़ी का भी नहीं है।''[३] जयशंकर प्रसाद शिक्षा और आनंद को काव्य का प्रयोजन मानते हैं।''[४] प्रथम अधिवेशन में सभापति के पद पर बोलते हुए उपन्यासकार प्रेमचन्द ने साहित्य के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए कहा—''हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो सबमें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि और अधिक सोना मृत्यु का लक्षण है।'' मैथ्यु आर्नल्ड के अनुसार काव्य में प्रशिक्षित करने, सहारा देने और आनंदित करने की जितनी शक्ति होती है, उतनी अन्य किसी में नहीं होती।''[५]

राष्ट्रकवि दिनकर ने अपनी दैनंदिन की डायरी में स्वयं से प्रश्न पूछा है कि व्यक्ति लिखने क्यों लगता है? स्वयं ही उसका उत्तर लिखते हुए उन्होंने कहा—''भीतर से कुछ धुंआ निकलना चाहता था और वह केवल कविता बनकर ही निकल सकता था।'' राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार

---

१. गणपतिचन्द्र गुप्त ; साहित्यिक निबंध, पृ. ४३।
२. सरस्वती, जून १९०५।
३. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावलि, भाग-७, पृ. १५४।
४. रामजीलाल बघौतिया ; हिंदी साहित्य में विभिन्न वाद, पृ. २०२।
५. डॉ. विजयपाल सिंह ; पाश्चात्त्य काव्य शास्त्र, पृ. १०२।

काव्य को केवल मनोरंजन ही नहीं, जीवन को नया प्रतिबोध भी देना चाहिए। भारतभारती में काव्यात्मक अभिव्यक्ति देते हुए वे कहते हैं—

- केवल मनोरंजन न कवि का, कर्म होना चाहिए।
  उसमें उचित उपदेश का भी, मर्म होना चाहिए॥
- मानते हैं जो कला को कला के अर्थ ही।
  स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही॥

दिनकर की निम्न पंक्तियां भी काव्य के प्रयोजन पर सुंदर प्रकाश डालती हैं—

बड़ी कविता कि जो इस भूमि को सुंदर बनाती है,
बड़ा वह ज्ञान, जिससे व्यर्थ की चिन्ता नहीं होती।
बड़ा वह आदमी, जो जिन्दगी भर काम करता है,
बड़ी वह रूह, जो रोए बिना तन से निकलती है॥

बाबू गुलाबराय के शब्दों में काव्य का उत्तम प्रयोजन यही है कि जो आत्मा को व्यापक से व्यापक तथा अधिक से अधिक अनुभूति कराने में सहायक हो, इसी में लोकहित का मान है।''[१] काव्य के प्रयोजन के संदर्भ में आचार्य तुलसी की निम्न उक्तियां काव्य का प्रयोजन स्पष्ट करती हुई कवियों एवं कलाविदों में नवजागृति भरने वाली हैं—

- ''मैं कवियों से अपनी अन्तर्व्यथा कहना चाहता हूं कि वे केवल नखशिख का वर्णन करें, यह पर्याप्त नहीं। वे केवल प्रकृति, पर्वत व समुद्र की शोभा का वर्णन करें, यह भी उचित नहीं। उनका कर्त्तव्य है कि सदाचार के प्रचार में अपनी कल्पना को स्फूर्तिमय बनाएं और मानवीय मनोवृत्ति को पवित्र करने में अपनी व्यापक काव्यकला का उपयोग करें, जिससे वे न्याय-नीति के राजमार्ग पर चल सकें।''[२]
- ''साहित्य और कला जब मनोरंजन एवं व्यवसाय से जुड़ जाते हैं, तब उनके आदर्श आसमान से उतरी हुई वायवी वस्तु की भांति एक बार सबको चौंकाकर अपने अस्तित्व को ही विलीन कर देते हैं किन्तु सस्ती लोकप्रियता, मनोरंजन और व्यवसाय-बुद्धि से हटकर लिखने वाले लेखक या कवि संसार को वे आदर्श दे जाते हैं, जो कभी धूमिल नहीं होते।''[३]

---

१. गणपतिचन्द्र गुप्त ; साहित्यिक निबंध, पृ. ४३।
२. अणुव्रती संघ, चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन।
३. आचार्य तुलसी ; बीति ताहि विसारि दे. प्राथमिकी, पृ. १।

◆ "कवि की रचना किसी को प्रसन्न रखने या सम्मान पाने के लिए नहीं होनी चाहिए। सही अर्थ में कवि बनने की सार्थकता तब है, जब वह विषमतामूलक वातावरण को बदलकर उसे नैतिकता मूलक बना दे।"[१]

आचार्य तुलसी के उक्त विचारों से स्पष्ट है कि यदि काव्य जीवन की उपेक्षा करके केवल भौतिक मनोरंजन या ख्याति का निमित्त बनता है तो उससे व्यक्ति, समाज और देश को कोई लाभ नहीं हो सकता। काव्य-कला तभी उपयोगी है, जब वह व्यक्ति-व्यक्ति की दृष्टि को विस्तीर्ण करे, मानव-मानव में आध्यात्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करे तथा विचार-परम्परा को समृद्ध बनाने में निमित्तभूत बने। लोकहित से कटकर लिखा गया साहित्य कभी समादृत एवं चिरस्थायी नहीं हो सकता।

अरस्तू के अनुसार काव्य का उद्देश्य अपने ढंग से उपदेश देकर जीवन के सत्य का उद्घाटन करना है।"[२] पाश्चात्त्य विद्वान् मुख्यतः काव्य को कला के रूप में स्वीकार करते हैं। प्रयोजन के संबंध में उनके मतों को इन वर्गों में बांटा जा सकता है—

१. कला कला के लिए।
२. कला जीवन के लिए।
३. कला जीवन से पलायन के लिए।
४. कला जीवन में प्रविष्ट होने के लिए।
५. कला सेवा के लिए।
६. कला आत्मानुभूति के लिए।
७. कला आनंद के लिए।
८. कला विनोद के लिए।
९. कला सर्जन की अदम्य आवश्यकता-पूर्ति के लिए।"[३]

पाश्चात्त्य साहित्यकारों ने उपर्युक्त सभी प्रयोजनों पर विस्तार से चिंतन किया है पर भारतीय साहित्यकारों का अभिमत इससे अधिक व्यापक एवं विशद है। जो साहित्य समाज की विकृति की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट

---

१. ५ सित. १९५३ के प्रवचन से उद्धृत।
२. डॉ. भगीरथ मिश्र ; पाश्चात्त्य काव्य शास्त्र : इतिहास, सिद्धांत और वाद, पृ. १३।
३. गणपतिचन्द्र गुप्त ; साहित्यिक निबंध, पृ. ४४।

नहीं करता, वह स्वान्त: सुखाय तो हो सकता है पर उससे परमार्थ और लोकहित की सिद्धि नहीं हो सकती। अपने पात्रों के माध्यम से कवि समाज का ध्यान उन गलत परम्पराओं एवं अंधरूढ़ियों की ओर आकृष्ट करता है, जिससे समाज जर्जरित होता है। कभी वह एकलव्य एवं कर्ण के माध्यम से जातिवाद प्रथा पर प्रहार करता है, जिन्हें योग्यता होने के बावजूद जाति के कारण अधिकारों से वंचित रहना पड़ा तो कभी वह अभिमन्यु के माध्यम से समाज की इस मनोवृत्ति पर व्यंग्य करता है, जो प्रतिभा को पनपने नहीं देती बल्कि उचित-अनुचित साधनों से उसे नष्ट करने का प्रयास करती है। आचार्य तुलसी का काव्य विचार-जागृति का विधायक है। विशाल काव्य साहित्य-सर्जन के पीछे उनका मुख्य प्रयोजन है—सृष्टि की कुरूपता को सौन्दर्य में तथा अमंगल को मंगल में बदलना। उनका साहित्य केवल सत्य को ही प्रस्तुति नहीं देता, वरन् सौन्दर्य और शिव की अन्विति भी उसमें है। यही कारण है कि उनके काव्य में मर्मवेधन की शक्ति उत्पन्न हो गयी है। उन्होंने काव्य के माध्यम से संस्कृति और इतिहास की ही सुरक्षा नहीं की बल्कि युगनिर्माण एवं सांस्कृतिक परिष्कार की चेतना के स्वर को भी मुखर किया है।

काव्य के माध्यम से आचार्य तुलसी ने केवल समष्टि को ही नहीं ललकारा, व्यक्तिगत जीवन के परिष्कार और आत्मा के उत्थान की प्रेरणा भी दी। असत्य और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की अपूर्व क्षमता उनके गीत-साहित्य में है। युग सत्य और चिरंतन सत्य तथा श्रेय और प्रेय की जो समन्विति उनके काव्य में मिलती है, वह अद्‌भुत है। गुरुदेव तुलसी काव्य को जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति का माध्यम मानते थे। उनका आत्मतेज युक्त कवित्व मनुष्य को स्वार्थ एवं संकीर्णताओं से ऊपर उठाकर जीवन को किसी उच्चतम आदर्श में ढालने का प्रयत्न करता है। संक्षेप में आचार्य तुलसी के काव्य-साहित्य का प्रयोजन इन बिंदुओं में प्रस्तुत किया जा सकता है—

* भौतिकता के अंधकार से अध्यात्म के प्रकाश की ओर चलने के लिए।
* अज्ञान और अंधविश्वास से मुक्ति के लिए।
* शोषण और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की प्रेरणा देने के लिए।
* व्यक्ति और समाज की विकृत चेतना को बदलने के लिए।

* स्वार्थ के स्थान पर परार्थ चेतना जगाने के लिए।

* सत्त्व गुण को प्रतिष्ठित कर आत्मोन्नति करने के लिए।

* संवेदना और परदु:खकातरता जगाने के लिए।

* दिग्भ्रमित जनता का पथ-प्रदर्शन करने के लिए।

* देश की एकता और अखण्डता को बनाए रखने की प्रेरणा देने के लिए।

कहा जा सकता है कि उनका काव्य साहित्य न निरुद्देश्य है और न ही आत्मनिरपेक्ष। जो कुछ है, वह सब सार्थक, सप्राण और सप्रयोजन है। व्यक्ति और समाज को बदलने एवं तदर्थ श्रेष्ठ विकल्प प्रस्तुत करने में उनका काव्य एक सशक्त भूमिका का निर्वाह करता है।

नियत कार्य-निष्पत्ति में, पौरुष है अनिवार्य।
अंगुलियों के यत्न से, सधता है सत्कार्य॥
आत्मा पृ. ४०

जब-जब बनता मन अमन, होती चित्त समाधि।
नामशेष होती स्वयं, आधि व्याधि उपाधि॥
आत्मा पृ. ४७

आत्मा सोती, जागते इन्द्रिय-विषय-विकार।
आत्मा जब-जब जागती, सुप्त विषय-संस्कार॥
आत्मा पृ. ४८

बने लचीले देह के, सभी अंग-प्रत्यंग।
जिनके द्वारा जीतना, है साधक को जंग॥
आत्मा पृ. ९५

मन तन के पीछे चले, तो साधक की हार।
तन-मन अनुगामी रहे, खुले साधना-द्वार॥
आत्मा पृ. ९५

सुख-दु:ख की परिकल्पना, में है मानस मूढ़।
जल-मन्थन घृत के लिए, बने पहेली गूढ़॥
आत्मा पृ. ४१

काव्य की प्रेरणा

दिनकर के अनुसार काव्य-सृजन में प्रेरणा अनिवार्य भूमिका का सम्पादन करती है। बिना प्रेरणा के सत्काव्य लिखा ही नहीं जा सकता। काव्य की प्रेरणा के अनेक निमित्त बन सकते हैं। कभी-कभी घटना, वस्तु या दृश्य व्यक्ति की अनुभूति में इतना उद्रेक पैदा कर देता है कि व्यक्ति स्वत: काव्य-रचना में प्रवृत्त हो जाता है। जैसे शोकविह्वल क्रोंच पक्षी को देखकर वाल्मीकि के हृदय से काव्य की धारा प्रस्फुटित हो उठी। पत्नी की प्रेरणा ने कालिदास और तुलसी जैसों को विश्व का सर्वश्रेष्ठ कवि बना दिया। कभी-कभी किसी को प्रेरणा देने के लिए भी काव्य रचना हो जाती है, जैसे विद्यापति ने रानी लखिमादेवी और राजा शिवसिंह को सम्बोधित करके ही अपने सारे गीत लिखे हैं।

ईशभक्ति या इष्ट की आराधना भी व्यक्ति को कवि-कर्म में प्रवृत्त करती है। मीरा, कबीर, जायसी और चैतन्यप्रभु के गीत अपने आराध्य के समर्पण भाव में रचे गए हैं। समाज और देश को बदलने के लिए भी अनेक कवियों ने अपनी कलम की धार पैनी की। भारतेन्दु युग के प्राय: सभी कवियों ने समाज और देश को सम्बोधित कर काव्य की रचना की है। राष्ट्रकवि दिनकर ने साहित्य-सृजन की प्रेरणाओं का उद्‌गम शिक्षा, दीक्षा, संस्कार और भावुकता को माना है।''[१]

विरह, वेदना और प्रणय भी व्यक्ति को काव्य की ओर प्रवृत्त करता है। सुमित्रानंदन पंत कहते हैं—

> वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
> निकलकर आंखों से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान॥

काव्य की प्रेरणा के बारे में रवीन्द्रनाथ टैगोर का अभिमत है कि हमारे मनोभावों की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अनेक हृदयों में अपने को अनुभूत कराना चाहता है।···हृदय जगत् अपने को व्यक्त करने के लिए आकुल रहता है इसलिए चिरकाल से मनुष्य के अंदर साहित्य एवं कला का वेग है।''

होमर, सुकरात आदि पाश्चात्त्य विद्वान् दैवी प्रेरणा को काव्य का स्रोत मानते हैं। सुकरात का अभिमत था कि कवि काव्य-सृजन इस कारण नहीं किया करते कि वे विशेष बुद्धिमान् हुआ करते हैं वरन् इस कारण किया करते

---

१. चक्रवाल ; भूमिका, पृ. ४७।

हैं कि उनमें एक प्रकार की विशिष्ट दैवीय प्रकृति अथवा प्रतिभा हुआ करती है, जो उन्हें ऐसा करने का उत्साह प्रदान करती है।'' क्रोचे ने आत्माभिव्यक्ति एवं आत्मसंतुष्टि को काव्य की प्रेरणा माना है। फ्रायड अतृप्त कामवासना को तथा उनके शिष्य एडलर हीनता को काव्य की प्रेरणा मानते हैं। ह्यूम के अनुसार साहित्य मनुष्य की आत्मरक्षा की प्रवृत्ति का परिणाम है। साहित्यकार गोर्की के अनुसार हमारे चारों ओर की सामाजिक परिस्थितियां हमें काव्य-रचना की ओर प्रेरित करती हैं। आचार्य तुलसी का अनुभव है कि कवि अभ्यास से नहीं बनता, प्रकृति ही उसकी निर्मात्री होती है।''[१]

आचार्य तुलसी वैसे तो जन्मजात कवि थे लेकिन उनके सर्वप्रथम प्रेरणास्रोत मंत्री मुनि मगनलालजी स्वामी रहे। मुनि तुलसी बड़े गुड़ा में एक दिन सायंकालीन प्रतिक्रमण के बाद आचार्य कालूगणी के उपपात में पहुंचे। चरण-वंदना कर जब मुनि तुलसी वापिस जाने लगे तो कालूगणी ने नाम संबोधनपूर्वक उनको अपने निकट बुलाया। '**मेरा जीवन:मेरा दर्शन**' पुस्तक में उस समय की अनुभूति लिखते हुए आचार्य तुलसी कहते हैं—''पता नहीं गुरुदेव के शब्दों में कैसी मिठास थी, मैं भीतर तक उसमें डूब गया। मेरे कानों में अमृत का झरना सा बहने लगा। मैं अविलम्ब उनके निकट पहुंचा। उनकी प्रसन्न मुखमुद्रा देखकर ऐसा लगा मानो मेरी आंखें अमृत-शलाकाओं से आंज दी गयी हों।''आचार्य कालूगणी ने एक सोरठे के माध्यम से सीख देते हुए कहा—

सीखो विद्यासार, परहो कर परमाद नै।
बधसी बहु विस्तार, धार सीख धीरज मनै॥[२]

उस समय मुनि तुलसी हर्षातिरेक से आत्मविभोर हो गए। वे गद्गद हो उठे और कुछ बोल नहीं सके। जब मुनि तुलसी ने मंत्री मुनि मगनलालजी स्वामी को वंदना की तो उन्होंने प्रेरणा देते हुए कहा—''तुलसी मुनि! गुरुदेव ने तुम पर इतनी बड़ी कृपा की है अत: तुम भी शिक्षावचनों के प्रति प्रत्युत्तर में काव्यमय कृतज्ञता ज्ञापित करो।'' उसी समय विनम्र भाव से मुनि तुलसी ने तत्काल एक सोरठा आचार्य कालूगणी के श्री चरणों में निवेदित किया—

महर रखो महाराय!, लख चाकर पद-कमल नो।

१. ५ सित. १९५३ के प्रवचन से उद्धृत।
२, ३. मेरा जीवन : मेरा दर्शन, भाग-१, पृ. २३५।

आपो सीख सुखदाय, जिम जल्दी शिवगति लहूं॥[३]

दूसरे दिन कालूगणी ने फिर काव्यमय प्रशिक्षण देते हुए कहा—

शिशु मुनिवर! सुविशेख, क्रिया नित्य निर्मल करो।
रंच न चूको रेख, देख-देख पगला धरो॥[१]

पूज्य आचार्य कालूगणी के इस बोधपाठ को सुनकर मुनि तुलसी का कवि मानस बोल उठा—

चित में अहोनिश चैन, भाग्यदिशा जागी भली।
श्रवण करां श्रवणेन, सीख अमोलक स्वाम री॥[२]

इस घटना ने उनकी काव्य-चेतना को जागृत कर दिया। फिर समय-समय पर मुनि तुलसी अपने गुरु कालूगणी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए गीत, कविता एवं छप्पयों की रचना करने लगे। मुनि अवस्था में वे अपने पास अध्ययनरत विद्यार्थियों को भी विशेष प्रसंगों पर कविता बनाकर देते थे। आचार्य बनने के बाद तो उन्होंने अनेक विधाओं में काव्य की अजस्र धारा ही बहा दी। अपने बड़े भाई मुनि श्री चम्पालालजी की प्रेरणा से उन्होंने प्राचीन कथानकों को काव्यमय प्रस्तुति दी, जो **'चंदन की चुटकी भली'** पुस्तक में संकलित हैं।

गुरुदेव तुलसी के काव्य-निर्माण की प्रेरणा को निम्न बिंदुओं में व्यक्त किया जा सकता है—

- अतीत की धरोहर को सुरक्षित रखना।
- नैतिक-मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा।
- संस्कार-निर्माण की प्रेरणा एवं संस्कृति की सुरक्षा।
- आध्यात्मिक भावना का स्वर मुखर करना।
- परिस्थिति विशेष का चित्रण।
- जैन दर्शन एवं तत्त्वज्ञान की सुरक्षा।

आचार्य तुलसी प्रेरक पुरुष थे। उनकी प्रेरणा से सैकड़ों कवि-मानस झंकृत होकर कवि कर्म में प्रवृत्त हुए। लेखन के क्षेत्र में स्वतंत्र अभिव्यक्ति और मौलिक चिन्तन के अभाव की पूर्ति हेतु साहित्यकारों को प्रेरणा देते हुए उन्होंने कहा—''समाज की चेतना को झकझोरने वाला

१,२. मेरा जीवन : मेरा दर्शन, भाग-१, पृ. २३५।

साहित्य नहीं के बराबर है। इस अभाव को भरा हुआ देखने के लिए अथवा साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में जो शुचितापूर्ण परम्पराएं चली आ रही हैं, उनमें उन्मेषों के नये स्वस्तिक उकेरे हुए देखने के लिए मैं बेचैन हूं। मेरे धर्मसंघ के सुधी साधु-साध्वियां इस दृष्टि से सचेतन प्रयास करें और कुछ नई संभावनाओं को जन्म दें, यह अपेक्षा है।''

कहा जा सकता है कि काव्य-रचना द्वारा उन्होंने जीवन के नश्वर क्षणों को अनश्वर बनाने का प्रयत्न किया है।

जन-जन के मन में कुटिल क्रूरता, हृदयहीनता जागी।
मानव, मानव से दूर हुआ, वैभव का बन अनुरागी॥

अणु पृ. ११५

आज बनी है हिंसा मानो, जीवन की परिभाषा।
मूढ़ मनुज करता है उससे, समाधान की आशा॥
यह मिटे मनस की भ्रांति जी,
हो घटित अहिंसक क्रांति जी,
सत्य अहिंसा शोध खोज में, शक्ति स्रोत बहाएं॥

अणु पृ. ११२

अनेकान्त आदर्श सहारे, चिन्तन पथ सुलझाएं।
छोड़ आग्रही वृत्ति स्वयं हम, मंजिल को पा जाएं॥

अणु पृ. १२१

काव्य का विषय

कोई भी श्रेष्ठ काव्य किसी संस्कृति विशेष की अभिव्यक्ति होता है क्योंकि कवि किसी न किसी परम्परा से बंधा होता है अत: काव्य का क्षेत्र कवि की आकांक्षाओं और जीवन-पद्धतियों का प्रतिबिम्ब होता है। फिर भी कविता का सबसे बड़ा क्षेत्र जीवन है। ''जीवन से अलग हटी कविता साहित्य की सबसे बड़ी निर्लज्जता है।'' ऐसा डॉ. रामकुमार वर्मा का अभिमत है।

ह्यूम के अनुसार काव्य का विषय असीम नहीं बन सकता। वे सामान्य, दृश्यगत एवं चिरपरिचित वस्तुओं को ही काव्य के परिवेश में ग्रहण करने के पक्षपाती हैं किन्तु काव्य के क्षेत्र को सीमित नहीं किया जा सकता क्योंकि **'जहां न पहुंचे रवि, वहां पहुंचे कवि'** इस उक्ति के अनुसार कवि अपनी कल्पनाशक्ति से वहां तक पहुंच जाता है, जहां प्रकृति की कोई शक्ति नहीं पहुंच सकती। काव्य हृदय को इतना विशाल बना देता है कि सृष्टि का प्रत्येक आनंद हमें अपना आनंद प्रतीत होता है तथा प्रकृति का प्रत्येक सौन्दर्य हमसे अभिन्न प्रतीत होता है। आचार्य भामह के अनुसार संसार का कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जो काव्य का अंग नहीं बन सके।

न स शब्दो न तद्वाच्यं, न स न्यायो न सा कला।
जायते यन्न काव्यांगमहो भारो महान् कवेः॥

जिस युग में कवि पैदा होता है, उस युग की राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं अन्य परिस्थितियां प्रत्येक लेखक में एक सामान्य गुण भर देती हैं।''[१] अतीत का आख्यान प्रस्तुत करते हुए भी कवि वर्तमान से जुड़ा रहता है। इस संदर्भ में डॉ. भगीरथ मिश्र का मंतव्य उल्लेखनीय है—''युग युगान्तर में ग्रहण किए काव्यगत सत्य विभिन्न मणियां हैं, जिनके सूत्र बदलते रहते हैं। किसी युग में यदि उन्हें पिरोने वाला सूत्र भक्ति का है तो दूसरे युग में श्रृंगार एवं विलास का। एक युग में वह करुणा का है तो दूसरे युग में देशप्रेम का। एक युग में वही सूत्र समाज-सुधार का है तो दूसरे में साम्यवाद और सहअस्तित्व का।''[२] कविवर बच्चन के अनुसार काव्य का सम्बन्ध

---

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावलि, भाग-७, पृ. १६९।
२. डॉ. भगीरथ मिश्र ; कवि का सत्य, पृ. ३ ।

जीवन से है। ऐसे जीवन से है, जो संघर्षरत होने के कारण प्राणवन्त हो।'' 'मुक्तिबोध' में कविता के विषय पर आज के कवियों का सामान्य अनुभव बताते हुए कहा है—

जीवन में आज के
लेखक की कठिनाई यह नहीं कि
कमी है विषयों की
वरन् यह है कि आधिक्य उनका ही
उसको सताता है
और वह ठीक चुनाव कर नहीं पाता है।

काव्य के क्षेत्र के बारे में एक पाश्चात्य विद्वान् व्यंग्य करते हुए कहते हैं The range of the Modern poet is from God to dog. अर्थात् आधुनिक कवि का क्षेत्र श्वान से भगवान् तक फैला है। तुलसीदासजी ने उसी काव्य को श्रेष्ठ माना है, जो अप्राकृतिक और अलौकिक हो। प्लेटो ने भी इसी बात का समर्थन किया है—'अपने मन में तुम्हें यह दृढ़तापूर्वक समझ लेना चाहिए कि किसी भी नगर में केवल उसी कविता को प्रवेश होने दिया जाएगा, जिसमें ईश्वर की स्तुति हो अथवा साधुजनों का गुणगान हो।''[१] काव्य के विषय के बारे में आचार्य तुलसी का स्पष्ट अभिमत था कि लेखक अपने पाठकों को एक ही प्रकार की सामग्री परोसकर वैचारिक दृष्टि से नयी ताजगी नहीं दे सकता इसलिए लेखक को भाव, शिल्प आदि में नहीं बंधना चाहिए। लेखकीय धर्म यह है कि वह न तो पूरी तरह से खुला रहे और न पूर्ण रूप से बंधकर रहे।''

आचार्य तुलसी ने काव्य में उन्हीं विषयों का स्पर्श किया है, जो प्रेरक हों, तत्त्वस्पर्शी हों, मार्मिक तथा बोधगम्य हों। निरर्थक विषयों के प्रतिपादन में उनकी वाणी और लेखनी प्राय: मौन और अलिखित रही। सामान्य विषय भी उनकी लेखनी का स्पर्श पाकर सजीव और मार्मिक बन गए। उनके काव्य-साहित्य में युग की अनेक गम्भीर समस्याएं एवं उनका समाधान गुम्फित है। कहीं-कहीं विषय की पुनरुक्ति होने पर भी भाषा एवं भाव की चमत्कृति सर्वत्र विद्यमान है। उनके काव्य के बारे में पाश्चात्य विद्वान् मैकाले की इस उक्ति को उद्धृत किया जा सकता है कि विषय तो कोट टांगने की खूंटी है

१. डॉ. सावित्री सिन्हा ; पाश्चात्त्य काव्य शास्त्र की परम्परा, पृ. २३।

अत: वह महत्त्वपूर्ण नहीं, महत्त्व तो उस पर टंगे हुए कोट का है। ईश्वर की सर्व व्यापकता पर एक निम्न कोटि की और पालतू चिड़िया पर उससे कहीं उत्तम कोटि की कविता लिखी जा सकती है।''

आचार्य तुलसी के काव्य का क्षेत्र इसलिए व्यापक बना चूंकि उन्होंने सम्पूर्ण भारत की पदयात्रा की। उन्होंने ग्रामदर्शन, नगरदर्शन, लोकदर्शन के साथ-साथ उन्मुक्त प्रकृति-दर्शन भी किया अत: उनका अनुभव क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया। आचार्य तुलसी की काव्य प्रतिभा प्रत्येक दृश्य, घटना या परिवेश को काव्य में बांधने की क्षमता रखती थी। यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि उनके पास विचारों एवं भावों का अजस्र स्रोत था। सजग एवं समर्थ कवि होने के कारण उन्होंने अपने काव्य में किसी भी सार्थक विषय को अछूता नहीं छोड़ा। उन्होंने जिस स्थान से सम्बन्धित घटना का वर्णन किया, उस स्थान की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का आंखों देखा वर्णन प्रस्तुत कर दिया, जिसे पढ़कर पाठक को ऐसा महसूस होता है मानों वह उसी क्षेत्र में विचरण कर रहा हो। मेवाड़ के गोगुंदा गांव की प्राकृतिक छटा का वर्णन उनकी चित्रित शैली में पठनीय है—

नीर बहै झर-झर झरणां रो, करणां रो बहलाव,
अम्ब-डार कोयलियां कूजै, गूंजै मधुराराव,
जाई जूही री खुशबू ही, अलि निकुरम्ब विहारे।
पथरां में जड़ रोप खड़्या है, निम्ब जम्ब सहकार,
ढेर-ढेर धव खदिर पलासं, वैर डेर भरमार,
गुच्छलता स्यूं, वच्छलता स्यूं, पथ-श्रम पथिक निवारे॥ मगन पृ. ७

आचार्य तुलसी ने केवल उन्हीं बातों का ही वर्णन नहीं किया, जो यथार्थ की कसौटी पर कसी जा सकती हैं, उन विषयों का समावेश भी किया जो संभाव्य हो तथा अनागत में सत्य होकर हमारे भावी-पथ का निर्माण कर सकें। मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियां उनके काव्य की आदर्श कही जा सकती हैं—

हो रहा है जो जहां सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा जो क्या कहा?
किन्तु होना चाहिए कब क्या कहां?
व्यक्त करती है कला ही यह यहां॥

आचार्य तुलसी ने समाज या राष्ट्र में जहां कहीं विषमता, क्षुद्रता और मानवता का ह्रास देखा, काव्य के माध्यम से व्यंग्य-बाण चला दिया। राजकर्मचारियों को सम्बोधित करके कवि कहते हैं—

भारी 'कर' देने में जनता, नहीं करे अफसोस।
पर यह गबन करोड़ों का, जागृत करता आक्रोश॥ अणु पृ. ४७

आचार्य तुलसी ने मानव जीवन के श्रेय और प्रेय—इन दोनों पक्षों को सम्मिलित रूप से उभारा। साथ ही जीवन के सुंदर-असुंदर, नैतिक-अनैतिक तथा स्वच्छ और विकृत—इन दोनों रूपों को चित्रित किया, जिससे मानव उनके काव्य-दर्पण में अपनी अच्छाई और बुराई—दोनों का एक साथ अवलोकन कर सके। कहा जा सकता है कि उनके गीत जीवन की समग्र दृष्टि प्रस्तुत करते हैं।

निश्चय में नर एक है, दो होना व्यवहार।
भीतर में निश्चय रहे, ऊपर संव्यवहार॥

आत्मा पृ. ८

मन निश्चय में लीन हो, साधे तन व्यवहार।
सप्रण पनिहारी गति, होगी कभी न हार॥
निश्चय जितना सत्य है, उतना ही व्यवहार।
रहे साधना-काल में, दोनों का आधार॥

आत्मा पृ. ९

निश्चय तो श्री वीतराग ही साध सकेगा,
उससे पहले बस केवल व्यवहार टिकेगा।
यह कोरी मन की उड़ान है भूल न जाना,
दोनों को ही साधक साथ-साथ रख पाना॥

आत्मा पृ. १०

काव्य-गुण

जो रस के धर्म हैं तथा जिनकी रस के साथ अचल स्थिति रहती है, वे गुण कहलाते हैं। गुण काव्य की शोभा एवं उत्कर्ष बढ़ाने वाले उपकरण हैं। आचार्य तुलसी के शब्दों में जहां कविता में गुणात्मकता नहीं होती, वहां जीवन्तता के दर्शन नहीं होते। उसके स्वर दूसरों के हृदय तक नहीं पहुंच पाते, कानों तक ही रह जाते हैं।''[1] साहित्य के आचार्यों ने काव्य के मुख्यतया तीन गुण बताए हैं—१. प्रसाद, २. माधुर्य, ३. ओज। इन तीनों गुणों के साथ वर्ण-योजना का गहरा सम्बन्ध है।

प्रसाद गुण

प्रसाद गुण में वाग्जाल से रहित सरल पदों की योजना होती है अत: अभिव्यक्ति की स्पष्टता प्रसाद गुण का अनिवार्य तत्त्व है। बाबू गुलाबराय के अनुसार प्रसाद गुण में वर्ण-चयन सरल, सुबोध एवं स्वाभाविक होता है, जिसको पढ़ने या सुनने मात्र से अर्थ की प्रतीति हो सके।''[2] इसका संबंध पांचाली रीति से होता है।

प्रसाद गुण में कठिन शब्द-योजना तथा समास बहुल शब्दों का प्रयोग बहुत कम होता है। आचार्य तुलसी की अनुभूति बहुत संवेदनशील और प्रौढ़ थी अत: अभिव्यक्ति की स्पष्टता स्वत: उनके काव्य में परिलक्षित हो गई। जीवन के सांध्यकाल में आचार्य तुलसी ने अपनी रचनाओं में प्रसाद गुण का विशेष ध्यान रखा है। उन्होंने हास्य, अद्‌भुत और शान्त रस के परिपाक में प्रसाद गुण युक्त भाषा का प्रयोग किया है। निम्न पंक्तियों में सरस एवं कोमल शब्दों से युक्त प्रसाद गुण का प्रयोग द्रष्टव्य है—

- सौभाग्य भरत का खुद ही, बोल रहा था।
  दुर्भाग्य पराजित होकर, डोल रहा था। भरत पृ. ४९
- अधिकारों की मादकता में, बन जाते हैं जो क्रूर अहो!
  अपने उन्नत आदर्शों से, जाते वे कितने दूर कहो? भरत पृ. ४३
- वाणी में संतुलन समन्वय, समता हो चिन्तन में।
  और अहिंसा की पुट हो, प्रत्येक कार्य की धुन में॥ अणु पृ. ५९

---

१. आचार्य तुलसी ; घर का रास्ता, पृ. १०७।

२. बाबू गुलाबराय ; साहित्य और समीक्षा, पृ. ७१।

- पलकों में, रसना में क्या है ? ये तो यों ही थकती हैं।
  नहीं अस्थियां इनमें होतीं, इधर-उधर हो सकती हैं॥ भरत पृ. १२६

सीता जब वज्रजंघ राजा के राजमहल में रह रही थी, उस समय वह महिलाओं की जागृति हेतु गोष्ठियां करती रहती थी। विविधमुखी गोष्ठियों के चित्रण में कवि के कथ्य की प्रभान्विति द्रष्टव्य है—

कभी भजनों का सरस रस, टपकता संगीत में,
विचरती सब कभी सोत्सुक, स्वानुभूत अतीत में।
कभी सह स्वाध्याय तो, होती कभी अन्त्याक्षरी,
कभी चलती लघु कथाएं, विविध शिक्षा से भरी॥ परीक्षा पृ. ७६

माधुर्यगुण

सुंदर एवं मधुर भावों को प्रस्तुत करने के लिए मधुर वर्णों का प्रयोग करना माधुर्यगुण है। बाबू गुलाबराय के अनुसार जिस काव्य-रचना से अंत:करण आनंद से द्रवीभूत हो जाए, उस रचना में माधुर्यगुण होता है।''[1] माधुर्यगुण नादात्मक सौन्दर्य प्रधान होता है। इसमें संयुक्त अक्षरों का प्रयोग बहुत कम होता है। माधुर्यगुण का संबंध वैदर्भी रीति से होता है।

आचार्य तुलसी के काव्य में माधुर्य गुण कूट-कूट कर भरा है। मधुर शब्दों के प्रयोग से आचार्य तुलसी के काव्य में लालित्य की सृष्टि हो गयी है। वात्सल्य रस की पराकाष्ठा में ऋषभ के प्रति मां मरुदेवा के मुख से उद्गीर्ण पंक्तियां माधुर्य रस की प्रस्तुति देने वाली हैं—

- जिसको मैंने बड़े प्रेम से , इन हाथों से पाला,
  वह हंसमुख था कैसा, सीधा-सादा, भोला-भाला।
  प्रतिदिन मैं अपने पास बिठाती, कर-कर मनुहार खिलाती,
  अब उसका कौन सजाता थाल है ? भरत पृ. २२

माधुर्य गुण की अधिकता में प्रकृति का मानवीकरण मन को आकृष्ट करने वाला है—

शाखाओं के मिष हाथ हिला, पथिकों को पादप रहे बुला।
आओ मीठे फल खा जाओ, अपनी पथ-श्रान्ति मिटा जाओ॥
भरत पृ. २१

कोमल कान्त पदावली में माधुर्य गुण का प्रकर्ष द्रष्टव्य है—

- मनन शक्ति मानव-मानव की, धन की उधेड़बुन में।
  प्रतिभा और प्रभाव बुद्धि-बल, पर-वंचन की धुन में॥ अणु पृ. ८६

---

१. बाबू गुलाबराय ; साहित्य और समीक्षा, पृ. ६९।

- शांति सुख की चाह जग में, कौन कब करता नहीं।
  कल्पना के कौर भरने से, उदर भरता नहीं॥ अणु पृ. ३०
- सम्प्रदाय के अभिनिवेश ने, बीज घृणा के बोए।
  जाति रंग की मूर्च्छा में हैं, अनगिन मानव सोए॥ अणु पृ. १११
- बेशक दहेज की मांग बुरी।
  कोमल कलियों पर खुली छुरी॥ अणु पृ. १९

ओजगुण

ओज का अर्थ है—तेज, प्रताप और दीप्ति। जिस काव्य के श्रवण से मन में तेज, स्फूर्ति, उत्साह, वीरता और साहस उत्पन्न हो, उस रचना में ओजगुण होता है। ओजगुण में मुख्यतया संयुक्त वर्ण, समस्त पद तथा टवर्ग के वर्णों का प्रयोग अधिक होता है। ओजगुण का संबंध गौड़ी रीति से होता है। आचार्य तुलसी की राष्ट्रीय कविताएं प्रायः ओजगुण से युक्त हैं। वीर रस के प्रसंग में ओजगुण की स्थिति बाहुबलि के शब्दों में पठनीय है—

- की शिकारें हैं मृगों की, सिंह से तुम कब भिड़े?
  आज तक तोड़ी लकड़ियां, वज्र से कब हो अड़े?
  काम टेढ़ा है यहां की, इंच भी लेना मही॥ भरत पृ. ८५

ओजगुण के कुछ अन्य उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- मर्यादा चाहे छोटी, जीवन की सही कसौटी। नंदन पृ. ६०
- जल गए लोभ की भट्टी में, मिल गए खाक बन मिट्टी में। अणु पृ. ९८
- बातों बातों में वीरों के, शोणित की धारा छूट पड़ी,
  कइयों की टांगें टूट पड़ीं, कइयों की भेजी फूट पड़ी।
  कइयों के सीनों से सीधी, निकली बन्दूकों की गोली,
  मानो युद्धांगण में योद्धा, शोणित से खेल रहे होली॥ भरत पृ. ८७
- बाहुबलि के सैनिकों की, गरदनें कटने लगीं,
  शवों से मानो समूची, मेदिनी पटने लगी।
  देख भीषण दृश्य पवि सी, छातियां फटने लगीं,
  सामने से बाहुबलि-सेना, स्वयं हटने लगी॥ भरत पृ. ८९
- युद्ध अब लगने लगे हैं, उन्हें भुज व्यायाम से। परीक्षा पृ. ११२
- करस्यूं शतखंड घमंड दंड स्यूं थांरो॥ चंदन पृ. १६

आचार्य तुलसी के काव्य साहित्य में काव्य के ये तीनों गुण यथास्थान सुशोभित हो रहे हैं। कहीं प्रसाद गुण की अधिकता है तो कहीं माधुर्य की। जहां कहीं कवि को वीरत्व का प्रदर्शन करना था, वहां ओजगुण की प्रधानता है।

काव्य का वैशिष्ट्य

कवि युग-स्रष्टा और समाज-स्रष्टा होता है क्योंकि वह अपनी अनुभूति से नया आलोक बिखेरकर नूतन सृष्टि का निर्माण करता है। शेक्सपीयर ने भी इसी मत की पुष्टि की है। कवि वह बात कहता है, जिसे सब अनुभव करते हैं किन्तु कह नहीं सकते। सहृदयता के कारण कवि की अनुभव-शक्ति औरों से बहुत बढ़ी-चढ़ी होती है। पण्डित केशव प्रसाद मिश्र कहते हैं कि योगी जिस भूमिका पर साधना के बल पर पहुंचता है, प्रतिभा वैभव सम्पन्न कवि वहां अनायास ही प्रतिष्ठित हो जाता है। अरस्तू का मानना था कि ईश्वर जब हमसे बातचीत करना चाहता है, तब वह कवियों की वाणी के माध्यम से अपने शब्दों को व्यक्त करता है अत: कवि के सहज स्वाभाविक उद्‌गार दैवी उद्‌गार हैं।

कवि के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य काव्य में प्रतिबिम्बित होता है। डॉ. के.जी. कदम के अनुसार जैसा कवि का जीवन होता है, वैसी ही उसकी अभिव्यक्ति होती है।''[१] डॉ. नरेन्द्र भानावत के अनुसार कवि की दृष्टि दूरगामी, निर्मल और निर्विकार रहनी चाहिए अन्यथा जो कुछ लिखा जाएगा, वह क्षणजीवी एवं साहित्य धर्म से परे होगा।''[२] मूल्यवान् कविता वही लिख सकता है, जिसकी चेतना स्वच्छ और बुद्धि परिष्कृत हो। जो तर्क की शुष्कता और कोरी भावुकता के अधीन न हो।

टालस्टाय ने अच्छे काव्य की तीन विशेषताएं बताई हैं—

- अभिव्यक्ति इतनी सरल हो कि लोग उसे हृदयंगम कर सकें।
- उसकी विषयवस्तु मानवता के लिए उपयोगी हो।
- रचनाकार के काव्य का प्रेरक तत्त्व बहिरंग के साथ आंतरिक अवश्य हो।

अंग्रेजी कवि मिल्टन ने भी काव्य की तीन विशेषताएं बताई हैं—१. सीधी-सादी हो, २. जोश भरी हो, ३. असलियत से गिरी हुई न हो। उपर्युक्त सभी विशेषताएं आचार्य तुलसी के काव्य-साहित्य में देखने को मिलती हैं। वस्तुत: सर्जक की सर्जना तभी पूर्ण होती है, जब वह सर्जना की महाशक्ति में स्वयं

---

१. डॉ. के. जी. कदम ; कवि श्री शिवमंगलसिंह सुमन और उनका काव्य, पृ.३९१।
२. डॉ. नगेन्द्र भानावत ; साहित्य के त्रिकोण, पृ. १२।

को पूर्णतया विलीन कर दे। श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर रचना करने में आचार्य तुलसी एक ही पद्य को अनेक बार गुनगुनाते रहते और तब तक उसमें परिवर्तन करते रहते जब तक उन्हें पूर्ण संतोष नहीं हो जाता। मंथन करते-करते कभी-कभी किसी प्रसंग या पद्य को दसों बार बदलने में भी वे आलस्य का अनुभव नहीं करते थे। वे कहते थे—"मैं जो कुछ भी लिखता हूं, उसमें उत्तरोत्तर निखार लाने की बात मस्तिष्क में घूमती रहती है।"

महादेवी वर्मा के अनुसार जीवन के स्पन्दन से शून्य साहित्य कभी भी जीवित नहीं रह सकता। आचार्य तुलसी का काव्य जीवन से कटकर नहीं है। उनके काव्य में पदे-पदे जीवन की नई व्याख्या देखने को मिलती है। जीवन की समस्याओं को समाहित नहीं करने वाला काव्य केवल शब्द-संकलना मात्र माना जा सकता है। आचार्य तुलसी ने केवल जीवन की समीक्षा ही प्रस्तुत नहीं की, वरन् जीवन की प्रमुख समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया। सामाजिक जीवन की विसंगतियों एवं आर्थिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुए कवि का कहना है—

◆ स्वल्प-संग्रह स्वल्प व्यय हो, चाह का सीमाकरण।
हो न शोषण और का, बस यही अपना आचरण॥ अणु पृ. ४१

पूंजीवाद की समस्या का समाधान कवि की दो पंक्तियों में पठनीय है—

◆ प्रश्न जटिल है पूंजी श्रम का, चलता विग्रह ज्यादा कम का।
समाधान है पथ संयम का, समता का संवाद॥ अणु पृ. ४०

दिनकर के अनुसार ऊंची कविता का लक्षण है कि वह प्रतिध्वनि उत्पन्न करती है, दूसरों के भीतर प्रेरणा जगाती है।[१] तुलसीदास के अनुसार कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही अच्छी है, जो गंगा के समान सबका हित करने वाली हो।"[२]

आचार्य तुलसी ने काव्य-सृष्टि समष्टि के लिए की। उन्होंने अपने पवित्र, जागरूक और अभीत अंत:करण को काव्य के माध्यम से हजारों-लाखों अंत:करणों में विसर्जित करने का प्रयत्न किया। व्यक्ति को गहराई तक प्रभावित करने की विलक्षण शक्ति उनके काव्य में है। निम्न पंक्तियों में पूछा गया प्रश्न एक धार्मिक के हृदय को आंदोलित करके कुछ सोचने के लिए मजबूर करने में समर्थ है—

पूजा और अर्चना करते, बीते कितने वर्ष।

---

१. दिनकर की डायरी, पृ. ९१।

२. कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कहं हित होई।

किन्तु साधना की गतिविधि में, आया कुछ उत्कर्ष? शासन पृ. ९९

आचार्य तुलसी आदर्शवादी ही नहीं, आदर्श स्रष्टा थे। उनके काव्य का वैशिष्ट्य है—आदर्श और व्यवहार का समन्वय। यथार्थवादी रचना में अतीत और भविष्य की अपेक्षा वर्तमान का चित्रण अधिक होता है किन्तु वे उसी यथार्थ को ग्रहण करके चलते थे, जो आदर्शोन्मुख हो। यथार्थ के बिना आदर्श की सत्ता का महत्त्व नहीं होता। आदर्श के बारे में आचार्य तुलसी के विचार अत्यन्त स्पष्ट थे। उनका काव्य यथार्थ की नींव पर खड़ा है किन्तु विस्तार आदर्शवाद के उन्मुक्त आकाश में है। यही कारण है कि उनका काव्य-साहित्य सर्वजन सुलभ, सर्वमान्य और सर्व हितकारी है। वे उस आदर्श को महत्त्व नहीं देते थे, जो तथ्यहीन, अस्पष्ट और केवल उपदेशात्मक हो। केवल कल्पना पर आधारित आदर्शवाद अंधविश्वास और अकर्मण्यता की सृष्टि करता है। उन्होंने ऐसे आदर्श का निर्माण किया, जो कल्पना पर आधारित होकर भी जीवन के यथार्थ से भिन्न न हो। वे क्षणिक और भौतिक आदर्श के उपासक नहीं थे। 'चंदन की चुटकी भली' पुस्तक की भूमिका में कवि लिखते हैं—"एक समय था, जब साहित्य में अर्थवाद का मूल्य था। आज का पाठक हर साहित्य को यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में पढ़ना चाहता है इसलिए मैंने प्राय: अतिशयोक्तियों से बचने का प्रयास किया है।"[१] आदर्श के साथ यथार्थ की प्रस्तुति के निम्न उदाहरण पठनीय हैं—

- है आदर्श तुम्हारा रखना, सदा सभी से एकता।
  किन्तु कहां पर आज तुम्हारी, चली गयी है नेकता॥ अणु पृ. २९
- मत बनो पद या प्रतिष्ठा, नाम के भूखे कभी।
  पर बनो लाघव से लायक, पद-प्रतिष्ठा के सभी॥ नंदन पृ. ७६

आदर्श चरित्र को प्रस्तुत करने के लिए कवि ने अन्य पात्रों के साथ अन्याय नहीं किया। व्यक्तित्व को प्रधानता देते हुए भी वातावरण को प्रमुखता दी। उन्होंने अणुव्रत के माध्यम से उन्हीं नैतिक-मूल्यों की स्थापना की, जिनका सम्बन्ध आदर्श और यथार्थ दोनों से था। बेबाक, स्पष्ट और निर्भीक अभिव्यक्ति उनके काव्य की मुख्य विशेषता है। कबीर की भांति आचार्य तुलसी ने समाज के हर वर्ग की बुराई पर कड़ा प्रहार करके उन्हें झकझोरा है। मानवता का अध:पतन देखकर उनका संवेदनशील मानस चुप नहीं रह सका।

---

१. आचार्य तुलसी ; चंदन की चुटकी भली, पूर्वरंग, पृ. २।

डॉक्टरों की स्वार्थलिप्सा, अर्थलोलुपता तथा दायित्वहीनता की ओर इंगित करते हुए कवि उनको बदलने का प्रतिबोध देते हुए कहते हैं—

छोटे-छोटे स्वार्थों का, जब तक बलिदान न होगा,
तब तक सेवा का व्रत बेकार डॉक्टरो!
जीवन का लक्ष्य पैसा, सेवा का अर्थ कैसा?
बदले ये अर्थपरक संस्कार डॉक्टरो!
आहें भरता हो निर्धन, खतरे में चाहे जीवन।
उसकी कब सुनते करुण पुकार डॉक्टरो!
कर लो अपनी बीमारी का उपचार डॉक्टरो! अणु पृ. ५०

आचार्य तुलसी का आत्मबल इतना प्रबल था कि सही बात किसी को भी कहने में वे नहीं चूके। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की निम्न उक्ति उनके पूरे गद्य और पद्य साहित्य पर लागू होती है—"साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है, वह तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं पाई जाती। यूरोप में हानिकारिणी धार्मिक रूढ़ियों का उत्पाटन साहित्य ने किया है तो जातीय स्वातन्त्र्य के बीज भी उसी ने बोए हैं।"[१] ईसाइयों की साम्प्रदायिक कट्टरता पर तीखा प्रश्न पूछते हुए कवि कहते हैं—

सदा चर्च में जा, ईशुक्राइस्ट प्रार्थना हो करते,
पर एकांगी कट्टरता, संकीर्ण भावना हो भरते,
बने विलासी 'बाइबिल' की शिक्षा कैसी अपनाते हो? अणु पृ. ४३

दो टूक बात कहने की उनकी विशेषता अनेक स्थलों पर देखी जा सकती है। राजनेताओं को तीखी भाषा में ललकारते हुए कवि का कहना है—

- जोर से मजहबी आग भड़का चले,
  गिरते-पड़ते जनों को दे झटका चले,
  कितने जनता के शोणित से कर धो गए? अणु पृ. ९९
- प्रजातंत्र जनतंत्र वस्तुतः, कब कैसे होगा सही।
  स्वार्थतंत्र ने मूर्तरूप में, सार्वभौम गरिमा गही। अणु पृ. १०१
- कितने बनाते हो कहो, कागज के कायदे?
  हो खुद कहां करते अमल, जो खुद के वायदे? अणु पृ. १०९

१. रामप्रसाद किचलू ; आधुनिक निबंध, पृ. १६२।

काव्य में सहजता और ईमानदारी की शक्ति उसको प्राणवान् बना देती है। कवियों ने काव्य का प्रमुख गुण माना है—निश्छल आत्माभिव्यक्ति, जो सत्य से विहीन न हो। आचार्य तुलसी का काव्य अंत:प्रेरणा का परिणाम है अत: उसमें सहजता का गुण विशेष रूप से प्रकट हो गया है। कवि ने जो कुछ अपने अनुभव से जाना, सत्य का साक्षात्कार किया, उसे बिना किसी लाग-लपेट के सहज-सरल भाषा में प्रस्तुति दे दी। दिनकर के अनुसार कवि यदि निर्भीक नहीं रहा तो कविता पवित्र एवं शक्तिशाली नहीं रहेगी।''[१] आचार्य तुलसी आत्मविश्वास के पर्याय थे। यही जीवटता और दीप्ति उनके काव्य में भी प्रकट हो गयी है। सीधी सरल भाषा में आचार्य तुलसी का आत्मबल निम्न पंक्तियों में पठनीय है—

- साथी अपना अटल आत्मबल, सबल सत्यबल और।
  बाधाओं-विघ्नों से भी हो, कभी न दिल कमजोर॥ अणु पृ. ५३
- होगी विजय सुनिश्चित वीरो!, न्याय नीति ईमान की। भरत पृ. ८३
- ले नए निर्माण का व्रत, आज अभिनंदन करें।
  प्रगति के हर चरण में, क्षण क्षण नया स्पंदन भरें॥ नंदन पृ. १४९
- हो सफल आत्मानुशासन, तिमिर को कर दें उजाला नंदन पृ. ४५
- आध्यात्मिक आयाम खोल, इतिवृत्त नए गढ़ते जाएं। नंदन पृ. २३
- धर्म नाम पर डटे रहेंगे, सत्यशोध में सटे रहेंगे। शासन पृ. ९२

युद्धभूमि में षट्खंड के अधिपति भरत के सम्मुख सैनिक उसके स्वयं के पुत्रों की अकर्मण्यता के बारे में सटीक और निश्छल अभिव्यक्ति देते हैं, यह कवि के निर्भीक व्यक्तित्व को प्रस्तुति देने वाली है—

परिजन-प्रेम सताता इनको, तो क्यों किया युद्ध प्रारम्भ,
अनुकम्पा व्यामोह मोह यह, दुनिया की आंखों में दंभ।
वे तो इतने क्रूर इधर ये, दयावान् बन जाते हैं,
इन्हें पता क्या इससे हम सब, कितनी हानि उठाते हैं॥ भरत पृ. १०१

कवि आत्मार्थी साधक तथा पहुंचे हुए सहजयोगी थे। हर घटना से प्रतिबोध लेकर भविष्य के लिए सजगता का पाठ लेना उनकी नैसर्गिक विशेषता थी। कवि ने अपनी इस आध्यात्मिक वृत्ति को काव्य में भी अनुस्यूत कर दिया है। भरत को जब अपने सत्ता-उन्माद तथा चक्र के अनुचित प्रयोग

१. दिनकर की डायरी, पृ. ७८।

का भान होता है तो वह बाहुबलि के समक्ष अनुताप व्यक्त करते हुए कहता है—

हा धिग् मैं अभिमानी लोभी, की यह व्यर्थ लड़ाई,
तू महान् है उन त्रुटियों पर, क्षमादान कर भाई,
मैंने पहले कुछ भी न विचारी,
खोकर के सुध-बुध सारी,
उमड़ा हा! दुःख का पारावार है॥ भरत पृ. १४५

बेली के अनुसार कवि वही है, जिसने महान् सत्य की अनुभूति कर उसे जनता के समक्ष प्रकट किया हो। आचार्य तुलसी के काव्य में कला और सत्य परस्पर आलिंगन करते दिखाई देते हैं। सत्य के प्रति उनकी वैयक्तिक निष्ठा इन शब्दों में अभिव्यक्त होती है—'मेरा एक-एक रोम सत्य के लिए समर्पित है। सत्य मेरा जीवन है, प्राण है, श्वासोच्छ्वास है। मेरी समूची साधना सत्य के लिए है। मेरा यह अटूट विश्वास है कि सत्य कभी हारता नहीं है। हर प्रतिकूल परिस्थिति में उसका तेज निखरता है।···तेरापंथ संघ या सम्प्रदाय की सीमाएं मेरे सत्य-दर्शन में कहीं बाधक नहीं हैं।' आचार्य तुलसी ने अपने काव्य-साहित्य में चिरन्तन सत्य का वैशिष्ट्य उजागर किया है, जो किसी देश और काल से बाधित नहीं हो सकता। सत्य के बारे में उनका अभिमत है—

- आग्रहहीन गहन चिंतन का, द्वार हमेशा खुला रहे,
  कण-कण में आदर्श तुम्हारा, पय-मिश्री ज्यों घुला रहे,
  स्वर्ण विघर्षण से ज्यों, सत्य निखरता संघर्षों के द्वारा॥ शासन पृ. ४७
- सत्य से विश्वास, व्यक्ति विकास वरता सत्य से,
  सत्य से स्वाधीनता, जीवन सुधरता सत्य से। अणु पृ. ३६

निश्छल और भावपूर्ण अभिव्यक्ति के कारण आचार्य तुलसी की कविता जन-मानस के अन्तरंग का स्पर्श करती है—

- छोटी सी भी बात डाल, देती है बड़ी दरारें।
  गलतफहमियों से खिंच जाती, आंगन में दीवारें॥ अणु पृ. १७
- चुगली जो मानव मुख उगली।
  दुनिया! री सब दुविधा चुग ली॥ सोम पृ. ७९
- लाली लिए खड़ी है, ऊषा तुझे जगाने,

यह रंग है क्षणिक सा, आखिर उठाउ डेरा,
उठ जाग रे मुसाफिर! अब हो चला सवेरा॥ अणु पृ. ६०
विकसित हो कारुण्य चेतना, अपनी सजग सहेली। श्रावक पृ. ११७

- मेरा पयपान किया तुमने, उसको न कहीं लांछित करना।
  देना मत पीछे एक पांव, रण में जय-कमला को वरना॥ भरत पृ. ८२

प्रयोगवाद के बारे में दिनकर का अभिमत था कि यह शुद्ध साहित्यिक आंदोलन है। इसका मुख्य ध्येय है—हमारी कला सम्बन्धी धारणाओं को परिवर्तित करना।''[१] डॉ. नगेन्द्र के अनुसार जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि प्रगतिवाद है।

प्रगतिवाद की आलोचना करने वाले पंडित नंद दुलारे वाजपेयी इसकी महत्ता स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जो साहित्य सामाजिक वास्तविकता से जितना दूर होगा, वह उतना ही काल्पनिक और प्रतिक्रियावादी कहा जाएगा। केवल सामाजिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु साहित्यिक दृष्टि से भी हीन और ह्रासोन्मुख होगा।''[२] साहित्य के इतिहास में वे ही कवि जीवित रहते हैं, जो अपने जीवन और कृतित्व में प्रयोगधर्मी होते हैं।''[३] वस्तुतः महान् कवि परम्परावादी और प्रयोगवादी दोनों होता है। वह अपनी पूर्ववर्ती रचनाकारों को ओझल नहीं करता लेकिन विषय-वस्तु, शिल्प और भाषा में नवीनता अवश्य लाता है क्योंकि नवीनता काव्य को रमणीय बनाती है। आचार्य तुलसी जीवन भर नित नूतन बने रहे इसलिए उनके काव्य में भी नूतनता और नए प्रयोग मिलते हैं।

आचार्य तुलसी के काव्य में धर्म का मौलिक और क्रांतिकारी स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है। वे बाह्य शुद्धि के साथ आंतरिक शुद्धि और पवित्रता पर अधिक बल देते थे। काव्य की निम्न पंक्तियां धर्म के इसी नव्य स्वरूप को उजागर कर रही हैं—

बाह्य-शुद्धि के साथ-साथ, अन्तर-शोधन पर ध्यान।
गया न अब तक इसीलिए हो, यह अभिनव अभियान॥ शासन पृ. ९९

आचार्य तुलसी ने सामाजिक एवं संघीय स्तर पर ही नहीं, काव्य में भी परम्परा और प्रयोग का समन्वय किया। वे कहते थे कि प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों की नींव पर ही नए मूल्य स्थापित किए जाते हैं अतः आवश्यक परिवर्तन नहीं

---

१. दिनकर ; काव्य की भूमिका, पृ. ६४, ६५।
२. आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ; साहित्य विवेचन की भूमिका।
३. डॉ. जयसिंह नीरद ; दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता, पृ. २६६।

होने से रूढ़ता आती है। इस दृष्टि से मैं बदलाव को उचित मानता हूँ पर उसमें औचित्य का अतिक्रमण हो जाए तो खतरे भी कम नहीं हैं।'' आचार्य तुलसी नवीन मूल्यों की स्थापना का औचित्य तभी तक स्वीकार करते थे, जो उपयोगी प्राचीन मूल्यों पर प्रहार न करें और प्राचीन मूल्यों की परम्परा तभी तक निभाना चाहते थे, जब तक वे विकास में बाधक या रूढ़ न बनें इसलिए उनके काव्य में नवीनता और प्राचीनता का समन्वय देखा जा सकता है। इसी विशेषता के कारण सतत गति और प्रवाह उनके जीवन का आदर्श रहा। नवीनता और प्राचीनता के बारे में उनका संतुलित दृष्टिकोण निम्न पंक्तियों में पठनीय है—

सिर्फ पुरानी धारणा, रह जाएगी बन रूढ़।
सिर्फ नयापन आदमी को, कर देगा दिग्मूढ़॥ नंदन पृ. ११४

दिनकर के शब्दों में अधिक से अधिक बलवान् कवि वह है, जिसने अपने जीवन में अधिक से अधिक आघात और संघर्ष सहे हैं। जिस मात्रा तक जीवन ने उसे अपना रूप दिखाया है।''[१] आचार्य तुलसी की कविताओं में जीवन्त प्रवाह का सबसे बड़ा कारण है कि वे जीवन-संघर्ष से न घबराए और न ही पलायन किया। संघर्ष से उन्होंने सदा गति और शक्ति को प्राप्त किया। यही सब कुछ उनके साहित्य में भी प्रतिबिम्बित हो गया। निम्न पंक्तियां उनके इसी फौलादी व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हैं—

- बढ़े चलें हम रुकें न क्षण भी, हो यह दृढ़ संकल्प हमारा। शासन पृ. ४७
- चिंता की चटणी कर चाटी, बणी निराश निराशा।
  आशा दासी चलै इशारै, स्वयं समाहित भाषा॥ चंदन पृ. २४४
- आस्था म्हांरी है अटल, नहीं सांच नै आंच।
  स्वर्ण तजे नहिं स्वर्णता, ज्यों चाहे ल्यो जांच[२]॥

आचार्य तुलसी ने चरित काव्य एवं खण्ड काव्यों में पात्रों के मुख से जीवन-सूत्रों को इस प्रकार उद्गीर्ण करवाया है कि पढते-पढते पाठक को सहज ही नई दृष्टि मिल जाती है—

- बूढ़ापो हिम्मत स्यूं हालै। मगन पृ. ९
- गुरु इंगित पर अर्पित, निशि दिन तन मन है।
  तब ही कृतार्थ सुविनीत, शिष्य जीवन है॥ मगन पृ. २१

---

१. दिनकर ; मिट्टी की ओर, पृ. ४४।
२. आचार्य तुलसी ; मेरा जीवन : मेरा दर्शन, भाग ९, पृ. २७२।

- पढ़णो भणणो गुणणो, संयम जीवन रो श्रृंगार। मां पृ. १७
- जो अणी चूक जाता उसको, पड़ता रह-रहकर पछताना। भरत पृ. ७१
- क्या डर है चलते हुए, न्याय नीति की राह। भरत पृ. ७४

आचार्य तुलसी के काव्य में विषय-वैविध्य का एक बहुत बड़ा कारण है—लोक-दर्शन, प्रकृति-दर्शन एवं उनकी बहुज्ञता। एक लाख किलोमीटर की पदयात्राओं के दौरान उन्होंने जो कुछ अनुभव किया, उसे काव्य के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया इसीलिए उनका चिंतन जीवन की विविध दिशाओं में प्रवाहित हुआ।

उनके काव्य में आदर्श और यथार्थ, सिद्धान्त और व्यवहार, ज्ञान और भक्ति, कोमलता और कठोरता, अध्यात्म और विज्ञान, भाग्य और पुरुषार्थ, इहलोक और परलोक, यथार्थ और कल्पना आदि का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। इसी प्रकार उन्होंने आस्था और तर्क, परम्परा और प्रगति, प्राचीन और अर्वाचीन, सिद्धान्त और प्रयोग में द्वैत न रखकर अद्वैत स्थापित किया इसलिए उनके काव्य में अखण्डता के दर्शन होते हैं।

एक विचारक के अनुसार समय की दुर्दान्त अग्नि श्रेष्ठ काव्य की कसौटी है। जो उसे झेलकर उबर जाए, वह अवश्य ही श्रेष्ठ साहित्य है। हल्की-फुलकी रचना समय की आंधी में उड़ जाती है। टी. एस. इलियट के अनुसार अतीत से प्रेरणा लेकर उसके साथ वर्तमान का सम्बन्ध स्थापित करने वाला काव्य ही शाश्वत मूल्य वाला हो सकता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इतिहास को तीसरी आंख कहा है, जो हमें अतीत का दर्शन कराती है। आचार्य तुलसी ने अतीत के आख्यानों एवं चरितों को नए परिप्रेक्ष्य एवं नए प्रयोग के साथ प्रस्तुत करके जन-मानस को नवीन प्रेरणा देने का प्रयास किया। फिर चाहे वह चंदनबाला की सहिष्णुता और समता का आदर्श हो या शालिभद्र के उत्कृष्ट त्याग का, नागला के साहस एवं सूझबूझ का प्रसंग हो या विजय-विजया के अखण्ड आत्मबल का। बाहुबलि की अड़ोल साधना का प्रसंग हो या सीता के पावन पातिव्रत्य का। पूर्वज आचार्यों के जीवन-चरितों के माध्यम से भी उन्होंने उदार एवं उच्च मूल्यों की स्थापना की है।

किसी भी विषय का वर्णन करने में आचार्य तुलसी उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते थे अतः उसमें स्पंदन करती हुई सजीवता प्रस्फुटित हो जाती थी। सप्तम आचार्य डालगणी की जन्मभूमि उज्जैन का

वर्णन करने में कवि ने वहां की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक सभी विशेषताओं को सहज, सरल भाषा में अभिव्यक्त कर दिया। उदाहरणस्वरूप दो पद्य प्रस्तुत हैं—

कवि कालिदास री कर्मभूमि, आषाढ़भूति री बोधभूमि।
आचार्य सुहस्ति विहारभूमि, इतिहासकार री वाणी है॥
सिपरा रो पाणी बह्यां-करै, बारह पून्यूं री रह्या करै।
न्हायां पावन जन कह्यां करै, आ आंख्यां देखी क्हाणी है॥ डालिम पृ. २९

आचार्य तुलसी के गीत साहित्य को शाश्वत साहित्य की कोटि में रखा जा सकता है। प्रायः सभी गीत जब भी गुनगुनाए जाएं, व्यक्ति के भीतर अभिनव प्रेरणा और स्फूर्ति भरने वाले हैं। आचार्य तुलसी ने अतीत के आख्यानों को भी वार्तमानिक मूल्यों के साथ जोड़ा है इसीलिए उनके काव्य में जहां भारतीय इतिहास की मुस्कान है, वहां वर्तमान का स्पंदन भी है। प्रबंध-पटुता, रचना-चातुर्य, अभिव्यक्ति की प्रसन्नता, भाषा सौष्ठव, रस-परिपाक और अलंकार-योजना इन सब दृष्टियों से उनके काव्य में उत्कृष्टता के दर्शन होते हैं।

दोनों पथ उत्सर्ग और अपवाद सही है,
पर तटस्थ मध्यस्थ सोच की प्रथा रही है।
देखादेखी अनपेक्षित अपवाद जगेगा,
तो रस सूख गया छिलका ही हाथ लगेगा॥

अधिकृत आचार्यों का जो निर्देश नियामक,
वह होगा आपाधापी-आमय का शामक।
नहीं रूढ़ता और मूढ़ता का पखपाती,
तेरापंथ कभी क्यों होगा प्रवाहपाती॥

सम्बोध पृ. १२४

गीतिकाव्य

कवि की वैयक्तिक भावधारा और अनुभूति को उसके अनुरूप लयात्मक अभिव्यक्ति देने के विधान को गीतिकाव्य कहते हैं। गेयप्रधान होने से यह श्रुतिमधुर और रसात्मक रचना है। नाद-सौन्दर्य के कारण इसमें संगीतात्मकता का प्रभाव अधिक रहता है। गीतिकाव्य आत्मनिष्ठ विधा है, इसमें विषय के साथ कवि को एकात्म होना पड़ता है। गीत की आत्मा में कवि की व्यक्तिगत रागात्मक अनुभूति प्रकट होती है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार जब मन में किसी वेगवान् अनुभव का उदय होता है, तब कवि उसे गीतिकाव्य में बांधे बिना नहीं रह सकता। वैसे तो गीतिकाव्य का प्रारम्भ लोकगीतों के रूप में मानव सभ्यता के प्रारंभ में ही हो गया था लेकिन भारत में इसकी स्वतंत्र परम्परा विद्यापति मिश्र से मानी जाती है। हिन्दी में गीति की परम्परा का प्रारम्भ खुसरो से माना जाता है।

'जिस काव्य में एक लय या एक ही भाव के साथ-साथ एक ही निवेदन, एक ही रस एवं एक ही परिपाटी हो, वह गीतिकाव्य है।''[१] प्रो. नवलकिशोर गौड़ के अनुसार गीतिकाव्य साहित्य जगत् का अर्धनारीश्वर है। डॉ. नगेन्द्र का मंतव्य है कि गीत मानव मन के हर्ष-विषाद के सहज वाहक हैं अत: वे गीतिकाव्य को सबसे सरल रूप-वाणी का द्रव मानते हैं।''[२] महादेवी वर्मा के अनुसार सुख-दु:ख की भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने-चुने शब्दों द्वारा स्वर-साधना कर उपयुक्त चित्रण कर देना गीति है।''[३] पाश्चात्य विद्वान् अर्नेस्ट रिस के अनुसार गीतिकाव्य एक ऐसी संगीतमय अभिव्यक्ति है, जिसके शब्दों पर भावों का पूर्ण अधिकार होता है किन्तु उसकी प्रभावशाली लय में सर्वत्र उन्मुक्तता रहती है।''[४]

आचार्य तुलसी राजस्थानी और हिन्दी भाषा के महान् गीतकार थे। उन्होंने न तो किसी प्रलोभन के वशीभूत होकर गीत लिखे और न ही किसी सत्ता के भय से गीतों की रचना की। उन्होंने अपनी मस्ती में अनुभवों को कलम की

---

१. डॉ. दशरथ ओझा: हिन्दी नाटक ; उद्‌भव और विकास, पृ. २४४।

२. डॉ. नगेन्द्र ; आस्था के चरण, पृ. ५८१।

३. महादेवी वर्मा ; साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध, पृ. १२०।

४. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ; निराला का काव्य, पृ. ४४।

नोक से कागज पर उतार कर भावपूर्ण गीतों की रचना की इसलिए उनका गीत साहित्य आनंदमय चेतना का संवाहक बन गया। आचार्य तुलसी ने विभिन्न प्रसंगों में विभिन्न विषयों पर सैकड़ों गीतों की रचना की है। उन्होंने कभी आराध्य की स्मृति में भक्ति के अनूठे गीत लिखे तो कभी मुक्ति के सुमधुर गीत गाए। कभी गीतों में अध्यात्म की लौ जगाई तो कभी समाज की चेतना को झकझोर कर रख दिया। कहीं संसार की अनित्यता का वैराग्यपूर्ण वर्णन किया तो कहीं मानव जीवन की दुर्लभता का चित्रण किया। इन गीतों में कहीं व्यंग्य है तो कहीं उपदेश। उनके व्यंग्य हृदय को वेधकर परिवर्तन की प्रेरणा देते हैं। प्रत्येक गीत में जीवन की सच्चाइयां निहित हैं। प्रत्येक गीत भावपरिष्कार एवं हृदय-परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। तनाव और प्रपंचों का बोझ उनके गीत की एक पंक्ति मात्र से हल्का हो जाता है। पाठक और श्रोता को उनके गीतिकाव्य में अपने हृदय की धड़कन तथा जागरण का शंखनाद सुनाई देता है।

आचार्य तुलसी के गीतों का वैशिष्ट्य है कि उनमें भावना, अनुभूति, सौन्दर्य, संगीत, लय और तुक के संतुलित समन्वय की सहज अभिव्यक्ति है, जो पाठक और श्रोता के मन में एक विचित्र आनंद और प्रभाव की सृष्टि करते हैं। उनका प्रत्येक गीत शब्द-चातुर्य और विशिष्ट अर्थ-गौरव से संवलित है। दीर्घ प्रशासनिक अनुभव, गहरा आत्मचिन्तन और प्रौढ़ तत्त्व चिन्तन ने उनके गीति काव्य को विशेष कोटि का बना दिया। उनका प्रखर और दबंग व्यक्तित्व गीतिकाव्य के कण-कण में प्रतिगुंजित है। आचार्य तुलसी के गीत त्याग, प्रेम, संयम, भक्ति तथा नैतिक मूल्यों पर जोर देते हैं। समाज के श्रेष्ठ आदर्शों की व्याख्या उनके गीतिकाव्य में यत्र-तत्र मिलती है। उनका प्रत्येक गीत इतना पारदर्शी है कि उसमें समाज का हर वर्ग अपनी कमजोरियों को देख सकता है और परिमार्जन हेतु कृत संकल्प भी हो सकता है। राजनेता वर्ग को प्रतिबोध देने वाली गीत की निम्न पंक्तियां अत्यन्त प्रेरक हैं—

दलबदली के दल-दल में फंस, करो न खींचातान।
छिद्रान्वेषण एक दूसरे का करता नुकसान॥ अणु पृ. ४६

वे समाज को एक नए ढांचे में ढ़ालकर देश में पुन: रामराज्य की स्थापना करना चाहते थे इसलिए उनके गीतिकाव्य में एक अभिनव क्रान्तिधर्मिता का आभास मिलता है। उनके गीतों में वैषयिक बिखराव का अभाव है। एक गीत में प्राय: उन्होंने एक विषय का ही वर्णन किया है।

लोकगीत

जो रचना जन-साधारण को आंदोलित और प्रभावित करती है, वह लोकगीत या लोक-साहित्य के अन्तर्गत आती है। अंग्रेजी भाषा में इसे लिरिक कहा जाता है। गीतिकाव्य का प्रारंभ सर्वप्रथम लोकगीतों के रूप में हुआ। लोकगीतों की आत्मा लोक-संगीत है। कवि जब जनता के निकट जाना चाहता है अथवा उसे कोई उपदेश देना चाहता है तो वह अपने साहित्य में लोकतत्त्वों की संयोजना कर देता है, जिससे वे जन-जन के मुख पर मुखरित हो सकें। लोकगीत में मानव-जीवन स्पष्ट रूप से अभिव्यंजित होता है। डॉ. सूर्यकरण पारीक के अनुसार लोकगीतों का एक-एक शब्द सार्थक होता है। उनके प्रत्येक शब्द में जीवन की यथार्थ चेतना घुली-मिली रहती है। लोकगीतों में सभ्य जीवन के कृत्रिम आडंबर, अलंकार की अस्वाभाविक चमत्कृति और प्रपंचमय जीवन की कपटपूर्ण प्रवंचना का बहुत कम आभास मिलता है।''[१]

आचार्य तुलसी ने सलक्ष्य लोकगीतों की रचना नहीं की लेकिन लोक धुन में रचित होने से अनेक गीत स्वत: लोकगीतों के रूप में प्रसिद्ध हो गए। उनके द्वारा रचित लोकगीतों का वैशिष्ट्य इस बात से जाना जा सकता है कि हजारों कंठों में उन गीतों का स्वर-संचार हो गया। 'सोमरस', 'सुधारस', 'शासन-संगीत', 'नंदन-निकुंज' और 'अणुव्रत गीत' आदि कृतियों में विविध विषयक गीतों का संकलन है। आचार्य तुलसी के गीतों में अनेक रसों की धारा बह रही है पर उनमें विशेष रूप से शान्त रस की प्रधानता है। लोकगीतों में कवि ने संवाद शैली को अधिक प्रमुखता दी है। लोकभाषा में लिखे गए लोक-गीत की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं, जिनमें एक कुम्हार अपनी कुम्हारिन को सम्बोधित करते हुए कहता है—

क्यूं बण बातेरण, वैरण तूं बात करै बेकाम री।
जा गधिया घेरण, क्यूं ले शिर आफत सारै गांम री॥ चंदन पृ. ९१

कुम्हार को प्रत्युत्तर देते हुए कुम्हारिन कहती है—

नाम ठाम मैं क्यूं पूछै ही, बिन ही बात लताड़ी,
बातेरण वेरण घेरण री, दस पदव्यां दे डारी।

---

१. ढोला मारु रा दोहा, भूमिका, पृ. २०।

थंारै घर में कदे न देखी, मैं तो इज्जत म्हांरी,
सीधी सादी बात पूछतां, आंख चढ़ी इकतारी॥ चंदन पृ. ९२

लोकगीतों में कवि ने लोकसंस्कृति का भी बखूबी समावेश किया है। एक ग्रामीण महिला के द्वारा भारतीय संस्कृति के आतिथ्य-सत्कार का भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत है—

साचो देखण नै मिलै है, आपसरी रो मेल,
रस पी ज्यावो जावतां यूं, कर कर हेलाहेल,
बुलावै गेला बगता नै, पिलावै भर प्याला बांनै॥ चंदन पृ. २८०

प्राचीन काल में माताएं किस प्रकार बालकों में संस्कारों का वपन करती थीं, इसका एक प्रेरक और मनोहारी बिम्ब पठनीय है—

मां थावच्चा थिरचा स्यूं, लालन नै घणो लड़ावै,
बात-बात में संस्कारी जीवन रो, पाठ पढ़ावै,
तब ही जणणी गुरुणी प्रभु स्वयं पुकारी॥ मैं तिरूं पृ. ८

गीतिकाव्य के तत्त्व

समालोचकों ने गीतिकाव्य के निम्न तत्त्व निर्धारित किए हैं—1. वैयक्तिकता या आत्मानुभूति, 2. भावाभिव्यञ्जना, 3. संगीतात्मकता, 4. संक्षिप्तता, 5. भाषा शैली की कोमलता एवं मधुरता। कुछ विद्वान् अनुभूति की तीव्रता और प्रभान्विति को भी गीतिकाव्य का प्रमुख तत्त्व मानते हैं।

आत्माभिव्यक्ति

हड्सन गीतिकाव्य को वैयक्तिक या आत्माभिव्यक्ति वाली कविता मानते हैं अत: आत्माभिव्यक्ति की तीव्र आकांक्षा से गीत का जन्म होता है। बिना संवेदना और अनुभूति के गीत जीवन्त और गतिमय नहीं बन सकते। निर्विकार अनुभूति का आवेग गीतिकाव्य का प्राणतत्त्व है क्योंकि इसमें कवि की व्यक्तिगत आत्मा के ही किसी भाव विशेष का प्रतिबिम्ब होता है। तीव्र आत्माभिव्यक्ति पाठक को भावना के शिखर पर लाकर छोड़ देती है। गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार गीतिकाव्य एक ऐसी लघु आकार एवं मुक्तक शैली में रचित रचना है, जिसमें कवि निजी अनुभूतियों की किसी एक भाव दशा का प्रकाशन संगीत या लयपूर्ण कोमल पदावली में करता है।

आचार्य तुलसी ने अपनी अंतरात्मा में प्रवेश करके गीतों की रचना की। वे चाहते थे कि ऐसे गीतों की रचना हो, जिससे जनता में शक्ति, भक्ति, साहस और नए बल का संचार हो। उनके काव्य में जो अनुभूतियां अभिव्यक्त हुई हैं, वे सार्वकालिक एवं सार्वजनीन हैं। उनके गीतों में मनोवेगों की तीव्रता, संवेदना की हार्दिकता और भावों की समरसता पदे-पदे दर्शनीय है। सोमरस के प्रायः गीत अन्तर्मुखता के क्षणों में उद्गीर्ण हुए हैं। उनकी भाषा और शिल्प में जीवन की सहजता प्रतिबिम्बित है। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि की निजी भावनाओं का प्रकाश है। ये पंक्तियां किसी भी क्रोधी व्यक्ति को अन्तर्दृष्टि देने में पर्याप्त हैं—

हो क्रोधित कोई गाली दै, तो तू मन नै समझा।
इण रै कनै देण नै आ ही, मत तूं राड़ बधा॥ सुधा पृ. ४२

वैयक्तिक अनुभूति की संवेदनशील और करुणायुक्त अभिव्यक्ति—

हा! दुनिया डूबी जावै रे, म्हांनै करुणा आवै रे।
दिल देख द्रवित हो ज्यावै रे, म्हांनै करुणा आवै रे॥ सुधा पृ. ४६

आचार्य तुलसी ने शुद्ध कलात्मक शैली में आंतरिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का उद्घाटन किया है। निरन्तर साथ रहने वाला मन भी कष्ट पहुंचाए तो क्या किया जाए? मन को सम्बोधित करके कही गयी आत्माभिव्यक्ति कितनी मार्मिक बन पड़ी है—

रे मनवा! किण विध कर समझाऊं?
क्यूं कर तुझ पर काबू पाऊं, छिन-छिन ध्यान लगाऊं॥
घर को दुश्मन है घर फाड़ू, क्यूं कर अपणी जांघ उघाडूं?
आ उलझन सुलझाऊं, कुण सो पथ अपणाऊं? सोम पृ. ३३

कषाय द्वारा मलिन आत्मा का रहस्यवादी शैली में वर्णन सबकी चेतना को झंकृत करने वाला है—

म्हांरो हीरा जड़ियो आंगणियो, कुण मैलो करग्यो रे।
करग्यो करग्यो करग्यो रे, कचरै स्यूं भरग्यो रे॥ सुधा पृ. २५

सीधी-सरल भाषा में दुनिया को सम्बोधित करते हुए कवि अपनी अनुभूति व्यक्त कर रहे हैं—

सुनो सुनो हे दुनिया वालो!, यह अनुभव की वाणी है।

व्रत-संयम के बिना बीतती, जाती व्यर्थ जवानी है॥ अणु पृ. २१

कवि अपनी अनुभूति के आधार पर कहते हैं कि यद्यपि जीवन जटिल पहेली है लेकिन यदि जीवन-शैली बदल दी जाए तो इसे सुलझाया जा सकता है—

जीवन जटिल पहेली,
है अजब-गजब अलबेली,
सहज सुलझ जावे यदि मानव, बदले अपणी शैली॥ सोम पृ. १००

अहिंसा के बारे में कवि अपनी अनुभूति आत्मविश्वास के साथ प्रकट करते हैं—

विश्वास हृदय का बोल रहा, यदि मानव सुख का प्यासा,
तो उसे समझनी होगी शाश्वत, शान्ति-सूत्र की भाषा,
'तुलसी' इस अनुभव वाणी का, बने विश्व उद्गाता॥ अणु पृ. ११६

पात्र विशेष के मुख से की गयी आत्माभिव्यक्ति भी कवि के काव्य कौशल को प्रकट करती है। बाहुबलि की आत्माभिव्यक्ति में उनका आत्मविश्वास बोल रहा है—

- अविनय में अब तक गयो नहीं, मर्यादा बाहिर बह्यो नहीं।
  हां, स्वाभिमान पर चोट लगा, क्षण हीन-दीन बण रह्यो नहीं॥

चंदन पृ. १३

भावाभिव्यञ्जना

भावाभिव्यञ्जना गीत का प्रमुख वैशिष्ट्य है। विशिष्ट भाव की प्रस्तुति के बिना गीत केवल शब्द-संकलना मात्र रह जाता है। राष्ट्रकवि दिनकर कहते हैं कि साहित्य की सारी पूंजी भावों को लेकर है। यदि भावुकता का सरोवर सूख गया तो कवि और पाठक दोनों के लिए काव्य बेकार है।''[1] भावों की सही-सही प्रस्तुति और उसका चित्र उपस्थित करना कवि कर्म का कौशल है। आचार्य तुलसी ने कठोर और कोमल हर भाव की प्रस्तुति में शब्दों का सटीक चयन किया है। भरत द्वारा चक्र चलाने पर बाहुबलि का आवेश

१. दिनकर, चक्रवाल, भूमिका, पृ. १४।

इन शब्दों में गरज उठता है—

- नीतिभ्रष्ट! अरे न अब भी, शर्म स्यूं आंख्यां झुकी।
  हाय! छी! छी! हाय रे, अन्याय री इति हो चुकी॥ चंदन पृ. १७

बाहुबलि के विरक्त होने पर भरत भावपूर्ण शब्दों में संन्यास न ग्रहण करने का अनुरोध कर रहे हैं—

मान-मान म्हांरी मनुहारां, अब नहिं होसी भूल दुबारा।
बोल-बोल रे भाई! थारा, सारा (कोल) निभाऊं मैं।
आण दिलाऊं, शपथ कढ़ाऊं, भ्रातृ-प्रेम अतिमात्र बढ़ाऊं।
म्हांरो सारो गुनह खमाऊं, कुल-कालिख धो पाऊं मैं।

चंदन पृ. २२

आचार्य तुलसी ने आंतरिक भावों की मार्मिकता और जीवन की गंभीर अनुभूतियों को बहुत सुंदर ढंग से व्यक्त किया है। मानव मन की शाश्वत वृत्तियों की सरस और मार्मिक प्रस्तुति देते हुए कवि औपदेशिक भाषा में अपना अनुभव बताते हैं—

- जो कोई चावै तो उण नै, हित उपदेश सुणा।
  नहिं तो मौन राख तूं भाई!, मत नां जीभ चला॥ सुधा पृ. ४८
- धन स्यूं कोई नहीं धापै,
  जो मिल ज्यावै मेरू मापै॥ सोम पृ. ७३
- तन री तृष्णा तनिक कहावै।
  मन री तृष्णा मिणी न ज्यावै॥ सोम पृ. ७३

कवि ने षष्ठ आचार्य माणकगणी के स्वर्गवास होने पर तेरापंथी साधुओं के प्रति लोगों में होने वाली हलचल का सटीक चित्र प्रस्तुत किया है, उसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

खींचाताणी भीतर बारै,
लड़सी निज-निज हक रै लारै।
मोड़ा मंडसी ऊठसवारै,
नहिं कोइ हटकणहारो आंरै॥ कालू भा. १ पृ. ७८

सीता के प्रति जनापवाद सुनकर राम की मन:स्थिति का भावपूर्ण चित्र कवि ने खींचा है—

किन्तु राघव का हृदय, आंदोलनों से था भरा,
घूमता आकाश ऊपर, घूमती नीचे धरा।
तल्प कोमल, निशित सायक, तुल्य दुःखद लग रही,
स्वयं उनको हा! स्वयं की, भावनाएं ठग रहीं॥ परीक्षा पृ. ४१

बाहुबलि भरत को स्पष्ट शब्दों में सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

तेरे शोषण अन्यायों के, कितने दूं मैं तुझे प्रमाण,
अपनी काली करतूतों को, देख जरा तू देकर ध्यान।
द्वन्द्व-युद्ध ही बतलाएगा, किसकी विजय-हार होगी?
किसने सुयश-ध्वजा फहराई? किसने सुविधाएं भोगीं? भरत पृ. ११९

अपने पुत्र को राज्य न देकर उदाई राजर्षि अपने भानजे केशी का राज्याभिषेक करके दीक्षित हो गए। यद्यपि उन्होंने पुत्र का हित सोचकर यह कार्य किया था लेकिन अपने पुत्र अभीचि के समक्ष स्थिति स्पष्ट न करने के कारण राज्य न मिलने से वह अत्यन्त दुःखी और विषण्ण हो गया। गीत में अनेक रूपकों के माध्यम से कवि ने उसके हृदय की अन्तर्वेदना का सजीव और मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है—

आंधी अम्बुधि में उठी, सरवर लागी लांप।
रक्षक भक्षकता वरी, म्हांरो वैरी बणग्यो बाप॥
रात बीत रवि ऊगसी, खिलसी पंकज निष्पाप।
बिच में हथणी हड़पियो, म्हांरो वैरी बणग्यो बाप॥
अभिनव निर्मित भवन में, पास्यूं सुख अणमाप।
बीच हथोड़े हड़पियो, म्हांरो वैरी बणग्यो बाप।
हियड़े दुख होल्यां उठै, वदन उबलती बाफ।
ईं मलयज स्यूं नां मिटै, म्हांरो अन्तर ताप। चंदन पृ. ७९

युवाचार्य बनने के बाद कवि ने अपनी मानसिक दुविधा को राजस्थानी भाषा में क्रिया विचलन के साथ बहुत सटीक अभिव्यक्ति दी है—

आचार्यप्रवर रै साथै किणविध वर्त्तूं
किणविध च्यारूं तीरथ रै साथ प्रवर्त्तूं
यदि अनुचित रीते एक हि चरण बढ़ाऊं,
अनभिज्ञ कहाऊं, हास्यास्पद बण ज्याऊं॥

कालू, भा. २, पृ. २०५

संगीतात्मकता

गीत में शब्द और स्वर समन्वित रूप से रस की सृष्टि करते हैं। गीतिकाव्य में संगीत अनिवार्य तत्त्व है पर शास्त्रीय संगीत का होना अनिवार्य नहीं है। शब्दों के स्वाभाविक स्फुरण से नाद-सौन्दर्य होना आवश्यक है। भावोचित वर्णविन्यास एवं अनुप्रासयुक्त शब्द-योजना से आचार्य तुलसी के गीतों में श्रुतिमधुर संगीत उत्पन्न हो गया है और लयात्मक संगीत के कारण उनके गीतों में सरसता आ गयी है।

टेकपद लोकगीतों का महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है। इससे गीतों की गूंज देर तक मन को प्रभावित करती है। टेकपदों की पुनरावृत्ति से उनके गीतों में संगीतात्मकता बढ़ गई है। निम्न पंक्तियों में लय और गति का चमत्कार द्रष्टव्य है—

- रणभेरी गूंज उठी नभ में, भुजदण्ड सभी के फड़क उठे।
  वे कड़क उठे हैं लड़ने को, कमजोर कलेजे धड़क उठे॥ भरत पृ. ७९
- संयम-रंगे रंगिणि चंगिणि, सज्ज मतंगिणि चाल ।
  शील सुरंगिणि उज्ज्वल अंगिणि, लंघिणि जग जंजाल॥
  कालू, भा. २, पृ. ७७
- हृदय-कमल की कोमल कलियां,
  खिलगी मिलगी जीव जड़ी। माणक पृ. ९४
- तरुणाई की अरुणाई में, कर्त्तव्य स्वयं का मत भूलो।
  आवेश हटा विद्वेष मिटा, माता के मन का क्लेश हरो॥ परीक्षा पृ. १२७

संक्षिप्तता

आकार की संक्षिप्तता गीत के शिल्पविधान का प्रमुख गुण है क्योंकि विस्तार से गीत के मूल भाव का प्रभाव कम हो जाता है। आचार्य तुलसी के लगभग गीत आकार में संक्षिप्त हैं लेकिन आचार्यकाल के प्रारम्भिक समय में लिखे गए कुछ गीत आकार में बृहद् भी हैं। 'तेरापंथ प्रबोध' रचना को उन्होंने गीत शैली में लिखा है लेकिन इसके विस्तार और विषयवस्तु को देखते हुए उसे लघु चरितकाव्य कहना ही अधिक उचित होगा। कही-कहीं गीतों में भी

उन्होंने अत्यन्त संक्षेप में गागर में सागर भरने का प्रयत्न किया है। अपने मन को सम्बोधित करते हुए कवि कहते हैं कि शत्रु और मित्र पर समान भाव रखना ही जीवन का आदर्श है—

संकट सुख देणै वाला स्यूं, मिटा रोष ममता ।
सज्जन-दुर्जन, शत्रु-मित्र पर, राख सदा समता॥ सुधा पृ. ४२

गीत में संक्षिप्तता के कुछ अन्य उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- शासन शोषण परिजन परजन, दारा दुःख री कारा।
  भांडागार भार सो जाणी, बदली जीवन-धारा॥ चंदन पृ. ७५
- गुण-गंभीर, धीर धरणी पर, निर्मल गंग-समीर।
  भञ्जन भीर, वीर सम करणी, तरणी तारण तीर॥
  अमरित-झरणी, शिव-निस्सरणी, करणी कुशल-क्षेम।
  वाणी भ्रमहरणी तस महिमा, वरणी जावै केम॥ शासन पृ. ७३

गीतों की शैली

आचार्य तुलसी ने कुछ गीत सम्बोधन शैली में लिखे हैं। इसमें कवि ने वस्तु, व्यक्ति, विचार, दृश्य या युग को सम्बोधित कर अपने विचार व्यक्त किए हैं। नामदेव की माता उनको सम्बोधित करती हुई प्रश्न पूछती है—

नामू! क्यूं धोती खून स्यूं रंगी? सुधा पृ. ९४

मां ने नामदेव के द्वारा पेड़ की छाल मंगवाई। नामदेव ने कुल्हाड़ी से अपने पैर की चमड़ी उतार कर माता को सम्बोधित करके उत्तर दिया—

मनै पड़ै प्रतिकूल काम बो, ओरां नै पिण पड़सी,
क्यूं फिर पाप कमाऊं फोकट, करसी सो ही भरसी,
माता! यूं धोती खून स्यूं रंगी॥ सुधा पृ. ९४

सम्बोधन शैली का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

हे भगवान्! इस्या पाप्यां स्यूं, क्यूं ना धूजी धरती। चंदन पृ.९४

संत को कष्ट देने वाले व्यक्ति की भर्त्सना करते हुए कवि सम्बोधन शैली में कहते हैं—

अरे दुष्ट ! पापिष्ठ! भूल मत, ओ प्रबोध भगवन्त रो॥ चंदन पृ. ९७

सीता के परित्याग का निर्णय लेते हुए राम एक साथ कइयों को सम्बोधित

करते हुए कहते हैं—

सौमित्रे! सुग्रीव! विभीषण!, सुन लेना हनुमान!।
सीता को मैं छोड़ रहा हूं, रखने कुल-सम्मान॥ परीक्षा पृ. ४४

राष्ट्र-नेताओं को सम्बोधित करते हुए उनकी वाणी कितनी वेधक बन पड़ी है—

- आजादी के रखवाले! तुच्छ स्वार्थ तजो।
  अपनी 'मैं' में मतवाले! तुच्छ स्वार्थ तजो।
  शिक्षित कहलाने वाले! तुच्छ स्वार्थ तजो॥ अणु पृ. १०४
- देख दशा औरों की अपना, कुछ तो करो विकास।
  अरे शासको! अब भी जागो, जगा रहा इतिहास॥ अणु पृ. ४६

सीता के लिए प्रयुक्त सम्बोधनों में विशेषण-चयन का सौन्दर्य द्रष्टव्य है—

कुल कमले! कमनीयकले! अमले! अचले! सन्नारी।
सहज सुव्रते! सौम्य सुशीले! अननुमेय अविकारी॥ परीक्षा पृ. १५१

आचार्य तुलसी के प्रतिबोध की प्रक्रिया मुख्यत: उपदेशात्मक थी अत: उनके प्राय: गीत उपदेशप्रधान शैली में लिख गए हैं। उपदेश के द्वारा उन्होंने युग और समाज को जागरण के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरक शक्ति दी। अणुव्रत गीत के प्राय: सभी गीतों में उपदेश प्रधान शैली द्वारा विभिन्न वर्गों पर अंगुलिनिर्देश किया गया है। प्रतीक के माध्यम से उपदेश देते हुए कवि का शब्द-सौन्दर्य द्रष्टव्य है—

- मंजिल दूर न साथी कोई, मत कर देना स्खलना।
  कष्टों की आगी में बनकर, मोम न कभी पिघलना।
  हो प्रमत्त चलते चिकनी, मिट्टी में नहीं फिसलना।
  मत ना कहीं ढलाई में तू, जल बन नीचे ढलना॥ अणु पृ. ६१

कवि ने गीतों में मानव मन में उठने वाले परस्पर विरोधी भावों का अन्तर्द्वन्द्व और उद्वेलन साकार रूप में प्रकट कर दिया है। एक ओर चक्र आयुध शाला में प्रवेश नहीं करता, दूसरी ओर छोटा भाई अधीनता स्वीकार नहीं करता। उस समय भरत चक्रवर्ती के मन के अन्तर्द्वन्द्व की प्रस्तुति कितनी

सटीक बन पड़ी है—

- एक ओर आयुधशाला में, चक्र नहीं ओ जावै,
  एक ओर छुट भाई रो, अविनय दिलड़ो दहलावै,
  करणो अब किस्यो उपाय जी,
  बेचैनी बढ़ती जाय जी,
  बचपन स्यूं बो बड़ो हठीलो, करसी मन री चाही हो॥ चंदन पृ. ११

गीतिकाव्य के विषय

मानव हृदय के जितने भाव हैं, उतने ही गीतिकाव्य के विषय हो सकते हैं। विषय की दृष्टि से आचार्य तुलसी द्वारा लिखित गीतों को निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है—

- वैराग्य वर्धक आध्यात्मिक गीत।
- भक्तिपरक गीत।
- विचार प्रधान गीत।
- उद्‍बोधन गीत।
- युगधर्म गीत।
- जीवन-मीमांसा सम्बन्धित गीत।
- संसार के यथार्थ स्वरूप का चित्रण करने वाले गीत।
- व्यक्तिपरक गीत।
- मूल्यपरक गीत।
- अणुव्रत गीत

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी का हर गीत मिश्री की

अगर न्याय है पक्ष हमारा, तो फिर हम क्यों घबराएं?
है विश्वास स्वयं के बल पर, तो फिर क्यों हम भय खाएं?
खुला मार्ग है सच्चिंतन का, कुछ सीखें कुछ सिखलाएं,
'तुलसी' देख किसी को हम क्यों, झुक जाएं, क्यों रुक जाएं?

वह डली है, जिसे कहीं से भी चूसा जाए, मिठास में कोई अंतर नहीं आता। उनके गीतों में ऐसा संवेदनशील संगीत प्रस्फुटित हुआ है, जिसमें सम्पूर्ण मानव जाति को रूपान्तरण की प्रेरणा देने की क्षमता है। हृदयाकर्षक रसात्मकता, लयात्मक संगीत, अनुभूतियों की कसावट, अभिव्यक्ति का प्रवाह, भाषा की सरलता, मार्मिकता, सहृदयता और अतुल गंभीरता आदि गुण उन्हें श्रेष्ठ गीतकार सिद्ध करते हैं। उनके गीतों में अभिव्यक्ति की सशक्तता के साथ-साथ लोकरुचि और जीवन-मूल्यों का समावेश मणिकाञ्चन का योग है।

आशुकवित्व

आशुकवित्व विशिष्ट मेधा की फलश्रुति है। हर एक व्यक्ति आशुकवित्व नहीं कर सकता। आशुकवित्व तभी संभव है, जब व्यक्ति का सम्बन्धित भाषा पर पूर्ण अधिकार हो, कल्पना शक्ति का प्रकर्ष हो, मानसिक एकाग्रता हो तथा विषयानुसार शब्द-योजना का चातुर्य हो। आचार्य तुलसी बचपन से ही आशुकविता करने लगे थे। उनके आशुकवित्व में विषयानुरूप भाषा का चयन हुआ है। साथ ही सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि आशुकवित्व में कहीं भी छंदोभंग नहीं है।

आचार्य तुलसी की संवेदनशीलता ने जड़ और चेतन दोनों को प्रभावित किया। यही कारण है कि प्रकृति के अंचल में घटित होने वाली हर घटना उनके कवित्व को झंकृत कर देती थी और उनके भीतर काव्य का स्रोत बहने लगता था। हर प्रेरक प्रसंग को अपनी प्रत्युत्पन्न मेधा से वे तत्काल काव्य में बांध देते थे। उनके आशुकवित्व में अनुभूति की तीव्रता और भावों की सजीवता का सुंदर समावेश हुआ है। स्पष्टता, स्वाभाविकता और माधुर्य गुण के समावेश से उनकी आशुकविताएं सार्वजनिक बन गयी हैं। उनका आशुकवित्व हजारों पद्यों, सोरठों, दोहों, गीतकों एवं छप्पयों में अभिव्यक्त हुआ है।

आचार्य तुलसी के विलक्षण प्रतिभा-वैशिष्ट्य को इस बात से जाना जा सकता है कि वि.सं.२००० में उन्होंने ऐतिहासिक कथानकों को काव्यमय

प्रस्तुति देनी शुरू की। दिन में वे बिना लिपिबद्ध किए मस्तिष्क में काव्य-रचना करते और रात को उसका अविच्छिन्न संगान करते फिर दूसरे दिन उसे कागज पर लिपिबद्ध करते। यह भी आशुकवित्व का एक नया रूप था।

अनेक बार स्वयं को प्रतिबोधित करते हुए भी उनका कवित्व मुखर हो उठता था। आचार्य तुलसी मेवाड़ में कमेडी से सेलागुड़ी की ओर प्रस्थान कर रहे थे। रास्ते में पहाड़ी रास्ते पर एक बड़ी चट्टान आई। दूसरा रास्ता सीधा और सड़क का था पर घुमावदार था। लोगों ने बाल संतों से कहा—''आप तो बच्चे हैं अत: इस चट्टान पर चढ़ जाइए।'' मुनि आचार्यवर के इंगित को देखने लगे। तभी गुरुदेव ने चट्टान की ऊंचाई को अपने सधे कदमों से माप लिया। दो क्षण वे उस शिलापट्ट पर विराजे और तत्काल सहज, सरल भाषा में एक सोरठा उनके श्रीमुख से निकल पड़ा—

चढ़ बैठ्या चट्टान, छोड़ सरल पथ सड़क रो।
म्हैं हा अजब जवान, वय उणसत्तर वरस में॥

आत्माभिव्यक्ति की इतनी सहज अभिव्यञ्जना एक महान संत ही कर सकता है। इस पद्य में आत्मपौरुष और उत्साह की जो लौ प्रज्वलित हो रही है, उसके आगे सैकड़ों दीपकों का प्रकाश भी मंद है।

आशुकवित्व में कहीं कहीं कवि ने अपनी अनुभूति प्रकट करके भविष्य के लिए प्रतिबोध भी दे दिया है—

सणंतरे से बायतू, मंजिल कड़ी कमाल।
संतां ! मत गिणज्यो सहल, रहज्यो रात बिचाल॥

बडगांव (मध्यप्रदेश) में आचार्य तुलसी माणकचंदजी के यहां गोचरी पधारे। वहां देहली की ऊंचाई का ध्यान न रहने से अंगूठे और अंगुलि में चोट लग गयी। पूज्य गुरुदेव लड़खड़ा कर भी संभल गए। तत्रस्थ लोगों को बहुत दु:ख और अनुताप हुआ। वे आपस में कहने लगे—''यदि आचार्य प्रवर को यहां नहीं लाते तो यह चोट नहीं लगती।'' आचार्यश्री ने तत्क्षण मुस्कराते हुए कहा—'यह गलती मेरी थी क्योंकि ईर्यासमिति का ध्यान नहीं रखा।' घटनास्थल पर तत्काल सुबोध और सुगम भाषा में उनका कवि मानस एक दोहा बोल उठा—

स्खलना ईर्या री क्षणिक, माणक घर बडगांम।
सहज दंड भुगत्यो स्वयं, तत्क्षण तुलसीराम॥

इस एक पद्य के चार चरणों में चार बात कहना कवि के उक्ति-वैचित्र्य

का चमत्कार है। प्रथम चरण में स्खलना का निर्देश, दूसरे में व्यक्ति एवं गांव का संकेत तीसरे में दंडविधान तथा चौथे चरण में स्वयं के नाम की प्रस्तुति है। आशुकवित्व में यह संक्षेपीकरण विशिष्ट प्रतिभा का द्योतक है।

अर्थगाम्भीर्य पूर्ण शब्दों में किसी भी घटना विशेष को अलंकृत कर देना आशुकवित्व की अलौकिक शक्ति को प्रकट करता है। आचार्य तुलसी इतिहास-सुरक्षा को बहुत महत्त्व देते थे इसलिए अनेक बार विशेष घटनाओं को पद्यबद्ध कर देते थे। उनकी काव्य-सर्जना में सामान्य घटना भी विशेष बन जाती थी। पदयात्रा के दौरान राजस्थान का छोटा सा गांव पूरबसर आया। शाम का समय था। निर्दिष्ट स्थान बहुत गर्म था अत: भाईजी महाराज दूसरा स्थान देखने गए। जाटनी ने सोचा कि इतने लोगों को देखकर मेरी भैंस चमक जाएगी अत: उसने स्थान देने से इंकार कर दिया। दूसरे स्थान पर गाय बीमार थी। तीसरे स्थान पर भी मकान-मालिक की अनुमति नहीं मिल सकी। चौथा स्थान इतना छोटा था कि साधु बैठे-बैठे भी नहीं समा सकते थे। बहुत समझाने पर आखिर प्रथम स्थान वाली महिला ने स्थान की अनुमति दी। प्रात: प्रस्थान के समय गुरुदेव ने कहा—''ऐसे प्रसंग कम बनते हैं, जब स्थान इतनी कठिनाई से मिले पर आज बहुत आनंद आया। साधुता का यही अर्थ है कि अनुकूलता और प्रतिकूलता में समता रहे।'' उसी क्षण घटना को ऐतिहासिक रूप देते हुए आचार्यश्री ने उसे पद्यबद्ध कर दिया—

पूरबसर दिन पाछलै, बण्यो अपूरब काम।
फिरतां फिरतां पांचवीं, जग्यां मिल्यो विश्राम॥

आचार्य तुलसी के आशुकवित्व में अनुप्रास और उत्प्रेक्षा अलंकार सहज रूप से आए हैं। इनके लिए उन्हें प्रयत्न नहीं करना पड़ा। अनेक बार तो बातचीत एवं प्रवचन में भी आनुप्रासिक छटा दिखलाई पड़ती थी। मर्यादा महोत्सव के अवसर पर साधु-साध्वियों को विहार की प्रेरणा देते हुए उन्होंने कहा—

विहार विहार विहार,
हो जाओ तैयार,
अब विलम्ब बेकार॥

आचार्य के मुख से इस सहज तुकबंदी को सुनकर पूरी सभा आनंद-

---

१. आचार्य तुलसी के पत्र भाग-३, पृ. ८१।

विभोर हो उठी। इसी प्रकार दक्षिणयात्रा के दौरान नीलगिरि पर्वत पर चढ़ते हुए कवि के मुख से सोरठे छंद में सानुप्रासिक काव्य पंक्तियां निःसृत हो गयीं—

शिमला रहा सुदूर, दार्जलिंग देख्यो नहीं।
नीलगिरि कुन्नूर, नंदनवन नरलोक रो॥

आचार्य तुलसी के आशुकवित्व में यमक अलंकार के प्रयोग भी देखने को मिलते हैं। मुनि श्री पूनमचंदजी के दिवंगत होने पर कवि ने उनकी स्मृति में आशुकविता करते हुए कहा—

साठ वर्ष रो संयमी, ज्ञान ध्यान गलतान।
पूनम दिन परभव गयो, पूनम मुनि पुनवान॥

साधु-साध्वियों को प्रेरणा देने के लिए भी आचार्य तुलसी आशुकवित्व करते थे। बाल मुनि जम्बूकुमारजी को प्रेरणामय आशीर्वाद देते हुए कवि कहते हैं—

खूब पढ़ो आगे बढ़ो, जम्बू! विनय विनीत।
अति निद्रा आलस्य को, अब से करो अतीत॥[१]

आचार्य तुलसी की काव्य-साधना मूड या काल के साथ जुड़ी हुई नहीं थी। हर काल और हर परिस्थिति में उनका कवित्व मुखरित हो जाता था। सायंकाल का प्रतिक्रमण समाप्त कर मुनिश्री मांगीलालजी (सरदारशहर) आचार्यवर के उपपात में बैठे थे। उन्होंने निवेदन किया कि मेरे पिताश्री मुनि पुष्पराजजी का स्वर्गवास हुए तेवीस वर्ष हो गए। वे प्रकृति के बड़े सरल, भद्र और मृदु थे। जैनागमों के विशेषज्ञ थे। कृपा करके उन पर आप कुछ फरमाएं। आचार्यवर ने तत्काल उनकी स्मृति को काव्यबद्ध करते हुए कहा—

मुनि मांगू रो बाप, बो हो पुष्प पटावरी।
पायो ज्ञान अमाप, नव आगम कंठस्थ कर॥
साढ़े चवदह वर्ष, पाल्यो शुद्ध साधुपणो।
सेव्या सदा सहर्ष, कालू तुलसी युग गुरु॥
गहन ज्ञान गलतान, विचित्र बुद्धि क्षयोपशम।
सिथिल अंग संठाण, संयम में दृढ़ आत्मबल॥

२३ वर्ष के अंतराल में अपने संघ के सदस्य की इतनी विशेषताओं

को याद रखना और उसे तत्काल पद्यबद्ध कर देना उत्कृष्ट क्षमता का परिचायक है।

आशुकविता में उन्होंने केवल सोरठे और दोहे में ही घटना को नहीं बांधा अपितु छप्पय और चौपाई में भी अनेक बार स्वत: काव्य की अजस्र धारा उनके श्रीमुख से निकल पड़ी। उदयपुर से स्वास्थ्य लाभ कर भाईजी महाराज आचार्यवर के दर्शनार्थ पधार रहे थे। आचार्यश्री पंचमी समिति से निवृत्त होकर भाईजी महाराज के सम्मुख गए। मिलन के अद्‌भुत क्षणों में उनका कवि मानस मौन नहीं रह सका। तत्काल प्रसन्न और स्वाभाविक शब्दावली में आचार्यश्री ने उस स्थिति का छप्पय छंद में चित्रण कर दिया—

उदियापुर से आप हम, चले मिले रींछेड़,
सरल सड़क ली आपने, हमने ली भटभेड़।
ली हमने भटभेड़, मौज मानी मगरां री,
पग पग दृश्य निहाल, चाल धीमी डगरां री।
क्षेत्र-क्षेत्र संभाल में, लागी लम्बी गेड़,
उदियापुर से आप हम, चले मिले रींछेड़॥

आचार्यश्री के पास कुछ बौद्धिक व्यक्ति पहुंचे। उन्होंने निवेदन किया—'पूरे शहर में चर्चा है कि आप दान-दया का विरोध करते हैं तथा जीव को बचाने में पाप समझते हैं, क्या यह बात सत्य है?' इस बात को सुनकर आचार्यश्री मुस्कराने लगे। उस विरोधी वातावरण को काव्य की भाषा में सटीक और मार्मिक अभिव्यक्ति देते हुए उन्होंने कहा—

ऐसी वैसी व्यर्थ बात तान मत पक्षपात,
करते हमेशा जाकी बुद्धि जो बिगड़गी,
ताकी सुनवाच नही सांच झूठ जांच करे,
लोकन में इक लहतान आन बड़गी,
एक भेड़ बोले भ्यां दूजी पिण बोले भ्यां,
तीजी और चौथी सहु भाज भाज भिड़गी,
तुलसी भणन्त समझावै अब काको काको।
सारे ही जहान आ तो कूएं भांग पड़गी॥

आचार्यश्री के आशुकवित्व में जहां एक ओर सागर सी गंभीरता है, वहां

विनोद और हास्य का पुट भी है। कभी-कभी वे ऐसी तुकबंदी करते कि श्रोता मुक्त मन से खिलखिला उठते थे। आचार्यश्री सिसोदा विराज रहे थे। वहां एक भाई ने बताया कि यहां धाकड़ बहुत हैं। यह सुनकर सहज ही उनके मुखारविंद ने निकल पड़ा—

कोशीवाड़ा में कांकड़ घणा, सीसोदा में धाकड़ घणा॥

कवि हरिऔघ का मंतव्य है कि यथार्थ कविता वही है, जो अधिकतर सरल और बोधगम्य हो और ऐसी कविता तभी होगी, जब उसमें बोलचाल का रंग होगा। आचार्यश्री के काव्य में अनेक स्थलों पर ऐसी प्रस्तुति मिलती है मानो वे सहज रूप में बात कर रहे हैं। लाडनूं में मातुश्री वदनांजी और ज्येष्ठभ्राता मोहनलालजी खटेड़ आचार्यश्री के उपपात में बैठे थे। वदनांजी ने निवेदन किया कि आपने मुझ पर अत्यन्त कृपा की, जो इस अवस्था में जयपुर, जोधपुर और दिल्ली की यात्रा करवा दी। भविष्य में भी ऐसी कृपा बनी रहे। आचार्यश्री ने तत्काल मुस्कराते हुए मांजी से कहा—

जयपुर देख जोधपुर देख्यो, देख्यो दिल्ली द्वार।
वदनांजी बूढ़ापे मांही, देख्यो कुतुबमीनार॥

आचार्यश्री को दक्षिणयात्रा हेतु प्रस्थान करना था अत: मुहूर्त्त की बात चल पड़ी। पास में मातुश्री वदनांजी विराज रही थीं। उन्होंने तत्काल कहा—

अणपूछ्यो मुहुरत भलो, का तेरस के तीज।

इस सहज निवेदन को आचार्यश्री ने स्वीकृति दे दी और उसी क्षण इस पद्य की पूर्ति करते हुए कहा—

मुख भाख्यो यात्रा दिवस, मां वदना मन रीझ।
अणपूछ्यो मुहुरत भलो, का तेरस के तीज॥

आचार्य तुलसी महाराष्ट्र की यात्रा पर थे। वहां शहर की प्रमुख व्यावसायिक वस्तुओं को लक्ष्य कर एक ही पद्य में चार वस्तुओं एवं चार स्थानों का जिस संक्षिप्तता से चित्रण किया, वह मन को आकृष्ट करने वाला है। बिना एकाग्रता के व्यक्ति इतनी बातों का अपने मस्तिष्क में सामंजस्य नहीं बिठा पाता—

हल्दकेन्द्र है सांगली, इचलकरंजी लूम।

तम्बाकू जैसिंग तरुण, कोल्हापुर गुड़ धूम॥

सफल काव्य रचना के लिए काव्यकार को स्वतंत्र और उदार दृष्टिकोण रखना आवश्यक है। मौलिक व्यक्तित्व से सम्पन्न कवि निर्भीक मन से काव्य-रचना करता है अत: उसमें सात्त्विकता और जीवन-सत्य की सहज स्थिति रहती है। आचार्यश्री तुलसी जीवन भर अपने पुरुषार्थी व्यक्तित्व एवं ओजस्विनी वाणी से जन-जन का पथदर्शन करते रहे।

दक्षिणयात्रा के दौरान दोपहर को प्रतिदिन आगम-संपादन का कार्य चलता था। दिनचर्या की उस नियमितता में उन्होंने कितने बड़े जीवन-सत्य की अभिव्यक्ति की है, यह देखते ही बनता है—

दिन में नित दोफार, कड़ो विहार भले कर्‌यो।
आंतर हर्ष अपार, बैठ्या सारा बगतसर॥

हिन्दी में 'समय के अनुसार' वाक्य में वह माधुर्य नहीं है, जितना राजस्थानी में प्रयुक्त 'बगतसर' शब्द में है। ऐसे अनेक लोक-प्रचलित बोलचाल के शब्द उनके काव्य में सहज प्रविष्ट हो गए हैं।

जैनेन्द्रजी का अनुभव है कि कवि के लिए लोकदर्शन अथवा प्रकृतिदर्शन अनिवार्य है। उनका मंतव्य था कि देहातों की सैर करना सबको खासकर विद्यार्थियों, साहित्यकारों, कलाकारों, कवियों और कार्यकर्ताओं के लिए बड़ा ही उपादेय होगा। लेखक हो या कवि, प्रेरणाएं जरूरी हो जाती हैं और प्रेरणाएं कोठरी में बैठे रहने से प्राप्त नहीं होतीं। आचार्यश्री तुलसी जीवन भर पदयात्री रहे। उन्होंने लगभग १ लाख किलोमीटर की पदयात्रा कर भारत के कोने-कोने को अपने पैरों से मापा और पदयात्रा के क्षेत्र में एक नया कीर्तिमान् स्थापित किया। यात्रा के दौरान प्रकृति के अनेक लुभावने और मनमोहक दृश्यों ने उनके संत मानस को बांध लिया, यही कारण है कि उन्होंने अपनी कृतियों में तो मुक्तमन से प्रकृति-चित्रण किया ही है साथ ही यात्रा के दौरान भी अनेक बार उनके अंतस् से प्रकृतिचित्रण की काव्यधारा निकल पड़ती थी। पाऊना से रींछेड़ जाते समय प्राकृतिक दृश्य का चित्रण कितनी सहज और सरल भाषा में हुआ है—

बण्या पाउणै पावणां, बिच घाट्यां रींछेड़।
लांघी हलवै हालतां, बा भारी भटभेड़॥

बड़ बेहड़ा अरु आंवला, खरा ईख रा खेत।
सौ सौ मन गुड़ इग विगै, सोनो बणगी रेत॥
अठी-बठी मगरां बिचै, बण्या बगीचा खेत,
पग-पग सीन सुहावणो, निरखत ठरग्या नेत॥

इन पद्यों में 'हलवे हालतां' भटभेड़, मगरा, हाल, अठी-बठी, ठरग्या आदि ऐसे शब्दों का प्रयोग है, जो राजस्थानी भाषा में रोजमर्रा की बोलचाल भाषा में प्रयुक्त होते हैं। किन्तु आचार्य तुलसी ने इनको बहुत सुंदर ढंग से काव्य में निबद्ध कर दिया। इसी प्रकार गांवगुड़ा से समीचा का प्रकृति-चित्रण उनके नैसर्गिक कवि मानस ने कितने सुंदर शब्दों में प्रकट किया है—

सीन समीचा रो अति सखरो, मगरां री भरमार।
खाला बिच-बिच खेत ईख रा, सीताफल सुखकार।
दर्रा बड़ा डरावणा, पग चूक्यां पाताल।
रोड़ बापड़ी रड़बड़ै, चलणो धीमी चाल॥

पदयात्रा के अन्तर्गत प्रकृति-चित्रण के अतिरिक्त वहां की भौगोलिक स्थिति का वर्णन भी कवि ने बखूबी से किया है। साधारण स्थिति को भी उन्होंने बड़ी कमनीयता के साथ प्रस्तुत कर दिया।

मेवाड़ में काली घाटी की चढ़ाई करते समय मौसम प्रतिकूल हो गया। बरसात के साथ आंधी भी चलने लगी। भयंकर तूफान को देखकर लोगों ने आचार्य तुलसी को विश्राम का निवेदन किया। उस दिन पर्वतारोहण के अनुभव को काव्यबद्ध करते हुए उन्होंने कहा—

मृग नवमी घाटे चढ्या, काली घाटी नाम।
तूफानी ऊफान रो, भारी भरकम काम॥
चढ़े विंध्य की चोटियां, सहे मेघ के बाण।
रखी सुरक्षित पुस्तिका, प्लास्टिक के इकताण॥

दक्षिणयात्रा के दौरान गुफाओं को पार करने के बाद तत्काल पग थाम कर की गयी कविता में उक्ति-वैचित्र्य एवं विचलन द्रष्टव्य है—

गुफा दोय स्यूं गूजर्‌या, एकण में अंधियार।
रोड़ मिली पग रोकणी, तुलसी दक्षिण द्वार॥

लाडनूं से दक्षिण यात्रा की ओर जाते वक्त कंकड़-पत्थर वाला एक गांव

आया। कंकरीली सड़क पर आचार्य तुलसी समतापूर्वक चल रहे थे। कंकरों की चुभन में भी उनके चेहरे पर अपूर्व प्रसन्नता झलक रही थी। लोगों ने आचार्यवर से निवेदन किया कि इस गांव का नाम कूड़ी है। यह सुनते ही आचार्यश्री ने नैसर्गिक रूप से सानुप्रास और सरस काव्य-रचना कर डाली—

कूड़ी गांव, कूड़ी सड़क, कूड़ी ही कंकरेट।
कूड़ी पगडंड्यां मिली, कूड़ी सारी सेट॥

इस एक पद्य में आचार्यश्री ने जिस सहजता और सरलता से गांव की स्थिति का चित्रण किया, वैसा चित्रण सामान्य व्यक्ति द्वारा कर पाना असंभव नहीं तो श्रमसाध्य अवश्य है। 'कूड़ी' शब्द राजस्थानी में खराब या असत्य के लिए प्रयुक्त होता है। यहां 'कूड़ी' शब्द की बार-बार पुनरुक्ति विशेष ध्वनि को व्यक्त करती है।

यात्रापथ में घटित वृत्तान्त को तत्काल काव्य बद्ध करना उनकी नैसर्गिक प्रतिभा और उत्कृष्ट साधना का द्योतक है। दक्षिण यात्रा का एक दृश्य उनकी काव्यमय भाषा में प्रस्तुत है—

बंगले में एक वृक्ष, तेपन फुट तिण रो तणो।
कोटर निर्मित कक्ष, ऊपर चढ़ सोओ भले॥
वान ग्राम रो वास, दोहरी दस माईल कटी।
पटड़ी पंथ प्रवास, रोड़ मोड़ खाती चलै॥

बैकुण्ठधाम की खिड़की से नीचे का दृश्य देखकर उनका कवि हृदय कल्पना कर उठा—

तुंगभद्रा बांध पर बैकुण्ठधाम सुभव्य है,
सहज, सुखद, सुरम्य सुषमा यत्र तत्र अलभ्य है।
रात भर जलते हजारों बल्व दृश्य हरा-भरा
सौरमण्डल ही स्वयं मानो, धरा पर अवतरा॥

रात भर बैंकुठधाम में रहकर साधुगण प्रात: नीचे उतरकर क्यों आए, इसके उत्तर में कवि ने आशुकविता में जो कल्पना की है, वह उनके उदात्त व्यक्तित्व का निदर्शन है—

रात-रात बैंकुठधाम, मुनि प्रात धरातल पर आए।
मानवता की सेवा का, आकर्षण छोड़ नहीं पाए॥

प्रकृति के बदलते रूप को भी कवि ने अपनी आशुकविता का विषय बनाया है। सन् १९९० का प्रसंग है। माघ शुक्ला चतुर्दशी को व्याख्यान के पश्चात् गुरुदेव ने मुखारविन्द का लोच करवाया। लुंचन सम्पन्न होने के बाद आचार्यवर बाहर बरामदे में पधार गए। शीतऋतु होने के कारण धूप सुहावनी लग रही थी। आचार्यवर जब अंदर हाल में पधारे, तब प्रकृति के बदलते रूप को दोहे में बांधते हुए वे बोल उठे—

रुत रुत री रचना नई, रोज बदलतो रूप।
कब ही असुहाणी लगे, कभी सुहाणी धूप॥

एक दिन जैन विश्व भारती में भ्रमण करते हुए उसके नैसर्गिक प्राकृतिक सौन्दर्य को प्रेरणा के रूप में प्रकट करते हुए कवि मन कह उठा—

शुद्ध हवा शोधित दवा, और दुआ बिन देर।
भैया! सावण भादवै, विश्व भारती हेर॥

आचार्यश्री की सद्य: रचित कविताएं विविध विषयक हैं। गावों में ग्रामीणों की भक्ति पूरित भावनाओं को भी उन्होंने काव्य में निबद्ध कर दिया है। ग्रामीण भक्ति के दृश्य को देखकर बीच रास्ते में पग थामकर आचार्यश्री कह उठे—

संडाइल रा जन खड्या, रोक्यां जी.टी. रोड।
लोटा भर-भर दूध रा, लाया भक्ति-विभोर॥
बारठ अम्बादान, रख्यो रोड़ पर ईखरस।
दीधो अड़लग दान, ईसवाल कड़िया बिचै॥

आचार्य तुलसी का आशुकवित्व प्रेरणास्रोत बनकर भी प्रवाहित हुआ है। ऊंटकमंड पर्वत पर चढ़ाई करते समय भाईजी महाराज चम्पालालजी स्वामी के दोनों घुटनों में दर्द हो गया। आचार्यवर उनको बार-बार प्रोत्साहित कर आगे बढ़ा रहे थे। चढ़ाई के पश्चात् गुरुदेव ने भाईजी महाराज को प्रोत्साहित करते हुए कहा—

ऊंटकमंड ऊंचो घणो, दोनूं घुटनां दर्द।
तो पिण बाजी जीत ग्यो, मुनि चम्पक मन मर्द॥

अंतिम दोनों तुकान्त शब्दों में उर्दू शब्दों का प्रयोग अभिव्यञ्जना-कौशल

का उदाहरण है। उनके आशुकवित्व में अनुप्रास और उत्प्रेक्षा सहज रूप से आकर विराज गए हैं।

आचार्यश्री तुलसी विरोध को विनोद के रूप में स्वीकार करते रहे। विरोध को वे जीवन-विकास का अनिवार्य अंग मानते थे। उन्होंने अपने जीवन में प्रकृति और पुरुष दोनों विरोधों को समभाव से सहा इसलिए उनकी तेजस्विता और ख्याति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंच गयी। जोधपुर प्रवेश के समय भयंकर विरोध का वातावरण बना। पोस्टरों से सड़कें और दीवारें पाट दी गईं। यह स्थिति देखकर भी उनका मेरु सा महान् मन विचलित नहीं हुआ। मुस्कराते हुए उन्होंने कहा— 'अच्छा हुआ तारकोल की सड़क पर चलने से पैर नहीं जले तथा काले भी नहीं हुए। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति हमसे अपरिचित हैं, वे भी इनको पढ़कर हमारे पास स्वत: आ जाएंगे।' इस विरोध को उनकी काव्यमयी वाणी ने विनोद के रूप में मुखरित कर दिया—

घर रा कागद, घर रा पैसा, घर री बगत बितावै।
आपां री प्रख्याति करै, उपकारी क्यूं न कहावै॥

आचार्य तुलसी का आशुकवित्व हिन्दी की अपेक्षा राजस्थानी भाषा में अधिक हुआ है। कहीं-कहीं उन्होंने प्रान्तीय भाषा के शब्दों का भी खुलकर प्रयोग किया है। सन् १९५१ में गुरुदेव तुलसी पंजाब यात्रा पर थे। समाना गांव की ओर चलते-चलते अधिकांश साधु-साध्वियां थक गए। समाना पहुंचते ही पंजाबी भाषा से प्रभावित निम्न पंक्तियां उनके मुख से निकल पड़ीं—

शहर समाना दी सफर, करड़ी हुई कमाल।
थक गईं मोटर-लारियां, की संतों दा स्वाल॥

राजस्थानी आशुकविता के बीच-बीच में अनेक स्थलों पर अंग्रेजी और उर्दू शब्दों का प्रयोग भी सहज भाव से हुआ है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियों को प्रस्तुत किया जा सकता है—

अतुल और बलसाद बिच, पथ में कीच महान्।
बेशुमार ट्राफिक बह्यो, न्हाख्या करि हैरान॥

स्वर्गस्थ व्यक्तियों—साधु, साध्वी एवं श्रावक-श्राविका की विशेषताओं के बारे में तो हजारों पद्य उनके श्रीमुख से निकल पड़े हैं। यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

श्रावक रत्न नंद मेहता की, क्यूं न शताब्दी पूर्ण हुई?
क्यूं जल्दी की दो वर्षों के, कारण सिर्फ अपूर्ण रही।
पुरुषां में तत्त्वज्ञ जन्मना और कर्मणा जैन सजग,
आपे ही सब कथा समेटी, स्मृतियां शेष रहीं पग-पग॥

लाडनूं की सुश्राविका हुलासी बाई के संदर्भ में लिखा गया आशु पद्य समानान्तरता के वैशिष्ट्य को प्रकट करने वाला है—

रीढ़ तोड़ रूढ़्यां री सीखी, जीणै री सुघड़ाई,
पूर्ण समर्पित गुरु चरणां, सुख री रेखा उमड़ाई।
धर्मनिष्ठ कर्त्तव्यनिष्ठ, श्रमनिष्ठ सहज मृदुताई,
जागृत नारी सुघड़ श्राविका, बहन हुलासी बाई॥

गंगाशहर निवासी धर्मचंदजी चौपड़ा के असामयिक निधन पर मुक्त छंद में विचलन के साथ आशुकविता पठनीय है—

दृष्टि की आराधना में, धर्मजी बस एक थे,
स्वीकृतं की साधना में, धर्मजी बस एक थे।
विरल विमल विवेक थे, निर्णय नियामक नेक थे,
शिथिलता स्वच्छन्दता, अविवेकिता पर ब्रेक थे॥

निम्न पद्य में चार बातों को जिस भाषा-सौष्ठव के साथ प्रस्तुत किया गया है, वह नाद-सौन्दर्य का सुंदर उदाहरण है—

अनशन कियो अमंद, द्विशताब्दी उपलक्ष्य में।
मनोहरां सानंद, जोड़ायत जयचंद नी॥

रंगलालजी कोठारी के दिवंगत होने पर उनके लिए उच्चरित पद्य में लक्षणा शक्ति का चमत्कार द्रष्टव्य है—

छोटो कद मोटी भुजा, आकृति लाल कमाल।
जनता कदै न भूलसी, रंगलाल की चाल॥

यहां 'मोटी भुजा' बहुत अधिक काम करने के अर्थ में प्रयुक्त है। आचार्य तुलसी ने हिन्दी के आशुकवित्व में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग भी किया है। मालवा के धामनोद गांव में कांग्रेस अध्यक्ष यू.एन. ढ़ेबर के आने पर कवि सोरठे की रचना करते हुए कहते हैं—

धामनोद सविनोद, ढेबर कांग्रेसाधिपति।
मिले समन सामोद, पुनरपि मिलनेच्छा प्रकट॥

आचार्य तुलसी ने केवल दोहे, सोरठे या छप्पय आदि छंदों में ही आशुकविता नहीं की, उनके अनेक गीतों को भी आशुगीत के रूप में रखा जा सकता है। एक बार पूज्य गुरुदेव छापर से चाड़वास पधार रहे थे। रास्ते में बालू के टीले पर उनका कवि हृदय आंदोलित हो उठा। उनके मुख से सहज रूप से आचार्य भिक्षु की स्मृति में आरती के स्वर प्रस्फुटित होने लगे—

अयि जय भिक्षो! दैपेय!
तेरापंथ-पथाधिप! जैन-जगत्-आधेय! शासन पृ. ५०

हिन्दी की भांति संस्कृत में आशुकविता करने में भी उनका सहज प्रवाह था। कभी बाल मुनियों को प्रतिबोध देने के लिए तो कभी इतिहास की सुरक्षा के लिए उन्होंने संस्कृत में अनेक पद्यों की रचना की। यहां एक विशेष प्रसंग में किए गए आशुकवित्व को प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा। आचार्य महाप्रज्ञजी चाड़वास मर्यादा महोत्सव के लिए लाडनूं से

आत्मा ही इस जगत में, सारभूत है तत्त्व।
उससे ही स्थापित करें, सब अपना एकत्व॥
आत्मा पृ. ८९

व्यक्ति अकेला जनमता, मरता है निरुपाय।
और अधिक क्या? साथ में, रहे न अपनी काय॥
आत्मा पृ. ८९

सुत को जननी-जनक सब, देते मुख का ग्रास।
वह लज्जा अनुभव करे, बैठ उन्हीं के पास॥
आत्मा पृ. ९०

अपना उचित विवेक ही, सुख-समाधि की राह।
इसके द्वारा ही तरे, नर भव-सिन्धु अथाह॥
आत्मा पृ. ९३

विहार कर रहे थे। विहार से पूर्व आचार्यवर गुरुदेव से आशीर्वाद लेने आए। महाश्रमणी साध्वी प्रमुखाजी भी वहीं उपस्थित थीं। चारों ओर चतुर्विध धर्मसंघ उत्सुक नजरों से उन दोनों महापुरुषों को निहार रहा था। उस ऐतिहासिक और अपूर्व अवसर पर आशुकविता के माध्यम से यात्रा के प्रति मंगल भावना करते हुए गुरुदेव ने कहा—

शुभास्ते सन्तु पन्थानः, प्रशस्ताः सन्तु ते दिशः।
स्वास्थ्यं विकासमाप्नोतु, यशः विस्तारमाप्नुयात्॥
संघः संघसमोऽस्माकं, तीर्थं तीर्थचतुष्टयम्।
महाप्रज्ञः महाप्रज्ञः, स्मरामि विस्मरामि किम्॥
प्रवक्ताऽहं प्रवक्ता त्वं, लेखिका कनकप्रभा।
सर्वे उत्कन्धराः लोकाः, द्रष्टुं श्रोतुं समुत्सुकाः॥

शब्दों का चयन, भावों की गभीरिमा, वर्णन-सौष्ठव तथा परिस्थिति के अनुसार व्याख्यान—इन सब विशेषताओं ने आचार्य तुलसी के आशुकवित्व को अमर और सजीव बना दिया है। काव्य की इस विधा में उनके भीतर का आनंद उच्छलित होकर बाहर छलक रहा है। आचार्य तुलसी का मन जितना विराट् और सूक्ष्मदर्शी था, प्रतिपादन भी उतना ही विराटता और सूक्ष्मता को लिए हुए है। कहा जा सकता है कि उनका आशुकवित्व बहुआयामी और बहुविषयक है। एक ओर इसमें ग्रामीण-भक्ति और वहां की स्थिति का चित्रण है तो दूसरी ओर शहरी सभ्यता का वर्णन भी है। प्रकृति-चित्रण का बखूबी समाहार है तो लोकमान्यता और रीति-रिवाजों का भी समावेश है। सैकड़ों ऐतिहासिक स्थल और व्यक्ति उनके आशुकवित्व में बंधकर अमर हो गए हैं।

काव्य-भाषा का वैशिष्ट्य

---

१. लेखक और उसकी कला, क्रोन्तान्तिक केदिन, अनुवादक अमृताशय, आलोचना अक्टूबर १९५४, पृ. ४९।

२. प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त, पृ. ७१।

३. रामधारीसिंह दिनकर ; शेष:निशेष, पृ. ५१।

'सर्वोत्तम शब्दों का क्रमविधान ही कविता है।' कालरिज का यह कथन काव्य में भाषा के महत्त्व को प्रकट करता है। काव्य के सौन्दर्य का बहुत बड़ा भाग उसमें प्रयुक्त भाषा के सौष्ठव पर निर्भर करता है। समर्थ भाषा के अभाव में काव्य की प्रेषणीयता संदिग्ध हो जाती है। कोई भी युग-कवि प्रभावशाली एवं भावानुकूल शब्दों का चयन करके ही अपने काव्य को सजाता है। पाश्चात्त्य समालोचक पोप के अनुसार भाषा में कर्ण कटुता न हो यही पर्याप्त नहीं है, वरन् यह भी आवश्यक है कि शब्दों के उच्चारण मात्र से भाव ध्वनित हों। एक रूसी विद्वान् के अनुसार कोई भी साहित्यिक कृति कभी अच्छी हो ही नहीं सकती, अगर उसकी भाषा दरिद्र हो।''[१] राष्ट्र कवि दिनकर भी इसी तथ्य को स्वीकार करते हैं कि कविता का अंतिम विश्लेषण उसमें प्रयुक्त भाषा का विश्लेषण है। कविता का चरम सौन्दर्य उसमें प्रयुक्त भाषा की सफाई का सौन्दर्य है।''[२]

सुमित्रानंदन पंत भाषा को मन का परिधान मानते थे। भाषा में वह शक्ति होनी चाहिए, जो भावों को व्यक्त करने में पूर्ण सहायक बन सके। आचार्य तुलसी को न केवल शब्दों की अन्तरात्मा का ज्ञान था बल्कि अपने भावों को शब्दों में भर देने का विपुल सामर्थ्य भी था। स्पष्ट, स्वच्छ एवं वास्तविक अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने सरल और व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया है।

राष्ट्रकवि दिनकर ने उर्वशी पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर अपनी अनुभूति प्रकट करते हुए कहा—"लिटरेचर ऑफ नॉलेज" किसी भी भाषा में लिखा जा सकता है किन्तु रस का साहित्य सिर्फ अपनी भाषा में लिखा जा सकता है। अपनी संस्कृति और देश की भाषा में लिखा जा सकता है।''[३] आचार्य तुलसी ने काव्य-भाषा के लिए मुख्य रूप से राजस्थानी भाषा को चुना। राजस्थानी भाषा उन्हें सदा से प्रिय रही। इस संदर्भ में उनकी निम्न टिप्पणी पठनीय है—"मेरे पास कुछ सुझाव आए कि काव्यात्मक व्याख्यान हिंदी भाषा में होने चाहिए······ पर इस रहस्य को अनावृत करने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि मातृभाषा होने के कारण राजस्थानी कविता में मेरा जो सहज प्रवाह है, हिन्दी में उतना सहज नहीं है। इसलिए मेरे अन्तःकरण में

१. आचार्य तुलसी ; आदिवचन, पृ. ६७।
२. आचार्य तुलसी ; आदिवचन, पृ. ११४।

सहज स्फूर्त्त भावों की सहज अभिव्यक्ति राजस्थानी भाषा में ही हुई है।''[१] ...... मेरी प्रारम्भिक प्रस्तुति का माध्यम राजस्थानी भाषा रही पर उत्तरकाल में हिन्दी को भी मैंने अपना लिया।''[२] राजस्थानी जैसी लोकभाषा में चरित काव्यों की रचना करके उन्होंने जन-सामान्य के बीच बोली जाने वाली राजस्थानी भाषा को अर्थ-गौरव प्रदान किया और उसे साहित्यिक बनाने का महनीय कार्य किया है। अपने काव्य-साहित्य से उन्होंने इस बात को सिद्ध कर दिया कि सामान्य लोकभाषा में भी सुंदर से सुंदर प्रबंध काव्य और महाकाव्य की रचना की जा सकती है। राजस्थानी भाषा में मधुरता, आर्द्रता, विशुद्धता और सहजता है अत: उनकी तीव्र अभीप्सा थी कि यह भाषा के क्षेत्र में अपना स्वतंत्र और गौरवमय स्थान प्राप्त करे।

राजस्थानी भाषा में संभाग के अनुसार अनेक भेद हैं, जैसे—मेवाड़ी, मारवाड़ी, जोधपुरी, कांठा, थली आदि। आचार्य तुलसी के मन में भाषागत संकीर्णता नहीं थी इसलिए प्रसंगवश उन्होंने सभी भाषा के शब्द प्रयुक्त किए हैं पर विशेष रूप से उनकी भाषा हिन्दी के निकट तथा तत्सम शब्दों से भरपूर है। राजस्थानी के साथ उन्होंने हिन्दी भाषा में भी प्रचुर मात्रा में लेखनी चलाई है।

डॉ. नगेन्द्र ने पंत के लिए कहा कि वे भाषा के सूत्रधार थे। भाषा उनके कलात्मक संकेत पर नाचती थी। डॉ. नगेन्द्र की यही उक्ति आचार्य तुलसी की काव्य भाषा पर भी लागू होती है। आचार्य तुलसी की भाषा हर भावों को विशिष्ट ढ़ंग से प्रकट करने में समर्थ है। अनुभूति और अभिव्यक्ति का सामंजस्य उनकी काव्य भाषा का विशिष्ट पक्ष है। अलंकार मंडित होने के कारण उनकी भाषा में श्रोता और पाठक को मुग्ध करने की अद्‌भुत शक्ति पैदा हो गयी है।

काव्य-भाषा में यदि अर्थ-गौरव निहित नहीं है तो उसका त्रैकालिक मूल्य नहीं हो सकता। आचार्य तुलसी की भाषा सरल होकर भी शक्तिशालिनी तथा संदर्भ की अनुगामिनी है। उनके काव्य में अर्थ-गौरव के अनेक चमत्कार हैं, जो काव्य में अद्‌भुत रस की सृष्टि करते हैं। उनका अर्थ-गौरव लक्षणा और व्यञ्जना शक्ति से तो प्रकट हुआ ही है, अभिधा शक्ति से भी उन्होंने अर्थ-गौरव को बहुत कुशलता से प्रकट कर दिया है। अभिधा में अर्थ-गौरव

का निम्न उदाहरण अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है—

- किसके साथ चलेगी पृथ्वी? किसकी स्थिर यह माया?
  बुझ जाते हैं जलते दीपक, आखिर माल पराया॥ भरत पृ. १३६
- आने लगे भरत सेना में, तूफानों पर यों तूफान।
  वीर अकेला अनिलवेग, बरसाता है बाणों पर बाण॥ भरत पृ. ९५
- कोई-कोई पुरुष जनमता, जिसके आगे सब जग नमता॥ शासन पृ. ६३

व्यक्तित्व की भांति आचार्य तुलसी की भाषा भी प्रभावशाली और ओजपूर्ण है। उनके काव्य में भाषा एवं भावों की उत्कृष्टता का मणि-कांचन योग है। भाषा का प्रवाह स्वच्छ झरने के समान है, जिसमें गति के साथ नाद-सौन्दर्य भी विद्यमान है—

- तेज तरुणिमा, अंग अरुणिमा, शीतल शान्त शशांक है।
- आक्रोश नहीं, अफसोस नहीं, खामोश न दोष-निवारण में। नंदन पृ. २७
- आसक्ति-विरक्ति भक्ति शक्ति पथ धार्‌यो।
- साद्यनंत भगवन्त हंत! भगतां ने क्यूं तरसाओ? शासन पृ.९
- धौं-धौं धपमप मुरज बज रहे, वीणा की झंकार।
  धिधिकट-धिधिकट बजे नगारे, भू नभ एकाकार॥ पानी पृ. ५५
- छोड़ बंदगी, आ जिंदगी उजड़ जासी। चंदन पृ. ५९

आचार्य तुलसी का शब्द-भंडार इतना समृद्ध था कि गूढ़ से गूढ़ भावों को सरलता से प्रकट करने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। दार्शनिक और गूढ़ वर्णन में जो भाषा प्रयुक्त की है, वह मार्मिक प्रसंगों को प्रकट करने में नहीं हुई। एक बालक के मुख से जो भाषा बुलवाई है, वह एक ग्रामीण या विद्वान् के मुख से भिन्न है। बालक के मुख से कही गयी भाषा में विस्मय, भोलापन और सरलता की झलक है।

भाषा की सबसे बड़ी विशेषता स्वाभाविकता, सजीवता और सरलता है। यदि भाषा में सजीवता और सहजता नहीं होती तो वह रचना केवल कई लोगों तक ही सीमित रह जाती है, उसमें रस की उत्पत्ति नहीं हो पाती। आचार्य

तुलसी की भाषा जीवन के साथ जुड़ी हुई थी अत: वह सीधा हृदय का स्पर्श करती है।

भाषा का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है—अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच संतुलन। इसके बिना अभिव्यक्ति की तीव्रता व्यक्त नहीं हो पाती। आचार्य तुलसी ने अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। पाठक को उनकी भाषा में पदे-पदे रमणीयता, चमत्कार, उद्बोधनशीलता और संवेदनशीलता का दर्शन होता है—

अहं और पदलिप्सा से हो, जो साधक बेभान।
खींच स्वयं वह रांत गले में, ले लेता अनजान॥ नंदन पृ. २२

हर्ष और उल्लास को प्रकट करते समय उनकी भाषा भी वैसी ही हो गयी है। कोमल कान्त पदावलि में हर्ष का उदाहरण द्रष्टव्य है—

उल्लसित अयोध्या का कण-कण, आनंदित उत्साहित जन-जन,
करने भरतेश्वर अभिनंदन, उत्कंठित नाच रहे हैं मन।
दिग्विजय अखिल भूमण्डल की, कर आज आ रहे चक्रीश्वर,
सज्जित है देव-विमानों सा, साकेत नगर उसका घर-घर॥ भरत पृ.३८

वेदना युक्त स्थलों की भाषा अत्यन्त मार्मिक और हृदयस्पर्शी बन गई है —

- आख्यां बरसै नीर, पीर अंतरमन की प्रकटावै। चंदन पृ.१३४
- स्नेह-सरवर में निमज्जित बहन-भाई मिल रहे,
  चिर-विरह-दव-दग्ध उनके, हृदय-उपवन खिल रहे।
  मूक मन है, मूक वाणी, कुछ नहीं कह पा रहे,
  वेदना-संवेदना में, उभय दबते जा रहे॥ परीक्षा पृ. १२५
- कहतां नहिं चिन्तन करतां ही, टूट पड़ै ज्यूं प्हाड़।
  टुकड़ा-टुकड़ा हुवै कलेजो, बढ़ै व्यथा री बाढ़॥ कालू भा. २ पृ. १९०

प्रथम दृष्टि में कहीं-कहीं उनकी भाषा क्लिष्ट, दार्शनिक, समास-बहुल एवं सानुप्रासिक लगती है लेकिन गहराई से देखने पर अनुभव होता है कि

उन्होंने सलक्ष्य ऐसी भाषा का प्रयोग किया है। कालूयशोविलास के प्रारम्भिक पद्य इसके उदाहरण कहे जा सकते हैं लेकिन वहां कवि को अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करना अनिवार्य था। बाहुबलि की साधना का एक दृश्य क्लिष्ट शब्दावली से युक्त होते हुए भी झंकार पैदा करने वाला है—

- आभड़ै मतंग अंग खाज भांजणै।
  ऊपड़े दंतूसलां स्यूं आग दाझणै।
  भार संत खांधां छार राही वीसमे वली॥ चंदन पृ २४
  खड़्यो खंभ ज्यूं, भुज प्रलम्ब ज्यूं, दम्भ रूप साकार।
  निरालम्ब अविलम्ब दंभमय, बणणो लक्ष्य उदार॥ चंदन पृ २५

भुजंग प्रयाति छंद में क्लिष्ट शब्दों की छटा द्रष्टव्य है—

चहूं ओर चंगी जुड़ी झंगि भारी,
कहूं जंगि-जंगि वटां री जटारी।
कहीं निम्ब-कादम्ब-जम्बाम्ब झारी,
खरी शूल बंबूल जींहा जमां री॥ कालू, भा. २ पृ. १०३

डिंगल कविता से प्रभावित शब्द-योजना क्लिष्ट होते हुए भी नाद-सौन्दर्य पैदा करने वाली है—

रही ओलि-दोली सही भक्त-टोली,
कहीं तम्बु छोली सतोली टटोली।
कहीं चद्दरी वा दरी वा बिछोली,
कहीं धोलि-धोली सभी भूमि जोली॥ कालू, भा. २, पृ. १०४

आचार्य तुलसी की भाषा में एकरूपता नहीं है। कहीं सीधी-सरल तो कहीं समस्त पदों एवं अनुप्रास के जाल से जटिल है। कथ्य के अनुसार उन्होंने भाषा में भी परिवर्तन कर दिया है। चारित्रिक वैशिष्ट्य को प्रकट करने में कहीं-कहीं कवि अपनी भावाभिव्यक्ति करने में शब्दकोश को अक्षम पाते हैं—

- जेठांजी की गुरु-भक्ति, बताणै चाऊं।
  तो वर्णावलि में वर्ण, नहीं मैं पाऊं॥
- ओजस्वी, वर्चस्वी और, यशस्वी हो तो ऐसे।
  एक लेखिनी दो अंगुलियों, से लिख पाएं कैसे? शासन पृ. ६६

संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का प्रयोग

आचार्य तुलसी को संस्कृत के कई कोश एवं व्याकरण ग्रंथ कंठस्थ थे अत: संस्कृत भाषा के शब्दों पर उनका पूरा अधिकार था। उन्होंने राजस्थानी और हिंदी भाषा में चतुराई के साथ न केवल संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग किया, बल्कि अनेक स्थलों पर तो सहजता से विभक्ति सहित पदबंध एवं वाक्यांशों का प्रयोग भी कर दिया। इससे उनके काव्य में सांस्कृतिक वातावरण बना है। राजस्थानी भाषा के काव्य में संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों के प्रयोग के पीछे कवि का उद्देश्य कृत्रिम आडम्बर द्वारा अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करना नहीं था। उनका मुख्य उद्देश्य था—राजस्थानी भाषा को समृद्ध करना तथा अभिव्यक्ति को गरिमामय रूप प्रदान करना। संधियुक्त एवं समस्त पदों का प्रयोग उनकी संस्कृत भाषा के प्रति अभिरुचि को व्यक्त करता है, जैसे—

श्रेण्यारूढ़, यथेप्सित, वाक्चातुर्य, सर्वोच्च, हर्षातिरेक, समाकलन, प्राणप्रिय, हृदयसदनेश्वर, जीवनविभव, कलानिधि, यदिच्छा, जगदुत्थान, कतिदिन, पुनरपि, मधुरामंत्रण, सोत्साह आदि। काव्य में संधियुक्त शब्द-प्रयोग के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- पवनेरित-च्युत कुसुम री गति क्यूं न निहारै। कालू भा. १ पृ. ९२
- सद्गुरु दया निकेत, करुणामृत सिंचन दियो। कालू भा. १ पृ. २३५
- अंधाग्रह को छोड़, सनातन सत्य तत्त्व को जानें। नंदन पृ. १५९
- कल्पवृक्ष यह कामदुधाभा, यह नंदन निकुंज की आभा। नंदन पृ. १५०
- संशय सब शयनालये, गया शयन-हित शान्त। कालू, भा. १, पृ. २२५

समासयुक्त गरिमामयी तत्सम शब्द-योजना में आचार्य का गुणोत्कीर्तन करने वाली निम्न पंक्तियां नाद-सौन्दर्य पैदा करने वाली हैं—

अमलतम आचारधारा में, स्वयं निष्णात हैं,
दीप-सम शत दीप दीपन, के लिए प्रख्यात हैं।
धर्मशासन के धुरंधर, धीर धर्माचार्य हैं,
प्रथम पद के प्रवर प्रतिनिधि, प्रगति में अनिवार्य हैं॥ शासन पृ. ५

रात्रि के स्तब्ध, नीरव और स्थिर सौन्दर्य के वर्णन में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रभाव दर्शनीय है—

अखिल भू पर यामिनी का, हो रहा अधिकार है,
श्रान्त दिन भर के श्रमिक को, नींद का आधार है।

शान्त जन-रव मूक-पक्षी, पवन की गति मन्द है,
विटप लतिकाएं चपल-दल, कमल भी निस्पन्द हैं॥ भरत पृ. ५९

विभक्ति सहित संस्कृत भाषा के शब्दों एवं धातुओं का प्रयोग भी अनेक स्थलों पर मिलता है— सद्भि, देहि, अवतारं, पश्य, दृष्ट्या, पादाम्बुजे, दिक्षु, उवाच, सदुपायं, घाटे, कतिदिन, शिवमस्तु, सुखं कल्याणं सदा समस्तु, नेति, संवत्सरार्ध इत्यादि। इस संदर्भ में काव्य में प्रयुक्त कुछ संस्कृतनिष्ठ प्रयोग भी द्रष्टव्य हैं—

- पहिलां दृग् पहुंची नहीं रे सुजना, सा पहुंची इण बार। कालू, भा. १ पृ. ८३
- वज्रादपि कठोर व्रत पालै। सुधा पृ. ११
- करूं प्रार्थना इष्ट देव, देवाधिदेव! मां पाहि। चंदन पृ. ११५
- तीर्थंकर प्रवचन कर अथवा, तीर्थ चतुष्टय-निर्माणं।
  राग-द्वेष जीतणै स्यूं जिन, अगणित गुण-गणगरिमाणं॥ शासन पृ.१९
- पर अजीब पुद्गल अपेक्षया, सगला एक समान।
- हरतु-हरतु मेऽघं मुनिप, राणाजी री लार। कालू भा. २ पृ. १११
- मंडप गूंज उठा दश दिक्षु। नंदन पृ. ८१
- तव मम को नहिं अंतर। शासन पृ. १७
- थोड़ी सी अवहेलना, देखी यदा कदाच।
  करै न की आई-गई, डालिम स्पष्ट उवाच॥ डालिम पृ. १८९
- श्रुत विशारदा शारदा, वरदा भवतु सदेव। कालू भा. १, पृ. १७७
- विश्व वातावरण सारा, तम निमज्जित हो रहा।
  जन-समूह अनूह निशि के, व्यूह में था सो रहा॥ परीक्षा पृ. ४१

निम्न उदाहरण में संस्कृत के अवयवों का प्रयोग भाषा में चमत्कार की सृष्टि करने वाला है—

मा मा करती मां कहे, करणो अब उद्धार। मां पृ. ३७

यहां नहीं के अर्थ में 'मा' अव्यय का प्रयोग 'मां' शब्द के साथ एक विशेष ध्वनि उत्पन्न करता है।

मध्यकालीन कवियों की भांति कहीं-कहीं सूक्ष्म भावों एवं अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए सानुप्रासिक समासान्त पदावली का प्रयोग भी किया है—

- स्वस्ति श्री शुभ-संतती, विशद वल्लरी व्रात।
  विकसावण सावण जलद, नमूं नाभि तनुजात॥ कालू, भा. १, पृ. ५९
- करुणा-रस-परिपूरित! शरणागत कारज सारो। शासन पृ. १७

आचार्य तुलसी के काव्य का यह निजी वैशिष्ट्य है कि हिंदी काव्यों के बीच-बीच में उन्होंने संस्कृत के श्लोकों का प्रयोग किया है। आचार बोध और कालूयशोविलास में उन्होंने इसी शैली को अपनाया है। राजस्थानी भाषा में निबद्ध कालूयशोविलास नामक चरितकाव्य में तत्सम भाषा के कलात्मक प्रयोग से ग्रंथ ऊंचाइयों को छूता हुआ प्रतीत होता है। उनके काव्य में कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो संस्कृत काव्य ही पढ़ रहे हैं। हिन्दी या राजस्थानी काव्य में भी कुछ गीत संस्कृत भाषा में ही रचित हैं। कालूयशोविलास में पंडित रघुनंदनजी के संदर्भ में गीत की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

किं शुभाभिधानं? का जाति? अभ्यस्तं किं? कतरा ख्याति:।
प्रथमोऽवसर: बुध आयाति, अयि कविवर्या! ········॥ कालू भा. १ पृ.
१ ४ ४

छायावादी कवियों की भांति कहीं-कहीं संस्कृत के अप्रचलित और क्लिष्ट तत्सम शब्दों का प्रयोग काव्य को समझने में व्यवधान पैदा करता है पर इस संदर्भ में आचार्य तुलसी का विचार है कि कोशगत नवीन शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया तो भाषा सीमित और संकुचित हो जाएगी।'' कवि ने उन शब्दों का प्रयोग इतना सटीक किया है कि उसे अप्रचलित या क्लिष्ट कहकर उपेक्षित नहीं किया जा सकता। इन शब्दों के प्रयोग से वैदग्ध्य एवं लयपूर्ण प्रवाह की अन्विति हो गयी है। कुछ क्लिष्ट तत्सम शब्दों के उदाहरण इस प्रकार हैं— क्षाम, निविड़, प्राज्य, विपणिज्ञ, सान्द्र, आकूत, सुपर्व, आहव आदि। कहीं-कहीं कवि ने संस्कृत कवियों की कुछ पंक्तियां भी उद्धृत की हैं, वे भावों और अभिव्यक्ति को और अधिक व्यञ्जक बनाती हैं—

- दिया मूल्य संयम को गहरा, बाह्य दृष्टि फिर नहीं पली।
  'आचार: प्रथमो धर्म:' की, स्वरलहरी अविराम चली॥ नंदन पृ. १२६
- 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं', बड़े कष्ट की बात। चंदन पृ. २८
- 'धर्मे जय पापे क्षय' आखिर, फलसी ओ ओखाणो। कालू भा. २ पृ. १२८

जैन विश्व भारती को मातृसंस्था तथा जैन विश्व भारती संस्थान को उसके पुत्र के रूप में प्रस्तुत करके नगीने की भांति राजस्थानी काव्य में संस्कृत वाक्य का प्रयोग कर दिया है—

बेटी बण्यो विश्वविद्यालय।
सुतां मातरं पालय पालय॥ सहिष्णुता पृ. ४

तत्सम शब्दों के प्रयोग में भी आचार्य तुलसी यथासंभव कोरे शब्द चमत्कार से बचे हैं क्योंकि कोरा शब्द चमत्कार प्रस्तुत करने से भावपूर्ण काव्य की रचना नहीं हो सकती।

संस्कृत की भांति प्राकृत शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने अनेक स्थलों पर किया है। निम्न पंक्तियों में संस्कृत मिश्रित प्राकृत का प्रयोग द्रष्टव्य है—

- अतिशय है चउतीस ईश की, प्रातिहार्य अठ परिमाणं।
  पांच-तीस गुण गर्भित वाणी, अंग अलौकिक संठाणं॥ शासन पृ. १९
- कुसुमप्रज्ञा विविध विषयज्ञा बनी, समणी सयाणी।
  करे स्थापित कीर्तिमान, रिसर्च में 'तुलसी' इयाणी॥

प्राकृत भाषा के कुछ शब्द, जो उनके काव्य में बहुलायत से प्रयुक्त हुए हैं—

अस्सिं, किच्चं, अत्ता, अप्पा, गुत्त, सच्छ, अंतेउर, पत्थ, पवित्त, छट्ठ, अहासुहं, तहत्ति, चउव्वीसं, जिणवर, समणोहं, मज्झिम, अत्थि आदि।

कहीं-कहीं पूरा गीत या पद्य प्राकृत भाषा से प्रभावित है—

- पंच समिइसमियस्स वा, गुत्तिंदिय गुत्तस्स।
  सिद्धि सया हत्था गया, गुत्तबंभयारिस्स॥ माणक पृ. ४४
- संघं सरणं, धम्मं सरणं।
  मेरं सरणं, है संतरणं॥ नंदन पृ. ३९

आगमिक उद्धरणों एवं सूक्तों का प्रयोग भी कवि की प्राकृत भाषा के प्रति गहन अभिरुचि को व्यक्त करता है—

- 'जुद्धारिहं दुल्लहं' स्मृति में, डटे रहे रणवीर। शासन पृ. ३९
- सूक्त 'खणं जाणाहि' न भूलें,
  अभिनव आयामों को छू लें॥ अणु पृ. ११४
- 'अत्तकड़े दुक्खे न परकड़े', जिनवाणी बतलाती। परीक्षा पृ. ७३

ईश्वर कर्तृत्व का खंडन कर जैन मान्यता को स्थापित करते हुए कवि

कहते हैं—

है विश्व अनंत अनादि, परिवर्तन रूप में।
फिर स्रष्टा क्या सरजेगा ? जब 'लोए सासए' ॥ शासन पृ. ९३

तद्भव शब्दों का प्रयोग

तद्भव शब्दों के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति में सहजता, स्वाभाविकता एवं सरलता रहती है। हिन्दी काव्यों में तद्भव शब्दों का प्रयोग अभिव्यक्ति को एक विशिष्ट निखार एवं गति प्रदान करता है। आचार्य तुलसी का यह आग्रह नहीं था कि हिन्दी में तत्सम शब्दों का ही प्रयोग किया जाए या तद्भव शब्दों का, जहां उन्हें भाषा के प्रवाह में जैसा उचित लगा, उसका उपयोग कर दिया। उच्चारण-लाघव एवं भाषा में बोलचाल का पुट देने हेतु उन्होंने अनेक तद्भव एवं अर्द्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। राजस्थानी भाषा में निबद्ध काव्यों में उन्होंने ग्रामीण शब्दावलि का भी प्रयोग किया है। तद्भव शब्दों के प्रयोग से उनके काव्य में सजीवता एवं प्रवाहशीलता आ गयी है। उनके काव्य में प्रयुक्त लोक-प्रचलित तद्भव शब्दों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

फरस (स्पर्श), अगणि (अग्नि), नखत (नक्षत्र), सांझ (संध्या), जोधा (योद्धा), सपन (स्वप्न), सांई (स्वामी), नेम (नियम), जस (यश), राखस (राक्षस), नेन (नयन), नेत (नेत्र), तीरथ (तीर्थ), हिरदै (हृदय), महातम (माहात्म्य), सोरठ (सौराष्ट्र), रेस (रहस्य), सोदर (सहोदर), बरखा (वर्षा), सीख (शिक्षा), किसन (कृष्ण), पीहर (पितृगृह), नित (नित्य), दोफार (दोपहर), अनून (अन्यून), व्यावच (वैयावृत्त्य), सुध (शुद्ध), चानणी (चांदनी), रखपुन्यू (राखीपूनम), शेख (शेष), सबदर्शी (सर्वदर्शी), तत्खिण (तत्क्षण), अभिन्तर (आभ्यन्तर), छोह (क्षोभ), खमता (क्षमता), पहर (प्रहर), अमरित (अमृत), छिन (क्षण), निरणो (निर्णय), परतख (प्रत्यक्ष), उवेख्या (उपेक्षा), भारज्या (भार्या) आदि।

तत्सम शब्दों को तद्भव बनाने के लिए स्वरभक्ति के प्रचुर प्रयोग आचार्य तुलसी के काव्य में मिलते हैं—

परसंग (प्रसंग), मारग (मार्ग), हरस (हर्ष), रतन (रत्न), मुगति (मुक्ति), निरमाण (निर्माण), परसिद्ध (प्रसिद्ध), गुपति (गुप्ति), चरचा (चर्चा), परवरती

(प्रवृत्ति), सगति (शक्ति), उगती (उक्ति), करता (कर्त्ता) आदि।

क्षतिपूर्ति रूप दीर्घीकरण के भी अनेक उदाहरण उनके काव्य में मिलते हैं— साकर (शर्करा), साद (शब्द), जीभ (जिह्वा), पूंछ (पुच्छ), लाज (लज्जा), ताती (तप्ति), सपूत (सुपुत्र), विमास (विमर्श)

इसी प्रकार स्वर-परिवर्तन एवं स्वरलोप के भी अनेक उदाहरण उनके काव्य में दिखाई देते हैं—

इ > अ — मालिक > मालक, अनीति > अनीत, समाधि > समाध।

ई > उ — सीधी > सूधी,

उ > अ — भानु > भान, साधु > साध, चक्षु > चख, ऋतु > रुत आदि।

अ > इ — उदयपुर > उदियापुर

काव्य में तद्भव शब्दों के कुछ विशेष प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

- छमता के छिप ज्यावैला। नंदन पृ. १५
- गच्छ गच्छनायक बिना, रहै न रच्छित रूप।
  यथा दच्छ वनपाल बिन, उपवन बणै विरूप॥ कालू, भा. १ पृ. ७७

यहां क्षमता के स्थान पर छमता तथा दक्ष और रक्षित के स्थान पर दच्छ और रच्छित शब्द का प्रयोग अधिक प्रभावी है।

देशज शब्दों का प्रयोग

देशज शब्द वे हैं, जिनकी कोई व्याकरण सम्मत व्युत्पत्ति नहीं होती। आचार्य तुलसी ने अपने काव्य में भावानुकूल देशज शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। देशज शब्दों के कुछ प्रयोग निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं—

- खड़ी-खड़ी मैं खेचल खाटूं, घर आवो तो खुरड़ो काटूं॥ चंदन पृ. ५९
- बड़ा-बड़ा ढ़िंचालां नें, पड़्यो लोहो मानणो। नंदन पृ. १६
- संयम पाल्यो शर्माशर्म, धींगाणै रो होग्यो धर्म। चंदन पृ. ५१
- बात-बात में खूंचणा रे, काढ़ण लाग्या लोग। डालिम पृ. ४२

यहां बड़े-बड़े लोगों की अपेक्षा 'ढ़िंचाला' शब्द के प्रयोग से ध्वनि-संगीत पैदा हो गया है। राजस्थानी भाषा में लिखे चरित काव्यों में अनेक ऐसे देशी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनका अर्थबोध सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन है पर शब्दों को जीवित रखने के लिए उन्होंने सलक्ष्य ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे—अगाऊ, आफणी, उजमाल, कडाजूड आदि। कवि

द्वारा प्रयुक्त कुछ देशी शब्दों की सूची इस प्रकार है—

अंवेर (संभाल), अडोला (सूना), आखतो (परेशान), टाणै (अवसर), डाहा (समझदार), डील (शरीर), खूंचणा (गलती), जेज (देरी), तड़को (धूप), धीनड़ (बेटा), पांगरना (पधारना), पेंडो (रास्ता), पोढ़ना (सोना), फोकट (व्यर्थ), बाण (आदत), बानगी (नमूना), बोछरड़ी (उच्छृंखल), मलपता (मुस्कान), माड़ा (दुर्बल), मींट (दृष्टि), मोभी (ज्येष्ठ पुत्र), मोरां (पीठ), रढ़ियाली (जिद्दी), रलियात (प्रसन्नता), लहलीन (तल्लीन), सांतरा (अच्छा), सिरावण (नाश्ता), सीर (हिस्सा), हलवे (धीरे), होले (धीरे), खटोखट (ठीक), जोम (अहंकार)।

आचार्य तुलसी के साहित्य में राजस्थानी भाषा के अनेक ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जिन्हें साहित्यिक नहीं कहा जा सकता पर वे शब्द अपने भाव या आशय को इतनी स्पष्टता से व्यक्त करते हैं कि उनके समक्ष साहित्यिक शब्द भी फीके पड़ जाते हैं, जैसे— जीसोरो (प्रसन्नता), खाटना (परिश्रम करना), थ्यावस (धैर्य), बरतारा (समय), सांतरा (सुन्दर), हूंस (इच्छा)।

विदेशी शब्दों का प्रयोग

भाषा की सहजता, सरलता और स्वाभाविकता हेतु कवि विदेशी शब्दों का प्रयोग करता है। आचार्य तुलसी ने अनुभूति की सहजता और ऋजुता के लिए अन्य भाषाओं के विदेशी शब्दों से भी राजस्थानी और हिन्दी भाषा को समृद्ध किया है। ये शब्द काव्य में बाहर से आरोपित नहीं लगते और न ही भाषा की संस्कृति और सौन्दर्य को नष्ट करते हैं। विषयानुकूल विदेशी शब्दों के प्रयोग से भाषा सुंदर, प्रभावशाली, व्यञ्जक और व्यापक हो गयी है। कवि द्वारा प्रयुक्त कुछ लोक-प्रचलित उर्दू और फारसी शब्द इस प्रकार हैं—मगरूर, मसीहा, मुबारक, मेहमान, बेदाग, बेहोश, बगशीस, बयान, दगा, दरबार, दर्द, गर्क, नाज, निशानी, हुकुम, हाल, फौरन, बाग, गुस्सा, खूब, खुदा, शायद, दिल, नादान, मुकाम, जाहिर, मजाल, दीदार, नूर, अल्ला, हकीकत, फजीत, तजबीज, बेबुनियाद, लवाजमा, हिसाब, अजब, जोखिम, सरंजाम, दफनाना, हद, आब, रफत, मस्जिद, मुल्ला, कोल, इंसानियत, लखदाद, जुल्म, आजमाइश, फरमान, कब्जा, अंदाज, मंजूर, लिहाज, गफलत, रूबरु, आदि।

अलंकार में नगीनों की भांति आचार्य तुलसी ने उर्दू शब्दों को राजस्थानी काव्य में जड़ दिया। एक नेतृत्व से शासित तेरापंथ के वैशिष्ट्य को बताने में प्रयुक्त उर्दू शब्द अभिव्यक्ति को मार्मिक एवं तीखा बनाते हैं—

सारां पेली आ बात बड़ी, है एक सुगुरु रो हाल-हुकम,
पत्तो भी हिलै न आज्ञा बिण, आज्ञा री हलचल है हरदम।
चेला चेली पुस्तक-पानां, सब एक धणी री सम्पत है,
धणियाप नहीं इण पर किणरो, किणरो हक है, न हकूमत है॥ डालिम पृ. ५९

कहीं-कहीं पूरे पद्य में उर्दू शब्दों का बहुलायत से प्रयोग मिलता है—

- रात-दिन अपने से अपना, हो परीक्षण लाजमी।
  आज कुछ मैंने किया, ऐसी हो दिल में दिल-जमी॥ नंदन पृ. ७६
- खुद की रुहानी ताकतें, खुद से आजाद हो।
  इंसानियत आबाद हो, ऐसा जिहाद हो॥ अणु पृ. १०९
- झूठ जालिमता व जुल्मों के जमाने आज जो।
  डट खड़ा प्रण सत्य पर, लखदाद नर-शिरताज वो॥ अणु पृ. ३६

कहीं-कहीं उन्हें तुक के लिए भी उर्दू शब्दों का साभिप्राय प्रयोग करना पड़ा—

- मर्यादा का भंग बनाता, जीवन को बदरंग।
  खो देती अस्तित्व हाथ से, छूटी हुई पतंग॥ नंदन पृ. २२
- रूप धर्म का नित नवीन है, और सदा है ताजा।
  आत्मजगत् को पाए अग-जग, उसका यही तकाजा॥ नंदन पृ. ४९
- गणी और गण स्यूं राखो एक सरखी प्रीत।
  अवनीतां री संग कियां, होवेला फजीत॥ डालिम पृ. ३५
- संत हुयो भारी शरमिंदो।
  देखण लाग्यो अपणो पिंदो॥ चंदन पृ. ५९

उर्दू के अनेक युग्म भी उनके काव्य में सौन्दर्य-वृद्धि करते हैं—

हद-बेहद, हाल-बेहाल, राजी-बेराजी, काम-बेकाम, दरकार-बेदरकार, मिसाल-बेमिसाल आदि।

कवि ने कहीं-कहीं अन्य भाषा के शब्दों में भी उर्दू के प्रत्यय लगाकर राजस्थानी भाषा को समृद्ध किया है। मन की चंचलता के बारे में चित्रण करते हुए कवि कहते हैं—

- लम्बी उड़ाण भरै, पंखी बेपांख ओ,
  दूर-दूर झांक झांखै, के है बेआंख ओ।
  पैरां बिना ओ भटकोल॥ सुधा पृ. ६३

इसी प्रकार बेटाईम, बेजोड़ आदि शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

जन-जीवन में प्रचलित अंग्रेजी शब्दों को भी कवि ने हिन्दी और राजस्थानी भाषा में इस प्रकार फिट कर दिया है कि वे अलग भाषा के शब्द प्रतीत नहीं होते। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ अंग्रेजी शब्दों की सूची इस प्रकार है—

अफसर, अर्जेन्ट, कालम, ट्राफिक, टाईम, मिनिट, पुलिस, होस्टल, रोड, सेट, सीन, बल्ब, प्रोग्राम, मोटर, कॉलेज, थ्योरी, रूल, क्यू, नोट, प्लास्टिक, पोइंट, पोस्टर, न्यूज, रिजर्व, बिजनिस, रेलिंग, सिगरेट, कैम्प, हाबी, सरेंडर, प्योर, सीजन, मिनट, चेक आदि। अंग्रेजी शब्दों के कुछ प्रयोग—

- बात विसर्जी लगी इनर्जी, इकतरफी इकलक्षी। सहिष्णुता पृ. १५
- सांझ पंचमी समिति स्यूं, सदा पहुंचता लेट।
  वर्षा स्यूं मुनि मगन रो, ओ क्रम डे टू डेट॥ मगन पृ. ८०
- दुनिया चित पुट रो खेलजी।
  सुणल्यो चहै सोर्ट डिटेल जी॥ सेवा पृ. १४१
- आफत में आई, कुटिल कर्म री थ्योरी। सेवा पृ. ९

कहीं-कहीं उन्होंने अंग्रेजी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन एवं स्वरभक्ति का प्रयोग भी किया है—

इस्कूल, सिनेरी, टेम (टाईम) नरवस, नरसां आदि।

कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्द का हिन्दी में बहुवचन का प्रयोग भी किया है—

सोसाइटियों, डाक्टरों, बिल्डिंगां, मीटिंगा, कारां, लिस्टां, ट्रेनां, हास्पिटलां आदि।

कहीं-कहीं तुक के लिए अंतिम शब्द भी अंग्रेजी का प्रयुक्त किया है—

- दक्षिण का इतिवृत्त श्रुतिश्रुत, दिल को छूता डेली।
  जैनी जीवन शैली॥ श्रावक पृ. १३१

प्रान्तीय भाषाओं का प्रयोग

आचार्य तुलसी जीवन भर यायावर रहे। भारत के प्राय: सभी प्रान्तों की उन्होंने पदयात्रा की अत: प्रान्तीय भाषाओं के उपयुक्त शब्दों का प्रयोग भी स्वत: उनके काव्य में हो गया है। विशेष रूप से गुजराती भाषा के अनेक शब्द उनके काव्य में मिलते हैं, जैसे—छतां, जोइ, थइ, सांभलना, खप, जोवे, पोते (स्वयं) बीजो, हिवे, माटे (अवसर पर), बेसाणणो (बिठाना) आदि।

गुजराती शब्दों के प्रभाव से युक्त काव्य-रचना के उदाहरण इस प्रकार हैं—

- मुनिवर नै आपो झूंपड़ी आपां री। चंदन पृ. ९१
- कहणै री कही और सुणणै री सांभली॥ चंदन पृ. १६०
- उपयोगे उपधि ग्रहो मूको। सुधा पृ. ६९
- तो स्या माटे विणमी पाटे।
- आवी रचना क्यां ही जोवा में नांवै।
  हू घणो फर्‌यो दुनियां में दर्शक दावै॥ सेवा पृ. ५७
- ध्यावणो है ध्यान, ऊभो-ऊभो ध्यावस्यूं। चंदन पृ. २३

इसी प्रकार कवि ने पंजाबी और हरियाणवी आदि भाषाओं के शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया है। सहज सरल भाषा में राजस्थानी भाषा के बीच हरियाणवी भाषा के प्रभाव का उदाहरण द्रष्टव्य है—

कित सै रे चिरंजी! है कितोड़ नै बैठो।
दोन्यां रै तन मनु, भूत भयंकर पेठो॥ माणक पृ. ७७

इस प्रकार अरबी, फारसी, उर्दू आदि भाषा के शब्दों का प्रयोग उनके बहुविध भाषा के ज्ञान का प्रतीक है।

अनुकरण

आचार्य तुलसी की काव्य भाषा में सुमधुर नाद और संगीत की धारा सर्वत्र प्रवहमान है। लय एवं नाद-सौन्दर्य की उत्पत्ति हेतु आचार्य तुलसी ने अनुकरणात्मक शब्दों का यथास्थान प्रयोग किया है। निम्न पंक्तियां नृत्य का

सा चित्र उपस्थित करती हैं—

- जुग नाग-नागणी चलै, सरर-सर भू पर।
  इक श्वेत सर्प बैठ्यो, दोन्यां रै ऊपर॥ डालिम पृ. १८४
- हणहणाट कर झणझणाट कर, बहै नृत्य करता री। कालू, भा. २, पृ. २२२
- आछा-आछा है जो साधु, रोज मचासी दड़बड़सी।
  अपणै-अपणै हक पर क्यूं नहिं, ओघा पातर खड़बड़सी॥ डालिम पृ.

७ ३

डिंगल शैली में उत्सव की छटा नाद-सौन्दर्य पैदा करने वाली है—

- धार्मिक उत्सव छटा अचक्का,
  नहिं आडम्बर ढोल-ढ़मक्का,
  डिंडिम नाद न दुंदुभि-ढ़क्का,
  छक्कम-छक्का हार्दिक भक्ति, विनय उपचार में रे॥ माणक पृ. ६३

बाहुबलि और भरत के द्वन्द्व युद्ध में अनुकरणात्मक शब्दों का नाद-संगीत द्रष्टव्य है—

है मजेदार ओ मल्ल युद्ध, सुर दानव-मानव मस्त हुया।
हलफलता आफलता बाहूबल भरत लड़ै अभ्यस्त हुया॥ चंदन पृ. १५

काव्य में प्रयुक्त कुछ अनुकरणात्मक शब्दों की सूची इस प्रकार है—खड़बड़ात, हड़बड़, झणझणाट, छल-छल, झूम-झूम, टिम-टिम, रिमझोल, टणटणाट।

उचित ध्वनि पैदा करने वाले कुछ अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

- इक दिन शिशु पडिलेहण करतो,
  दीठो डांफर ज्यूं ठंठरतो,
  तरुवर पल्लव ज्यूं थरहरतो॥ कालू भा. १, पृ. ६९
- कड़कड़ाट कर केहरी, धड़हड़ धड़क्यो धींग।
  धड़हड़ धड़क्यो कातरां, कालेजो सुण डींग॥ कालू भा. २ पृ. १०४
- खमा-खमा आवाज सुणत ही, दड़बड़-दड़बड़ दौड़े जी।
  खड़बड़ाट घर, हाट, खाट तज, गुरु चरणां कर जोड़ै जी॥
  कालू,भा. १, पृ. १४९

पुनरुक्ति एवं युग्म शब्दों का प्रयोग

आदर, भय, शोक, आश्चर्य और घृणा आदि किसी भाव को प्रकट करने के लिए जब एक शब्द बार-बार पुनरुक्त होता है, तब काव्य में प्रभान्विति एवं सौन्दर्य पैदा हो जाता है। काव्य-भाषा में इसे पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार भी कहते हैं। अभीष्ट भावों की सुंदर, सजीव एवं मधुर अभिव्यक्ति के लिए आचार्य तुलसी ने अपने काव्य-साहित्य में शब्दों की पुनरुक्ति इस प्रकार की है, जिससे ध्वनि-चमत्कार के साथ अर्थ की सुंदरता भी बढ़ गई है। साथ ही काव्य में स्निग्धता और गतिमयता का प्रवेश भी हो गया है। निम्न पद्यों में प्रयुक्त पुनरुक्ति विचित्र नाद-सौन्दर्य उत्पन्न करने वाली है—

- रहणो संयम में रम्यो-रम्यो,
  आयो कि परीषह खम्यो-खम्यो,
  रखणो दुर्दम मन दम्यो-दम्यो॥ कालू भा. १ पृ. ६९
- नाथ अलौकिक, आथ अलौकिक साथ अलौकिक साथ।
  कालू भा. २ पृ. ७७
- गति में स्थिरता, मति में स्थिरता, स्थिति में स्थिरता थाप।
  कृति में स्थिरता, धृति में स्थिरता, वृति में स्थिरता व्याप॥ मगन पृ. १३५
- सुघड़ लेख वाचक सुघड़, सुघड़ काव्य जल्पंत।
  शासन रो सेवक सुघड़, सुघड़ सोहनो संत॥

राजस्थानी में पालकी को 'सुखपाल' कहते हैं। उसके साथ सुखे शब्द की पुनरुक्ति नाद-सौन्दर्य उत्पन्न करती है—

सुखे-सुखे सुखपाल।

आश्चर्य और प्रसन्नता प्रकट करने के लिए कवि ने शब्दों की पुनरुक्ति की है—

अद्‌भुत तप अनशन अटल, कीन्हो भारी काज।
वयोवृद्ध शासन सुखद, वाह! वाह! मुनि बच्छराज॥ शासन पृ. १६९

कहीं कहीं कवि ने लकीर से हटकर युग्म शब्दों में एक हिन्दी और एक राजस्थानी शब्द का प्रयोग भी किया है। अग्नि परीक्षा के समय सीता का चित्र—

किंचित् भी भय का काम नहीं,

वह पुलक रही है, मुलक रही॥ परीक्षा पृ. १५९

निम्न उदाहरण में 'चित्र' शब्द की पुनरावृत्ति कवि के विस्मय को साक्षात् प्रस्तुति दे रही है। आश्चर्य को प्रकट करने के लिए यह कवि की विशिष्ट शैली है—

- सप्तम 'डाल गणेश' को, समुचित चारु चरित्र।
  अद्यावधि अलिखित रह्यो, चित्र! चित्र! अतिचित्र॥ डालिम पृ. २९

कहीं-कहीं शब्दों की पुनरुक्ति साक्षात् बिम्ब प्रस्तुत करती है—

- चौक चौहटा मध्य बजार, गली-गली घर-घर गुलजार।
  एक हि चरचा एक हि बात, अपणी नगरी रा पितु-मात॥ चंदन पृ.८५
- तुतली-तुतली प्यारी-प्यारी, मीठी-मीठी बोली।
  बड़ी सुहानी हृदय लुभानी, सूरत भोली-भोली॥ पानी पृ. ५७
- चोक-चोक में ओक-ओक में, लोक थोक मिल सारे। कालू भा. २ पृ. ८५
- डब-डब हैं दोनों आंखें, अवरुद्ध कंठ गुरुवर के।
  बोले हैं गद्गद स्वर से, सबको सम्बोधित करके॥ पानी पृ. ३२

मनोभावों के उत्कर्ष हेतु भी कवि ने शब्दों की पुनरुक्ति की है—

कार्य जो शासन व्यवस्था के, जरा प्रतिकूल हो।
मत करो, मत प्रेरणा दो, मत ना ऐसी भूल हो॥ नंदन पृ.७६

यहां 'मत' शब्द की पुनरुक्ति अनुशासन की सुदृढ़ता को प्रकट कर रही है।

निम्न पंक्तियों में पुनरुक्ति से धिक्कार और अन्याय का भाव साक्षात् प्रकट हो गया है—

- परवश जीवन को अहो!, लाख-लाख धिक्कार। परीक्षा पृ. ५३
- मार कितनों को किया, षट्खंड पर अधिकार है।
  रक्त रंजित राज्य को, धिक्कार है, धिक्कार है॥ भरत पृ. ११४
- माता को ऐसा कष्ट दिया, क्या काम राम ने हाय! किया।
  अन्याय किया, अन्याय किया, यह महाघोर अन्याय किया॥
  परीक्षा पृ. १११

निम्न उदाहरण में शर्म और "घबराए" शब्द की पुनरुक्ति से शर्म और घबराहट का भाव साकार हो गया है—

- हा! शर्म! शर्म! अन्यायी नीच अधर्मी।

क्यूं कियो क्रूर बन, अनुचित कर्म कुकर्मी ॥ चंदन पृ.८७

- घबराए-घबराए आए, राघव ने आसन्न बुलाए। परीक्षा पृ. २९

दु:ख की विविध परिस्थितियों में 'दु:ख' शब्द की पुनरुक्ति चमत्कार पैदा करने वाली है—

नहिं धन तो दु:ख, बहु धन तो दु:ख, त्यूं नहिं बहु परिवार।
रांकां ने दु:ख, धींगां नै दु:ख, बरतै दु:खम आर॥ सुधा
प ृ . १ ६

कहीं-कहीं व्यक्ति के नाम की पुनरुक्ति साभिप्राय हुई है—

कालू शासन कल्पतरु, कालू कलानिधान।
कालू कोमल कारुणिक, कालू गण की शान॥ कालू भा. १ पृ. ६१

विरोधी शब्द का प्रयोग होने पर भी भय शब्द की पुनरुक्ति भय का साक्षात् बिम्ब प्रस्तुत कर रही है—

बाहर भय है, भीतर भय है, घर-घर भय ही भय है, संत सदैव अभय है।
ऊपर भय है, नीचे भय है, सब कुछ भय ही भय है, केवल संत अभय है॥
चंदन पृ. ९०

कवि ने कहीं-कहीं सलक्ष्य शब्दों की पुनरुक्ति की है। उनके काव्य में पुनरुक्ति-सौन्दर्य के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- नई कल्पना नई उमंगें, नव चिन्तन घन नई तरंगें। नंदन पृ. ५७
- धर्मनीति के प्रथम प्रवर्तक, आर्हत मत अधिनेता।
  धार्मिक प्रथम, प्रथम भिक्षाचर, प्रथम सत्य-निर्णेता॥ भरत पृ. ३
- जलधर बनकर नृप बरस रहे, मुख-मुख जय जय मंगल-मंगल। भरत पृ.
३९
- अरुण अरुण है, अरुण व्योम है, अरुण सलिल है अरुण
ध र ा ।
  तरुण अरुणता लिए ज्योतिमय, रूप मैथिली का निखरा॥ परीक्षा पृ.
१ ५ ६
- चलकतो चलक-चलक चेहरो, मलकतो श्रमण-संघ सेहरो।
  विलोकन खलक-मुलक भेरो, अलख छक खमा-खमा केरो॥
  कालू भा. १ पृ. १६८

- कोमल तन में कोमल मन था, कोमलतम सारा जीवन था। शासन पृ. ६३

कहीं-कहीं गीत की लय के कारण भी पुनरुक्ति हुई है—

- धीमै-धीमै बोल अरे! तूं, बावलिया! बावलिया।
  चुग लेसी कोइ चुगल चिड़ी ज्यूं, चावलिया-चावलिया॥ चंदन पृ. ११६
- बाहुबल सच्ची वीरता समरांगण में दिखलाई,
  गौरव भरी गंभीरता, समरांगण में दिखलाई।
  धरणीधर की सी धीरता, समरांगण में दिखलाई,
  इक्ष्वाकू-कुल कोटीरता, समरांगण में दिखलाई॥ चंदन पृ. १८

कहीं-कहीं पूरे वाक्य की पुनरुक्ति है। निम्न उदाहरण में प्रथम 'बेटे रो राज है' में मंत्री मुनि का मां वदना से प्रश्न है लेकिन उसी वाक्य को पुनरुक्त करती हुई मां वदना व्यंग्य में बोलती है—

पूछे मंत्री शासण में, बेटै रो राज है।
तिण कारण लेवो दीक्षा, मन ममता मारी है?
बोली तड़ाक तब वदना, बेटै रो राज है।
तो संजम रै कष्टां री, सारी छुटकारी है? मां पृ. २३

कुछ शब्दों की पुनरुक्ति उनके साहित्य में बार-बार हुई है— कोमल-कोमल, मीठी-मीठी, गलियां-गलियां, चुपके-चुपके, डगर-डगर, छिन-छिन, पल-पल, झूम-झूम, गली-गली, सौ-सौ, भांत-भांत, कल-कल, नव-नव आदि।

भाषा में बोलचाल की पुट देने के लिए कवि ने युग्म शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा के कुछ युग्म शब्दों की सूची इस प्रकार है— ऊब-डूब, ठोक-पीट, तोड़-फोड़, गुम-सुम, हरी-भरी, अजब-गजब, अगल-बगल, चहल-पहल, दौड़-धूप, छीना-झपटी, जियां-तियां, इसी-बिसी, दया-मया, बेमारी-सेमारी, ऊह-पचूह, आण-काण, रेणो-सेणो, अंवली-संवली, डरूं-फरूं, ओच्छव-मोच्छव, सुध-बुध, ओसर-मोसर, मेल-जोल, अठी-बठी, तण्या-धण्यां, तुरत-फुरत, अला-बला, संजम-वंजम, अलडो-पलडो आदि।

काव्य में प्रयुक्त युग्म शब्दों के कुछ प्रयोग प्रस्तुत हैं—

- टेढ़ी-मेढ़ी बातां बहुली पहुंचाई। मगन पृ. २७
- उलटी-सुलटी बहती यों ही, यह जन-मत की धारा। परीक्षा पृ. ४७
- पानां जीर्ण-शीर्ण सा पर, हस्ताक्षर मोती जिसा पुनीत। शासन पृ. ५२
- सब टुगर-टुगर कर अठी-बठी नै जोवै। मगन पृ. ४७
- सुवरण मणि रयणां भर्‌यो, संपत नाप-सनाप। चंदन पृ. ७९

कवि कृत स्वोपज्ञ युग्म शब्दों के कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

- फिर तर्क-फर्क बेकाम जी।
- सड़कां सुड़कां री है नहिं, कहीं व्यवस्था। मगन पृ. ५३
- टलै संकट-वंकट छिन में। शासन पृ. ७८
- सी-सर्दी-गर्मी वर्मी रो नहिं भय, भय इक दुष्कर्मी रो। कालू भा. २ पृ १३७
- निज चलण-वलण उण अनुसारे ही करणो। डालिम पृ. २०६
- लख प्रतिपल आंख्यां, खून-बून बरसाती। कालू भा. १ पृ. २११

तुकबंदी के लिए कवि ने कहीं-कहीं युग्म शब्दों को आगे पीछे भी किया है। मां वदनांजी के समक्ष मूत्र-चिकित्सा का विकल्प रखने पर उनकी स्थिति का चित्रण करते हुए कवि ने चोडै-छाने के स्थान पर छाने-चोड़ै कर दिया है—

जद बात चलाई, मांजी नाक सिकोड़े।
ल्यूं इसी सूगली चीज न छाने-चौड़े॥ मां पृ. ४३

इसी प्रकार कुछ और उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं—

- सदा धरम की धाम-धूम है। डालिम पृ. ११६
- फर्श्या पुर सरदार, अस्सी घर एकण दिने।
  सीढ़ी चाढ़-उतार, चौदह सौ संख्या हुई॥ मगन पृ. १००

कहीं-कहीं युग्म शब्दों का प्रयोग एक विशेष अर्थ को प्रकट करने के लिए एक साथ न करके अगल-अलग किया है। लक्ष्मणजी अपनी अन्तर्वेदना प्रकट करते हुए कहते हैं—

भाभी का अपमान इधर है, उधर ज्येष्ठ है तात समान।
कभी न पहुंची जैसी, वैसी आज लगी है ठेस महान्॥ परीक्षा पृ. ५१

परिभाषाएं

कहीं-कहीं काव्य में सहज रूप से विशिष्ट शब्दों की परिभाषाएं प्रकट हो गयी हैं, जैसे—युगपुरुष, अनुशासन, कार्यकर्ता, भक्त और वीर की परिभाषा

निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

- पर-पीड़ा में जो अपनी ही, पीड़ा का अनुभव करता है,
  जो सत्य और सिद्धान्तों के, खातिर ही जीता-मरता है।
  पददलितों का उत्थान करे, युगपुरुष उसी को कहते हैं,
  जो स्वयं-सत्य-संधान करे, युगपुरुष उसी को कहते हैं॥ नंदन पृ. १३९
- संशोधन में, अवबोधन में, निज-पर का भेद रहे न जरा।
  हित-साधन ही हो एक लक्ष्य, वह शासन ही अनुशासन है॥ नंदन पृ. २८
- वही कार्यकर्ता जो करता, कार्य लगन के साथ।
  तड़प काम करने की जिसमें, रहती है दिन-रात॥ अणु पृ. ५३
- क्षण-क्षण लव-लव पलक पल, सफल करै बो भ क त।
  सुगुरु चरण सुख शरण में, रहे सदा अनुरक्त॥ कालू, भा. २ पृ. १२६
- अनवरत चलता चले, रुकना न जाने,
  अहिंसा को कायरों का पथ न माने,
  वही वीर है अभिनव पौरुष का वरदानी॥ आत्मा पृ. १९

राजस्थानी भाषा में दीक्षा की सटीक परिभाषा द्रष्टव्य है—

छोड़ असंयम संयम जीवन, जीणो ही है दीक्षा।
जीवन भर अपणै जीवन री, करणी कड़ी समीक्षा॥ कालू भा. २ पृ. १२७

कहीं-कहीं आगम के आधार पर भी परिभाषाओं को काव्य में गुंफित कर दिया गया है। आयारो के सूक्त के आधार पर 'वीर' शब्द की परिभाषा करते हुए कवि कहते हैं—

पगडंड्यां नै छोड़ करै जो, महापंथ प्रस्थान है,
जागृत और वैर स्यूं उपरत, महायान अभियान है,
आ वीरवृत्ति बतलाई॥ चंदन पृ. २०

आगम में प्राकृत भाषा में दी गई जीव की परिभाषा द्रष्टव्य है—

'उवओगलक्खणो जीवो,'
नित जगै ज्ञान को दीवो॥ सुधा पृ. ३७

परिभाषाओं के अतिरिक्त कहीं-कहीं कवि ने विशेष शब्दों की विशिष्ट व्याख्या भी प्रस्तुत की है। राजा श्रेणिक के समक्ष अनाथ और नाथ शब्द की जो विस्तृत व्याख्या अनाथी मुनि के माध्यम से कवि ने प्रस्तुत की है, वह उनके बाहुश्रुत्य और कल्पना-वैभव को प्रकट करने वाली है। उदाहरण के रूप में कुछ पद्यों को प्रस्तुत किया जा सकता है—

- यौवन है, धन है, काञ्चन है, सज्जन परिजन सारा।
  तात-मात है आथ-साथ है, नाथ न कोई म्हांरा॥ चंदन पृ. १८३
- घर में धन रो भंडार भर्‌यो, जेवर स्यूं सारो अंग जड़्यो।
  पर पड़्यो लोभ में मम्मण ज्यूं, बो बणसी किण रो नाथ? चंदन पृ. १९१
- जो करे हकूमत लाखां पर, पर नहिं निज कानां आंख्यां पर।
  भूं पर विकार की रेख रहै, बो बणसी किण रो नाथ? चंदन पृ. १९१
- जो अभय अहिंसा सत्य वरै, मरणै स्यूं भी जो नहीं डरै।
  बो वीर सधीर तीर, भवजल को पावै, भावै नाथ॥ चंदन पृ. १९१
- अपणै सम ही पर प्राण गिणै, निज सम पर सुख-दुःख भान गिणै।
  नहिं हणै हणावै जीव जगत् को, बो निज पर को नाथ॥
  चंदन पृ. १९१

पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग

दो-तीन पर्यायों का एक साथ प्रयोग करने से व्यक्त अर्थ रेखांकित हो जाता है। किसी वस्तु, व्यक्ति या भाव के सर्वांगीण स्वरूप को प्रकट करने के लिए कहीं-कहीं कवि ने अनेक एकार्थक शब्दों का एक साथ प्रयोग किया है, जो उसकी विविध पर्यायों को प्रकट करने वाले हैं। अर्हत् के स्वरूप को प्रकट करने वाले पर्यायों की छटा द्रष्टव्य है—

ईश्वर अखिलेश्वर।
प्रभु परमातम परमेश्वर।
प्राणप्रिय जैन जिनेश्वर॥ शासन पृ. ३६

निम्न उद्धरणों के पर्यायों में समतामूलक अर्थीय समानान्तरता प्रकट हो

गयी है—

- पृष्ठ है अनोखा सबको इष्ट है, अभीष्ट है॥ नंदन पृ.३६
- कायर क्लीव सत्त्वहीणां रै, संजम खड्गां धार।
  साहसीक शूरां वीरां रै, है संजम उपहार॥ मैं तिरूं पृ. ७२
- इधर लव अंकुश समुद, सानंद सविनय आ रहे। परीक्षा पृ. १४२
- वज्राहत हूं, मर्माहत हूं, पीड़ा रो नहिं पार। कालू भा. १ पृ. ७४
- नहिं आक्रोश रोष री रेखा, तन्मय है, चिन्मय है। चंदन पृ. ९०

कवि के द्वारा भावों के प्रकर्ष एवं बात पर बल देने हेतु क्रियाओं एवं शब्दों के एकार्थकों का प्रयोग भी किया गया है—

- पर तुम्हें नहीं जब पाएंगे, अकुलाएंगे, घबराएंगे। परीक्षा पृ. ७५
- वही अपने आप बिस्तर, बांधकर जाए चला।
  सोच ले, वह समझ ले, उसका इसी में है भला॥ भरत पृ. ११४

एकार्थक क्रियापदों के प्रयोग से पर्यायवाची क्रिया अपने पास वाली क्रिया में झंकार और शक्ति भर देती है—

- जान रहा हूँ, समझ रहा हूँ, सीता है निर्दोष।
  पर मैं विवश देखकर हूँ, यह जनता का आक्रोश॥ परीक्षा पृ. ४४
- आखिर तो तरणो उद्धरणो, अपनी काय स्यूं। मां पृ. २१

शब्द-शक्तियां

प्रत्येक शब्द के अर्थ का बोध शब्द-शक्ति के द्वारा होता है। शब्द-शक्ति अभिव्यक्ति का प्रमुख सौन्दर्य विधायक तत्त्व है। काव्य में शब्द अपनी शक्ति से ही जीवित रहता है। जो कवि शब्द की विशिष्ट शक्ति को पहचान कर उसे अनुभूति से अभिस्नात करके प्रयोग करता है, उसके काव्य में जीवन्तता आ जाती है।

काव्य को प्रभावोत्पादक, अर्थव्यञ्जक एवं आकर्षक बनाने के लिए आचार्य तुलसी ने शब्द की शक्ति को पहचान कर उसका सही उपयोग किया। सामान्य बात को भी उन्होंने शब्द-शक्ति के माध्यम से इस रूप में व्यक्त किया, जिससे वह प्रभावोत्पादक, सशक्त, अर्थ-व्यंजक और आकर्षक बन गई। आचार्य तुलसी का कवि कर्म शब्दों की सहजता में आस्था रखता था अत: उनकी शब्दशक्ति का रहस्य भावप्रवण अभिव्यक्ति और सहजता में

---

१. डॉ. कमला आत्रेय ; आधुनिक मनोविज्ञान और सूरकाव्य, पृ. ९३।

छिपा हुआ है। काव्य के आचार्यों ने तीन शब्द-शक्तियों का उल्लेख किया है—1. अभिधा, 2. लक्षणा, 3. व्यञ्जना।

अभिधा शक्ति

जब शब्द सामान्य एवं स्वाभाविक अर्थ प्रस्तुत करे, तब अभिधा शक्ति होती है। इसमें प्रसादगुण का प्राधान्य रहता है। यह मुख्यार्थ तक सीमित रहती है। आचार्य तुलसी ने अभिधा में भी स्वभावोक्ति से चमत्कार, सौन्दर्य और रस की सृष्टि की है। उनकी अभिधा शक्ति सहज, सरल, स्वाभाविक और प्रभावक है। अभिधा का चमत्कार निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

- आत्महित जन-हित उन्हें, पल-पल सजग करता रहा।
  आचरण की उच्चता से, पाप खुद डरता रहा॥ नंदन पृ. १४९
- उसने जितना सहा, किसी से सहा नहीं जा सकता।
  जो बलिदान किया, शब्दों से कहा नहीं जा सकता॥ नंदन पृ. १५३
- जाप भजन से मानस खिलता।
  अनुपम आध्यात्मिक सुख मिलता। पानी पृ. ३१
- मुख से सहसा तभी निकलता
  निर्बल के बल राम॥ परीक्षा पृ. ६८

अभिधा शक्ति में पुनरुक्ति-सौन्दर्य द्रष्टव्य है—

- रो रो पीछे पछताओगे, सच कहता हूँ दुःख पाओगे।
  सीता-सीता रटते-रटते, पूरे पागल बन जाओगे॥ परीक्षा पृ. ५०
- सीता के लिए कड़ी से भी मैं कड़ी शपथ खा सकता हूं।
  इसके सतीत्व को सप्रमाण, जब चाहे बतला सकता हूँ॥ परीक्षा पृ. ४८

लक्षणा शक्ति

लक्षणा शक्ति में शब्द के मुख्य अर्थ से सम्बद्ध एक नवीन अर्थ का बोध होता है। लक्षणा शक्ति शब्द और क्रिया के अतिरिक्त विशेषण के माध्यम से भी प्रकट होती है। इसे आज की भाषा में विचलन कहा जा सकता है। लक्षणा शक्ति में भाव की प्रमुखता होती है। आचार्य तुलसी ने काव्यानुभव को तीव्र बनाने के लिए लक्षणा शक्ति का उपयोग किया है न कि उसे सूक्ष्म और जटिल बनाने के लिए। लक्षणा शक्ति के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- बुझे कलह की आग, शांति से सधे शांत सहवास। नंदन पृ. ११८

---

१. दिनकर ; खुशबू के शिलालेख, पृ. १५७।

- आंरी बात सुण्या लाज नै भी लाज आसी। चंदन पृ. ५६
- मानवीय मूल्यों के दर्पण में, निज रूप निहारें। अणु पृ. १११
- उत्कंठा उत्कट बने, हो स्वयं हर्ष को हर्ष। नंदन पृ. ११३

राम के समक्ष कौशल्या और सुमित्रा की वेदना का चित्र खींचते हुए नारद कहते हैं—

वह त्रियामा राम! उनको, लक्ष-यामा हो रही।
विरह व्याकुल बनी, कौशल्या सुमित्रा रो रही॥ परीक्षा पृ. ५

यहां त्रियामा अर्थात् तीन प्रहर की रात्रि विरह वेदना से लक्षयामा के समान प्रतीत हो रही है। लक्षणा शक्ति के साथ उपदेश की छटा दर्शनीय है—

आंकणो है संयम रो मोल, मुट्ठी में मनड़े नै राखज्यो।
ल्यो अपनी आतमा नै तोल, मुट्ठी में मनड़े नै राखज्यो॥ सुधा पृ.६३

व्यंजना शक्ति

जिस शब्द द्वारा व्यंग्यार्थ व्यक्त होता है, उसे व्यंजना शक्ति कहते हैं। उत्तम काव्य में व्यंजना का प्राधान्य रहता है क्योंकि अभिधा और लक्षणा द्वारा वह कथ्य स्पष्ट नहीं हो सकता, जो व्यंजना से हो सकता है। व्यंजना शक्ति में कवि साधारण अर्थ के अतिरिक्त कुछ विशेष अर्थ प्रकट करता है अत: इसमें कल्पना की प्रधानता रहती है। बाबू गुलाबराय के अनुसार वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ के अतिरिक्त उन्हीं शब्दों से दूसरा अर्थ निकलता हो, वहां व्यंजना शक्ति होती है। डॉ. कमला आत्रेय के अनुसार कवि प्रखर व्यंग्य-बाणों को भाषा के सुंदर एवं आकर्षक आवरण में छिपाकर वक्ता या श्रोता पर ऐसा निशाना साधकर फेंकता है कि वह व्यंग्य बाण उसके कर्ण कुहरों से होता हुआ हृदय को वेध देता है।''[१]

आचार्य तुलसी के काव्य में व्यंजना शक्ति कूट-कूट कर भरी है। उनके व्यंग्य सहज, सरल, सधे हुए और बोधगम्य हैं। उनके व्यंग्य व्यक्ति पर न होकर बुराई पर करारी चोट करने वाले हैं। उन्होंने समाज और राष्ट्र में फैले भ्रष्टाचार को न केवल अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से देखा, अपितु उस पर करारा व्यंग्य भी किया। समाज की अंधरूढ़ि और धार्मिक अंधविश्वासों के लिए उन्होंने जो व्यंग्य व्यक्त किए, वे अद्‌भुत हैं। कहीं-कहीं उनके व्यंग्यों में तिलमिला देने की शक्ति है। विवाह के अवसर पर गाली के गीत गाने वाली

१. भवानी प्रसाद मिश्र ; बुनी हुई रस्सी, पृ. ९।

महिलाओं को व्यञ्जनाशक्ति में सम्बोधित करते हुए कवि कहते हैं—

आवश्यक कामां में तो थे, लजवंत्यां बण ज्यावो ए।
कठै रहै बा शरम, बैठ जद गाल्यां गाओ ए॥ सुधा पृ. ९२

धर्म की दयनीय स्थिति देखकर कवि हृदय की वेदना व्यंजना शक्ति के माध्यम से प्रकट हुई है—

◆ धर्म और भगवान् ज्ञान को, मिट्टी में मढ़ डाला।
स्वार्थों की चलती चक्की में, सबको ही पिस डाला॥ अणु पृ. ८६

राष्ट्र के शीर्षस्थ राजनेताओं के प्रति तीखी भाषा और प्रखर भाव व्यञ्जना से युक्त काव्य-पंक्तियां पठनीय हैं—

◆ बात-बात में छलना, चलना सदा दुरंगी चाल।
जनता को गुमराह करो मत, गूंथ-गूंथ कर जाल॥ अणु पृ. ४६

शब्दों के साथ खिलवाड़ करके भी कवि ने व्यञ्जना शक्ति को प्रकट किया है। गृहस्थ अवस्था में मंत्री मुनि मगनलालजी की पढ़ाई में बारह आने खरच हुए। इस बात को कवि अपनी कल्पना से व्यञ्जना शक्ति में प्रकट करते हुए कहते हैं—

दो महिनां री करी पढ़ाई, बारह आना रकम लगाई।
सोलह आना अगर खरचतो, तो कोई रंग अनोखो रचतो॥ मगन पृ. ५

उनका गोत्र भोलावत था, इसे प्रकट करने में कवि का वक्रोक्ति-चमत्कार द्रष्टव्य है—

सोलह वरसां री वय पाई, की सौ वरसां री भरपाई।
तिण में तो भोलावत गोतो, के करतो स्याणावत होतो॥ मगन पृ. ५

कवि ने कल्पना शक्ति से अनेक उपमाओं के द्वारा सीता के माध्यम से राम को जो बात कही है, वह उक्ति वैचित्र्य का श्रेष्ठ उदाहरण है। राम जैसे महापुरुष के द्वारा सीता का परित्याग कैसा लगता है, यह सीता के शब्दों में ही पठनीय है—

रवि ने त्यागी है प्रखर प्रभा, शशधर ने शीतलता छोड़ी।
अम्बुज ने अपने सौरभ से, नभ ने ध्वनि से मैत्री तोड़ी॥ परीक्षा पृ. ५९

कहा जा सकता है कि शब्द-शक्तियों के बारे में उनकी पकड़ जितनी गहरी थी, प्रयोग भी उतने ही सधे हुए हैं।

शब्द-चयन

काव्य सहृदयों के हृदय तक शब्दों द्वारा पहुंचता है अत: शब्दचयन में कवि की प्रतिभा का चातुर्य प्रकट होता है। भाषा के माध्यम से कवि काव्य की इमारत खड़ी करता है। कवि का शब्द–भंडार जितना समृद्ध होगा, उतनी ही उसकी भाषा–शैली समृद्ध मानी जाएगी। दिनकर के अनुसार शब्द–चयन की कसौटी पर कवि की कला की परीक्षा होती है अत: सशक्त भावों की अभिव्यक्ति हेतु काव्य में शब्दों का सही प्रयोग बहुत बड़ी कला है। सच्चे कवि के लिए उपयुक्त शब्द–चयन पवित्र गंगा या नर्मदा–स्नान से कम आह्लादकारी नहीं है।''[1] पाणिनी कहते हैं—''एक: शब्द: सम्यग्ज्ञात: सुप्रयुक्त: स्वर्गलोके कामधुग् भवति'' अर्थात् एक शब्द का सही प्रयोग स्वर्गीय आनंद प्रदान करने वाला होता है। आचार्य तुलसी का मंतव्य था कि कवि के लिए सबसे बड़ा आलम्बन है— शब्द और अर्थ के सही सम्बन्ध को ध्यान में रखकर निश्चित अर्थ के लिए उपयुक्त शब्द का चयन करना।''

वही कवि अपने भाव को संप्रेषणीय बना सकता है, जिसे शब्द की शक्ति और उसके उपयुक्त चयन का पूरा ज्ञान हो। समुचित वर्णों एवं शब्दों के प्रयोग से काव्य का सौन्दर्य निखर उठता है, अन्यथा वह नीरस हो जाता है। काव्य भाषा में शब्द–चयन के बारे में महावीर प्रसाद द्विवेदी की उपमा पठनीय है— ''रसायन सिद्ध करने में आंच के न्यूनाधिक होने से जैसे रस बिगड़ जाता है, वैसे ही यथोचित शब्दों का प्रयोग न करने से काव्य रूपी रस भी बिगड़ जाता है।''

इस संदर्भ में भवानी प्रसाद मिश्र का अनुभव अत्यंत महत्त्वपूर्ण है— ''कविता लिखते वक्त मेरा मन ही नहीं, समूचा अस्तित्व शब्दों से ध्वनित होने वाली झंकार से कांपता रहता है। ये झंकारें कभी अकेली बजती हैं, कभी समवेत होकर समुदायों में इसलिए 'मैं' कविता के संदर्भ में स्वयं को शब्दों की रौं में बहने वाला कोई व्यक्ति होता है।''[1]

एक शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द होते हैं। उनका अन्तर समझकर किस प्रसंग में कौन सा अर्थ उपयुक्त होगा, यह कवि की सजग और सतर्क मेधा–शक्ति तथा कवि–कौशल पर निर्भर करता है। जैसे गंगा के साथ जल का प्रयोग सम्यक् है क्योंकि जल में पवित्रता का भाव है। इसी प्रकार तालाब

१. दिनकर ; चक्रवाल, पृ. २९।
२. दिनकर ; मिट्टी की ओर, पृ. १५२।

के साथ पानी का प्रयोग होता है, जल का नहीं अत: संदर्भ के साथ सुष्ठु शब्द-प्रयोग से ही काव्य में विलक्षणता प्रकट होती है। कोरे शब्दों के नएपन से काव्य में सामयिक सौन्दर्य प्रकट नहीं हो सकता।

'शक्तिशाली कवि शब्दों की नाड़ी पहचानते हैं।' हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह पंक्ति आचार्य तुलसी के शब्द-चयन कौशल पर चरितार्थ होती है। वे भावानुकूल शब्द-प्रयोग के कुशल चितेरे थे। उन्होंने अपने प्रतिभा-कौशल से शब्द की बहुस्तरीय क्षमता को प्रकट करने का प्रयत्न किया, जिससे भावों की सम्यक् अभिव्यक्ति हो गयी। उनके सटीक शब्द-चयन के बारे में महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी का अनुभव है कि गीत हो या आख्यान, उसमें एक-एक शब्द का विन्यास वे इतने कलात्मक ढ़ंग से करते हैं कि वह पाठक और श्रोता को अपने साथ बहा लेता है। जब तक उन्हें उपयुक्त शब्द नहीं मिलता, सृजन में परिमार्जन का क्रम चलता रहता है।''

शब्दों के पर्यायों में कहां किस शब्द का प्रयोग करना चाहिए, इस कला में कवि का कौशल प्राय: हर स्थान पर प्रकट हुआ है। नारी के अनेक पर्यायवाची शब्दों में कहां किस शब्द का प्रयोग किया जाए, यह अग्नि परीक्षा पुस्तक में अनेक स्थलों पर द्रष्टव्य है। वनवास पहुंचने पर विवश सीता कहती है—

- राम! कुछ भी न विचारी रे!
  क्या ऐसे ठुकराई जाती, अबला नारी रे!॥ परीक्षा पृ. ५६

जो शब्द उन्होंने जहां जड़ दिया, वह इतना फिट हो गया कि उसके स्थान पर दूसरा पर्यायवाची शब्द रखते ही कविता का भाव-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। सटीक, आकर्षक और सानुप्रासिक शब्द-चयन के कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं—

- बालक वय में संयम लय में, नियम-निलय में लीन। माणक पृ. ४१
- कुसुम सुकोमल अंग बाल रो, वज्र कठिन व्रत भार। माणक पृ. ४१
- विमल कमल सम जीवन अविकृत। शासन पृ. ३
- न चिन्ता हो चतुर चेले! अकेला जो रहूंगा मैं। पानी पृ. ४०
- वह मौत भवाम्बुधि-पोत, पवित्र पताका। श्रावक पृ. १७०

यहां नियम के साथ निलय का, वज्र के साथ व्रत का योग चमत्कार

पैदा करता है। यदि नियम के स्थान पर व्रत या व्रत के स्थान पर नियम का उपयोग होता तो न उक्ति-वैचित्र्य रहता और न अर्थ की अलंकृति ही। इसी प्रकार विमल कमल के स्थान पर स्वच्छ कमल या सुन्दर कमल, चतुर चेले के स्थान पर कुशल चेले, पोत के स्थान पर नाव शब्द के प्रयोग में वह चमत्कार नहीं रहता।

शब्दों की भिन्न-भिन्न प्रकृति पहचान कर उनका प्रयोग करने से वे सार्थक और सप्राण बन जाते हैं। इस संदर्भ में राष्ट्रकवि दिनकर की उक्ति उद्धरणीय है—"शब्द तो मेरे भी अनेक होते थे और मुझे भी उनके बीच चुनाव करना पड़ता था किन्तु शब्दों का चयन मैं उनके रूप से नहीं, बल्कि सामर्थ्य के कारण करता हूं।"[१] क्योंकि शब्द-चयन ही कविता की वास्तविक कला है। इसके बिना कविता में कलात्मकता नहीं आ सकती।"[२] दिनकर की इस अनुभूति को आचार्य तुलसी की अनुभूति भी कहा जा सकता है।

कविता में शब्द-चयन की पटुता से ही ध्वन्यात्मकता और नाद-सौन्दर्य उत्पन्न होता है। आचार्य तुलसी शब्दों के सम्राट थे। उनकी शब्द-योजना बहुत उपयुक्त, नैसर्गिक और विषयानुरूप थी। उनकी जादुई अंगुलियों के स्पर्श से बेजान शब्द भी जीवन्त होकर चमक उठे। उन्होंने अपनी सर्जक प्रतिभा से शब्दों का चयन इस प्रकार किया, जिससे वे वांछित अर्थ झंकृत कर सकें। कौन शब्द कहां कैसी ध्वनि उत्पन्न करेगा तथा कैसा अर्थ प्रस्तुत करेगा, यह सूक्ष्म दृष्टि गुरुदेव तुलसी को सहज प्राप्त थी। उनके काव्य में शब्दों से उत्पन्न ध्वनि का सौन्दर्य पदे-पदे देखा जा सकता है। पंचम आचार्य मघवागणी के चरित्र-वर्णन में प्रयुक्त शब्द नाद-सौन्दर्य ही नहीं, संगीत की सृष्टि भी कर रहे हैं—

- गहि जीत गादी, रीत सादी, स्फीत आजादी वरी।
  वन्ना सुजात, गुलाब भ्रात, मुनीश मघ सुर श्री वरी॥

राम की भक्ति में लीन लोगों का वर्णन पठनीय है—

- उमड़ते जन आ रहे हैं, उधर सिंधु तरंग से।
  रक्त थे सबके हृदय, श्री राम ही के रंग से॥ परीक्षा पृ. १२

---

१. दिनकर ; काव्य की भूमिका, पृ. १४५।
२. दिनकर ; मिट्टी की ओर, पृ. १५०।

एक शब्द के समकक्ष या प्रतिपक्ष में दूसरे सानुप्रासिक शब्द-प्रयोग करने की कला में उनका कोई दूसरा विकल्प नहीं खोजा जा सकता। शब्द-चयन के कुछ सानुप्रासिक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- हय रूपालो, गय मतवालो, दुंदालो फुंदालो जी। कालू भा. १ पृ. १४९
- हुक्के की हर वक्त हाजरी, बने चिलम के चाकर जो,
  बीड़ी के बंदे हैं मानो, जिंदा जरदा खाकर जो,
  पी-पी भंग बने भंगेड़ी, छी! मानव अभिमानी है॥ अणु पृ. २२
- मघवा-महर डांट डालिम री, कालू-कृत सम्मान।
  साठ बरस समभावे सहतां, पायो मंत्री-स्थान॥ शासन पृ. १५७

प्रथम उदाहरण में रूपालो, मतवालो और कालो, दूसरे उदाहरण में हुक्के के साथ हाजरी, चिलम के साथ चाकर, बीड़ी के साथ बंदे, जरदा के साथ जिंदा तथा भंग के साथ भंगेड़ी शब्द का योग अनुप्रास के साथ चमत्कार पैदा करता है। इसी प्रकार तीसरे उदाहरण में मंत्री मुनि की विशेषताओं का अंकन है। आचार्य मघवागणी की कृपा, सप्तम आचार्य डालगणी की डांट तथा अष्टम आचार्य कालूगणी का सम्मान प्राप्त कर वे सम रहे। इस बात को प्रकट करने के लिए मघवा के साथ महर, डालिम के साथ डांट तथा कालूगणी के साथ कृत शब्द का योग कवि के शब्द-चयन की महत्ता को प्रकट करता है।

शब्द चयन के वैशिष्ट्य को प्रदर्शित करने वाले कुछ प्रयोग और प्रस्तुत हैं—

- नियति योग पत्नी-वियोग, नश्वरता तन री पहचाणी। तेरापंथ पृ. १२
- पिता परास्त मात मंदानन, भ्रात भयाकुल जाण।
  श्रान्त स्वसा, परितप्त प्रेयसी, चकित चिकित्सक-राण॥ चंदन पृ. १८५
- निहारा तुमको कितनी बार
  जितनी बार निहारा, हारा, कहीं न पाया पार॥ नंदन पृ. १५५
- विधि विधानों के विधाता! परीक्षा पृ. १३५

ध्वनि के साथ-साथ उन्होंने सूक्ष्म अर्थ के आधार पर भी काव्य-भाषा में शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे वीतराग के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होता है लेकिन कहां कौन सा शब्द वीतराग की किस पर्याय या विशेषता को प्रकट

करेगा, इसका चयन करने में उन्होंने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि का सहारा लिया।

अर्थगाम्भीर्य को प्रकट करने वाला अभिधा शक्ति का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है, जब मरणासन्न शिष्य विनोद को आचार्य आषाढ़ कहते हैं—

तोते ज्यों तुझे पढ़ाया है, हाथों से लेख सिखाया है। पानी पृ. ३७

तोते के साथ प्राय: 'रटना' शब्द का प्रयोग होता है लेकिन यहां कवि ने 'रटाया' शब्द का सलक्ष्य प्रयोग नहीं करके 'पढ़ाया' शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि गुरु रटाते नहीं, पढ़ाते हैं।

बाहुबल भाई हित नरम-गरम संदेश दियो है। चंदन पृ. ११

उक्त पंक्ति में कवि ने नरम गरम शब्द में राजनीति का पूरा रहस्य भर दिया है।

अर्थ न जानते हुए भी जब शब्द सुनने मात्र से अर्थ की प्रतीति हो जाए, वहां अर्थध्वनन होता है। आचार्य तुलसी ने अर्थध्वनि को विशेष रूप से लक्ष्य में रखा है और उसके सफल प्रयोग किए हैं। उनका ध्वनि चित्र सूक्ष्म और व्यापक है अत: प्रत्येक शब्द एक दृश्य चित्र के साथ ध्वनिचित्र भी उत्पन्न करता है। उन्होंने शब्दों का चयन ध्वनि के औचित्य के आधार पर किया, जैसे—

- सतगुरु-संगत स्यूं नहिं रंगत, है कुगुरु स्यूं प्यार।
  होवै हास्य, निरंध अंध नै, पूछै पंथ प्रकार॥ सुधा पृ. १६
- बा सूधी शान्त सयाणी, समता री निर्झरणी झरी। मां पृ. १
- भगिनी भाई दोनूं पाई, कला सत्य-संधान की।
  आत्म विजेता नव नचिकेता, वीतराग री बानगी॥ तेरापंथ पृ. २९
- दर्दी नृप हमदर्दी स्यूं कूद पड्यो है। चंदन पृ. १५७

यहां संगत के साथ रंगत तथा अंध के साथ निरंध शब्द का प्रयोग विशेष ध्वनि उत्पन्न करता है। इसी प्रकार सीधी के स्थान पर सूधी शब्द का प्रयोग व्यक्तित्व के विशिष्ट गुण को प्रकट कर रहा है। इसी प्रकार तीसरे उदाहरण में भाई के साथ पाई तथा विजेता के साथ नचिकेता आदि शब्दों की ध्वनि श्रुतिमधुर लगने वाली है।

विशेषण का सम्यक् प्रयोग

---

१. ऊषा दीक्षित ; सुमित्रानंदन पंत की भाषा, पृ. २६५।

भाषा की सार्थकता एवं गम्भीरता विशेषणों के प्रयोग से जानी जाती है अतः शब्द-चयन के सामर्थ्य की पहचान उसके विशेषण-प्रयोग में देखी जाती है। दिनकर कहते हैं—"शब्दों के सम्यक् चुनाव की जैसी पहचान विशेषण में होती है, वैसी संज्ञा और क्रिया में नहीं।"[१] विशेषण-प्रयोग के समय शब्द चुनने में ही कवि को भाषा का स्रष्टा होने का गौरवपूर्ण पद प्राप्त होता है।"[२] गुरुदेव तुलसी की काव्य-भाषा का महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य उनके विशेषण प्रयोगों में देखा जा सकता है। सटीक विशेषणों के प्रयोग से उनके काव्य में साहित्यिकता, ध्वनि-अनुरूपता एवं उक्ति वैचित्र्य का गुण प्रकट हो गया है। विशेषणों के प्रयोग में अनुप्रास का प्रायः ध्यान रखा गया है। अनुप्रास से युक्त विशेषण-प्रयोग के कुछ उदाहरण यहां द्रष्टव्य हैं—

सुरभि समीर, मोम मुलायम, प्रोन्नत प्रचेता, कालु परम कृपालु, लाघव ललाम, जड़ जनता, कोमल काया, चकित चित्त, दुर्बल देह, हुलरायो हुल्लास, दलबंदी की दीवार, पैनी बेचैनी, निविड नेह।

विशेषण चयन के कुछ उदाहरण निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं—

- प्रश्न अबोल गजब अनमोल, सतोल सामने आयो है। सहिष्णुता पृ. ४
- करुणा री इकलौती मूरत, कालू काया कलधौती। तेरापंथ पृ. ३०
- भीषण है रण का पथ पैना। परीक्षा पृ. १३२
- सोच बने सापेक्ष लचीली, क्यों अनमनी अकेली। श्रावक पृ. ११५
- अविवेकी अंधानुकरण की, क्यों हो वृत्ति विषैली? श्रावक पृ. ११२
- काटें कुटिल कर्म की कारा।
- मानो नीरव निःस्तब्ध समाधी सीखै।
- वर्ण सांवरे में भी कैसा, अद्भुत अनुपम ओज।
  क्या मानव की बात निकट, टिक सका न मत्त मनोज॥ शासन पृ. ५९
- जबरी है जहरीली जग में, वासना की बेलड़ी। शासन पृ. ११७
- निरतिचार निर्लेप निरामय, निरुपम निर्मल नारी। मां पृ. ४६

व्यक्ति के विशेषण-प्रयोग में भी कवि ने कुछ नए शब्दों का प्रयोग किया है। अपने गुरु कालूगणी का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

---

१. डॉ. भोलानाथ तिवारी ; व्यावहारिक शैली विज्ञान, पृ. ४०।

२. दिनकर ; मिट्टी की ओर, पृ. १५।

कालू प्रतिभालू अतुल, हृदयालू हृदयेश।
सतत शयालू शिव शयन, स्पृहयालू भव शेष॥ कालू भा. २ पृ. २४९

कवि ने कहीं कहीं अभिव्यक्ति में चमत्कार पैदा करने के लिए एक ही वस्तु या व्यक्ति के लिए विरोधी विशेषणों का प्रयोग भी किया है। लव और कुश की आंखों के सौन्दर्य-वर्णन में मादकता और भीतरी पवित्रता को एक साथ प्रकट करते हुए कवि कहते हैं—

आंखें उत्फुल्ल कमल सी।
मादक सी और अमल सी॥ परीक्षा पृ. १३०

यहां मादकता के साथ पवित्रता का भाव प्रकट करना कवि के विशेषण चयन के वैशिष्ट्य को प्रकट करने वाला है।

आगम सम्मत विशेषणों का भी कवि ने काव्य में प्रयोग किया है। श्रावक के लिए प्रयुक्त कुछ विशेषणों को एक ही पद्य में गुम्फित करते हुए कवि कहते हैं—

धार्मिक धर्मानुग है धर्मिष्ठ सदा रा, धर्मख्याती धर्मालोकी गुणधारा।
यावत् धम्मेणं वित्तिं कप्पेमाणा, अल्पेच्छ अल्प-मम अल्पारंभ सयाणा॥
डालिम पृ. १९७

अकृत्य करने के पश्चात् आषाढभूति का अनुताप भावोद्रेक की स्थिति पैदा करता है। पश्चात्ताप के स्वरों में वे अपने लिए एक साथ अनेक विशेषणों का प्रयोग करते हैं, जिससे पाश्चात्ताप का भाव साकार रूप में प्रस्तुत हो गया है—

मैं हूं अधमाधम अन्यायी पापी दुष्ट लुटेरा
हत्यारा निर्दय, नृशंस निर्घृण निकृष्ट मन मेरा,
भगवन्! अपनी वह प्रभा दिखा दो, भूले को मार्ग लगा
द ा ` ,
यह पापी आया तेरे द्वार है॥ पानी पृ. ९७

सायास एवं साभिप्राय विशेषण-प्रयोग से आचार्य तुलसी की अभिव्यक्ति मनोहर एवं अर्थ-गौरव से संवलित हो गयी है।

वर्ण-मैत्री

शब्द-चयन में वर्ण-योजना एवं वर्ण-मैत्री का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है

क्योंकि वर्ण ही शब्दों का निर्माण करते हैं। वर्ण-मैत्री से काव्य में अनुप्रास जैसा आभास होता है और स्वत: ही उसमें सौन्दर्य एवं लालित्य की अभिवृद्धि हो जाती है। उषा दीक्षित के अनुसार वर्ण मैत्री का अर्थ है एक ही वजन के मिलते-जुलते शब्दों का पास-पास में प्रयोग करना।''[१]

वर्ण मैत्री के प्रयोग से अर्थ-गौरव, कल्पना की कमनीयता और भाषा-सौष्ठव की उत्पत्ति होती है। राजस्थानी एवं हिन्दी भाषा में वर्णमैत्री के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- शिष्य एक से एक विचक्षण,
  पाया शिक्षण बड़ा विलक्षण,
  सम शम श्रम जिनके शुभ लक्षण॥ पानी पृ. २३
- मन में जल जल उनको प्रतिपल, दु:ख दल-दल में धंसते देखा।
  परीक्षा पृ. ८९
- अमित उपकार, दिव्य दातार, दिया आधार। शासन पृ. ३३
- मुंह मचकोड़ सिकोड़ नाक, दरदी नै सहज झिड़कणो।
  जलै-कटै पर निठुर हृदय कर, सोरो नमक छिड़कणो॥ चंदन पृ. ११९
- जेठां रो तड़को, पोहां-माहां सी झड़को।
  नहि करणो तड़को-भड़को, कोमल ओ लड़को, कुल-उजियारो जी॥
  माणक पृ. ३८
- पण आ दुनिया बड़ी दुरंगी, रंगी नै मानै नारंगी। सहिष्णुता पृ. ६
- यों देख शौर्य गाम्भीर्य धैर्य, नृप का मन हर्ष-विभोर हुआ।
  अरुणाई तरुणाई विलोक, अंतर चिंतन कुछ और हुआ॥ परीक्षा पृ. १०२

अपने गुरु कालूगणी के समय के साधु-साध्वियों का वर्णन करने में कवि की वर्ण मैत्री ध्वनि-संगीत पैदा करने वाली है—

- कई मुनि चार्चिक, कई मुनि तार्किक, कई मुनि वार्तिकधार रे।
  कई मुनि शाब्दिक, कई मुनि आर्थिक, हार्दिक भाव सुधार रे॥
  कालू, भा. २ पृ. ७७

चेतना को सम्बोधित करके लिखी गई पंक्ति का शब्द-चयन वर्णमैत्री के साथ नाद-सौन्दर्य पैदा करने वाला है—

नींद नै त्याग, अबै तो जाग, बोधि बपरा लै तूं। सुधा पृ. ३९

'त्याग' के स्थान पर 'छोड़' तथा 'बपरा' के स्थान पर 'अपना' शब्द के प्रयोग से वह चमत्कार नहीं रहता।

भ और व की आवृत्ति कवि के शब्द-सामर्थ्य को प्रकट करने वाली है—

त्रिभुवन धव अभिनव विभव, अनुभव भव आराम।

वासव सेवित संभरूं, त्रिशला संभव स्वाम॥ कालू भा. १ पृ. ११४

शब्द-निर्माण की कला

प्रत्येक शब्द कालक्रम के अनुसार अर्थयात्रा करता है। कभी ह्रास की ओर तो कभी विकास की ओर। कवि वास्तविक स्रष्टा होता है, वह शब्दों की नयी सृष्टि करता है अत: समर्थ कवि शब्दों को सदा उसके उन्हीं अर्थों में ही ग्रहण नहीं करता, आवश्यकतानुसार वह नए शब्दों को गढ़ता है तथा प्राचीन शब्दों को नया अर्थ देता है।''[१] राष्ट्रकवि दिनकर का अभिमत है कि कवि नवीन प्रयोगों द्वारा शब्द के सौन्दर्य और शक्ति को पुनरुज्जीवित करता है।·····प्राचीन शब्दों की शक्ति को भी नवीन तथा प्रतिभापूर्ण प्रयोगों द्वारा जागृत और प्रत्यक्ष करके भाषा का बल बढ़ाता है।''[२] शब्दों को अपने अर्थ तथा अपने अर्थ को शब्द देने की अद्‌भुत क्षमता गुरुदेव तुलसी में थी। उन्होंने अपनी प्रत्युत्पन्न मेधा से अनेक शब्दों को सही और नया अर्थ प्रदान किया है। जहां प्रचलित शब्दों से कवि का अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ, वहां उन्होंने अपनी प्रतिभा से नए शब्दों को गढ़कर भाषा का बल बढ़ाया है। परम्परा से हटकर नये एवं अप्रचलित शब्दों के प्रयोग के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- दृक्कोण न सुविधावादी हो। नंदन पृ. २८
- है स्वयं सर्वज्ञ इसके संविधानी। आत्मा पृ. २७
- जो अट्ठाणूं अनुजन्मा थे। भरत पृ. ६९
- बिन प्रचण्ड मार्तण्ड ज्यूं, तिमिरित निखिल जहान। कालू भा. १ पृ. ७७
- पण कब ही दीठी नहीं, अणगीली गुरु आंख।
- अग्रेयावा रहता था समरांगण में। भरत पृ. ५०

- कैसे क्या होगी जीवन की परिष्कृति।
- दीर्घायु हो चिरायु हो, तपज्यो कोड वरीष।
- आयात यात सब ठप्प हुआ। परीक्षा पृ. १२०
- जप णमोक्कार का प्रतिदिन प्राणायामी। श्रावक पृ. १९७

गुरु के समक्ष शिष्य को शेर बनकर नहीं, कुक्कर की भांति स्वामिभक्त रहना चाहिए—

आचार्यां आगल रहणो निम्न निगर्वी,
आ बड़ा-बड़ेरा री है सीख सुपर्वी।
रह श्वान बण्यो सम्मान शेर रो पावै,
बण शेर रहै कूकर ज्यूं शान गमावै॥ डालिम पृ २०६

उपर्युक्त उदाहरण में 'निगर्वी' के साथ तुक मिलाने के लिए कवि ने सुपर्व (देवता) से सुपर्वी शब्द गढ़ा है। यहां 'सुपर्वी' शब्द दिव्य शब्द का वाचक हो गया है।

संख्यावाची शब्दों में भी नवीनता के दर्शन होते हैं, जैसे बत्तीस के लिए दुवतीस, बयालीस के लिए दुवचाल आदि।

कहीं-कहीं आचार्य तुलसी ने शब्दों के ऐसे विचित्र प्रयोग भी किए हैं, जिनका प्रयोग कवियों ने प्रायः नहीं किया है, जैसे—

- हमदर्दी है, शिरदर्दी है, है कहिं पावां धोक। माणक पृ. ४१
- अथवा आंख मूंद अंधारो, स्याणा बणै अयाणां। सेवा पृ. ११
- पक्षपात में चक्षुपात कर। सोम पृ. २८

यहां हमदर्दी के साथ शब्द-मैत्री के लिए सिरदर्दी तथा स्याणां के साथ तुक मिलाने के लिए अज्ञानी के स्थान पर अयाणां शब्द का प्रयोग हुआ है।

कान को अच्छा नहीं लगने वाला अर्थ प्रकट करने के लिए कवि ने 'अणखाणा' के साथ तुक मिलाने के लिए 'कनखाणा' शब्द का प्रयोग किया है। मधुर गीत जब रुदन में बदल गए, तब थावच्चापुत्र अपनी मां से पूछते हुए कहता है—

- कुण जाणै के हुयो गीत, गाणा अणखाणा लागै।
  कठै गई बा मधुर मधुरिमा, क्यूं कनखाणा लागै? मैं तिरूं पृ. ११

दावपेच के स्थान पर दावघाव का प्रयोग कवि की शब्द-सृजन शक्ति

को प्रकट करता है।

सर्दी-गर्मी में समवृत्ती, दाव-घाव स्यूं दूर है। मां पृ. २७

समुद्र-मंथन के स्थान पर राजस्थानी भाषा में नया प्रयोग द्रष्टव्य है—

ओ तो जाणक उदधि बिलोयो रे लोय। डालिम पृ. २१४

इसी प्रकार कम खाने वाले के लिए मितआशी शब्द का नया प्रयोग अनुप्रास की झंकार पैदा करता है—

मितआशी मितभाषी वाणी, चिंतनपूर्वक उच्चरै। मगन पृ. ६२

अमाप्य के लिए अनमेय तथा मायावी की भांति 'दुनिया' शब्द से दुनियावी शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है—

- छाने-छाने हृदय खजाने, ज्ञान भरै अनमेय जी। कालू, भा. १ पृ. ८६
- दुनियांवी दुविधा में भगवन्!, जरा न लेवै भाग। शासन पृ. २१

कहीं-कहीं भाषा में प्रवाह एवं नाद-सौन्दर्य हेतु हिन्दी के कारकों एवं संयोजकों का प्रयोग नहीं किया है—

- विचरत-विचरत देश-प्रदेशां, आयो मुनि इंदोरां। डालिम पृ. ३१
- आणां प्राणां में बड़ो, कुण ? यदि खड़ो विवाद।
  आण प्रमुखता, जिण बिना, बणै प्राण बेस्वाद॥ डालिम पृ. ५०

आचार्य तुलसी ने प्रचलित परम्परा एवं व्याकरण के नियमों का पूरा ध्यान रखा है लेकिन कहीं-कहीं छंद-प्रवाह एवं आवश्यकता के अनुसार उन्होंने व्याकरण की लोह-श्रृंखलाएं भी तोड़ी हैं। कुछ अप्रचलित एवं व्याकरण से असिद्ध शब्दों का प्रयोग भी कवि ने किया है, जैसे—निर्वाणी, प्रबन्धित, विवेकिया, गुंजंत, परिवरिया, उत्कृष्टि आदि।

कवि ने संस्कृत की भांति राजस्थानी भाषा में बोलचाल का रंग देने के लिए राजस्थानी प्रत्ययों का भरपूर प्रयोग किया है। विशेष रूप से डा, डी ली और लो आदि प्रत्यय लगाकर शब्द बनाए हैं—

डा — आंसूड़ा बालूड़ा, जेहड़ा, एहड़ा, भाईड़ा आदि।

डी — तीजड़ी, वीनतड़ी, मींटड़ी, बातड़ी, ईखड़ी, देहड़ी, इसड़ी, बाटड़ी, एहड़ी, प्रीतड़ी, मावड़ी, मूरतड़ी आदि।

डो — दिलड़ो, जेहड़ो, बिछोहड़ो, तुमारड़ो आदि।

ली — आंतड़ली, जीभड़ली, सूंखड़ली, प्रीतड़ली, मावड़ली आदि।

राजस्थानी प्रत्यय के कुछ उदाहरण पठनीय हैं—

- सावण में झिरमिर मेहड़लो, नेहड़लो जण-जण स्यूं करग्यो। डालिम पृ. २०५
- डगमगती झोला खावै नावड़ी। चंदन पृ. १३५
- अरे बो ऋषभलो, है कठै कलभलो? चंदन पृ. ८
- मत बन भोग रसिक भाईड़ा!, आ है अल्पकाल री क्रीड़ा। चंदन पृ. ४५
- ठार को सो तेहड़ो है, संतां रो सनेहड़ो। कालू भा २ पृ. १५६
- रुक्यो मेघ बिच में नहिं बरसी बूंदड़ी। कालू भा २ पृ. ११४
- एक पक्खी प्रीतड़ी रो कच्चो कारोबार। कालू भाग १ पृ. ७४
- कर्मगति बांकड़ी रे लोय। कालू भा. १ पृ. ८७
- हियड़ो जियड़ो सो डोल उठ्यो। कालू भाग १ पृ. १४१
- कभी न करस्यो इसड़ी भूल। चंदन पृ. ११०
- मधुर ईख सी सीखड़ी। कालू भा. १ पृ. १९२

यहां 'मेहड़लो' के साथ नेहड़लो शब्द के प्रयोग से नाद-सौन्दर्य उत्पन्न हो गया है। इसी प्रकार प्रथम तीर्थंकर ऋषभ एवं कलभ के साथ लो प्रत्यय भाषा को सरस बनाता है।

कहीं छंद की तुकबंदी के लिए, कहीं तथ्य की सशक्त अभिव्यक्ति के

शिक्षण और प्रशिक्षण की,
नैसर्गिक वृत्ति रही मेरी।
कहीं किसी की स्खलना पर,
अंगुलिनिर्देश नहीं देरी॥

सम्बोध पृ. १३१

स्वेच्छा से पदभार-विसर्जन,
प्रतिस्रोत संचरण अरे!
चाहें तो अपने विवेक से,
'तुलसी' का अनुकरण करें॥

सम्बोध पृ. १३२

लिए तो कहीं कलात्मक आवश्यकता के लिए उन्होंने शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है। उदाहरण के रूप में निम्न पंक्तियों को देखा जा सकता है—

जीवन का यहां सही अंकन, है अननुमेय अनुपम्य रे। नंदन पृ. ६३

'शब्दों का सही उपयोग एवं चयन किसी योग-साधना से कम नहीं' शब्द-चयन के संदर्भ में महात्मा गांधी की यह उक्ति आचार्य तुलसी के काव्य-साहित्य पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। अभिव्यक्ति की स्वच्छता के लिए उन्होंने सहज, सार्थक और भावानुकूल शब्दों का प्रयोग किया है।

क्रिया रूपों के विविध प्रयोग

क्रियापदों की प्राणवत्ता के लिए आवश्यक है कि उस क्रिया से कार्य-व्यापार का सही चित्रांकन हो, जिससे वह भाव सजीव हो उठे। आचार्य तुलसी ने क्रियापदों के चयन में सूक्ष्म व्यञ्जक शक्तियों की परख का पूरा ध्यान रखा है। एक अर्थ में एक ही धातु का प्रयोग न करके उस क्रिया की समानार्थक जहां जो क्रिया ठीक बैठी, वहां उसका प्रयोग किया है, जैसे देखने अर्थ में उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थलों पर प्रसंगानुसार भिन्न-भिन्न क्रिया का सटीक प्रयोग किया है। यहां 'देखना' क्रिया के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

- मन मायी मगरमच्छ लख लागै, ओ है पारावार। सुधा पृ. १५
- मोटा जन जोवे नहीं, कदै पाछलो प्यार। कालू भा. १ पृ. ७४
- नहीं जनता भाली भोली। कालू भा. १ पृ. १६८
- वासरपति पिण शासणपति रो, सुरपुर गमन विलोक। कालू भा. २ पृ. २१६
- हंसती-खिलती निज-निज सुत नै, प्रेम पोखती पेखूं। चंदन पृ. १३५
- कठै बो सोवसी? पाथरी जोवसी? चंदन पृ. ७
- एक दूसरे को अनिमिष से, अनिमिष दृष्ट्या निरख रहे। परीक्षा पृ. १४३
- ज्ञान से निज को निहारें, दृष्टि से निज को निखारें। शासन पृ. १४
- शास्त्र सिंधु में देखा तरते, तल तक गहरे नीर उतरते। नंदन पृ. १५५
- लो नयन निहालो, सहु चौथे रो चालो। कालू भा. २ पृ. ७३
- रहा बोलना दूर अरे! तू, पलक उठाकर झांक ले। भरत पृ. २७
- अति क्रुद्ध दृष्टिविष ठाकुर स्हामो जोयो। डालिम पृ. १८४

---

१. गणपतिचन्द्र गुप्त ; साहित्यिक निबंध, पृ. १२०।

२. गोपालकृष्ण कोल ; कवि की दृष्टि में उसकी सृष्टि, पृ. २६।

३. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, पृ. ८३७।

- शास्त्र फरोल्या शेष। डालिम पृ. १८३

उक्त उदाहरणों में प्रत्येक क्रिया का सटीक प्रयोग हुआ है। किसी एक क्रिया को दूसरे स्थान पर विन्यस्त नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्येक क्रिया केवल देखना ही प्रकट नहीं करती, हृदय के भावों को भी प्रकट करती है। कहीं-कहीं एक ही क्रिया की पुनरुक्ति से भी कवि ने अभिव्यञ्जना में कौशल प्रकट किया है—

- ज्यों ही निज कर में कलम उठाई, हुआ उजागर अक्षर।
  कीर्तिमान गढ़ दिया, दिया हर घटना को नूतन स्वर॥ शासन पृ. ५६
- लो चलो, देर मत करो, करो उस लघु कुटिया को भी पावन। परीक्षा पृ. ७५

कहीं-कहीं कवि ने अनेक क्रियाओं का एक साथ प्रयोग किया है, जिससे काव्य में समानान्तरता के साथ नाद-सौन्दर्य भी प्रकट हो गया है—

- हंसतो-खिलतो हिलतो-मिलतो, दिन भर दौड़ मचावै।
  किलकार्‌यां भरतो आखरतो, सब रो दिल बहलावै॥ मैं तिरूं पृ. ७
- कुसुम कली ज्यूं खिलस्यां मिलस्यां, रहस्यां हरी-भरी। मां पृ. २२
- रंग रचावै, हर्ष बधावै, पावै चिर कल्याण। कालू, भा. १ पृ. ६७
- बात उतरती सुनो न बोलो, रखो न मन में खीज। नंदन १४
- दादाजी री गोद मोद में, खातो-पीतो-सोतो। सेवा पृ. ५
- जी! पाछो आस्यूं भय नहिं खास्यूं, टीका अरथ करास्यूं। कालू भा. १ पृ. १६४
- कहिं लड़ै, मरै, झड़ परै, अरे! ओ नाटक है संसार। सुधा पृ. १५

जब अंतिम समय में भाईजी महाराज ने विहार किया तो शारीरिक कमजोरी के कारण वे विश्राम लेते हुए चले। कवि ने उनकी सभी शारीरिक क्रियाओं को एक ही पद्य में विविध क्रियाओं के माध्यम से प्रकट कर दिया—

पांच मील में लगी पांच, घंटा आ विषमी बाट।
रुकतां थकतां सोतां उठतां, चलतां मन ओचाट॥ सेवा पृ. १३८

कहीं-कहीं कवि ने सशक्त अभिव्यक्ति एवं भाव-प्रकर्ष के लिए तीनों काल की क्रियाओं का एक साथ प्रयोग किया है।

- चिंतामणि! चिंता हरी, हरो अरु हरस्यो। डालिम पृ. १९५

---

१. आचार्य तुलसी ; आदिवचन, पृ. २४।

- धर्म, सत्य, सतीत्व रखने को हुए बलिदान जो।
  दे गए, देते व देंगे, प्रण निभाने प्राण जो॥ अणु पृ. ३२
- बढ़ें, बढ़ रहें और बढ़ेंगे, ले उनके आधार को। परीक्षा पृ. ६

दिनकर की भांति अपने भावों की सटीक अभिव्यक्ति एवं भाषा में बोलचाल का रंग लाने के लिए कवि ने कहीं-कहीं संज्ञाओं को क्रियापद के रूप में तथा क्रिया को संज्ञा के रूप में प्रयुक्त किया है। संज्ञा से क्रिया रूप के कुछ उदाहरण—

- गुरु रो मन केवटणो, आ शिष्य प्रथा है। डालिम पृ. २०६
- म्हांरै गण री आ रीत नीत परखाऊं। डालिम पृ. १६०
- वनराजी राजी हुई, लाजी लखि लोकेश। कालू भा. १ पृ. १८४
- भारतीय संस्कृति का गौरवमय इतिहास दृढ़ाने को। परीक्षा पृ. १६०

इसी प्रकार आदर से आदरिए, अनुसरण से अनुसरिए, हाथ से हथियाना, प्रकट से प्रकटना और प्रकटाऊ, अरज से अरजाऊ, दृढ़ता से दृढ़ताऊ, दृढाने आदि।

कवि ने राजस्थानी भाषा में शब्दों एवं क्रियाओं को संक्षिप्त करके भी प्रस्तुत किया है, जैसे—'के लिए' अर्धक्रिया प्रकट करने के लिए 'आण' प्रत्यय लगाकर 'जगाण' शब्द के द्वारा ही 'जगाने के लिए' अर्थ को प्रकट कर दिया।

कृदन्त के प्रत्ययों का भी अनेक स्थानों पर लोप हुआ है—

- मन री ममता मेट। मां पृ. १७

यहां मिटाकर के स्थान पर 'मेट' शब्द ही सम्पूर्ण भाव को व्यक्त कर रहा है।

हिंदी कारकों का लोप भी अनेक स्थलों पर मिलता है—

- रण-प्रांगण ज्यूं रजपूतजी। सेवा पृ. ५०
- करूं रात-दिन ऊर्ध्वारोहण, आत्म-रमण अभ्यास। चंदन पृ. २१६
- दिन-दिन दुर्बलता बढ़ै, पीड़ा-पीड़ित पूज्य शरीर। कालू भा. २ पृ. १८४
- सोयां सोवै, जाग्यां जागै। मगन पृ. ३३

कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी की काव्य-भाषा में गतिमयता, सरलता, संप्रेषण की क्षमता, रोचकता, बोधगम्यता, व्यञ्जकता, प्रभावकता

---

१. लोसाई क्रिटीकाई, पृ. २६, २९ भाषण शास्त्र पुस्तक ३ अ ३ और ७।

और संगीतात्मकता आदि अनेक वैशिष्ट्य एक साथ उजागर हैं।

शैली-विधान की नव्यता

कवि या साहित्यकार जिस भाषा, ढंग या माध्यम से अपने भावों या विचारों को व्यक्त करता है, वह शैली कहलाती है। उत्तम से उत्तम अनुभूति अभिव्यक्ति-कौशल के बिना गूंगी है अत: कहना महत्त्वपूर्ण है पर उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कैसे कहना। पाश्चात्त्य कवि गेटे के अनुसार शैली लेखक के मस्तिष्क की सच्ची अनुकृति है। डॉ. नगेन्द्र मानते हैं कि शैली के अभाव में वाणी उस कोकिल के समान असहाय है, जिसे विधाता ने हृदय की मिठास देकर भी रसना नहीं दी।''[१]

एफ एल ल्यूकस ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्टायल' में शैली को व्याख्यायित करते हुए लिखा है कि व्यक्ति का जैसा व्यक्तित्व, स्वभाव, चरित्र एवं व्यवहार होगा, वैसा ही रूप उसकी शैली में प्रतिबिम्बित हो जाएगा इसलिए कवि चाहे किसी भी पात्र की भावनाओं या अनुभूतियों का चित्रण करे, उसमें उसके निजी व्यक्तित्व की छाप आ ही जाती है। व्यवहार में, शैली में और अपने तौर-तरीकों में सरलता और सहजता ही सबसे बड़ा गुण है।' लॉग फेलो की यह उक्ति आचार्य तुलसी की भाषा-शैली और व्यक्तित्व दोनों पर लागू होती है। ''साहित्य में साधु वे हैं, जो प्रत्येक पंक्ति लिखते समय अपने से यह पूछते चलते हैं कि अनुभूति की सत्यता को विकृत किए बिना उक्ति इससे अधिक सुस्पष्ट हो सकती है या नहीं?'' जैनेन्द्रजी की यह उक्ति शैली की सरलता और सहजता के महत्त्व को प्रकाशित करने वाली है।

व्यक्तित्व की भांति हर व्यक्ति की शैली में भी भिन्नता होती है। समय के अन्तराल या संदर्भ के बदलने से एक ही व्यक्ति की शैली में भी भिन्नता पायी जा सकती है। राष्ट्रकवि दिनकर कहते हैं कि जब मुझे कहने की कोई बात सूझती है, तब उसकी शैली भी साथ-साथ में सूझ जाती है।''[२] वस्तुत: शैली अनुभूत वस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है, जो उस विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर और प्रभावपूर्ण बनाते हैं।''[३]

आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व की जीवन्तता, अप्रतिमता और ओजस्विता उनकी शैली में भी प्रकट हो गई। सीधी सरल बात को भी उन्होंने अभिव्यक्ति-कौशल से इस रूप में प्रभावी ढंग से प्रकट कर दिया कि वह पाठक या श्रोता

के मन को छूने लगती है। कालीदास ने जैसे 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं' तथा 'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया:' कहकर शिल्प और कला के क्षेत्र में नयी दृष्टि प्रदान की, वैसे ही आचार्य तुलसी ने काव्य में नए शिल्प, नए बिम्ब और नए प्रतीकों का प्रयोग किया। इस संदर्भ में उनके निम्न वक्तव्य अनेक उदीयमान लेखकों का मार्गदर्शन करने वाले हैं—

◆ "मेरा एक स्वप्न था—धर्मसंघ में साहित्य की नई धाराओं का उद्भव। नए रूप, नई विधा और नए शिल्पन से मेरा व्यामोह है, यह बात तो नहीं है, फिर भी नवीनता मुझे प्रिय है क्योंकि मेरा यह अभिमत है कि शैलीगत नव्यता भी विचार-संप्रेषण का एक सशक्त माध्यम है। सृजन की अनाहत धारा स्रष्टा और द्रष्टा दोनों को ही भीतर तक इतना भिगो देती है कि लौकिक शब्दों में लोकोत्तर अर्थ की आभा निखरने लगती है।"[१]

◆ बदलाव के साथ किए जाने वाले भोजन से कभी अरुचि नहीं होती। इसी प्रकार लेखक अपने पाठकों को एक ही प्रकार की सामग्री परोस कर वैचारिक दृष्टि से नई ताजगी नहीं दे सकता। इसलिए लेखक को भाव, शिल्प आदि में बंधना नहीं चाहिए। लेखकीय धर्म यह है कि वह न तो पूरी तरह से खुला रहे और न पूर्ण रूप से बंधकर रहे। बहुरंगी व्यक्तित्व की भांति उसकी शैली में भी विविधता हो।

अरस्तू ने सामान्यत: तीन प्रकार की शैलियों का उल्लेख किया है। प्रथम शैली में आदि से अंत तक कवि एक रूप में स्वयं ही अपनी बात प्रस्तुत करता है। दूसरी शैली में प्रसंगानुसार कभी पात्र और कभी कवि दोनों अपनी बात प्रस्तुत करते हैं। तीसरी शैली में पात्र ही अपनी बात प्रस्तुत करता है, कवि मौन रहता है। आचार्य तुलसी ने प्रसंगानुसार प्राय: तीनों शैलियों को अपनाया है। चरितकाव्य में उन्होंने अनेक प्रसंगों को संवाद-शैली में प्रकट किया है, जिससे वे प्रसंग जीवन्त हो उठे हैं। संवाद शैली से पात्रों का चरित्र भी उभरकर सामने आया है।

पाश्चात्त्य विद्वानों के अनुसार शैली के मूल दो गुण हैं— स्पष्टता और औचित्य। उनके अनुसार औचित्य का अर्थ है—जब शैली भाव और व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करती हुई विषय-वस्तु के अनुकूल हो।"[१] शैली की जटिलता से काव्य में निहित भाव उसकी चेतना का स्पर्श नहीं कर

पाते। आचार्य तुलसी ने विषयानुकूल, स्पष्ट, सहज एवं सरल शैली में अपनी बात को प्रस्तुत किया। कबीर की भांति उनकी शैली सीधी हृदय को झकझोरने वाली है। जीवन की कला से अनभिज्ञ केवल पुस्तकीय ज्ञान करने वाले पण्डितों को प्रेरणा देते हुए कवि कहते हैं—

सभी कलाएं हैं विकलाएं, पंडित सभी अपण्डित हैं।
नहीं जानते कैसे जीना, केवल महिमा-मण्डित हैं॥ सम्बोध पृ. १२१

आचार्य तुलसी ने प्रसंगानुसार कहीं विस्तृत तो कहीं संक्षिप्त शैली का प्रयोग किया है। अनेक स्थलों पर संक्षिप्त शैली के प्रयोग में भाषा के कसाव हेतु उन्होंने अपना पूरा प्रतिभा-वैशिष्ट्य प्रकट कर दिया। ऐसे प्रयोग पाठक एवं श्रोता के मस्तिष्क का भी व्यायाम करवाते हैं। 'कविता थोड़े शब्दों में महान् शक्ति बताती है।' एमर्सन का उक्त वाक्य आचार्य तुलसी की निम्न पंक्तियों का संवाहक बन सकता है—

- जाण्या भोग भुजंगम संगम, विष सम विषय विराणा।
  रज-कण राज्य, धरा धन धूली, दौलत दुःख की खाणा॥ चंदन पृ. ७५

तम्बाकू आदि का सेवन करने वाले व्यसनी की स्थिति का चित्रण कवि की संक्षिप्त शैली में पठनीय है—

शिर कर्ज चढ़ा, घर नाज नहीं, बदबू अति वदन विराज रही।
है दागी हाथ, हाय! फिर भी, घी बेच तमाखू खाना है॥ अणु पृ. २०

वनवास के समय का अनुभव सुनाते हुए लक्ष्मण ने अत्यन्त संक्षिप्त शैली में तीन बातें एक वाक्य में कह दीं—

ले आते फल-फूल, पका देती भाभी, हम खाते। परीक्षा पृ. १३

राजनगर की घटना को संक्षिप्त शैली में प्रकट करने वाली निम्न पंक्तियां भी कवि के मेधा-वैशिष्ट्य को प्रकट करने वाली हैं—

राजनगर की उस रजनी में, मंथन चला अनंत।
ज्वर से तन, चिंतन से अन्तर, आंदोलित अत्यन्त॥ नंदन पृ. १३

शालिभद्र के आंतरिक रूपान्तरण को प्रकट करने में कवि ने गागर में सागर भरने का प्रयत्न किया है—

- शालिभद्र में अंतर पूरब पश्चिम, पर्वत राई। चंदन पृ. ११८

कम शब्दों में अधिक अर्थ को गुम्फित करना कवि का शैलीगत वैशिष्ट्य है। जब भरत ने नियम के विरुद्ध चक्र के माध्यम से अनिलवेग का वध कर दिया तो बाहुबलि आक्रोश में आकर कहता है—

वह अनिलवेग है मरा नहीं।
है मरा भरत का न्याय यहां॥ भरत पृ. ९७

जीव हलका और भारी क्यों बनता है? जयंती के इस प्रश्न और महावीर के उत्तर को कवि ने एक ही पद्य में गुम्फित कर दिया है—

जीव क्यों भारी बने? हल्का बने? जिज्ञासितं।
निज शुभाशुभ वृत्ति से ही, जयंती! जिनभाषितं॥ श्रावक पृ.१८१

कहीं-कहीं शब्दों और क्रियाओं का संक्षेपीकरण भी हुआ है—

- ढलगी ऊमर और ढ़लै है। मां पृ.२३
- सुन्दर सिद्धान्त समर्पण रो, संयम-जीवन रो ओ गे, णो॥ डालिम पृ. ६१

यहां 'ढल गयी' के स्थान पर ढ़लगी और 'गहणो' के स्थान पर गे'णो शब्द का प्रयोग हुआ है।

कहीं-कहीं प्रवाह, गति और जोर देने के लिए उन्होंने विस्तार भी किया है। निम्न पंक्ति में 'सारां रा' कहने से वह भाव-संप्रेषण और माहात्म्य प्रकट नहीं होता जो 'इण रा म्हारा सारां रा' कहने में है—

इण रा म्हांरा सारां रा, आप धणी हो।
गण-गगण-सितारा, प्यारा मुकुटमणी हो॥ माणक पृ. ४०

इसी संदर्भ में दूसरा उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

एक बार सौ सहस्त्र, लाख बार जो।
कोड़ बार कहूं, ईर्या माता नै भजो॥ सुधा पृ. ५६

भाषा की कसावट के लिए कवि ने कहीं-कहीं कई वाक्यों का एक वाक्य बना दिया और कहीं जोर देने के लिए एक वाक्य के कई वाक्य बना दिए—

- मूक सेवा भाव में, कालू कला अकलंक है।
  शंक है, नि:शंक है, निर्वंक है, निष्पंक है॥
- वाचिक कायिक और मानसिक संयम आत्मशुद्धि पथ है।
  यही धर्म है, मोक्ष मर्म है, कठिन कर्म है, अवितथ है॥

नंदन पृ. १७९

- तेरापंथ अनंत शांति रो साधन है, शोधन है। नंदन पृ. १९

भाषा की गतिमयता और प्रवाह से कलात्मक सौन्दर्य उत्पन्न होता है। जहां कहीं कवि को भाषा में क्षिप्रगति दिखानी थी, वहां उन्होंने लघु अक्षरों की आवृत्ति की है। निम्न पद्यों में भाषा की प्रवाहमयी गति देखने योग्य है—

- पल-पल छिन-छिन घड़ि-घड़ि, निशदिन निराधार आधार।

कालू, भा. २, पृ. २३६

अरुज अक्षय अमल अव्यय, अज अमर अविकार हैं। भरत पृ. १७८

व्यक्तिगत या दूसरों के द्वारा कहे गए संवाद के माध्यम से पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को उभारना विशिष्ट शैली का उदाहरण है। पिता उद्रायण द्वारा राज्य न देने पर जब मित्र वर्ग अभीचिकुमार को विरोध करने के लिए उकसाता है, तब वह कहता है—

मैं कभी नहीं अविनीत अशिष्ट कहा स्यूं,
मैं लोकशास्त्र सम्मत व्यवहार निभा स्यूं,
जो जिंयां जणां स्वेच्छा स्यूं कियो पिताजी,
पलटूं न भले मन राजी हो बेराजी,
हो तात कुतात न पूत कपूत कहायो,
उद्रायण-सुत अपणै विवेक में आयो॥ चंदन पृ. ८१, ८२

समानान्तरता का प्रयोग

शैली वैज्ञानिक दृष्टि से समानान्तरता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। समानान्तरता से भाषा में लय एवं नाद-सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है। ध्वनि समानान्तरता को ही भारतीय आलोचकों ने अनुप्रास अलंकार का नाम दिया है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार समानान्तरता कथ्य को रेखांकित करने का सशक्त साधन है। शब्द की समानान्तरता दो प्रकार की होती है—प्रथम तो वहां, जहां शब्द बार-बार पुनरुक्त होता है पर अर्थ एक ही होता है। दूसरा वहां, जहां शब्द पुनरुक्त होने पर अर्थ भिन्न-भिन्न होता है। अलंकार भाषा में इसे यमक अलंकार कहा जा सकता है।

आचार्य तुलसी के काव्य में अक्षर, शब्द, पद एवं अंतिम वर्ण की पुनरुक्ति मिलती है इसलिए उनके काव्य में समतामूलक समानान्तरता का

सहज समावेश हो गया है—

- लू लागी नागी घणी, सागी आगी रूप।
- ब्रह्मचारिणी जूनी जोगण, त्यागण भागण तपसण। मां पृ. ११
- चित्त चिन्ता की चहल में। चंदन पृ. ११८
- बोलो भाई! क्यूं कठिनाई, आई बिना बुलाई। चंदन पृ. १५३
- विविध विश्रुत यान-वाहन, का विपुल विस्तार है। भरत पृ. २६
- लालच री लहरां लहराई। सुधा पृ. १५
- तेज तरुण है ब्रह्मचर्य में, ओज अरुण है ब्रह्मचर्य में। अणु पृ. ३९
- विनयी बणसी, विजयी बणसी, बणसी जीवन त्राण।
  भणसी-गुणसी, सद्गुण चुणसी, जौहरी पुत्र सुजाण॥ माणक पृ. ४२

सप्तमी विभक्ति के प्रयोग के साथ समानान्तरता और नाद-सौन्दर्य द्रष्टव्य है—

चपल तुरंगे, चढिया चंगे, अंगे वसण बखाण।
उज्ज्वल अंगे, अधिक उमंगे, संगे सकल सुजाण॥ कालू भा. १ पृ. ६७

निम्न उदाहरण में समानान्तरता के लिए कवि ने झांकने के विशेषण के रूप में आंकी, बांकी के साथ झांकी शब्द का प्रयोग किया है।

आंकी बांकी झांकी कोई मती रे करो। सुधा पृ. ५५

समानान्तरता के लिए कवि ने कहीं-कहीं संस्कृत के अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी किया है। शरीरी के साथ तुक मिलाने के लिए पीतल के लिए रीरी शब्द का प्रयोग हुआ है—

श्री श्री आदीश्वर के नंदन, दोनों चरमशरीरी।
बने मोह-मदिरा पी पागल, स्वर्ण बन रहा रीरी॥ भरत पृ. १३६

लोक धुन में गीतों की रचना करने के कारण भी उनके काव्य में समतामूलक समानान्तरता का विशेष रूप से समावेश हो गया है—

- धरें हम तन्मय बनकर ध्यान रे, जग-भान रे!
  मिटाएं तव-मम का व्यवधान रे, जग-भान रे।
  प्रभुवर पुण्य निधान रे।
  मुख पर मृदु मुस्कान रे।

---

१. डॉ. भोलानाथ तिवारी ; व्यावहारिक शैली विज्ञान, पृ. १३।
२. डॉ. भोलानाथ तिवारी ; व्यावहारिक शैली विज्ञान, पृ. १०९।

जय महावीर भगवान्॥ शासन पृ. २९

- भाई आ है दुनियादारी, अपणी अपणी दावेदारी।
  ऊठसवारी ताबेदारी, तीखी है तलवार दुधारी। चंदन पृ. ४४
- इंद्रिय मन आत्मविजेता की,
  पुरुषार्थी परम प्रचेता की,
  अन्तर् मन के अध्येता की,
  उस सत्यकाम नचिकेता की,
  निज-पर जीवन-उन्नेता की,
  अनुशासित स्वयं सुचेता की॥ नंदन पृ. १३५

यहां नचिकेता और सुचेता शब्द का प्रयोग कवि के विशिष्ट प्रतिभा वैशिष्ट्य को प्रकट करने वाला है। अंत की भांति कवि ने मध्य में भी समानान्तरता का ध्यान रखा है—

- कायर सोदरि! अये कृशोदरि, रो-रो नैन गमावै। चंदन पृ. १२०
- नहिं नहिं कुम्हारन, आपां नै ईं झंझट में जावणो।
  उलझां बेकारण, आपां नै रोज कमाणो खावणो॥ चंदन पृ. ९३

सोदरि के साथ कृशोदरि तथा कुम्हारन के साथ बेकारण शब्द का प्रयोग चमत्कार पैदा करता है। कार्य-कारण की लम्बी श्रृंखला के साथ समानान्तरता का प्रयोग द्रष्टव्य है—

सहिष्णुता से अनुशासन, अनुशासन से सक्षमता।
सक्षमता से समता, समता से विलीन तरतमता॥ अणु पृ. ११३

समानान्तरता के प्रयोग में आचार्य तुलसी के काव्य को शीर्ष स्थल पर रखा जा सकता है।

प्रश्नवाचक शैली

प्रश्नवाचक शैली में विविध भावों को प्रकट करना आचार्य तुलसी का शैलीगत वैशिष्ट्य है। गद्य की भांति पद्य में भी उन्होंने विषय के स्पष्टीकरण में प्रश्नात्मक शैली को अपनाया है। तथाकथित धार्मिकों को लक्ष्य करके लिखी गयी निम्न पंक्तियां उनकी इसी कलाभिव्यक्ति की साक्षी हैं—

- अरे धार्मिको! किस प्रवाह में, अब भी बहते जाते हो?
  सत्य धर्म की सही शान को, खोते या रख पाते हो? अणु पृ. ४३
- है धर्मशास्त्र अच्छे, युग पूछता बताओ।

जीवन में धर्म तुमने, अब तक न क्यों उतारा? अणु पृ. ४४

नारी की सुप्त चेतना को प्रश्नों के माध्यम से जागृत करते हुए कवि कहते हैं—

- नारी! क्या तेरे में भी कुछ ज्ञान नहीं है?
  नारी! क्या तेरे में भी कुछ भान नहीं है?
  नारी! क्या तेरे में अपना मान नहीं है?
  क्या तेरे चिन्तन में कुछ भी प्राण नहीं है? परीक्षा पृ.६८

कहीं-कहीं कवि अनेक प्रश्न एक साथ प्रस्तुत कर प्रश्नों की झड़ी सी लगा देते हैं—

- क्या किया? क्या कर रहा हूं? और क्या करणीय है?
  कर सकूं फिर भी न करता, यह सदा स्मरणीय है॥ अणु पृ. १२०
- हिंसा के बादल क्यों दिन-दिन, गहरे होते जाते?
  चिंतनशील मनुज क्यों अपना, धीरज खोते जाते? नंदन पृ.४७
- असमय में आकृति पर छाई, यह कैसी आज उदासी है?
  मैं देख रहा क्यों कुम्हलाया? यों प्रातः सूर्यविकासी है,
  इस सदा प्रफुल्लित चेहरे पर, यह कैसी चिन्ता की रेखा?
  इतने हैं म्लान नयन कैसे? जिनको प्रतिपल खिलते देखा॥
  भरत पृ. ६१
- कैसे चलें? खड़े हों कैसे? कैसे? बैठें या सोएं?।
  कैसे खाएं? कैसे बोलें?, पाप नहीं हम संजोएं॥ सम्बोध पृ. १२०

सहज, सरल राजस्थानी भाषा में एक साथ अनेक प्रश्नों का भव्य प्रयोग द्रष्टव्य है—

कुण हो? कहो कठै स्यूं आया? क्यूं आया? बतलास्यो के?
नाम ठाम? के काम करो? सहु विगतवार समझास्यो के?
मैं तिरूं पृ. ६७

हृदय की व्यथा को प्रकट करने के लिए भी कवि ने प्रश्नात्मक शैली का प्रयोग किया है। वनवास में आए कष्ट को देखकर सीता कह उठती है—

- वन में आई फिर भी अब तक, नहीं आपदा का अवसान।

---

१. डॉ. भोलानाथ तिवारी ; व्यावहारिक शैली विज्ञान, पृ. ६।

क्या जाने क्या होना बाकी, अब भी मेरा, हे भगवान्!॥

परीक्षा पृ. ७०

कहीं-कहीं कवि ने नकारात्मक प्रश्न में विधेय की प्रस्तुति का प्रयोग भी किया है—

- नाशपाश से बंधन टूटे, क्यों ना बुरी आदतें छूटें? अणु पृ. २६
- इसकी गरिमा है किससे कम?
- दूर रहते भी कभी क्या, हृदय मिलते हैं नहीं?
  अभ्र में रवि, अम्बु में क्या, पद्म खिलते हैं नहीं? भरत पृ. ७४

कहीं-कहीं कवि ने प्रश्न में ही समाधान गर्भित कर दिया है—

- क्यों? कैसे? कितना? कहां?, कब भोजन करणीय।
  भोजन बेला में रहें, ये बातें स्मरणीय॥ सम्बोध पृ. ११५

कहीं कहीं कवि ने प्रश्नवाचक शब्दों का प्रयोग आश्चर्य प्रकट करने के लिए किया है—

कैसी अद्भुत जीवन-गाथा, कैसी अद्भुत नीति।
कैसा अद्भुत निस्पृह चिंतन, कैसी अद्भुत रीति॥ नंदन पृ. ५

प्रश्नवाचक शब्दों का प्रयोग किए बिना भी कवि ने ध्वनि से प्रश्नों को उपस्थित कर दिया है। दूत के समक्ष बाहुबलि द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रश्न वक्ता की ध्वनि से प्रश्न उपस्थित करते हैं—

- दिग्विजय पूर्ण निर्विघ्न हो गयी होगी?
  उत्सव में जनता मग्न हो गयी होगी? भरत पृ. ६८
  भाभियां सभी सानंद? मुदित सब बच्चे?
  होंगे सब राज्य-प्रबन्ध व्यवस्थित अच्छे? भरत पृ.६८

राजा श्रेणिक द्वारा पूछा गया प्रश्न भी ध्वनि से उत्पन्न है—

- ओ शालिभद्र रो शयनकक्ष भद्राजी!?
  नहिं नहीं देवते! बोलै मृदु स्वर मांजी॥ चंदन पृ. ११३

हजारी प्रसाद द्विवेदी किसी बात को जब झकझोर कर नकारना चाहते थे, वहां निषेधवाचक वाक्य का प्रयोग न करके प्रश्नवाचक वाक्य का चयन करते थे, जिससे तीव्र निषेध व्यंजित हो जाता था।''[१] क्योंकि इसमें पाठक प्रश्न पढ़कर मन ही मन उसका उत्तर भी देता है। प्रश्न द्वारा व्यंजित

निषेध में लेखक और पाठक के बीच संवादिता की स्थिति रहती है।''[२]
काव्य भाषा में आचार्य तुलसी का प्रश्न कहीं-कहीं निषेध का पर्याय बन गया है। जहां वे किसी बात का प्रबल निषेध करना चाहते हैं, वहां प्रश्नवाचक वाक्य का प्रयोग करते हैं—

- क्यों भविष्य हित रहें भीत से? नंदन पृ. ४२
- फल-प्राप्ति क्यों ईश्वर वश्या? शासन पृ. ९५
- जो पैसा बिना पसीने का, क्या होता खाने-पीने का? अणु पृ.१९
- कहो झंझा में पता क्या, क्षीण दीप प्रकाश का? परीक्षा पृ. ५
- हिंसा क्या कभी अहिंसा हो सकती है?
काकाली कभी कालिमा धो सकती है? श्रावक पृ. १५५
- क्या कभी अहिंसा सत्य बिना जी सकती?
सूई धागे के बिना वस्त्र सी सकती? श्रावक पृ. ६३

कहीं-कहीं उन्होंने प्रश्न में ही व्यंग्य गर्भित कर दिए। व्यापारी वर्ग की कमजोरी को उन्होंने उन्हीं के समक्ष प्रश्न पूछकर व्यक्त किया है। उनकी

दिया मूल्य संयम को गहरा, बाह्य दृष्टि फिर नहीं पली,
'आचारः प्रथमो धर्मः', की स्वर लहरी अविराम चली।
आध्यात्मिक अनुभव की सरिता, आत्म-निरीक्षण से निकली,
प्रबल मनोबल धाराधर से, कौंधी उजली ही बिजली॥
नंदन पृ. १२६

वीतराग आदर्श हमारा, राग-द्वेष बन्धन कारा,
बल-प्रयोग, मानस-परिवर्तन, धूप छांह ज्यों है न्यारा।
साध्य और साधन सम्बन्धित, जैसे नभ में ध्रुवतारा,
हिंसा और अहिंसा-विश्लेषण अंतर का उजियारा॥
नंदन पृ. १२७

चेतना पर चोट करने वाले कुछ प्रश्न कवि की भाषा में पठनीय हैं—

- वह परिश्रम की असली कमाई कहां?
  स्वार्थ लिप्सा बढ़ी है, समाई कहां?
- आज बोलो वचन की है कीमत कहां?
  खाते बहियों की भी आज पत है कहां? अणु पृ. ४८

वर्ग विशेष या मानव-मन की कमजोरी को उन्हीं के समक्ष प्रश्न पूछकर व्यक्त करने से उनका काव्य प्रभावी एवं व्यञ्जक बन गया है। चेतना पर चोट करने वाले कुछ प्रश्न कवि की भाषा में पठनीय हैं—

- है आदर्श तुम्हारा रखना, सदा सभी से एकता।
  किन्तु कहां पर आज तुम्हारी, चली गई है नेकता? अणु पृ. २९

आचार्य तुलसी प्रश्न उपस्थित करके पाठक के मन में खलबली मचाने की कला में मर्मज्ञ थे। कहीं कहीं उन्होंने पूरा गीत प्रश्न वाचक शैली में लिखा है।

- क्या खाने खातिर है जीना?
  या जीने हित खाना-पीना? अणु पृ. ६४
- उपदेश का असर क्या? खुद को न जब सुधारा। अणु पृ. ४४

विरोधी शब्दों का प्रयोग

दो विषम भावों को एक साथ प्रकट करने में कवि का कौशल उत्कृष्ट रूप से प्रकट होता है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार विरोधी प्रयोग पाठक को चौंकाकर उसका ध्यान आकृष्ट करते हैं, जिससे कथ्य रेखांकित हो जाता है।''[१] आचार्य तुलसी ने कथ्य को अतिरिक्त प्रभावी बनाने के लिए एक ही पद्य में दो विरोधी भावों को व्यक्त किया है—

- ऊगै सो ही आथमे, फूलै सो कुम्हलाय। सोम पृ. ९५
- यदि भाई! तू बने न पावक, तो मैं भी शीतल जल हूं॥ भरत पृ. ११९
- वज्र-कठोर आत्मबल अविकल, हृदय कुसुम-सुकुमाल। शासन पृ. ५९
- एक ओर अत्यन्त मनोबल, एक ओर जर्जरित शरीर। मगन पृ. ४७

---

१. डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ; संरचनात्मक शैली विज्ञान, पृ. ६५।
२. पं. विश्वनाथ ; साहित्य-दर्पण, पृ. ६७४।
३. डॉ. यतीन्द्र तिवारी ; दिनकर की काव्य-भाषा, पृ. ३१०।
४. दिनकर ; मिट्टी की ओर, पृ. ७५।

- पुरस्कार सत्कार वंदना, स्तवना री भरमार।
  तिरस्कार दुत्कार मार अरु, गाल्यां री बौछार॥ सुधा पृ. ७१
- क्षमता यदि अल्प, अनल्प धर्म में आस्था। श्रावक पृ. १७
- तृण जठै डूबतो, पत्थर पाज तरै है।
  आगून बरसती, इमरत आज झरै है॥ मगन पृ. ६१
- सत्य-शोध के क्षेत्र में हो, मानस आग्रहमुक्त।
  सत्य-साधना क्षेत्र में हो, मानस आग्रहयुक्त। नंदन पृ. ११३
- गीली आंखें झांके मंत्री, बोली हुई अबोली। सेवा पृ. ११८

अर्थ के स्तर पर दो विरोधी शब्दों का प्रयोग कथ्य में प्रभान्विति लाता है। सीता राम के प्रति अपनी वेदना व्यक्त करते हुए कहती है—

- किन्तु आपने फेर दिया, उन आशाओं पर पानी।
  हाय! भिखारिन उसे बनाया, जो कल थी महारानी॥ परीक्षा पृ. ५६
- कहां सुखों में पली, कली सी राजदुलारी।
  कहां भयानक जंगल, वाह! प्रियतम! बलिहारी॥
  कहां स्वर्ग-सी सत्ता, विभुता प्रभुता भारी।
  कहां अकेली भटकूं, वाह! प्रियतम बलिहारी॥
  सब मेरे प्रिय थे, लगती मैं सबको प्यारी।
  आज वसन भी बैरी, वाह! प्रियतम बलिहारी॥ परीक्षा पृ. ५७
- स्वेद झरै झरणां ज्यूं झर झर, भूखो पिण न भिखारी। चंदन पृ. ९१
- घृणा सदा दुर्गुण स्यूं धार, और गुणां स्यूं प्रतिपल प्यार॥ सुधा पृ. ४४
- पौरुष अथाह पर शांति लिए। नंदन पृ. १६२

एक ही भाव को प्रकट करने के लिए विरोधी शब्दों के प्रयोग से एक विशेष प्रकार की ध्वनि-संगीत का निर्माण होता है। भोलानाथ तिवारी ने इसे विरोध मूलक समानान्तरता की संज्ञा दी है, जैसे—

सत्य में आस्था अचल हो, चित्त संशय से न चल हो। शासन पृ. १४

कवि ने कहीं-कहीं एक पक्ष को नकार कर भी वस्तु या विषय का स्वरूप प्रकट किया है, जिससे कथ्य में सौन्दर्य प्रकट हो गया है—

- दीनबंधु पर दीन नहीं हो। चंदन पृ. १९२
- सेवा, पूजा उपासनामय, क्रियाकाण्ड ही धर्म नहीं।

दैनिक व्यवहारों में 'तुलसी', हो उसका आचरण सही॥ अणु पृ. ४३

- पलट्यो वेश, न मन पलटायो। चंदन पृ. ४५

कवि ने देहली दीपक न्याय की भांति एक नकार से दो निषेध प्रकट कर दिए हैं—

रहण नै ठोड़ है ना ठिकाणो। चंदन पृ. ७

नारी का व्यक्तित्व विपरीत कथन की शैली में उकेरा गया है—

तुममें श्रद्धा प्रगाढ़, सच्चे ज्ञान की कमी।
कोमलता है पर, आत्मबल के भान की कमी॥ अणु पृ. ५१

बार-बार नकार का प्रयोग भी अभिव्यक्ति में प्राण भर देता है—

त्याग नाग नहिं सिंह बाघ नहीं, माग नहीं भयवारो।

दिनकर की भांति आचार्य तुलसी ने भी सटीक सम्बोधनों का भरपूर प्रयोग किया, जिससे उनके काव्य में सहजता की स्थिति का निर्माण हो गया। विशेषण के लिए शब्द-चयन सटीक एवं उक्ति-वैचित्र्य से युक्त हैं, जैसे—उज्वल अमिताभ! विश्व-विश्राम!, शासन सरताज! आदि। काव्य में प्रयुक्त संबोधनों के कुछ और उदाहरण प्रस्तुत हैं—

- इतिहास-पुरुष! हे कलाकार!, अविकल पुरुषार्थ कहानी।
  संस्कृति की साकार मूर्ति!, संसृति में सृजन निशानी॥ शासन पृ. ५६
- दीर्घ तपस्वी! विमल यशस्वी!
  वर वर्चस्वी! दिव्य मनस्वी। भरत पृ. १०
- परमदयाल! गवाल! कृपानिधि!, करुणासागर श्रेय!
  अमल उजागर! शान्त सुधाकर!, भव्य हृदय आधेय! डालिम पृ. २१५
- परमपूज्य! परमेश्वर प्रतिनिधि!, पावन! स्वयं पुनीत!। डालिम पृ. २१५
- दीनानाथ! अबन्धव बन्धव!, निर्धनधन! जन तारी।
  हे असहाय-सहायक! लायक!, त्रिभुवन-नायक-भारी॥
  कालू, भा. २ पृ. ८५

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी की सृजनात्मक क्षमता एवं उत्कृष्ट शैली ने हर अनुभव को अभिव्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है। उनकी शैली का भावगत निजी वैशिष्ट्य है कि कहीं भी निराशा और

अकर्मण्यता का स्वर मुखर नहीं हुआ है। अभाव में भाव तथा निराशा में आशा के गीत गाकर उन्होंने सबकी सुप्त चेतना को जागृत करने का प्रयत्न किया है।

विचलन एवं वक्रोक्ति के प्रयोग

विचलन का विनियोग काव्य-भाषा को जीवन्त एवं रसपूर्ण बनाए रखता है। विचलन का अर्थ है—''व्याकरण के रूढ़ पथ से हटकर विशेष शब्द-संरचना का प्रयोग करना। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस कौशल को अन्यथाकरण कहा है। अर्थात् जो जैसा है, उसे वैसा नहीं रहने देना। डॉ. रवीन्द्र नाथ के अनुसार एक सच्ची कविता में विचलन सर्जनात्मक उद्देश्य को पूरा करने का एक समर्थ अभिकरण है।''[१]

परम्परागत काव्य के आचार्यों ने काव्य के इस गुण को वक्रोक्ति के रूप में स्वीकार किया है। उसके पुरष्कर्ता आचार्य कुंतक ने 'वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगी भणितिरुच्यते''[२] कहकर वक्रोक्ति को कवि-कौशल द्वारा प्रयुक्त विचित्रता तथा काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है। सीधी-सरल बात को जब घुमा-फिराकर या भिन्न रूप से कहा जाए तो उसमें वक्रता आ जाती है। जब वक्ता किसी शब्द-समूह का एक अर्थ में प्रयोग करे और श्रोता उससे भिन्न अर्थ लगाए, तब वक्रोक्ति का चमत्कार पैदा होता है।''[३] दिनकर के अनुसार वक्रोक्ति ही कविता का प्रमुख गुण है, जो उसे पद्य से भिन्न करता है।''[४] उक्ति वैचित्र्य या कथन के टेढ़ेपन से काव्य आकर्षक, चमत्कृत और महनीय बनता है। इससे अभिव्यञ्जना प्रणाली में वैचित्र्य, विस्मय, रमणीयता, चमत्कार, सौन्दर्य और प्रभावोत्पादकता की वृद्धि हो जाती है।

आचार्य तुलसी ने चमत्कार, विलक्षणता या चौंकाने के लिए ही विचलन का प्रयोग नहीं किया क्योंकि यह कार्य तो दिमागी कसरत करने वाला कोई भी व्यक्ति कर सकता है। उन्होंने सहेतुक और साभिप्राय विचलन के प्रयोग किए हैं, जिससे काव्य में कलात्मक संवेग उत्पन्न हो जाए। निम्न पंक्तियों में विचलन का चमत्कार द्रष्टव्य है—

- व्यथा कोई एक है क्या, व्यथा से जीवन सना।
हो रहा शतखंड मानस, जर्जरित यह तन बना॥ पानी पृ. ३६
- हृदय की सब कामनाएं, मिल चुकी थीं रेत में। परीक्षा पृ. ८८

- अयश सुन-सुन राम के तो, कान बहरे हो गए।
  दु:ख से घायल हृदय के, घाव गहरे हो गए॥ परीक्षा पृ. ३५
- रो रहा मानव हृदय यों, सिकुड़ती है साथ छाती।
- देना व्यर्थ दु:ख अबला को, यह क्या आदत मैली रे। परीक्षा पृ. ३६
- संयम समता री सूई स्यूं, फाट्योड़ा अंतर पट-सीस्यूं।
  कालू, भा. २ पृ.२२९

विचलन प्रमुख रूप से नौ प्रकार का है—१. लिंग विचलन, २. कारकीय विचलन, ३. क्रिया विचलन, ४. विशेषण विचलन, ५. अव्यय विचलन, ६. वाक्य विचलन, ७. मुहावरा विचलन, ८. ध्वनि विचलन, ९. भाषा विचलन। आचार्य तुलसी के काव्य में इन सभी विचलनों के प्रचुर प्रयोग मिलते हैं।

क्रिया विचलन

क्रिया विचलन कवि की मेधा-शक्ति एवं कल्पना-शक्ति को प्रकट करता है। सीधी बात न कहकर व्यञ्जना या लक्षणा द्वारा एक क्रिया का प्रयोग किसी अन्य के साथ करना क्रिया विचलन है। आचार्य तुलसी के काव्य में क्रिया विचलन के सटीक प्रयोग मिलते हैं। क्रिया-विचलन का सौन्दर्य निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

- चिकनी भू की चाल।
- भातृत्व प्रेम स्यूं अंतर आंतां दाझै। चंदन पृ. १६
- सदगुण से अंतर पट सीते। पानी पृ. २३
- उग्र व्याधि के प्रबलघात से, धड़क रही है धरती। पानी पृ. २८
- धो धरा के तमस को, आलोक जन-मन में बहाऊं। नंदन पृ. ३४
- यह दृश्य भयावह देख-देख, जाते हैं उनके हृदय दहे। पानी पृ. ६३
- रच-रच वच जय फेंकता रे, झेल्या सती गुलाब। माणक पृ. ४९
- मंजिलें करतीं प्रतीक्षा, हाथ में ले विजयमाला॥ नंदन पृ. ४५
- चलती तलवारें सकुचाती। परीक्षा पृ. १३२
- आग से खेले सतत, अपमान का विष भी पिया। नंदन पृ. १४९

स्थिर पृथ्वी के साथ चलने की, आंतों से साथ जलने की, सद्गुण के साथ सीने की, धरती के साथ धड़कने की, तमस को धोने की, हृदय के दहने

की, वचन को फेंकने और झेलने की तथा मंजिल के साथ प्रतीक्षा और हाथ में विजयमाला लेने की तलवार के साथ सकुचाने एवं आग से खेलने की बात कहना क्रिया विचलन के विशिष्ट उदाहरण हैं। संरचना की दृष्टि से क्रिया-विचलन के कुछ अन्य उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- विस्मय उपाऊ! माऊ क्यूं है बुलाऊ? चंदन पृ. ११७
- एकता की श्रृंखला को, उत्तरोत्तर नित दृढ़ाऊं। नंदन पृ. ३४
- अब तो पैरां स्यूं धरती है खिसकाऊ। डालिम पृ. १६६
- सुणो गुरुजी! परम प्रभुजी! मगन खड़्यो अर्जाऊं। मगन पृ. २४

भद्रा सेठाणी जब शालिभद्र को नीचे बुलाने के लिए आवाज देती है, तब वह विस्मयपूर्वक कहता है— 'आप मुझे क्यों बुला रही हैं? यहां 'मुझे बुला रही हैं' के स्थान पर 'बुलाऊ' शब्द का प्रयोग क्रिया विचलन का श्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है। इसी प्रकार 'दृढ़ करूं' के स्थान पर 'दृढ़ाऊं' 'खिसकी है' के स्थान पर 'खिसकाऊ' तथा 'अरज करूं' के स्थान पर 'अर्जाऊं' क्रिया के प्रयोग हैं।

निम्न उदाहरण में नारकीय लोगों की क्षेत्र-वेदना के वर्णन में प्यास बुझाने के लिए 'बुझन्त' तथा दूसरे उदाहरण में लुभाई क्रिया का प्रयोग क्रिया-विचलन के अंतर्गत रखा जा सकता है—

- खेत्र वेदना है घणी, गरमी अरु शीत अनन्त।
  प्यास असंख्य समुद्र रो, जल पायां न बुझन्त॥ सोम पृ. ५
- मकरंद में ज्यूं मधुप लुभाई। कालू भा. १ पृ. २३३

कवि ने तुक मिलाने के लिए भी क्रिया विचलन के प्रयोग किए हैं। प्रथम उदाहरण में 'लेना' के स्थान पर 'दिया' के साथ 'लिया' का तुक मिलाया है तथा दूसरे उदाहरण में पानी के साथ जाना के स्थान पर जानी शब्द का प्रयोग किया है—

- किस भरोसे में भरत है, राज्य क्या उसने दिया?
  चाहता किस मुंह से वह, आज मेरे से लिया? भरत पृ. ७३
- मेरी सारी आशाओं पर, हाय! फिर गया पानी।
  संयम का यह प्रतिपल होगा, मैंने कभी न जानी॥ पानी पृ. ४६

जब राजा श्रेणिक भद्रा सेठानी के घर पहुंचता है तो उसका सप्तभौम प्रासाद

देखकर राजा अपने चरणों को रोकते हुए भद्रा से पूछता है कि तुम्हारा बेटा कहां है? भद्रा सेठानी कहती है—राजन्! आपको मेरा महल पावन करना पड़ेगा। यह सुनकर राजा अपनी पटरानी चेलना की ओर अभिमुख होकर कहता है—

बोलै महिपति मुलकाणो, जियां जठै है ले ज्याणो।
चलो चेलना पटराणी, मन में उत्सुकता आणी॥ चंदन पृ. ११२

यहां 'मुलकाणो' और 'आणी'—ये दोनों ही क्रिया-विचलन के उदाहरण हैं। मुस्कराते हुए को 'मुलकाणो' तथा 'आ गयी है' के स्थान पर 'आणी' का प्रयोग काव्य में स्वाभाविकता का गुण पैदा करते हैं। निम्न तीनों पंक्तियों में रोड़ के साथ क्रिया-विचलन के प्रयोग हैं—

- रोड़ मिली पग रोकणी।
- रोड़ मोड़ खाती चलै।
- रोड़ रड़बड़ै बापड़ी।

विशेषण विचलन

जहां विशेषणों की विचित्रता या वक्रता के कारण काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न होता है, उसे विशेषण विचलन कहते हैं। यह काव्य में मार्मिकता, चमत्कार एवं प्रभावशीलता का निर्माण करता है। आचार्य तुलसी के काव्य में विशेषण- विपर्यय के कुछ उदाहरण निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं—

- श्रद्धा सो स्वाद नहीं, बरफी घेउर में। माणक पृ. ४६
- इंद्रभूति से अनमि नमाए, अपने आध्यात्मिक बल से।
  गिरते कितने गैर बचाए, हत्याओं की हलचल से॥ शासन पृ. ३४
- आदर्शों का पथ हरा-भरा। नंदन पृ. ६१
- पावो तुम उम्र हजारी, अभिलाषा अविचल म्हांरी॥ नंदन पृ. १८
- टूटा मन किसे दिखाऊं रे। पानी पृ. ४६
- घर में खुली कलह की क्यारी। सुधा पृ. १३
- व्यवहारों में तैरता मिठास। नंदन पृ. ३५
- सहे मेघ के बाण।
- सूखी काया री क्यारी। चंदन पृ. २८

मां वदना के लिए 'बिताने वाली' के स्थान पर सुहावणी के साथ तुक मिलाने के लिए 'बितावणी' शब्द का प्रयोग क्रिया-विचलन का उदाहरण कहा जा सकता है—

च्यारूं ही तीरथ नै मांजी, लागी घणी सुहावणी।
हाथ सुमरणी, विकथा हरणी, सुख में वगत बितावणी॥ मां पृ. २७

कहीं-कहीं कवि ने छंद या तुक के लिए चालू परम्परा से हटकर विशेषणों या क्रिया-विशेषणों का प्रयोग किया है—

- विकसित दिल वैराग्य-वाटिका, सरस सुधा सिंचाणी। चंदन पृ. ७४
- इक दिवस शीत ऋतु चमकाणी, तब कालू काया कम्पाणी।
  थरहर थरहर जिम तरु पाणी, जब मघवा दृग् दौलत जाणी।
  निज गाती शिशु तन पर ठाणी, दीन्ही मनु युवपद सहनाणी॥
  कालू भा. १ पृ. ७०

विशेषण विचलन का बहुत सुंदर उदाहरण निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है—

- स्तवना करै, करै या कोई निंदा गर्मागर्म। सुधा पृ. ३३
- रूढ़ता की रीढ़ तोड़ी, मोड़ जीवन में लिया। नंदन पृ. १४९
- आर्य भिक्षु का सृजन सलौना। नंदन पृ. २३

'सपणै रो संसार' आख्यान में राजा श्रेणिक भद्रा सेठानी के यहां तीसरी मंजिल चढ़ने पर उसके पुत्र शालिभद्र के बारे में जिज्ञासा करता है। उस समय भद्रा सेठाणी चौथी मंजिल चढ़ने के लिए राजा को निवेदन करती है। चौथी मंजिल चढ़ने के लिए किया गया प्रयोग व्यञ्जनाशक्ति और वाक्य-विचलन का श्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है।

चौथी री पोथी पढ़ो, बढ़ो अभ्यागत। चंदन पृ. ११३

कवि का मानना है कि आत्मानुशासन के बिना बाहर हजार सूर्य का प्रकाश भी भीतरी अंधेरे को नहीं मिटा सकता। युग की स्थिति का वर्णन विचलन का श्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है—

सोया आत्मा का अनुशासन, अंधकार का जोर।
बिछा तमिस्रा का सिंहासन, नहीं दीखता भोर॥ नंदन पृ. ४

भाषा विचलन

व्याकरण से हटकर अन्य भाषा के शब्दों का अपने ढंग से प्रयोग करना भाषा विचलन है, जैसे—'अथ बाणभट्ट की कथा लिख्यते' यह प्रयोग न हिन्दी को मान्य है और न संस्कृत को पर हिन्दी में ऐसा प्रयोग भाषा विचलन का प्रयोग है। आचार्य तुलसी ने अनेक स्थलों पर राजस्थानी एवं हिन्दी भाषा के

काव्यों में संस्कृत, प्राकृत एवं अंग्रेजी भाषा के प्रयोग किए हैं। निम्न उदाहरणों में भाषा विचलन के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- 'तुलसी' मृदु मधुर स्वर गावै, धुर परमेश्वर महिमाणं। शासन पृ.१९
- तब खैर करी सो करी, हुया अलमस्तु।
  चिरशांति शिवं कल्याणं, शुभं समस्तु॥ मगन पृ. १२५
- श्री कालू मगन अभेद, न यूय वयं है। मगन पृ. १६

देवगण जब भरत चक्रवर्ती को युद्ध-विराम की सलाह देते हैं, तब भरत चक्रवर्ती की मानसिक दुविधा को प्रकट करने के लिए कवि को हिन्दी के साथ संस्कृत भाषा का सहारा लेना पड़ा—

इधर भ्रात अविनीत, उधर यह चक्र न भीतर जाता।
किं करोमि न करोमि सुपर्वो!, मानस उलझा जाता॥ भरत पृ. ११२

हिन्दी गीत के बीच प्राकृत एवं संस्कृत सूक्तियों का प्रयोग शैलीगत नव्यता के साथ भाषा-विचलन का उदाहरण भी है—

आत्मा सुख दुःख की कर्त्ता, भोक्ता स्वयमेव ही।
है 'अत्तकड़े दुक्खे' सब, अपने कृतकर्म सहे॥ शासन पृ.९३

पर्याय विचलन

एक ही अर्थ के द्योतक अनेक पर्यायवाची शब्द होते हैं। कवि उनमें से किसी एक को चुनकर उक्ति में वक्रता या चालू परम्परा से हटकर नए शब्दों का निर्माण भी करता है। नदी के लिए सामान्यतः 'सिंधुनाथ' शब्द का प्रयोग मिलता है लेकिन आचार्य तुलसी ने परम्परा से हटकर इसी के समकक्ष 'सरिता रो नाथ' शब्द का प्रयोग किया है। गांव या शहर के नामों से भी उन्होंने पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करके उस गांव या शहर का नया नाम प्रस्तुत कर दिया है; जैसे सुजानगढ़ गांव के लिए चतुरगढ़ एवं चातुरगढ़, रतनगढ़ के लिए वसुगढ़ एवं रतनदुरग, राजगढ़ के लिए नृपगढ़ तथा डूंगरगढ़ के लिए गिरिगढ़ आदि। सुजानगढ़ के लिए कवि कहते हैं—

योगासन है स्वास्थ्य-सुरक्षा,
अति उत्तम तप है स्वाध्याय।
ध्यान धर्म का शीर्ष समुन्नत,
कायोत्सर्ग जाप शुभ आय॥
सम्बोध पृ. ११९

समझावै मगन सुजानदुर्ग जनता ने। मगन पृ. ५३

कहीं-कहीं कवि ने व्यक्ति के नाम में भी पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है। इन्दौर निवासी सज्जन सिंह जी 'मोदी' के दिवंगत होने पर आशुकविता के रूप में बनाए गए पद्य में एक सज्जन उनके चारित्रिक वैशिष्ट्य को प्रकट करता है तथा दूसरा सज्जन उनके नाम का वाचक है तथा उनके पिता नेमीचन्द के लिए नेमीशशी शब्द का प्रयोग किया है। यहां शशी शब्द चन्द्र का पर्याय है—

सज्जन सज्जन मोदी मोदी, सम्बोधि संप्राप्त।
प्रामाणिक जीवन जी पाई, धार्मिक धृति पर्याप्त॥
दृढ़ नेमी नेमीशशी, यस्य पिता योगीष्ट।
प्रायोगिक जीवन-चर्या से, पाया अपना इष्ट॥

ध्वनि विचलन

ध्वनि विचलन काव्य में नाद-सौन्दर्य पैदा करता है। आचार्य तुलसी के काव्य में ध्वनि-विचलन के अनेक उदाहरण खोजे जा सकते हैं—

- सीधो सो है सादो सो है, आंख्यां में जाण भर्‌यो जादू। चंदन पृ. ९३

यदि कवि यहां सीधा-सादा शब्द का प्रयोग करते तो वह चमत्कार पैदा नहीं होता, जो बोलचाल की भाषा 'सीधो सो है सादो सो है' में है। यहां सीधो शब्द से बाह्य ऋजुता तथा 'सादो' शब्द से आभ्यन्तरिक ऋजुता प्रकट हो रही है।

- मोटा नै तकलीफ कराऊं, बचपन की सी बातड़ी। चंदन पृ. ११२

यहां 'मोटा' शब्द किसी मोटे व्यक्ति के लिए नहीं, अपितु महान् राजा श्रेणिक के विशेषण के रूप में प्रयुक्त है।

ध्वनि विचलन के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- देखकर यह दृश्य भू नभ और ककुभ अवाक् है।
  चरण आहट कर रही, मानो कि मधुर मजाक है॥ पानी पृ. ५३
- उप्त उर्वरा अवनि में, विपुल विकासी बीज।

---

१. शिवबालक राय ; काव्य में सौन्दर्य और उदात्त तत्त्व, पृ. १७४।
२. हिन्दी काव्य-भाषा की प्रवृत्तियां, पृ. २०९।
३. दिनकर ; काव्य की भूमिका, पृ. १०।
४. शेक्सपीयर्स इमेजरी एण्ड वाट इट टेल्स अस, पृ. ९।

तदपि अपेक्षित है सतत, सघन घनाघन रीझ॥ माणक पृ. ३९

यहां वर्षा के लिए 'रीझ' शब्द ध्वनि से अपना अर्थ व्यक्त करता है।

पदक्रम विचलन

वाक्य में क्रिया या विशेषण को आगे-पीछे करना पद क्रम विचलन है। कवि अनेक बार छंद या वाक्य-सौन्दर्य के लिए क्रम विचलन का प्रयोग करता है। आचार्य तुलसी ने भावों पर बल देने के लिए पदक्रम विचलन का प्रयोग किया है। रूपक के साथ पद क्रम विचलन का निम्न उदाहरण मन को आकृष्ट करने वाला है—

- कल तक जो लहरा रहे, बन उपशम रस झील।
  आज बने वे आर्यवर, देखो शंकाशील॥ पानी पृ. ३०

पदक्रम विचलन के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- श्रान्त दिन भर के सुभट हो, क्लान्त घूम रहे वहां। भरत पृ. ९१
- आसपास पड़ोस में, सर्वत्र धारा स्नेह की।
  बहे, फटके पास में, क्यों गंदगी संदेह की॥ अणु पृ. १२०
- कहें कुछ भी लोग, मानूंगा न अब मैं एक भी। परीक्षा पृ. १५१
- बौद्धिक बड़ो वकील, मोदी नेमीचंदजी। कालू भा. २, पृ. १५३
- प्रतिकार भूल का क्षमायाचना ही हो। श्रावक पृ. १७०

पदक्रम विचलन कहीं छंदानुरोध के कारण हुआ है तो कहीं उच्चारण-लाघव और चमत्कार उत्पन्न करने के लिए। पदक्रम विचलन के कुछ अन्य उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- प्रतिपल प्रमोद की धारा में, थे जाते सबके हृदय बहे। परीक्षा पृ. ३
- क्यों किया नाथ! विश्वासघात, जो कहनी कहते स्पष्ट ब ा त ।
  सब पाते न्याय, जानकी के ही, साथ रखा क्यों पक्षपात॥ परीक्षा पृ. ८०
- 'गढ़ सुजान' में आप, मगन प्रार्थना मान्य कर। मगन पृ. ५१

आचार्य तुलसी ने काकु एवं श्लेष दोनों प्रकार की वक्रोक्तियों का प्रयोग किया है। काकु वक्रोक्ति में वर्णविन्यास वक्रता का उदाहरण द्रष्टव्य है—

मैं हूं वीर, वीर मैं हूं, कोरी बोली में वीरता।
कीड़ा ज्यूं किलबिले मिनख, पर मिलै कठै महावीरता॥ चंदन पृ. १९

आशुकवित्व में भी पदक्रम विचलन के अनेक प्रयोग उनकी कविता में आकर विराज गए हैं। अणुव्रती मोहनलाल जैन के बारे में अपना मंतव्य आशु कविता के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

- सदा अमीरी अखरती, श्रम में कभी न शर्म।
  तुलसी समझू समझसी, मोहनियै रो मर्म॥

लिंग एवं वचन विचलन

स्त्रीलिंग के स्थान पर पुल्लिग तथा पुल्लिग के स्थान पर स्त्रीलिंग का प्रयोग करना लिंग विपर्यय है।

- सर्दी में खूब तपावै तावड़ी। चंदन पृ. १३५

यहां तावड़ा (धूप) शब्द पुल्लिग के स्थान पर तावड़ी स्त्रीलिंग शब्द का प्रयोग हुआ है। वचन विचलन का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

दौड्या दौड्या बालक ज्यूं, भरतेश्वर आय खड्या है। चंदन पृ. २१

यहां एक वचन भरतेश्वर के लिए 'खड्यो है के स्थान पर 'खड्या है' शब्द का प्रयोग सम्मान देने के लिए साभिप्राय हुआ है।

मुहावरा विचलन

प्रसिद्ध मुहावरे को अपने ढंग से परिवर्तन करके प्रस्तुत करना मुहावरा विचलन है। मुहावरा एवं कहावत विचलन के प्रचुर प्रयोग आचार्य तुलसी के साहित्य में द्रष्टव्य हैं। मुहावरों और कहावतों में उन्होंने केवल भाषागत परिवर्तन ही नहीं किया बल्कि छंद और उक्ति-वैचित्र्य की दृष्टि से भी मुहावरों और कहावतों में परिवर्तन किया है। मुहावरे एवं कहावतों में विचलन के कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

- छींका कदै न टूटिया रे, बिल्ली वांछ्या भ्रात। डालिम पृ. ७३
- ली खांच गलै में व्याधि, मनो अनतेड़ी॥ डालिम पृ. १७८
- ऊंखल में सिर दे अब मूसल स्यूं के डरणो आर्य! मैं तिरूं पृ. १६
- भागण बहुराणी है स्याणी, पलणै पूत पिछाणां हो। सेवा पृ. ५
- जिण गामे नहिं जाणो जी, क्यूं मारग पूछाणो जी। कालू भा. १ पृ. २०१
- थीं कितनी विपदाएं झेलीं, मैं तो प्राणों पर थी खेली। परीक्षा पृ. १५४
- कदै नहीं स्वीकृत हुवै रे, संतां! झूठ सफेद। डालिम पृ. ४३
- नहीं तो उसके गले ही, समझ लो आई बला। भरत पृ. ७३

- धड़ से शिर अलग किया मानो, नक्षत्र व्योम से टूट पड़ा। भरत पृ. ९६

प्रकरण विचलन

जहां एक ही पदार्थ या घटना का बार-बार वर्णन होने पर भी कवि की कल्पना और प्रतिभा उसमें पुनरुक्ति प्रतीत नहीं होने देती वरन् हर स्थान पर नवीनता का अनुभव होता है, वहां प्रकरण वक्रता होती है। सप्तम आचार्य डालगणी के निर्वाचन की घटना तीन चार चरित काव्यों में है पर कवि ने हर चरित काव्य में घटना को नवीनता के साथ प्रस्तुत किया है।

विचलन के उपर्युक्त सभी प्रयोगों से आचार्य तुलसी के काव्य में सौन्दर्य पैदा हो गया है।

बिम्ब-विधान

पाश्चात्त्य विद्वानों ने चित्रात्मकता या बिम्ब-विधान को काव्य की श्रेष्ठता का मापदण्ड माना है। भाषा की क्षमता का सर्वाधिक रूप बिम्बों की योजना में अभिव्यक्त होता है। जिस रीति से काव्यगत भाव या विचार में अर्थवत्ता, चित्रात्मकता, प्राणवत्ता, नवीनता और प्रभविष्णुता आती है, उसे बिम्ब-विधान कहते हैं।''[१] बिम्ब का उद्देश्य अप्रस्तुत को इस प्रकार प्रस्तुत करना है, जिससे चेतना में उसका स्वरूप स्पष्ट हो सके''[२] अत: काव्य में अर्थ-ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, वहां बिम्ब का होना भी आवश्यक है। डाइड्रेन ने कविता और चित्र में केवल शब्दों और रंगों का भेद माना है। सफल कवि चित्रकार की भांति शब्दों के द्वारा चित्र बनाता है। पाश्चात्त्य विद्वानों ने चित्रात्मकता या बिम्ब-विधान को काव्य की श्रेष्ठता का मापदण्ड माना है। जिस कविता में जितने अधिक चित्र होंगे, वह उतनी ही सुन्दर होगी। कवि जब कलाकार की भांति वर्णनीय वस्तु का चित्र या आकृति पाठक और श्रोता के समक्ष उपस्थित कर सके, तभी वह अपने कवि-कर्म में सफल हो सकता है। कहानी में जो स्थान मनोविज्ञान का है, कविता में वही स्थान चित्र को दिया जाता है क्योंकि चित्रमयता ही कविता को विज्ञान से अलग करती है।''[३] सी. एल. स्फर्जियन के अनुसार बिम्ब कवि या लेखक द्वारा अपने विचारों और अनुभवों को प्रकाशित एवं संप्रेषित करने के लिए प्रयुक्त भावगर्भित शब्द चित्र हैं।''[४] अत: कवि की

अनुभूति और कल्पना जितनी सघन और प्रबल होगी, उतने ही उत्कृष्ट और प्रभविष्णु बिम्बों की रचना हो सकेगी। ह्यूम बिम्ब को काव्य का प्राण मानते थे लेकिन डॉ. नगेन्द्र का मानना है कि बिम्ब काव्य का प्रभावी माध्यम है, प्राणतत्त्व नहीं है। सहकारी मूल्य है पर प्राथमिक मूल्य नहीं है।

आचार्य तुलसी बिम्बों को प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। वे अपने भावों और अनुभवों को मूर्त्त रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता रखते थे क्योंकि उनकी कल्पनाशक्ति और रूप-निर्मात्री शक्ति बहुत प्रखर थी। प्रसिद्ध कवि शैली का अनुभव था कि जब उनका मस्तिष्क उत्तेजित हो जाता तो उसमें से एक के बाद एक असंख्य बिम्बों की झड़ी लग जाती थी किन्तु भाषा उन सब बिम्बों को वहन करने में असफल रहती थी। आचार्य तुलसी ने भाषा की इस असफलता को चुनौती के रूप में स्वीकार कर अनेक सफल बिम्ब प्रस्तुत करके भाषा को समृद्ध बनाया। एजरा पाउण्ड के अनुसार समूचे जीवन-काल में केवल एक बिम्ब को प्रस्तुत कर देना, असंख्य काव्यकृतियों की रचना से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। आचार्य तुलसी ने न केवल अनेक नए बिम्बों की सृष्टि की अपितु पुराने एवं रूढ़ बिम्बों को भी नए अर्थ एवं नए संदर्भों में प्रस्तुत किया। बिम्बों के प्रयोग से उन्होंने सूक्ष्म एवं जटिल संवेदनाओं को मूर्त्त रूप में संप्रेषित करने का प्रयत्न किया। उनके काव्य में दृश्यात्मक एवं नादात्मक बिम्ब अधिक हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त बिम्ब में न अधिक क्लिष्टता है और न ही दुरूहता। उनकी संवेदनशक्ति अद्‌भुत थी। वैविध्य के कारण उनके बिम्बों में कहीं विस्मय और आश्चर्य प्रकट हुआ है तो कहीं आतंक और भीति। कहीं आनंद और प्रसन्नता चित्रित हुई है तो कहीं करुणा और दैन्य। उनके अधिकांश बिम्ब कोमल, मधुर और ललित हैं। बिम्ब-विधान के द्वारा आचार्य तुलसी की काव्यभाषा में संप्रेषण-शक्ति उद्दीप्त हो गयी है। आचार्य तुलसी के चरित काव्यों को पढ़ते हुए घटना, स्थान एवं व्यक्ति का चित्र नेत्रों के समक्ष सजीव हो उठता है।

डॉ. लेविस ने सफल बिम्बों के लिए छह विशेषताओं को आवश्यक माना है—१. उद्‌बोधनशीलता, २. तीव्रता, ३. अभिव्यक्ति की नवीनता व ताजगी, ४. परिचितता, ५. उर्वरता ६. औचित्य और सामञ्जस्य। आचार्य तुलसी की बिम्ब-योजना में उपर्युक्त सभी गुणों का समावेश है। उनका

मानना था कि भावोद्‌बोधन के बिना कविता में सचेतनता नहीं रहती तथा पाठक भी उस कविता का व्याकरण-सूत्र की भांति पाठ कर लेता है। कवि ने परम्परागत बिम्बों को प्रकृति से ग्रहण किया है। भले ही ये नवीन नहीं हैं पर इनमें सौन्दर्य एवं प्रेरणा विद्यमान है। 'व्यवहारबोध' में निर्झर की प्रेरणा को कवि ने इस रूप में बिम्बायित किया है, मानों वे स्वयं झरने का आह्वान सुन रहे हों—

अभ्यागत! स्वागत सुस्वागत, तुम आदर्श मुझे मानो।
निर्मल हूं, गतिशील सदा हूं, उपयोगी हूं पहचानो॥ सम्बोध पृ. १२२

राम की विरह-वेदना की अनुभूति के दो सरल बिम्ब कितने मनोहारी बन पड़े हैं—

- जीवन की वह सहज संगिनी, दु:ख में धैर्य बंधाती।
  परामर्शदात्री मंत्री ज्यों, झट उलझन सुलझाती॥ परीक्षा पृ. ८३
- संज्ञाशून्य कभी होते हैं, कभी पोंछते आंखें।
  तड़प-तड़पता जैसे पंछी, कट जाने पर पांखें॥ परीक्षा पृ. ८४

अपने तरल मनोभावों से कवि ने सीता की वेदना का ऐसा चित्र उपस्थित किया है, जिससे पाठक और श्रोता के समक्ष उसका साक्षात् बिम्ब प्रस्तुत हो गया है—

- यों आहें भरती हुई, फेंक रही नि:श्वास,
  देख रही धरती कभी, और कभी आकाश।
  कभी मौन हो सोचती, टिका हाथ पर शीष,
  कभी चीख में निकलती, अन्तर-मन की टीस॥ परीक्षा पृ. ५८
- सघन विटप के वक्ष में, छुपती है ले ओट,
  आहत हो गिरती कहीं, खा पत्थर की चोट॥ परीक्षा पृ. ६५

आषाढ़भूति के पास जब कोई भी शिष्य स्वर्ग से वापस लौटकर नहीं आया तो अंतिम शिष्य विनोद के समक्ष उनकी अन्तर्वेदना की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति इन शब्दों में व्यक्त होती है—

भग्न-हृदय आँखें द्रवित, शिष्य शीष-धर हाथ।

स्खलित-वचन कहने लगे, अन्तर्मन की बात॥ पानी पृ. ३६

सटीक शब्द-संयोजन के माध्यम से कवि गतिशील बिम्ब उभारने में सफल हुए हैं। महामारी फैलने के बाद शहर की स्थिति के चित्रण में चित्रात्मकता और नाद-सौन्दर्य एक साथ द्रष्टव्य है—

कहीं-कहीं पर तो मृतकों को, नहीं जलाने वाले,
घर-घर में शव पड़े सड़ रहे, कौन किसे संभाले?
एक चिता पर, एक बीच में, एक पड़ा है धरती,
वर्ग भेद के बिना शहर में, घूम रहा समवरती॥ पानी पृ. २९

बिम्ब मन की गहराइयों में गहरे चित्र अंकित करते हैं। बाहुबलि एक साल तक जंगल में स्थिर खड़े रहे। उस समय की स्थिति के वर्णन में कवि ने चित्रात्मकता, शब्दरूपता और भावात्मकता को एक साथ प्रकट कर दिया है—

- साधक एकाकी मंथर गति से, चलता है बीहड़ पथ पर,
संकड़ी पगडंडी कांटों का, जाल बिछा है पग-पग पर।
चारों ओर घोर जंगल हैं, झांय-झांय करती झंगी,
ऊबड़-खाबड़ टेढ़ी-मेढ़ी, धरा धराधर हैं जंगी॥
सघन झाड़ियों की श्यामलता, होता नहीं दृष्टिगत सूर्य।
चमक रहा तेजस्वी साधक, मानो तम में मणि वैडूर्य॥ भरत पृ. १४७

बिम्बों की उत्कृष्टता उसकी दृश्यात्मक शक्ति पर निर्भर रहती है। कवि अपनी कल्पना, अनुभूति और सृजन-शक्ति से ऐसे चित्र उपस्थित करता है, मानो वह दृश्य आंखों के समक्ष घटित हो रहा हो। राम के अयोध्या लौटने पर लोगों की प्रसन्नता का साकार चित्र कवि की तूलिका से चित्रित हुआ है—

छत-छज्जों से सुमनों की वर्षा होती,
न्यौछावर भर-भर थाल हो रहे मोती।

वनिता की वनिताएं मन-मोद मनातीं,
देतीं आशीषें सुमधुर मंगल गातीं।
आनन्द-विभोर सभी बालक-बालाएं,
उत्सव का दिन है आज राम घर आए॥ परीक्षा, पृ. ११, १२

साधु जीवन की पदयात्रा का साक्षात् बिम्ब नयी रेखाओं से आंका गया है—

- आजीवन ओ पाद-विहार, चटपट चलणो ऊठसवार।
  हाथे झोली, खांधां भार, स्वेद झरै ज्यूं धारासार॥ कालू भा. २, पृ. ११८
- भू शय्या भुज जुगल सिराणो, गगन चंदोवा जाणो।
  चांद चिनाणो, व्यजन पवन, जब सोवै मुनि महाराणो॥ चंदन पृ. २४४

मुनि जब सोता है तब पृथ्वी शय्या, भुजाएं उपधान, गगन चंदोवा, चांद चांदनी तथा पवन ही पंखा बन जाता है। कवि को स्वयं इस बात का अनुभव है अत: यह सजीव बिम्ब बन गया है।

वृद्धावस्था में व्यक्ति की क्या स्थिति होती है, इसके कुछ चाक्षुष बिम्ब यथार्थ को उद्घाटित करने वाले हैं—

इन्द्रयां हीण, खीण तन शक्ति, हाथ पैर सब कांपै।
चलतां श्वास फूल ज्यावै, हाल्यां सो सीनो हांपै।
बैरी बूढ़ापो जीतां नै लै मारी॥ मैं तिरूं पृ. १२

- जोवन जोश-होश सब हरसी,
  जद बूढ़ापो कंठ पकड़सी,
  गलित शरीर नयन मुख झरसी,
  बणसी कुण सहयायी॥ सुधा पृ. ७
- कानां केशां लोयणां, रसना दशनां खोड़।
  जोवन जातां सारी बातां, नीरस तत्त्व निचोड़॥ चंदन पृ. ६८

ग्रीष्म ऋतु के ताप को कवि ने अपनी विलक्षण कल्पनाशक्ति से चित्रात्मक ही नहीं, प्रेरक भी बना दिया है—

आई शुचि ऋतु उष्मा लेकर, तपता है अति उत्तप्त तपन,
भू के विषाक्त अणुओं का वह, कर देता सहसा दमन-शमन।
चलती है गरम-गरम लूएं, मानो आरोग्य बढ़ाने को,
गलियों, तालाबों, नालों का, गंदा जल पंक सुखाने को॥

भरत पृ. १५९, १६०

ऐश्वर्य के उच्च शिखर पर आसीन शालिभद्र के शरीर की सुकुमारता में कवि का बिम्ब-कौशल दर्शनीय है। जब शालिभद्र राजा श्रेणिक की गोद में बैठता है, उस स्थिति का चित्रण करते हुए कवि कहते हैं—

आगी पर ज्यूं माखन है, चुवै पसीनो छण-छण है। चंदन पृ. ११७

गुरुदेव तुलसी के व्यंग्यचित्र भी बहुत सजीव हैं। गीत के स्वरों में धर्म और धार्मिकों पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं—

- इस धर्म के सहारे, पलते हैं पाप क्या-क्या?
  फंसती है भद्र दुनिया, है धर्म नाम प्यारा॥ अणु पृ. ४४
- गुरुद्वारे में 'ग्रंथ साहब' का, पाठ प्रेम से खूब किया,
  बाहर आकर पी शराब यदि, भाई का भी खून किया।
  तो सोचो गुरु-वाणी को, कितना जीवन में लाते हो?
  सत्यधर्म की सही शान को, खोते या रख पाते हो? अणु पृ. ४३

शासकों के अहं पर व्यंग्य के साथ उन्हें उपदेश देते हुए कवि की वाणी कितनी पैनी और धारदार बन गई है—

अहंभाव में चूर स्वयं को, ईश्वर का अवतार।
मान, मनोगत दुराचार से, कभी न करना प्यार॥ अणु पृ. ४६

घटना को मूर्त्त रूप देने की कवि की विशिष्ट क्षमता निम्न पंक्तियों में देखी जा सकती है। कवि अपने बचपन की घटना का एक बिम्ब प्रस्तुत करते हैं—

लघु बंधव तुलसी स्यूं हिय हेज घणो है,
गोदी कर ल्यावै, राखै बड़ापणो है।
गीलै आंगणियै छी: छी: पग हो ज्यावै,
भाईजी अधर उठा मां पे पहुंचावै॥ सेवा पृ. ७

सेना ने तलवारें चलाईं और असंख्य बाण छोड़े ऐसा कहने में कोई चित्र सामने नहीं आता। कवि कहते हैं कि तलवारें म्यानों से निकलीं तो ऐसा लगा मानो आकाश में बिजलियां चमक रही हों। इतने अधिक बाणों की वर्षा हुई

१. राममूर्ति त्रिपाठी ; भारतीय काव्यशास्त्र के नए क्षितिज, पृ. ११५।
२. डॉ. जनक खन्ना ; तुलसी-काव्य में प्रकृति, भूगोल तथा खगोल, पृ. २७।
३. कबीर के काव्य में प्रतीक-योजना, पृ. २०२।
४. डॉ. मनोरमा शर्मा ; महादेवी के काव्य में लालित्य-विधान, पृ. २४।
५. रीतिविज्ञान, पृ. ५७।
६. डॉ. रमेश कुंतल मेघ ; समकालीन कविता और विचार कविता पृ. २५।

मानो सावन की झड़ी लग गयी हो। बिजली चमकना और सावन की वर्षा की कल्पना करने से साक्षात् बिम्ब प्रस्तुत हो गया है—

म्यानों से निकलीं तलवारें, मानो घन में बिजली दमकी,
बरछियां कटारें तेज शूल, वे भालों की अणियां चमकीं।
तीखे बाणों की बौछारें, मानो सावन की लगी झड़ी,
शब्दित करतीं भूमण्डल को, तोपें बन्दूकें बड़ी-बड़ी॥ भरत पृ. ८७

युद्ध की स्थिति का वर्णन करने वाला एक अन्य सजीव बिम्ब, जिसमें भरत और बाहुबलि के द्वन्द्व युद्ध को देखते हुए देवताओं का हृदय भी थम गया तथा बाणों से आच्छन्न आकाश ने सांस लेना बंद कर दिया—

धार खर तलवार की, चलती चपल ज्यों चंचला,
एक ही बस वार में वह, काट देती थी गला।
बाण-वर्षा से समूचा, गगन-तल आच्छन्न था,
सूर्य भी मानो उन्हीं में, हो रहा प्रच्छन्न था॥ भरत पृ. ८९

आचार्य तुलसी शब्द-संयोजन के माध्यम से गतिशील चित्र उभारने में सफल हुए अतः उनके ध्वनिचित्र भी अत्यन्त हृद्य और मधुर हैं। बहली में समर की आग प्रज्वलित होने पर नाद-सौन्दर्य युक्त बिम्ब-योजना द्रष्टव्य है—

- उठकर घोड़ों की टापों से, रजकण जा मिले नील नभ से,
अविरल गति से बढ़ते जाओ, मानो यों कहते थे सबसे।
शस्त्रास्त्रों से सज्जित स्यंदन, वीरों में नव पौरुष भरते,
अपनी झंकृत गति के द्वारा, सबको प्रोत्साहित वे करते॥ भरत पृ. ७९

कवि ने सूक्ष्म भावनाओं की भी बिम्बात्मक अभिव्यक्ति दी है। शिष्यों के द्वारा आषाढ़भूति के विचलित हृदय का वर्णन अनेक उपमाओं से रूपायित हुआ है—

क्यों सुमेरु हुआ प्रकम्पित, अब्धि उलटा जा रहा?
सघन जो घन उदधि कैसे, है तरलता पा रहा?
नेत्र की कीकी प्रभो,! आलोक देती क्यों नहीं?

---

१. Poetic Process P. 5.
२. डॉ. मनोरमा शर्मा ; महादेवी के काव्य में लालित्य-विधान, पृ. २४५।
३. डॉ. नगेन्द्र ; मिथक और साहित्य, पृ. २७।
४. डॉ. नगेन्द्र ; काव्य बिम्ब, पृ. ७८।
५. सं. विजयेन्द्र स्नातक ; कबीर, पृ. २०३।

परमुखापेक्षी मृगाधिप, क्या कहो होता कहीं? पानी पृ. ३५

कवि ने विशेषणों एवं क्रियापदों के आधार पर भी व्यक्ति का सजीव चित्र उकेरा है। निम्न पंक्तियों में तपस्या से जीर्ण-शीर्ण संत उदाई का शरीर तथा बाहुबलि का आवेश चाक्षुष बिम्ब प्रस्तुत करता है—

- दुर्बल देह सनेह संत रो, दीखै नस नस न्यारी।
  स्वेद झरै झरणां स्यूं झर झर, भूखो पण न भिखारी॥ चंदन पृ. ९१
- गरम-गरम नि:श्वास वदन से,
  रक्त बरसता युगल-नयन से,
  काट रहे हैं ओठ रदन से॥ भरत पृ. १०३

द्वन्द्व युद्ध में बाहुबलि ने भरत को गेंद की भांति ऊपर आकाश में उछाल दिया। उन्होंने नीचे गिरते भरत को हाथों में थाम लिया पर भरत चक्रवर्ती पूर्णतया मूर्च्छित हो गए। भरत की स्थिति देखकर बाहुबलि की मानसिक वेदना का भावविह्वल चित्र द्रष्टव्य है—

सुला करके गोद में, झल रहे पंखा वसन से,
बह रही है अश्रुधारा, बाहुबलि के नयन से।
अरे भाई! खोल पलकें, झांक मेरी ओर तू,
खिन्न मेरे हृदय को अब, बना हर्ष-विभोर तू॥ भरत पृ. १२९

भरत और बाहुबलि का द्वन्द्व युद्ध साक्षात् बिम्ब प्रस्तुत कर रहा है—

पकड़ बांह पछाड़ते हैं, उछल-कूद मचा रहे,
बाल-क्रीड़ा की मधुर, स्मृतियां उभय सरसा रहे।
'जय भरत!' 'जय बाहुबलि!', दर्शक मचाते शोर हैं,
कूद-फांद मचा रहे, इस छोर से उस छोर हैं॥ भरत पृ. १२७

कहीं-कहीं कवि ने वर्ण, गंध, स्पर्श, ध्वनि आदि संवेदनाओं को चित्र के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। सम्राट् भरत के विजयोत्सव पर होने वाली सम्राट् की सवारी का एक अलंकृत बिम्ब—

नाना चित्रों से चित्रित, सब कक्षों की दीवारें,
वे नाट्य वाद्य गीतों की, उठती अभिनव धुंकारें।

थे रत्न-जटित सिंहासन, जिनकी जगमगती ज्योति,
रवि लक्ष रूप धर आया, ऐसी प्रतीति थी होती।
अब पहुंच रही मंडप में, सध्वज सम्राट् सवारी॥ भरत पृ.३९

वनवास से लौटने पर जब राम और लक्ष्मण अपनी माताओं को अनुभव सुनाते हैं तो ऐसा लगता है मानो वह दृश्य आंखों के समक्ष घटित हो रहा है। सरल, सहज भाषा में अनुभवों का एक भावपूर्ण चित्र द्रष्टव्य है—

सांय-सांय करती अटवी में सुखपूर्वक सो जाते,
प्रातः उठते बसा हुआ हम, नगर मनोहर पाते॥
राम जहां है वहीं अयोध्या, यह प्रत्यक्ष निहारा,
जंगल का भी मंगलमय, हो जाता कण-कण सारा॥ परीक्षा पृ. १४

आचार्य तुलसी ने शब्द, अर्थ, लय और संगीत आदि के उचित प्रयोग से काव्य के बिम्बों में नया रंग भरने का प्रयत्न किया है। उनके ऐंद्रिक और मानसिक दोनों ही प्रकार के बिम्ब सजीव और संप्रेषणीय हैं। बिम्ब-विधान में उन्होंने अपनी सर्जनात्मक कल्पना और भाव वैशिष्ट्य दोनों का खुलकर प्रयोग किया है।

कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी ने केवल भावों की अभिव्यक्ति ही नहीं की अपितु उसे सजीव, प्रभावशाली, और अनुभवगम्य बनाकर प्रस्तुत किया है, जिससे वह प्रसंग चित्र बनकर आँखों के सम्मुख प्रस्तुत हो गया है। उनके चित्रण में विविधता है अत: उनके बिम्ब सुंदर और कलात्मक बन पड़े हैं। आचार्य तुलसी के प्राय: बिम्ब जीवन से जुड़े हुए हैं, यही उनके काव्य का वैशिष्ट्य है।

प्रतीक-योजना

भाषा की अपनी अर्थ-व्यञ्जन क्षमता की सर्वोच्च ऊंचाई 'प्रतीक' योजना में ही मिलती है।''[१] आधुनिक प्रतीकवाद की जन्मभूमि फ्रांस है लेकिन भारतीय साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग वेदों के काल से चला आ रहा है। कवि अपनी अनुभूति को संप्रेषणीय और सशक्त बनाने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करता है। प्रतीक का अर्थ है—अपने भीतर किसी नए आदर्श, प्रेरणा, भावना

या गंभीर अर्थ को छिपाकर रखने वाला तत्त्व अर्थात् प्रकृति के कुछ ऐसे पदार्थ, जो विशेष धर्म या गुण के प्रकाशन की क्षमता के कारण प्राय: सब के हृदय में एक-सी भावना जगाते हैं, उन्हें प्रतीक कहा जाता है।''[२] 'प्रतीक भाषा की बहुत बड़ी शक्ति है। जब-जब भाषा अपनी अनुभूतियों के प्रकाशन में स्वयं को असमर्थ पाती है, तब प्रतीक इस अभाव की पूर्ति में सक्षम होते हैं।''[३] अभिव्यंजना की सर्वाधिक संभावना प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त होती है।''[४] प्रतीक सत्य या अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति के ही माध्यम नहीं, अज्ञात और अव्यक्त सत्य के अन्वेषण के भी सुंदर माध्यम हैं। ये अमूर्त्त को मूर्त्त, अदृश्य को दृश्य तथा अप्रस्तुत को प्रस्तुत बनाने की क्षमता रखते हैं। श्री रामशर्मा आचार्य के अनुसार सत्य चाहे वैज्ञानिक हो, सामाजिक हो अथवा फिर धार्मिक या आध्यात्मिक, उन्हें हृदयंगम करने में प्रतीकों का सहारा लेना ही पड़ता है।''

मानव सभ्यता के विकास में प्रतीकों का बहुत बड़ा योग रहा है। हर देश के प्रतीक या मिथक वहां की सभ्यता, संस्कृति, मान्यता और जलवायु के आधार पर भिन्न-भिन्न होते हैं। साहित्य की भांति समाज में भी अनेक प्रतीक प्रतिष्ठित हैं, जैसे-विवेक के लिए हंस, अंधेपन के लिए उल्लू तथा बुद्धिहीनता के लिए गधा आदि। प्रसिद्ध विचारक विद्यानिवास मिश्र के अनुसार प्रतीक वह जादुई कुंजी है, जो सभी द्वारों को खोल सकती है, सभी प्रश्नों का समाधान कर सकती है।''[५] डॉ. विद्यानिवास मिश्र के अनुसार प्रतीक और विचार मनुष्य के ज्ञान क्षेत्र के सूक्ष्म औजार हैं।''[६] पाश्चात्य विद्वान् यीट्स के अनुसार प्रतीक विचारों को रंग और आकार प्रदान करते हैं, जिससे कम शब्दों में अधिक भाव प्रकट हो सकते हैं।''[१] टी.एस. इलियट ने काव्य में आध्यात्मिकता का आरोप कर प्रतीकों को मनोवेगों के अभिव्यंजन के रूप में स्वीकार किया है।''[२] डॉ. नगेन्द्र ने भी मिथक या प्रतीक को धार्मिक अनुष्ठान का संकल्पनात्मक रूप माना है।''[३] वे इसे उपमान या बिम्ब के सम्मिलित रूप में स्वीकार करते हैं। जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है, तब वह प्रतीक बन जाता है।''[४] प्रतीक कम शब्दों में अधिक भाव भरने का प्रयत्न करते हैं तथा आंखों के सम्मुख चित्र सा उपस्थित कर देते हैं।

प्रतीक-योजना काव्य में सौन्दर्य-वृद्धि ही नहीं करती, अनुभूति और

भावना जगाने में भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। यह मानसिक स्तर पर भावों की अभिव्यञ्जना करती है। प्रतीक से भाषा में एक अर्थवत्ता और नवीन रस का संचार हो जाता है। डॉ. महेन्द्रकुमार के अनुसार प्रतीक-प्रयोग के मुख्यतः तीन प्रयोजन हैं—

- भावना को मूर्त्त रूप देने के लिए।
- कुतूहल और विस्मय उत्पन्न करने के लिए।
- गोपनीय को दूसरों से गुप्त रखने के लिए।[१]

आचार्य तुलसी ने जीवन के अनुभवों को नई दृष्टि से देखा और उसे कल्पना-शक्ति के माध्यम से नए चित्रों एवं प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त किया। उन्होंने बहुविध प्रतीकों का प्रयोग चरम उदात्त भावों के उद्बोधन एवं एक विशेष अर्थ की अभिव्यञ्जना के लिए किया। उन्होंने अपने काव्य में भावनात्मक और विचारात्मक दोनों प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों में ऐसी शक्ति है, जो अप्रस्तुत कथन से प्रस्तुत के साम्य का साक्षात् करा देती है। कवि तुलसी ने अपनी सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूति को भी प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है। उनके सम्पूर्ण काव्य-साहित्य में प्रतीकों का सहज और स्वाभाविक संयोजन है।

प्रचलित प्रतीकों का प्रयोग जहां उनकी बहुश्रुतता की ओर इंगित करता है, वहां कल्पना-शक्ति द्वारा उसमें नवीन अर्थ का संचार उनकी विशिष्ट मेधा शक्ति को उजागर करता है। महामारी को चिंता का प्रतीक मानकर आषाढ़भूति के मुख से कवि कहलवाते हैं—

> मैं एकाकी, वृद्धावस्था, शिष्यों का दुःख भारी।
> मुझे मारती है क्षण-क्षण में, यह चिंता की मारी॥ पानी पृ. ४६

गधे को आग्रह के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करने वाली प्रेरक और मार्मिक पंक्तियां पठनीय हैं—

> अपनी भूल जान लेने पर भी, जो अकड़े रहते।
> लातें खाने पर भी पूंछ, गधे की पकड़े रहते॥ अणु. पृ. १७

गधे को कवि ने अप्रसन्नता एवं घोड़े को प्रसन्नता के प्रतीक के रूप में भी प्रस्तुत किया है। राजाओं के प्रसन्न और नाराज होने की स्थिति को कवि ने प्रतीक के माध्यम से सुंदर प्रस्तुति दी है—

एक हाथ में रासभ रहता, एक हाथ में घोड़ा।
इनके रुष्ट-तुष्ट होने का, चिट्ठा लम्बा-चौड़ा॥ भरत पृ. ७०

प्राकृतिक प्रतीकों से कवि को विशेष लगाव था अत: मानव जाति को प्रेरणा देने के लिए उन्होंने प्राकृतिक प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग किया है। निम्न पंक्तियों में पर्वत को ऊंचाई, सागर को गहराई एवं सूर्य को गति के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है—

शैल सम उन्नत बनें हम,
सिंधु से गहरे बनें हम,
सूर्य से गति-प्रेरणा ले,
अविश्रम गतिमान् हों अब॥ नंदन पृ. ४३

प्रकृति से सम्बद्ध कुछ अन्य प्रतीक भी मन को आकृष्ट करने वाले हैं—

- संघ हमारा कितना पावन, विकसित फूलों सा मनभावन। नंदन पृ. ३०
- मन के पागलपन ने जब-जब ज्वालामुखी उभारा। नंदन पृ. ४९
- संयम सुरतरु छांह में, बहता सुख का स्रोत।
  रहे असंयम धूप में, दु:ख से ओत:प्रोत॥ आत्मा पृ. ११८

बिन्दु प्रतीक का प्रयोग कवियों ने प्राय: तुच्छता, क्षुद्रता या हीनता के लिए किया है लेकिन आचार्य तुलसी ने एक लघु अंश के रूप में प्रकट करते हुए सागर या भगवान् के समानान्तर इसका प्रयोग किया है—

बिन्दु भी हम सिंधु भी हैं, भक्त भी भगवान् भी हैं। शासन पृ. १४

दो त्यौंहारों को प्रतीक बनाकर दिवाली के माध्यम से खुशी एवं प्रसन्नता को प्रकट किया है तो होली के माध्यम से दु:ख और वेदना को—

लोक-कथन से आतंकित हो, घर से गई निकाली।
सीता के जलती है होली, घर-घर आज दिवाली॥
नैया यह मझधार है, नहीं डांड पतवार है,
पत्थर को पिघलाने वाले, सीता के उद्गार हैं॥ परीक्षा पृ. ७३

कवच सुरक्षा के लिए प्रसिद्ध प्रतीक है लेकिन आचार्य तुलसी ने इसे मर्यादा के वाचक के रूप में प्रयुक्त किया है—

मर्यादा का कवच पहन, साधक सदा विजय पाए। नंदन पृ. ४०

कुछ नए प्रतीकों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

- भीतर कषाय रो भूत भयंकर जाग्यो। कालू भा. १ पृ. २४०
- पदलिप्सा रो पिशाच कब ही न सतायो। कालू भा. १ पृ. ७९
- विषभावित तलवार जीभ है, वही सुधा की सहनाणी। सम्बोध पृ. ११४

यहां 'भूत' और 'पिशाच' अनर्थ कार्य करने वाले व्यक्ति तथा जीभ विष और अमृत के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत है।

एक पत्नीव्रत को कवि ने नए प्रतीक के रूप में प्रकट किया है—

अपने घर में संतुष्ट, नियम में निष्ठा।
श्रावक जीवन की, सबसे बड़ी प्रतिष्ठा॥ श्रावक पृ. ६६

भाई को भुजा प्रतीक के रूप में आकर्षक अभिव्यञ्जना के साथ प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

पर रहते हैं कुछ खिन्न भूप, है भुजा भरत के पास नहीं।
भाई के बिना नरेश्वर के, मन में पूरा उल्लास नहीं॥ भरत पृ. ६९

जब ब्राह्मी और सुंदरी अपने ध्यानस्थ भाई बाहुबलि को प्रतिबोध देने आती हैं तो वे प्रतीक की भाषा में गाती हैं—

- जिस पर चढ़े हुए हो वह, कुंजर कज्जल-सा काला।
  उच्छृंखल है, खल है और, निरंकुश पीकर हाला॥ भरत पृ. १४९

एक ही पद्य में चार प्रतीकों का प्रयोग कवि की अभिव्यक्ति कौशल का उदाहरण है—

कुचले हैं निर्बल मृग शावक, अभी सिंह से लड़ना है।
ठुकराए पाषाण खण्ड लघु, अब पर्वत से भिड़ना है॥ भरत पृ. ५९

सूरज, दीपक, हिमालय, गंगा, झरना, चांद आदि आचार्य तुलसी के प्रिय प्रतीक थे। इन प्रतीकों का अधिक प्रयोग इस बात की ओर इंगित करता है कि उन्होंने तेज, प्रकाश, ऊंचाई, पवित्रता, गतिशीलता एवं निर्मलता का जीवन जीया और जीवन भर मानव जाति को इसी का संदेश देते रहे। उन्होंने प्रतीकों को मानव के मनोविज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया। दीप को आध्यात्मिक आलोक एवं शक्ति का प्रतीक मानकर कवि उसे विविध रूपों में प्रस्तुति देते हैं—

- ज्ञान दीप कर में लेकर, तम सागर के पार उतर। नंदन पृ. ४०
- प्रेम का हो दीप कर में, हो अटल विश्वास स्वर में। नंदन पृ. ४४
- तप का दीप रहे जलता। श्रावक पृ. ४४
- और साधना-दीवट पर, सेवा का दीप जलाएं। नंदन पृ. ५२
- अंधियारी रातों में मर्यादा दीप है। नंदन पृ. ३५
- दीप बन हर लें कुटिल तम। नंदन पृ. ५६

कहीं-कहीं राजस्थानी भाषा में आचार्य तुलसी ने शब्दों का ही इस रूप में निर्माण किया है कि वे निश्चित अर्थ के प्रतीक बन गए हैं—

सदिया भदिया सब मिल ज्यासी, कदिया पिण करतूत दिखासी। सुधा पृ. ८४

यहां 'सदिया'—सदा धर्मस्थान में आने वाला, 'भदिया'— भाद्रव मास में आने वाला तथा 'कदिया'—कभी-कभी आने वाले व्यक्ति का प्रतीक है।

एक ही प्रतीक कहीं दु:ख के रूप में तथा कहीं सुख और आनंद के रूप में प्रयुक्त हो सकता है, जैसे धूप ठंडे प्रदेश वाले लोगों के लिए सुख और आनंद का प्रतीक है लेकिन राजस्थान की गर्मी में रहने वाले व्यक्तियों के लिए ताप और दु:ख का प्रतीक है। कवि ने सूरज को जागृति एवं प्रकाश दोनों प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत किया है—

- सूरज चढ़ा है 'तुलसी', प्रतिबोध दे रहा है। अणु पृ. ६०
- तम घटाओं को कुचलकर, ज्योतिमय सूरज उतारा। नंदन पृ. १५१

कहीं-कहीं कवि ने अमूर्त्त भावों को मूर्त्त प्रतीक से प्रस्तुत किया है। निम्न पद्य में अमूर्त्त घृणा को मूर्त्त जहर से उपमित किया है—

परिवर्तित हो जीवन शैली, आए नव उन्मेष।
उतरे मन से जहर घृणा का, मिट जाए संक्लेश॥ नंदन पृ. ११८

आचार्य तुलसी ने प्राय: उन्हीं प्रतीकों का प्रयोग किया है, जो हमारे भाव एवं विचारों को जागृत करें। संश्लिष्ट बिम्बों एवं व्यापक अर्थ देने वाले प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने जीवन का समग्र दर्शन प्रस्तुत किया है। उनके प्राकृतिक प्रतीक अत्यन्त पारदर्शी हैं, कहीं भी धुंधलापन नहीं है।

प्राचीन पद्धति के अनुसार उन्होंने संख्यामूलक प्रतीकों का प्रयोग भी अनेक स्थानों पर किया है। जैसे—प्राचीन काल में समय का उल्लेख प्राय:

---

१. थियोरी ऑफ लिटरेचर।

२. डॉ. भगीरथ मिश्र ; पाश्चात्त्य काव्य शास्त्र : इतिहास, सिद्धान्त और वाद।

प्रतीक भाषा में किया जाता था। आचार्य तुलसी ने हिंदी एवं राजस्थानी काव्य में भी प्रतीक के माध्यम से समय की संख्या का बोध कराया है। ऐसे प्रयोग पाठक के मन में कौतूहल और विस्मय उत्पन्न करते हैं, जैसे—वि.सं. २००१ एवं १८५९ को प्रकट करने वाली निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

- शशी नभ-नभ चरण वर्षे। नंदन पृ. ८४
- संवति निधि यम वसु कु मिते। नंदन पृ. ९३

शालिभद्र की बत्तीस पत्नियों के लिए कवि ने 'बत्तीसी' शब्द का प्रयोग किया है—

बत्तीसी नै बिलमावै। चंदन पृ. ११९

प्रतिदिन काम में आने वाले कुछ नए प्रतीकों का प्रयोग भी कवि की विलक्षण प्रतिभा के द्योतक हैं—

शक्तिवर्धक ल्यूं सूंठ धनागरो।

अकड़ाई के लिए मद्य को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है—

मन बना मोह में मतवाला, पी ली अकड़ाई की हाला॥ पानी पृ. २५

जनमानस को प्रेरणा देने के लिए पौराणिक ग्रंथों से भी उन्होंने व्यक्तिपरक प्रतीकों को ग्रहण किया है—

- कीर्तन सत्संगत में मीरां, सूर तुल्य रस लेते हो।
  पर आचरणों में तो शूर्पणखा, का परिचय देते हो॥
  मंदिर में जा भक्त बने, प्रह्लाद भक्त से भी बढ़कर।
  हिरणांकुश से क्रूर कर्मकारी, बन जाते घर आकर॥ अणु पृ. ४३
- अंगद पद बन खड़ा निरंतर, जिसका अटल विधान। नंदन पृ. १३

यहां मीरां, सूर और प्रह्लाद को भक्ति, सूर्पणखा और हिरणांकुश को राक्षसी आचरण तथा अंगदपद को दृढ़ता के प्रतीक रूप में प्रकट किया गया है।

आचार्य आषाढ़भूति के मुख से धन के माहात्म्य का वर्णन कवि की कल्पना-शक्ति का चमत्कार है। धन का प्रतीक कुबेर अभिधा शक्ति में पठनीय है—

- धन ही है जीवन का सार, धन से ही चलता संसार।
  सबसे पहले जैसे-तैसे धन के ढ़ेर

लगाऊंगा। मैं कुबेर
बन जाऊंगा॥ पानी पृ. ५०

कवि ने प्रसिद्ध ऐतिहासिक पात्रों एवं ऐतिहासिक संदर्भों को भी प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। 'राम' शब्द को सही समझ एवं लक्ष्मण रेखा को अनुशासन के प्रतीक रूप में तथा नचिकेता को सत्यान्वेषी के रूप में प्रस्तुत करते हुए कवि का उक्ति-वैचित्र्य मन को आकृष्ट करने वाला है—

- हाय! राम! क्यों निकल गया था, राम समूचा तेरा।
  जड़ जनता की बातों में आ, कर डाला अन्धेरा॥ परीक्षा पृ. ८४
- रहे सुरक्षित धर्मसंघ, लक्ष्मण रेखाएं खींचीं। नंदन पृ. १३०
- उस सत्यकाम नचिकेता की। नंदन पृ. १३५

सेवाभावी मुनि चम्पालालजी के पूरे जीवन को 'राघवरास'—रामायण प्रतीक के माध्यम से दो पंक्तियों में प्रकट कर दिया है—

चौसठ जन्म, इक्यासी दीक्षा, बत्तीसै सुरवास।
एक पद्य में पूरो होग्यो, सारो राघवरास॥ शासन पृ. १६०

'महाभारत' को मुसीबत के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत कर कवि एक ओर जहां नारी के प्रति संवेदना व्यक्त करते हैं, वहां पुरुष को चुनौती भी दे रहे हैं—

है पुरुषों के लिए खुली यह वसुधा सारी,
पर नारी के लिए सदन की चार-दिवारी।
सूर्य देखना भी होता महाभारत भारी,
किसे कहे अपनी लाचारी, वह बेचारी॥ परीक्षा पृ.६७

नारी के प्रति पुरुष के तिरस्कार को 'झूठी पत्तल' प्रतीक में दर्शाया गया है—

जिसने दुःख में भी पुरुषों का, साथ निभाया,
अर्धांगिनी रही नित बन के, तन की छाया।
पर पुरुषों ने है यह उसका, मूल्य चुकाया,
सुख में जूठी पत्तल ज्यों, उसको ठुकराया॥ परीक्षा पृ. ६६, ६७

कवि द्वारा प्रयुक्त कुछ सामान्य, परम्परागत एवं लोक प्रचलित प्रतीकों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

तट — मंजिल — लहरें खुद ही तट दिखलातीं, ध्वान्त स्वयं बन जाता बाती।
नंदन पृ. १५०

तम — अज्ञान — मानस तम को दूर भगाएं, तिमिर को कर दें उजाला।
गंगा — निर्मलता — नैतिकता की सुरसरिता में जन-जन मन पावन हो।
अणु पृ. १५
पाषाण — कठोरता — अत: उक्त निर्णय पर पहुंचा, बनकर के पाषाण।
परीक्षा पृ. ४४
चाबी — समाधान — जीवन के ताले की चाबी। परीक्षा पृ. ५०
अंगारा — तेजस्विता — अंगारो बण जीणो सीख्यो। शासन पृ. १६०
तूफान — कष्ट — तूफानी लहरों को चीर, बढ़ता है मर्यादित वीर। नंदन पृ. ४०
हिमालय — सिद्धान्तों पर अटल हिमालय, संघर्षों से खेला। नंदन पृ. १३०
बुद्‌बुदा — क्षणभंगुरता—जल बुद्‌बुद सा यह वर्तमान का क्षण है। आत्मा पृ. ८७
सवेरा — नई आशा — उठ जाग रे मुसाफिर! अब हो चला सवेरा। अणु पृ. ६०
पतझड़ — सूनापन — पतझड़ में हरियाली छाई।
शेर — साहस —सदा दड़ूक्या बणकर शेर। सेवा पृ. १३५
प्रलय — नाश — मैं तो उन सबमें छोटा, पर प्रलयकाल का झोंका। भरत पृ. ९०
दरी — मित्रता — भातृभाव की दरी अहिंसा। अणु पृ. ३१
हंस — विवेक — क्षीर नीर निर्णायक मन को, हंस बनाएं हम। नंदन पृ. १५९
गीदड़ — कायर — क्या शेर गीदड़ों के भय से घबराए? मगन पृ. ५८
शलभ — बलिदान — अरे! शलभ बन करके क्यों लेता दीपक में झंपापात।
भरत पृ. ११९
किला — सुरक्षा — अनुशासन मजबूत किला। नंदन पृ. २३
चातक — अनन्य भक्ति। पीते हैं सब चातक बनकर सत् शिक्षामय घन-रसधारा।
पानी पृ. २७
सांप — संघर्ष, भय — जहरीले सांपों से खेले। नंदन पृ. १६१

कवि के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट आस्था थी अत: सांस्कृतिक, पौराणिक एवं परम्परागत प्रतीकों का भी उन्होंने प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। प्रतीकों के प्रयोग से उनकी भाषा में चमत्कार एवं उक्ति-वैचित्र्य उत्पन्न हो गया है। कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी का प्रतीक-विधान समृद्ध, सशक्त, समर्थ और प्रभावशाली है।

---

१. देखें डालिम चरित्र, पृ. ७३, ७४।

सम्प्रेषणीयता

काव्य की एक अद्‌भुत शक्ति है—संप्रेषणीयता। संप्रेषण के बिना कविता निरर्थक हो जाती है इसलिए कवि केवल जानता ही नहीं, उसका ठीक-ठीक अनुभव भी करवाता है। कलाकार की अनुभूति यदि पाठक तक नहीं पहुंचती है तो कला पंगु बन जाती है। संप्रेषण जितना विलक्षण, चमत्कारी, प्रभावी और प्रत्यक्ष होगा, कविता उतनी ही सरस और संवेद्य होगी। आलोचकों के अनुसार प्रेषणीयता में कवि की अनुभूति पाठक के हृदय में इस प्रकार संक्रमित हो जाती है, जैसे एक सिक्का एक जेब से दूसरे जेब में चला जाता है। कलागत सौन्दर्य काव्य में प्रेषणीयता की ताकत भर देता है। चेस्टरटन के अनुसार बिम्ब और स्वाभाविकता संप्रेषण के सर्वोच्च साधन हैं। कवि जब भाषा में लय और स्वर का संयोजन करता है, तब उसमें प्रेषणीयता बढ़ जाती है। वारेन आस्टिन का मानना है कि कला का वास्तविक होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि उसका वास्तविक जैसा प्रतीत होना।''[१] वस्तुतः प्रेषणीयता कवि की वर्णन-क्षमता और पाठक की ग्रहण-क्षमता पर निर्भर करती है। डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार संप्रेषणीयता को प्रभावी बनाने के निम्न उपाय हैं—

- अनुभूति के क्षणों में आवेगों में संतुलन रहना चाहिए।
- वस्तु या स्थिति के पूर्ण बोध हेतु कलाकार या कवि में जागरूक निरीक्षण शक्ति होनी चाहिए।
- कलाकार एवं समाज के अनुभवों में तालमेल होना चाहिए।''[२]

'कवयः क्रान्तदर्शयः' उक्ति के अनुसार आचार्य तुलसी क्रान्तदर्शी कवि और मंत्रद्रष्टा ऋषि थे। माओत्से युंग कहते हैं कि लेखक के मूल्यांकन की कसौटी उसके कथन से नहीं अपितु समाज में आम जनता पर पड़ने वाले उसके असर से है। आचार्य तुलसी ने सत्य का साक्षात्कार कर अपनी अनुभूति को सामान्य जनता तक संप्रेषित किया। अपनी हर कृति में उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि वे जो लिख रहे हैं वह स्पष्ट है या नहीं? उनकी भावना को पाठक या श्रोता उसी रूप में समझ रहे हैं या नहीं? पात्र के मानसिक भावों एवं अन्तर्द्वन्द्वों को हूबहू संप्रेषित करने की अद्‌भुत क्षमता

आचार्य तुलसी के पास थी। इसलिए जटिल से जटिल एवं गूढ़ से गूढ़ भावों की सहज अभिव्यक्ति उनके काव्य में हो गयी है।

महाश्रमणी साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी के शब्दों में पाठक के सामने से अक्षर बह जाएं और उसके जीवन को प्रभावित नहीं कर पाएं तो ऐसी रचना संप्रेषणीय नहीं हो सकती। संस्कृति और उदात्त जीवन-मूल्यों को पिरोकर व्यक्ति या समाज पर प्रभाव छोड़ने वाली रचनाएं ही कालजयी बन सकती हैं। मूल्यों के संप्रेषण में उपदेश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य तुलसी ने जिस बारीकी से मानव-मन को उपदेश दिया है, उससे उनके काव्य में विलक्षणता, सर्जनात्मकता और ग्रहणशीलता उत्पन्न हो गयी है। उपदेश-कला के कुछ उदाहरण निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं—

- मंजिल मिलती उसे सुनिश्चित, अगर लगन मन में जागे।
  मजबूती से रखें पैर को, दृष्टि रहे पल-पल आगे॥ शासन पृ. ७०
- छोड़ न सको सहज हिंसा तो, मत कहलाओ हत्यारे।
  अपने प्राण अपन को वैसे, औरों को भी प्यारे॥ अणु पृ. २१
- अरे मानव! मनन कर, सीमा अपेक्षित सर्वदा।
  जहां सीमा टूटती, पग-पग उमड़ती आपदा॥ भरत पृ. ९९
- अमृत भी हालाहल बनता, जहां न जरा विवेक।
  चक्षुष्मान बनाएं मन को, सौ बातों की एक॥ शासन पृ. ९९

पूज्य गुरुदेव का उपदेश और प्रेरणा अप्रत्यक्ष भी होती थी। अप्रत्यक्ष उपदेश श्रोता को अरुचिकर और ऊबाउ नहीं लगते। वे सीधे अवचेतन मन को प्रभावित करते हैं। घटना विशेष से प्रेरणा देने में वे सिद्धहस्त थे। जब अस्सी वर्ष की उम्र में उनकी मां मातुश्री वदनांजी ने पढ़ना सीख लिया तो उनके द्वारा व्यक्त प्रसन्नता उन निराश और आलसी लोगों को प्रेरणा देने वाली है, जो २५ वर्ष की उम्र में यह कहते हैं कि अब हम श्मशान में ही पढ़ेंगे—

अस्सी बरसां री वय में, पढ़णो सीख लियो लय में,
कीर्तिमान ओ खड्यो कर्‌यो, जीवन रो क्रम हर्‌यो-भर्‌यो।
करी निठल्लां अकर्मण्य पुरुषां पर चोट करारी॥ मां पृ. ४१

कवि ने अपने प्रतिभा वैशिष्ट्य से अमूर्त्त मानसिक भावों को भी आकृति पर उभरने वाले भावों के वर्णन में साकार रूप में संप्रेषित कर दिया है। यहां आकृति पर प्रकट होने वाले क्रोध, वीरता आदि भावों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- भृकुटि चढ़ी अवधेश की, जलते ज्यों अंगार।
  प्राची के रवि सा बना, आंखों का आकार॥ परीक्षा पृ. ७७
- भुजा उभय की फड़कती, नयन हो गए लाल।
  थर-थर करती मेदिनी, आया ज्यों भूचाल॥ भरत पृ. ११९

आचार्य तुलसी की काव्य-भाषा में संप्रेषण शक्ति की प्रखरता के बारे में महाश्रमणी साध्वी प्रमुखाजी की टिप्पणी उद्धरणीय है—'आख्यानों के घटना प्रसंगों को इतनी सजीवता एवं रोचकता के साथ गढ़ा गया है कि पाठक और श्रोता का उनके साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है। प्रेषणीयता के लिए आचार्य तुलसी को प्रयत्न नहीं करना पड़ा, सहज रूप से उनका काव्य पाठक के लिए अनुभूति गम्य बन गया। इसका एक प्रमुख कारण है

जागृत साक्षी भाव में, श्वास स्वयं है मंद।
गति-आगति को देखना, प्रेक्षा का निःस्यन्द॥
आत्मा पृ. ७५

चलते सोते बैठते, करते काम प्रकाम।
प्रेक्षा केवल श्वास की, याद रहे हर याम॥
आत्मा पृ. ७५

श्रम से क्लान्त शरीर को, मिलता है विश्राम।
आत्मारोहण के लिए, खुलते नव आयाम॥
आत्मा पृ. ७५

एक मिनिट में एक ही, जिस क्षण आए श्वास।
मनस्तोष मिलता प्रचुर, जग जाता विश्वास॥
आत्मा पृ. ७६

संगीतात्मक श्वास हो, जब गहरा लयबद्ध।
विकसित अन्तश्चेतना, स्वयं स्वयं से बद्ध॥
आत्मा पृ. ७६

कि उनके अनुभव पर बुद्धि उतनी ही हावी है, जितनी वह अनुभव को भलीभांति व्यक्त कर सके।

कवि की रचनाधर्मिता की एक बड़ी विशेषता है—उसकी संवेदनशीलता। कवि जितना अधिक संवेदनशील होगा, वह उतना ही ऊंचा और नया सृजन कर सकता है। आचार्य तुलसी के संवेदनशील मानस ने जिस विषय को अपनी लेखनी से छुआ, उसमें प्राण भर दिए। कवि की संवेदनशील चेतना को यह भेद सह्य नहीं कि पुरुष बार-बार विवाह रचाता रहे और नारी वैधव्य की चार-दीवारी में घुट-घुटकर सिसकती रहे—

पुनि-पुनि परणै नर अधिकारी।
नारी घुट-घुट मरै बिचारी॥ चंदन पृ. १७२

तुक वैशिष्ट्य के साथ साध्वी प्रमुखा गुलाब सती के व्यक्तित्व को उकेरती निम्न पंक्तियां सम्प्रेषणीयता की कला का प्रत्यक्ष निदर्शन हैं—

- सरस्वती सो रूप अनूपम, मिलै न धरती आभां।
- सहज सादगीमय जीवन, विश्वास न रोब रबाबां।
- छिपै न ज्योतिर्मय चिन्मयता, अन्तर आभा गाभां।
- मिलै न जोड़ी लम्बी-चौड़ी, पढल्यूं किती किताबां॥ शासन पृ. १०७

तेरापंथ के छठे आचार्य माणकगणी जब अपने उत्तराधिकारी का चयन किए बिना दिवंगत हो गए तब लोगों के बीच होने वाली वार्ता, जिज्ञासा, उत्सुकता और विरोध का ऐसा मनोवैज्ञानिक और सटीक चित्रण हुआ है, मानो

---

१. भावदेव नागला का आख्यान।

सब कुछ आंखों के समक्ष घटित हो रहा है।''[१] उस समय के जनापवाद का एक सजीव चित्र द्रष्टव्य है—

पूज पछेवड़ि लेवण खातर, एक दूसरै स्यूं अड़सी।
आपसरी में मंडसी पाणां, खूब जोर स्यूं जंग जुड़सी॥
हाण-हटक जब रही न कोई, क्यूं नहिं होसी गड़बड़सी ?
नंदनवन, नंदनवन करता, बो जमसी या ऊजड़सी ? डालिम पृ. ७३

नायक के बिना संघ की स्थिति कैसी होती है, इस बात को कवि ने अनेक जीवन्त उपमाओं एवं दृष्टांतों से संप्रेषित किया है—

रथ खड़्यो सझ्योड़ो झणहणतो, पण आज कठै हांकणहारो,
सामान पड़्यो सो मुंह आगै, पण गयो कठै बो चेजारो।
असवार बिना रा घोड़ां में, बोलो नीं जोश किंयां जागै ?
शासन रा सारा साध-सत्यां, शोभै शासनपति रै सागै॥ डालिम पृ. ६९

केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा के अध्यक्ष डॉ. के. के शर्मा डालिम चरित्र और कालू यशोविलास ग्रंथ को पढ़कर आश्चर्यचकित होकर लिखते हैं— ''नये-नये प्रयोग, अन्य भाषाओं के अनेक शब्दों को आत्मसात् करते हुए एकदम सीधी, सटीक और सपाट बात। डालिम चरित्र में जब आचार्यश्री माणक उत्तराधिकरी की घोषणा किए बिना दिवंगत हो जाते हैं, उस समय का चित्रण पढ़ने से लगता है, मानो दिल को खोलकर ही रख दिया है, इतना अधिकार पूर्वक लिखना व्युत्पन्नमति दूरदर्शी विद्वान् का ही कार्य हो सकता है।''

संवाद-शैली में घटना को प्रस्तुत करने के कारण उनके काव्य में प्रेषणीयता और अधिक बढ़ गई है। कालूगणी के समय दान-दया के बारे में लोगों में

---

१. सोमरस, देखें परि. १, पृ. २४४-४७।
२. सोमरस, देखें परि. १, पृ. ११६।
३. चंदन की......., देखें परि. १, पृ. ३२६, ३२७।
४. डालिम चरित्र, देखें परि. १, पृ. २४८, २४९।
५. सोमरस, देखें परि. १, पृ. १११।
६. सोमरस, देखें परि. १, पृ. ११२।
७. चंदन की......, देखें परि. १, पृ. २९८।
८. पानी में....., देखें परि. १, पृ. ११८, ११९।

बहुत ऊहापोह था। वे एक दिन प्रवचन में दया का स्वरूप स्पष्ट कर रहे थे। प्रवचन में मियां और मौलवी भी बैठे थे। उनको सम्बोधित कर कालूगणी ने कहा—'आप जब नमाज पढ़ रहे हों, उस समय कोई बच्चा ऊपर से नीचे गिर जाए तो आप क्या करेंगे? मुल्लाजी बोले—"उस समय हम नमाज में तल्लीन रहते हैं। यह ध्यान नहीं देते कि कौन जी रहा है और कौन मर रहा है क्योंकि उस समय हम खुदा के ध्यान में लीन रहते हैं।" कालूगणी ने कहा—'हमारे तो जीवन भर की नमाज है क्योंकि हम संन्यासी का जीवन बिता रहे हैं।' इसी घटना प्रसंग को कवि ने सवैया छंद में लयबद्ध एवं तालबद्ध भाषा में प्रस्तुति दी है—

तुम मान कुरान प्रमान यदा, निज जान रिवाज नमाज पढ़ो,
सब काज हि व्याज सिवातम काज, गरीब निवाज के ध्यान चढ़ो।
घड़ि-दो-घड़ि हेत रहो दृढ़चेत, चहे कोई आय कटो जु बढ़ो,
जहं जीवन-यापन है इह भांत, फकीरि रो पंथ तो अंत बड़ो॥

कालू भा. १ पृ. १३२

आचार्य तुलसी के संवाद प्रायः संक्षिप्त, चुस्त एवं भावों के सशक्त संवाहक हैं। संवादों के कारण उनके चरितकाव्य में नाटकीयता उत्पन्न हो गयी है। पात्र एवं भाव के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग हुआ है। कवि ने पात्रों के चरित्र एवं उनकी मानसिक स्थिति को भी कथोपकथन के माध्यम से प्रकट किया है। लोकगीत में थावच्चापुत्र का उसकी मां के साथ जो संवाद कवि ने प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त सरस और रोचक है। जब मां उसे संसार में रहकर धर्म करने के लिए आग्रह करती है तो वह रहस्यवादी शैली में कहता है—

इसो निकम्मो जीणो मायड़!, मैं नहिं जीणो चाहूं।

जब युग ने करवट बदली थी, नव संस्कृति का नव स्रोत बहा।
भोले-भाले सीधे-सादे, मानव थे कितने सरल अहा!

भरत पृ. १५

---

१. सम्बोध, देखें परि. १, पृ. १४०-४३।
२. सम्बोध, देखें परि. १, पृ. १६२, १६३।

क्षण-क्षण मरणै री आशंका, जहर न पीणो चाहूं॥ मैं तिरूं पृ. १३

दीक्षा के प्रबल विरोधी वातावरण में भिवाणी के श्रावक घबरा गए। उस समय मंत्री मुनि के मुख से उद्गीर्ण वाणी जहां श्रावकों का आत्मविश्वास जगाती है, वहां मंत्री मुनि के चरित्र की सशक्त अभिव्यक्ति भी कर रही है—

हम तो दीक्षा तुम कहो वहां दे देंगे,
पावस उतरे भीवाणी छोड़ चलेंगे।
तुमको तो आखिर रहना यहीं पड़ेगा,
कायरता का अभियोग न कभी झड़ेगा॥
ऊमर भर ऊंची नजर न देख सकोगे,
बिलकुल सच्चे, बन झूठे मुंह तकोगे।
क्यों सिर पर भय का भूत सवार हुआ है,
क्या धार्मिकता का बल बेकार हुआ है॥
हरियाणै की श्रद्धा हम सुनते आए,
क्या शेर गीदड़ों के भय से घबराए॥ मगन पृ. ५८

कहीं-कहीं एक पद्य में अनेक संवाद प्रस्तुत हो गए हैं। चिरंजीलालजी की दीक्षा होने पर उनकी मां मोह में विक्षिप्त जैसी हो गयी। उस समय लोगों का संवाद कितना सहज, सरल, स्वाभाविक, सजीव और बोधगम्य बन पड़ा है—

पूछै समाज रा समझदार कई आई,
कुण है? क्यूं है? कांई है? बोलो भाई।
कुछ भी है नहीं, चिरंजी नै ले जास्यां,
मरती-मरती इण री, मां नै जीवास्यां॥ माणक पृ. ७८

सफल कवि वह होता है, जो घटना विशेष के प्रति जनता के मन में उभरने वाले भावों के द्वन्द्व को हूबहू संप्रेषित कर दे। सीता की अग्नि परीक्षा के समय होने वाले विस्तृत जन-प्रवाद की कुछ पंक्तियां पठनीय हैं—

- कैसे ये पाषाण हृदय हैं, करुणा जरा न आती,
  क्या अपनी परिणीता नारी, ऐसे मारी जाती?
  नहीं मानते कही-सुनी, मनमानी सदा चलाते,
  हाय! राम इस सीता पर क्यों, निर्दयता दिखलाते॥ परीक्षा पृ. १५६

---

१. महावीर प्रसाद द्विवेदी ; विचार-विमर्श, पृ.१।

काव्य में प्रेषणीयता का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण है—आचार्य तुलसी की तन्मयता एवं एकाग्रता। वे जब काव्य लिखते, तब इतने तन्मय हो जाते थे कि उनका पूरा शरीर भास्वर हो जाता था तथा उनका रोम-रोम काव्य-सर्जना में तल्लीन हो जाता था। उनकी काव्य सर्जना के बारे में महाश्रमणी साध्वी प्रमुखाजी का अनुभव पठनीय है—"भोजन करते समय बाहर से भोजन होता है, भीतर रचना आकार लेती रहती है। कायोत्सर्ग के समय ऊपर से पूरी स्थिरता दिखाई देती है पर भीतर रचना-प्रक्रिया विराम नहीं लेती। कभी-कभी तो किसी से बातचीत करते समय भी काव्य-सृजन का सिलसिला नहीं रुकता। इसकी अभिव्यक्ति तब होती है, जब बातचीत पूरी होते ही आप कलम हाथ में लेकर भीतर हुई प्रक्रिया को कागज पर उतारने में संलग्न हो जाते हैं।"

काव्य को संवेद्य एवं संप्रेषणीय बनाने के लिए आवश्यक है—निश्छल अभिव्यक्ति एवं ईमानदारी। उदात्त हृदय होने के कारण कवि ने स्वयं की अनुभूतियों को इस रूप में प्रकट किया है कि वे दूसरों के लिए भी प्रेरक एवं उपादेय बन गयी हैं। निम्न पंक्तियों में कवि स्वयं को सम्बोधित करते हुए समष्टि को प्रतिबोध संप्रेषित कर रहे हैं—

- श्रम जीवन है, श्रम संस्कृति है, फिर मैं सुविधावादी क्यूं?
श्रम है स्वास्थ्य सुणूं जाणूं फिर, अश्रम को आस्वादी क्यूं?
कर-झोली टोली सन्तां री, साथ स्वयं मैं भिक्षा की।
झरते स्वेद अखेद वृत्ति वर, सबनै सक्रिय शिक्षा दी॥ मैं तिरूं पृ १३०
- सहें विरोध विनोद समझ यह, वीरों का वीरत्व मिला। नंदन पृ. १७८

कवि ने आत्मविश्वास के साथ अपनी अनुभूतियों को दूसरों तक संप्रेषित किया है—

- सदा सफलताएं चलती हैं, जागृति के आगे-आगे। नंदन पृ. ११७
- जहां नहीं चैतन्य वहां पर, सत्य सदा सोता है। नंदन पृ. १५९
- ऊंचा वह, जो पहले झुकता। भरत पृ. ११३
- पतित मनुजों के पतन का, अंत है आता नहीं। भरत पृ. १३२

समभाव, समविचार और समकर्मता के उद्देश्य से लिखा गया आचार्य तुलसी का रचनाकर्म संप्रेषणीय ही नहीं, सार्थक भी बन पड़ा है। उनकी मानवीय संवेदनाएं परिष्कृत, व्यापक और उदात्त बन गईं थीं अत: उनकी

संवेदनाएं पाठक और श्रोता को सीधा प्रभावित करती हैं।

कथानक-रूढ़ि

कवि अपनी अनुभूति या संवेदना को कथानक या अतीत के घटना प्रसंगों के माध्यम से अच्छी तरह व्यक्त कर सकता है। कान्ता सम्मत उपदेश प्रणाली के लिए कथा का सहारा ही सर्वश्रेष्ठ आलम्बन है क्योंकि कथानक में उद्देश्य एवं प्रयोजन को अन्योक्ति के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। घटना की मनोरमता और प्रभाव से काव्य का रूप निखर उठता है साथ ही काव्य की कमनीयता घटना को उजाल देती है। कुंतक ने उन कवियों को वंदना की है, जो भूत को अपनी क्षमता से सुंदर बनाकर प्रस्तुत करते हैं।

आचार्य तुलसी ने पौराणिक आख्यानों एवं ऐतिहासिक घटनाओं को लोकगीतों की धुनों में काव्यबद्ध करके उन्हें मनोहर बना दिया। प्रत्येक आख्यान अतीत को प्रस्तुत करते हुए भी वर्तमान को सुंदर, भव्य और आलोकित बनाने की प्रेरणा देते हैं क्योंकि कथाओं के बीच-बीच में उन्होंने नयी सम्भावनाओं एवं जीवन-मूल्यों को भी उकेरा है। आचार्य तुलसी ने प्राय: जैन कथाओं को काव्य का आधार बनाया है लेकिन कहीं-कहीं नीतिपरक कथाओं को भी काव्य में गुम्फित किया है। घटना के मर्मस्थल को समझकर उसके पीछे छिपी भावना को कलात्मक रूप से चित्रित करने की अद्‌भुत क्षमता उनके पास थी।

कुछ कथाओं में कर्म-विपाक का सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है तो कुछ में उस समय की अध्यात्म-परम्परा गुम्फित हुई है। कुछ कथाएं मानवीय संवेदना की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति करने वाली हैं तो कुछ कथाएं तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का अवबोध कराती हैं। भगवान ऋषभ का आख्यान व्यक्ति-उन्नयन ही नहीं, सम्पूर्ण मानव-संस्कृति के उन्नयन की कथा प्रस्तुत करता है। चोट किस समय कहां और कैसे करनी, इसका भव्य उदाहरण है 'पासो ही पलट ग्यो'[१] का आख्यान। नारी ने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा से पुरुष के बहकते कदमों को जो शक्ति दी है, वह संन्यास के इतिहास का दुर्लभ

दस्तावेज है।

आचार्य तुलसी ने कथानक रूढ़ि का बहुलता से प्रयोग किया है। उन्होंने लोककथाओं का विस्तार न करके केवल संकेतमात्र किया है। कथानक रूढ़ि के रूप में उन्होंने जिन लोक-कथाओं का प्रयोग किया है, उन सबका संकलन करके कथाओं को विस्तार से लिखा जाए तो एक स्वतंत्र ग्रंथ बन सकता है। गीत-साहित्य में लौकिक कथाओं का संकेत कवि का मौलिक वैशिष्ट्य है। कथानक रूढ़ि के रूप में कुछ कथाओं का संकेत निम्न उदाहरणों में देखा जा सकता है—

- मोड़ो बेगो फूट्यां सरसी, घड़ो भरीज्यां पाप रो।[1] सोम पृ. ८९
- आंख मूंद अनभिज्ञ चलै क्यूं, लकड़ी स्हारै रे।[2] सोम पृ. १४
- बिन समझे बात पकड़कर, मिथ्या आग्रह में अड़कर।
  सिर पर लोहे का भार न ढोना चाहिए॥ अणु पृ. ८१
- फौलादी लोहे को कैसे, चूहे मिलकर खा जाए? अणु पृ. २१
- पकड़ पूंछ गद्धै को ताण्यो, खाई खूब दुलात।[3] चंदन पृ १८४
- डर भाग्या लहताण स्यूं कोई कर्‌योन गहरो गोर।[4] डालिम पृ. १८१

इन कथाओं के विस्तार हेतु काव्य पुस्तकों के परिशिष्ट देखे जा सकते हैं।

मनुष्य जन्म की दुर्लभता एवं उसके सही उपयोग में कथानक-रूढ़ि के निम्न उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- चक्रिभोज्य सम मुश्किल ओ, मानव भव पायो।[5] सोम पृ. ९
- तो ब्राह्मण ज्यूं चिंतामणि स्यूं, काग उड़ायो।[6] सोम पृ. ९
- एक-एक मधु बूंद नूंधकर, गयो जमारो हार।[7] चंदन पृ. ७३
- कितने दिन पारस पास रहा, फिर भी हतभाग्य उदास रहा॥[8] पानी पृ. २५

तेरापंथ के ऐतिहासिक घटना प्रसंगों का भी कवि ने संक्षेप में संकेत मात्र किया है। महावीर के साधना-काल में शूलपाणि यक्ष मंदिर वाले प्रसंग की संक्षिप्त प्रस्तुति पठनीय है—

चलो गांव में, क्यों? रात्रि में यहां नहीं आराम।
क्या भय? शूलपाणि का मंदिर, यही साधनाधाम। शासन पृ. ४१

चतुर्थ आचार्य जयाचार्य एवं मुनि कनक के घटना प्रसंग को एक ही पद्य

में गुंफित करते हुए कवि कहते हैं—

काढै गली गिंवार, महाजन जय गुरु आणां ओटी।
म्हांरै आप बाप हो गुरुवर, चढग्यो 'कनक' कसौटी॥ नंदन पृ.१९

कहीं-कहीं घटना प्रसंगों को भी संक्षिप्त प्रस्तुति दी है। आचार्य भिक्षु से पूछा गया कि तेरापंथ कब तक चलेगा? उन्होंने उत्तर दिया— 'जब तक इसके सदस्य आचार और नीति में निष्ठा रखेंगे, तब तक तेरापंथ के अस्तित्व पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लग सकता। इसी बात की अभिव्यक्ति उनकी काव्यमयी पंक्तियों में पठनीय है—

मार्ग का अस्तित्व कब तक? पुष्ट जब तक नीति।
न्याय से, आचार से, आचार्य से वर प्रीति॥ नंदन पृ. १८

अकबर और बीरबल के घटना-प्रसंग को प्रस्तुति देते हुए कवि कहते हैं—

मीठी केवल जीभ है, फीके सब पकवान।
खाया-पीया सब खतम, बेगम करे बयान॥[1] सम्बोध पृ. ११४

इसी प्रकार अरस्तू के जीवन-प्रसंग को कवि ने एक नयी प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत किया है—

जो अपना अज्ञान, पहचाने सुकरात ज्यों।
देवी का आह्वान, सर्वाधिक ज्ञानी वही॥[2] सम्बोध पृ. १२३

हय-गज-रथ सेना खड़ी, खड़े वीर विक्रान्त।
कौन सुरक्षा कर सके? जब कटिबद्ध कृतान्त॥

आरोहण पर्वत-शिखर, या संतरण समुद्र।
किन्तु मनुज बचता नहीं, है कृतान्त अतिरुद्र॥
आत्मा पृ. ८८

मानव ही क्या है अमर लोक भी नश्वर,
है नहीं वहां भी आत्यन्तिक सुख का स्वर।
फिर वस्तु कौन होगी, संसृति में ऐसी?
जो सदा-सर्वदा रहती हो स्थिर वैसी॥
आत्मा पृ. ८७

आचार्य तुलसी के आख्यानों को पढ़ने से ऐसा लगता है मानो भारतीय संस्कृति का साक्षात् कर रहे हैं। उन्होंने प्राय: उन्हीं कथानकों का उपयोग किया है, जिनसे भीतर में कुछ प्रेरणा जागती हो।

सूक्तियों का प्रयोग

सफल कलाकार वह होता है, जो किसी भी विषय को लेकर उसमें जीवन्त चेतना भर दे। सूक्तियां काव्य में केवल नव चेतना का संचार ही नहीं करतीं, काव्य-भाषा को चारु, सशक्त और सुमधुर भी बनाती हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार अच्छी कविता में जीवन को सार्थक करने के उपाय और उसके उद्देश्य बतलाए जाते हैं, अच्छी शिक्षा दी जाती है, उन्नति का मार्ग दिखाया जाता है और मानव के हृदय को उदार और सहानुभूतिपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया जाता है।''[१] साहित्य में प्रयुक्त सूक्तियां इसी उद्देश्य की पूर्ति करती हैं।

आचार्य तुलसी ने स्वतंत्र रूप से किसी नीतिकाव्य की रचना नहीं की लेकिन नीति और सदाचार के अनेक उच्च आदर्श उनके काव्य में विकीर्ण रूप से बिखरे पड़े हैं। सूक्तियों के माध्यम से उन्होंने आदर्श मूल्यों की अति संक्षिप्त प्रस्तुति दी है। सूक्तियां उनके विशद अनुभवजन्य ज्ञान को प्रकट करती हैं। इनके प्रयोग से भावों की अभिव्यञ्जन क्षमता और काव्यगत सौन्दर्य पर तो विशेष प्रभाव पड़ा ही है, साथ ही सामान्य जनता को जीवन का मार्मिक संदेश भी मिला है। आचार्य तुलसी ने अर्थ-गौरव और साहित्यिक सौन्दर्य से युक्त सूक्तियों का प्रयोग किया है, जिससे उनकी भाषा में सहजता, स्वाभाविकता और मार्मिकता का गुण उत्पन्न हो गया है। उनकी काव्यगत सूक्तियों को दो विषयों में विभक्त किया जा सकता है—(१) जीवन दर्शन परक (2) व्यंग्य-परक। जीवन-जागरण का संदेश देने वाली गागर में सागर भरने वाली कुछ पंक्तियां सूक्तियों के रूप में प्रकट हो गयी हैं—

---

१. भोलानाथ तिवारी, महेन्द्र चतुर्वेदी ; काव्यानुवाद की समस्याएं, पृ. ४२।

२. आयारो ४/८।

- अपणी आत्मा ही अपणी पहरेदार हो। तेरापंथ पृ. १५
- दो अठी-बठी री गपशप करनी सोरी।
  अपणै प्राणां री बली चढ़ाणी दोरी॥ डालिम पृ. २०६
- चढ़ते-चढ़ते प्रगति शिखर से, गिरना है आसान।
  पर गिर करके पुनः संभलना, कितनी टेढ़ी तान॥ पानी पृ. ११२
- दुःख री घड़ियां आलम्बन बिन, बरस बरोबर जावै। कालू भा. १ पृ. ६५
- एक मन नै जीतणो है, जीतणो संसार नै। सुधा पृ. ६३
- यों फूलों की चाह में, बोती हाय! बबूल।
  किन्तु मिलेंगे अन्त में, तीक्ष्ण नुकीले शूल॥ परीक्षा पृ. २८
- तरी अगर अभिमान तरी तो, दुःख-दुविधावां दूर टरी॥ चंदन पृ. २७
- गरल बांट कैसे कोई जन, इमरत पी सकता है? अणु पृ. १११
- झगड़ भाई से कभी, सुख-चैन पाएगा नहीं।
  राज्य-वैभव तो किसी के, साथ जाएगा नहीं॥ भरत पृ. ७३

अभिधाशक्ति में सूक्ति का सौन्दर्य मन को आकृष्ट करने वाला है—

- दुःख के पीछे ही सदा, होता सुख-संचार।
  अत्युष्मा में दीखते, वर्षा के आसार॥ परीक्षा पृ. ७०
- भीतर में जाने वाला ही, देता दिव्य प्रकाश। नंदन पृ. १३
- इंच-इंच धरती को लेकर, कितना नर बन जाता बर्बर? भरत पृ. १३४
- उत्साही नर सदा सफल, होता जीवन समरांगण में। नंदन पृ. २३
- परदोष देखने की वांछा, नर को गुमराह बनाती है। नंदन पृ. १४०
- पद-यश की झूठी आकांक्षा, आत्मा से दूर भगाती है॥ नंदन १४०
- जो क्षमाश्रमण होता वह ही, विष को पीयूष बनाता है। नंदन १३९
- औरों के अधिकार कुचलना, राजनीति का बड़ा कलंक। भरत पृ. ६७
- कटुता का प्रतिफल है कटुता, राजनीति की है यह पटुता। परीक्षा पृ. ११४

आचार्य तुलसी को हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत भाषा के सैकड़ों सूक्त कंठाग्र थे। काव्य -साहित्य में उन सूक्तों का प्रयोग उनकी शैलीगत नवीनता है।

१. उत्तराध्ययन १४/२७ जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वत्थि पलायणं।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया॥

निम्न सूक्तियां संस्कृतिपरक ही नहीं, जीवन को मूल्यों से जोड़ने वाली भी हैं—

- 'सा विद्या या भवति विमुक्तये,' विनय सुनय का पाठ। शासन पृ. ६३
- 'सम सुह-दुक्ख सहे' रख सम्मुख, कितने परिषह पार लगाए। नंदन पृ. १६६
- देहं त्यजेन्न धर्मशासनं, दृढ संकल्प सझाएं। नंदन पृ. ६६

कहीं-कहीं नीतिपरक औपदेशिक सूक्तियां भी उनके काव्य में सहज रूप से अवतरित हो गयी हैं—

- करणो प्रतिकार, विकार न बढ़णै देणो।
  वह्नी व्याधी रु, विरोध दमन कर लेणो॥ चंदन पृ. ८६
- स्वयं को क्या संघ को, संसार को धोखा न दो।
  'जहावाई तहाकारी', मार्ग से आगे बढ़ो॥ नंदन पृ. ७६
- कभी न हो पद यश की लिप्सा, और नाम की भूख।
  करो कबूल बिना हिचकिच के, जो हो अपनी चूक॥ अणु पृ. ५३

कवि ने कहीं-कहीं संस्कृत एवं प्राकृत सूक्तियों का भावानुवाद भी बहुत सरस शैली में प्रस्तुत कर दिया है—''संघे शक्तिः कलौ युगे'' सूक्ति का भावानुवाद निम्न पद्य में पठनीय है—

संघ में ही शक्ति इसमें, है नहीं संदेह।
प्राण है आचार उसकी, संगठन है देह॥ नंदन पृ. १७

सत्ता-लोलुपता और अधिकारों के दुरुपयोग पर उनका मंतव्य पठनीय है—

- अधिकारों का दुरुपयोग, या वैभव का व्यामोह।

१. समदोषः समाग्निश्च, समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः, स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

२. विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य, परं दृष्ट्वा निवर्तते॥ गीता २/५९

३. अमंत्रमक्षरं नास्ति, नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषः नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः॥

४. आस्रवो भवहेतुः स्यात्, संवरो मोक्षकारणम्।
इतीयमार्हती दृष्टि, रन्यदस्याः प्रपञ्चनम्॥

५. दु:ख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होय॥

६. राजा जोगी अगन जल, इनकी उल्टी रीत।
डरते रहना परशराम, थोड़ी पालै प्रीत॥

इसीलिए तो स्थान-स्थान पर, होते हैं विद्रोह॥ अणु पृ. ४७

अकड़ाई और अभिमान दिखाने वालों के लिए निम्न पंक्तियां नयी प्रेरणा देने वाली हैं—

- सीता को कैसे लौटाऊं, खो अपना अभिमान।
  इसी अकड़ में दशकंधर ने, किए प्राण बलिदान॥ नंदन ६८
- 'मैं' की ही यह अकड़-पकड़, है जननी संघर्षों की।
  हा! हा! जलती रहती इससे, होली आदर्शों की॥ भरत पृ. १३६

अनुशासन को बाधा या परतंत्रता मानने वालों को प्रतिबोध देती हुई ये पंक्तियां उक्ति-वैचित्र्य एवं विचलन की उत्कृष्ट उदाहरण हैं—

सीमा में रहना है संकट, यह दिल की नादानी।
बाहर पड़ा कि सड़ा, प्रवाहित पूजा पाता पानी॥ नंदन पृ. ६३

सिद्धान्त को आचरण में नहीं उतारने वाले वाग्वीर्य लोगों को कवि उदाहरण से समझाते हैं—

तत्त्व केवल जानने से, क्या हुआ अपना भला?
भोज्य को पहचानने से, पेट बोलो कब पला? पानी पृ. ३६

सांसारिक मोहमाया में डूबे लोगों को आत्मज्ञान की प्रेरणा देते हुए उनकी दिव्य वाणी गूंज उठी—

भूल अपना स्वत्व बनते, परमुखापेक्षी यदा।
वे मनुज फिर प्रगति-पथ पर, बढ़ सकेंगे क्यों कदा?
जब स्वयं के नेत्र सक्षम, दिव्य दृश्य निहारने,
तो भला क्यों किसलिए हम, परमुखापेक्षी बनें? पानी पृ. २२

क्रोधी व्यक्ति सोचता है कि मैं दूसरों का अनिष्ट करूं लेकिन वस्तुतः वह अपना ही अनिष्ट करता है। व्यञ्जना शक्ति में क्रोधी की स्थिति का चित्रण पठनीय है—

क्रोधित होकर अणसमझ, अकबक बोले कूड़।
''तुलसी'' सूरज पर समझ, मूरख फैंके धूड़॥

संक्षिप्त शैली में विनय के अभाव में होने वाली हानियों का कितना सटीक वर्णन कवि की लेखनी से प्रस्फुटित हुआ है—

---

१. जयशंकर प्रसाद ; काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ. ६७, ६८।

बिना विनय तप आतमघाती, संयम कारागार।
मौन मूकता, स्थैर्य अकड़ता, बकता प्रवचनकार॥ चंदन पृ. २५

बिना विनय के तप आत्मघाती, संयम कैद, मौन मूकता, स्थिरता अकड़ता तथा प्रवचनकार बकवास करने वाला बन जाता है।

कवि ने प्रसंगवश व्यक्ति विशेष के वचन को भी इस रूप में प्रकट किया है कि वे प्रेरणा देने वाले सूक्त बन गए हैं—

- खामोशी रो फल समझो , अंत मधुर है।
  अपणै गुरुवां स्यूं मिल्यो, सदा ओ गुर है॥ मगन पृ. ६०
- अविवेकी आत्मा, स्वयं स्वयं री दुशमण।
  मन सुमरो श्री डालिम की, शिक्षा खण-खण॥ डालिम पृ. १८५
- आपां तो गुरुदेवां री दृष्टि अराधां।
  विष पी पीयूष डकार, साधना साधां॥ मगन पृ. ६१
- चोटां खमणी सीखो चतुरां!, बधसी थांरो मोल।
  हिम्मत री किम्मत मत भूलो, अै मंत्री रा बोल॥ शासन पृ. १५७

जीवन के सान्ध्यकाल में आचार्य तुलसी ने आचारांग के कुछ चयनित सूक्तों का मुक्तक काव्य में भावपूर्ण अनुवाद किया, वह अनुवाद स्वयं सूक्तिपरक बन गया। अतुकान्त शैली में दो सूक्तों का अनुवाद द्रष्टव्य है—

- मैंने सुना और आत्म-अनुभव से जाना,
  बंधन-मुक्ति तुम्हारे अपने ही भीतर है,
  निष्कर्ष यही स्थिरतर है,
  उसमें कोई भी योगभूत बन जाए,
  पर स्वयं स्वयं का उपादान अनुदानी,
  आयारो की अर्हत्-वाणी॥ आत्मा पृ. १८
- आत्मा ही परमात्मा मेरा, टूट पड़े कर्मों का घेरा,
  कर्म मूल हिंसा का उससे,
  बचता नहीं मनुज अज्ञानी,
  आयारो की अर्हत्-वाणी॥ आत्मा पृ. २८

अन्य आगम ग्रंथों की सूक्तियों का भी उन्होंने इस रूप में अनुवाद किया है कि वे स्वयं सूक्तियां बन गयी हैं—

- दुष्प्रवृत्तियां आप री, मोटो को करे बिगार।
  'तुलसी' अहित करै नहीं, कंठ छेद करणार॥

अनेक स्थलों पर सहज रूप से अवतरित सूक्तियों ने अर्थान्तरन्यास अलंकार का भी स्थान ले लिया है—

- समझे भी कैसे कहो, जब होता है विधि वाम। परीक्षा पृ. ३४
- उलटी-सुलटी बहती यों ही, यह जन मत की धारा। परीक्षा पृ. ४७
- भला है बलिदान इस परतंत्र के वरदान से। परीक्षा पृ. ५३

आचार्य तुलसी के काव्य में प्रयुक्त सूक्तियां आभूषण में खचित मणियों की भांति आकर्षक ही नहीं, जीवन को नया दिशा-बोध देकर रूपान्तरण की प्रेरणा देने वाली भी हैं। उनके गद्य और पद्य साहित्य से संकलित सूक्तियां एक बूंद : एक सागर के नाम से तीन खंड़ों में प्रकाशित हो चुकी हैं।

काव्यानुवाद

अनुवाद सांस्कृतिक आदान-प्रदान का प्रमुख कारक तत्त्व है। किसी भी कृति का अनुवाद किसी ग्रंथ-लेखन से कम परिश्रम का कार्य नहीं है। विद्वानों ने अनुवाद को पुन: सृजन कहा है। एक ही कृति के अनेक अनुवाद इस बात को प्रमाणित करते हैं कि कोई भी कृति अपने आप में अंतिम रूप में सदा पूर्ण होती है पर उसका अनुवाद न कभी अंतिम होता है और न ही सदा पूर्ण।''[१] गद्य की अपेक्षा पद्यानुवाद अधिक कठिन है क्योंकि इसमें शब्दों का सम्यक् चयन करना होता है। कुछ लोगों की मान्यता है कि कविता का अनुवाद संभव नहीं है क्योंकि इससे मूल कृति का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।

आचार्य तुलसी ने अनेक संस्कृत एवं प्राकृत पद्यों का काव्यमय भावानुवाद किया है। अनुवाद के समय कवि दिनकर की निम्न पंक्तियां उनके मस्तिष्क में गूंजती रही—'केवल शब्द के अनुवाद को मैं बहुत घटिया किस्म का अनुवाद मानता हूँ।' आचार्य तुलसी ने अनुवाद में प्रसंगानुसार कहीं-कहीं परिवर्तन और परिवर्धन भी किया है। आयारो के सूक्तों के काव्यानुवाद में कवि ने अपनी कल्पना-शक्ति एवं प्रतिभा-वैशिष्ट्य के प्रयोग भी किए हैं।

'जस्स णत्थि इमा णाई, अण्णा तस्स कओ सियो'[२] इस सूक्त से इसका भावार्थ स्पष्ट नहीं होता लेकिन आचार्य तुलसी ने अनुवाद इतना स्पष्ट और

सटीक किया है कि सूक्त का मूल हार्द स्पष्ट हो गया है।

कभी किसी को नहीं सताना,
इतना भी जो जान न पाया,
तो क्या और खाक जानेगा,
क्यों कोरा ज्ञानी कहलाया,
किसने पर पीड़ा पहचानी
आयारो की अर्हद् वाणी॥ आत्मा पृ. २२

इसी प्रकार 'जे आयारे न रमंति' सूक्त का विस्तृत अनुवाद करते हुए कवि कहते हैं—

◆ सुख-सुविधा का जो आकांक्षी,
क्या संयम में रमण करेगा?
स्वयं समारम्भी दम्भी आचार प्रवक्ता,
स्वेच्छाचारी विषय विकारी,
हिंसासक्त संग संचारी,
रागी कैसे विरति वरेगा?
मिटी नहीं अब तक नादानी।
आयारो की अर्हद्-वाणी॥ आत्मा पृ. २३

कवि ने अनुवाद में कहीं-कहीं भावार्थ स्पष्ट करने के लिए अपनी ओर से कुछ जोड़ा भी है। इस संदर्भ में 'सीओसिणच्चाई से निग्गंथे' सूक्त का अनुवाद पठनीय है—

सर्दी गर्मी में सम रहता,
अनु प्रतिकूल परीषह सहता,
राग-द्वेष ग्रंथि का छेदन,
सही रूप निर्ग्रन्थ निशानी,
आयारो की अर्हद् वाणी॥ आत्मा पृ. २४

कहीं-कहीं कवि ने आगम-सूक्तों का अनुवाद आधुनिक परिवेश में किया है। महावीर कहते हैं कि जो पृथ्वी, पानी आदि जीवों को नकारता है, वह अपने अस्तित्व को नकारता है। इसका काव्यानुवाद करते हुए कवि कहते हैं—

१. सं. विजयेन्द्र स्नातक; कबीर, पृ. ९३ ।
२. सं. विजयेन्द्र स्नातक ; कबीर पृ. ८७ ।

विश्व-व्यवस्था का जो अस्वीकारी
अ भ्‍ य ा ख य ा न ी ,
वह अपने अस्तित्व सत्त्व का अभ्याख्यानी,
विश्व-व्यवस्था का सादर सम्मान-विधायी,
वह अपने अस्तित्व सत्त्व का अनुसंधायी,
पर्यावरण सुरक्षा का वह स्वयं प्रमाणी।
आयारो की अर्हद्-वाणी॥ आत्मा पृ. २०

कवि ने प्रसंगवश अनेक प्राकृत पद्यों, संस्कृत के सुभाषितों एवं हिंदी कवियों के पद्यों का भी सरस एवं सरल काव्यमय अनुवाद किया है—

- नहीं पलायन-पटुता, नहीं मौत स्यूं मैत्री म्हांरी।
  नहीं अमरता रो आश्वासन, लगै न कोई कारी॥[१] मैं तिरूं पृ. १७
- निर्मल जिसकी चेतना, इंद्रिय मन सुप्रसन्न।
  दोष अग्नि सम मलक्रिया, वही स्वास्थ्य सम्पन्न॥[१] आत्मा पृ. ५
- निराहार के विषय छूटते, किन्तु नहीं होते रस व्यक्त।
  रस का तब विनिवर्तन होता, जब होता परमात्मा व्यक्त॥[२] आत्मा पृ. ६२
- अक्षर नहीं अमंत्र, जड़ी जंगल री नहीं अनौषध।
  कोई पुरुष अयोग्य न दुर्लभ, योजक प्रज्ञा पोषध॥[३] सहिष्णुता पृ. १५
- आस्रव भव का हेतु है, संवर मोक्ष निदान।
  आर्हत मत की दृष्टि यह, यही धर्म-विज्ञान॥[४] आत्मा पृ. ४९
- दु:ख में ही सब सुमरै अरे, न सुख में धर्म सुहावै।
  सुख-सुविधा में तनै न भूले, तो क्यूं यूं दु:ख पावै॥[५] चंदन पृ. १८२
- राजा योगी पावक पानी, इनकी उलटी रीति।
  इन्हें सहज मत गिनो, अरे ये थोड़ी रखते प्रीति॥[६] भरत पृ. ७०

आचार्य तुलसी ने सलक्ष्य किसी ग्रंथ का पूरा काव्यानुवाद नहीं किया लेकिन गीता, उत्तराध्ययन, आचारांग के प्रसिद्ध सूक्तों एवं श्लोकों का सहज

---

१. वस्तु वस्तुषु मा वा भूत्, कविवाचि रस: स्थित:।
२. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली भाग-७, पृ. २०६।

अनुवाद यत्र-तत्र उनके काव्य में मिलता है। यह अनुवाद सटीक, चुस्त और मूल भावों को अक्षुण्ण रखने वाला है।

रहस्यवाद

काव्य के क्षेत्र में रहस्यवाद का विशिष्ट महत्त्व है क्योंकि रहस्यवादी रचनाओं में अनूठा रस, माधुर्य और कल्पनाप्रवणता निहित रहती है। रहस्य का सामान्य अर्थ है, वह सत्य, जो हमें स्वप्न रूप में समझ न आए। कुछ विद्वान् रहस्यवाद को पाश्चात्य जगत् की देन मानते हैं लेकिन जयशंकर प्रसाद का स्पष्ट मंतव्य है कि रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति है, इसमें संदेह नहीं है।''[१]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार चिंतन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है। उन्होंने रहस्यवाद के दो भेद किए हैं— भावनात्मक और साधनात्मक। जिस रहस्यवाद का आधार योग हो, वह साधनात्मक रहस्यवाद है तथा जिसका आधार भक्ति या भेद हो, वह भावनात्मक रहस्यवाद है।

साधनात्मक रहस्यवाद में उपनिषद् के बाद कबीर सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि हैं। साधना करते हुए जब आत्मा और परमात्मा का इतना एकीकरण हो जाता है कि तव और मम का कोई भेद न रहे, परमात्मा से मिलने की तीव्र अनुभूति हो, तब साधनात्मक रहस्यवाद की सृष्टि होती है। अभेद की अनुभूति के लिए कवि पूर्ण समर्पण के लिए उद्यत हैं—

स्वत्व का अब हो विसर्जन, हो स्वयं सम्पूर्ण अर्पण।
सहज हो अद्वैत दर्शन, टूट जाए द्वैत ताला॥ नंदन पृ. ४५

आचार्य तुलसी का रहस्यवाद कबीर की भांति गहरा नहीं है। उनके काव्य में साधनात्मक रहस्यवाद के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं—

- स्वर्ण मृत्तिका से संवृत है, तेल तिलों में ही आवृत है।
  मक्खन गोरस में मिश्रित है,, 'तुलसी' जिसने खोजा, पाया॥ अणु पृ. ९५

आत्मा की अमरता को अनेक उदाहरणों से प्रकट करते हुए कवि स्वयं रहस्यवादी बन गए हैं—

- चीवर ज्यूं जीरण रे, तज मानव नव नव पहरै।

त्यूं चेतन प्राक्तन रे, तज नूतन तन हित धावै॥

- ज्यूं बाट बटाऊ रे, ले बीच सराय बसेरो।
  त्यूं चेतन तन में रे, आखिर नव मास बसावै॥
- दिनकर नै देखो रे, हो उदय शाम का आंथै।
  त्यूं दुनियां सारी रे, कुण कुण कब स्थिरता पावै॥ सोम पृ. ३२

अनन्य के प्रति प्रणय निवेदन करते हुए सर्वस्व समर्पण कर देना रहस्यवादी कवि का परम लक्ष्य होता है। गुरु के प्रति अपनी एकात्मकता की अभिव्यक्ति प्रकट करते हुए कवि कहते हैं—

- तूं मुझ तन मन बाल्हो, तूं हियड़ै रो हार।
  रोम-रोम मुझ तूं बस्यो, जाप जपूं इकसार॥
  तुझ मुख पूनम-चंद सो, चितड़ो बण्यो चकोर।
  एक निजर निरखूं सदा, समरूं जिम घन मोर॥ शासन पृ. ७६
- गुरुदेव! तुम्हारे चरणों में, ये शीष स्वयं झुक जाते हैं।
  तव वाङ्मय अमृत झरनों में, ये हृदय हिलोरें खाते हैं। नंदन पृ. ६७

कवि संसार की विचित्रता एवं विविधता देखकर समझ नहीं पाते कि संसार का मूल रहस्य क्या है? सीधी-सरल भाषा में संसार के वैविध्य को प्रकट करते हुए कवि कहते हैं—

है उत्थान कहीं अतुल, कहीं पतन असमान।
विविधरूपता विश्व की, समझे प्रज्ञावान्॥
शैशव परवशता कभी, यौवन का उन्माद।
कभी जरा की विवशता, कभी मृत्यु अवसाद॥ आत्मा पृ. ९०

कर्म-फल का वैचित्र्य संसार का एक महान् रहस्य है—

पुण्य पाप रो फल है परगट, जो कोई आंख उघारै।
एक मनोगत मोजां माणै, इक नर नगर बुहारै॥ सोम पृ. ५७

अपने गुरु कालूगणी का विरह होने के बाद कवि कल्पना करते हैं कि संयोग में जब सब ही सुख हैं तो फिर विधि ने वियोग की रचना क्यों की—

सुख ही सुख संयोग में, जदि नहिं हुवै वियोग।
किण कारण सरज्यो विधी, जग वियोगमय रोग॥ कालू भा. २ पृ. २१७

अपनी आत्मा को सम्बोधित करते हुए कवि स्वयं को समाहित करते हुए कहते हैं—

रे रे चेतन! क्यूं घबरावै, कल्पित सारा अै सुख-दुःख है।
है संयोग वियोग विधायक, ओ जिनमत रो तत्त्व प्रमुख है॥ कालू भा. २ पृ. २२८

रहस्यानुभूति का प्रथम सोपान जिज्ञासा है। संसार की विचित्रता और नश्वरता के बारे में अनेक कवियों ने अपने ढ़ंग से चिन्तन किया है। लेकिन कवि इस गुत्थी को सुलझाने में स्वयं को समर्थ नहीं पाते हैं। कोई भी संवेदनशील मानव आत्मानुभूति से युक्त गीत की इन पंक्तियों को पढ़कर भावविभोर हुए बिना नहीं रह सकता—

- मैं सोच-सोचकर समझ-समझ कर, थक्यो न सक्यो विचार। सोम पृ. ९७
- मैं अब भी समझ न पायो भायां, है के ओ संसार॥
  क्यूं बण्यो बावलो इण में मानव, खोवै अपणो सार। सुधा पृ. १५
- यह निराधार संसार, नयन विस्फार, देखते हारा। शासन पृ. ४५

साधना या उपासना न होने पर भी गहन अध्ययन या चिन्तन के द्वारा जो रहस्यवाद प्रकट होता है, वह अध्ययनमूलक रहस्यवाद कहलाता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे साधक कवियों के काव्य में इसकी झलक मिलती है। आत्मा की पहचान कब होती है, इस तथ्य को रहस्यवादी शैली में प्रकट करते हुए कवि कहते हैं—

मैं हूं मैं है भेद पर, जब जाता है ध्यान।
संभव बनती है तभी, आत्मा की पहचान॥ आत्मा पृ. ३६

विशुद्ध आत्म तत्त्व की अनुभूति कवि के शब्दों में पठनीय है—

- फिर जलूं न आग लपट में, झड़ पडूं न प्रलय झपट में।
  नहिं मरूं न कब ही जनमूं, नहिं पडूं जगत् झंझट में॥ चंदन पृ. १४१

आत्मा को मलिन करने वाला तत्त्व है—आश्रव। आश्रव के द्वारा कर्म के आवागमन को रहस्यवादी शैली में प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

एक द्वार स्यूं कचरो काढूं, पांच द्वार स्यूं पाप।
आकर मुझ नै घणो सतावै, किंयां करूं मैं साफ॥
मैं जाण्यो म्हांरै मंदिर में, मैं ही रहस्यूं सोय।

---

१. पं. रामदहिन मिश्र ; काव्य-दर्पण, पृ. २०१।

द्वार बंद कर खोल झरोखो, दिव्य प्रदीप प्रजोय॥ सुधा पृ. २५

मोह को नष्ट करने के लिए कवि प्रबल आत्मबल जगाने की बात कहते हैं—

अटल आत्मबल जागृत कर अब, तुम इसको ललकारो।
बढ़े चलो अपने सत्पथ पर, हिम्मत कभी न हारो॥ अणु पृ. १०६

रत्नावली द्वारा तुलसीदासजी को संबोधित करते हुए कवि स्वयं रहस्यवादी बन गए हैं—

पिउड़ा! राम नाम नहिं जाण्यो, केवल पिंजर स्यूं परचायो।
'तुलसी' प्रभुपद प्रेम न ठाण्यो, जीवन विषयन में विलमायो॥
सुधा पृ. ९३

रामकुमार वर्मा के अनुसार रहस्यवाद की एक विशेषता है कि उसमें भौतिकता से दूर आध्यात्मिकता का समावेश होना चाहिए। रहस्यवादी ऐसे स्थान में निवास करता है, जहां न मृत्यु का भय है और न ही शोक-रोग आदि दु:ख हैं।''[१] मृत्यु का रहस्य कवि को अनेक बार उद्वेलित कर देता है। इसके बारे में कवि का चिंतन अनेक रूपों में प्रकट हुआ है। कवि को आश्चर्य है कि जो कृतान्त (यमराज) सबको नष्ट करता है, एक दिन उसका अंत क्यों नहीं होता—

- जिण रै द्वारा सारां रो है, इण दुनियां में अंत।
  हन्त! हन्त! बो अंत न पावै, अकरुण क्रूर कृतन्त॥
  कालू भा. २ पृ. २१६
- कुण जाणै आ के है मौत, क्षण में बुझ्ज्या जगती जोत॥ मैं तिरूं १५

भगवत्प्राप्ति के लिए आचार्य तुलसी अहंकार और ममकार के परित्याग को अनिवार्य मानते हैं। कवि संसारी प्राणियों को प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि व्यक्ति इष्ट के समक्ष 'यह तेरा है' कहता रहेगा तो अहंकार ममकार स्वत: छूट जाएंगे—

मेरा-मेरा की है जग में, जटिल समस्या आज।
स्वार्थवाद से घिरा हुआ है, पूरा मनुज समाज।
तेरा-तेरा यह व्यवहार, छूटे अहंकार ममकार॥ नंदन पृ. १३

साधनात्मक रहस्यवाद को शब्दों में प्रकट करना अत्यन्त कठिन है। रामकुमार वर्मा के अनुसार साधनात्मक रहस्यवाद का भावोन्माद इतना अधिक

होता है कि बोलचाल के साधारण शब्द उनका बोझ नहीं संभाल सकते।''[२] लेकिन आचार्य तुलसी के भक्ति एवं वैराग्यपरक गीतों में रहस्यवाद की भावना निर्झर की भांति विविध रूपों में प्रवाहित हुई है। उनका रहस्यवाद कबीर की भांति गूढ़ और अन्योक्ति प्रधान नहीं है।

रसों का हृद्य परिपाक

'रसो वै स:' कहकर भारतीय मनीषियों ने रस को ही परमात्मा के रूप में अभिहित किया है तथा इसे काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है। साहित्य मर्मज्ञों ने काव्य में उत्पन्न आनंद को रस कहा है। यह आनंद पाठक या श्रोता के भावों से उत्पन्न होता है अत: भावपक्ष की सर्वश्रेष्ठ समृद्धि रस की निष्पत्ति है। आचार्य विश्वनाथ ने तो 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कहकर रस की सर्वोच्च प्रतिष्ठा कर दी। पाल्यकीर्ति कहते हैं कि किसी वस्तु में रस हो या न हो किन्तु कवि की वाणी में रस होना चाहिए।''[१] बिना रस के विस्तार नीरस हो जाता है। जिस प्रकार मामूली ईंट, पत्थर के टुकड़ों से शिल्पकार उत्तम महल बना देता है, उसी प्रकार साधारण शब्दों और भावों की सहायता से कवि अलौकिक रस की सृष्टि करता है।''[२] रसहीन कविता केवल बौद्धिक ऊहापोह मात्र होती है। रस भावों के साथ एकात्मकता स्थापित करता है।

आचार्य तुलसी रससिद्ध कवि थे। सरस और संवेदनशील हृदय होने के कारण रस का स्रोत अनायास ही उनकी कविता में प्रवाहित हो गया। कवि ने प्रसाद, ओज और माधुर्य गुणों के सहारे रसों को उपयुक्त अभिव्यक्ति दी। उनके सभी पदों में भावों की तीव्रता के साथ रस प्रकट हुआ है। वे इस सत्य को स्वीकार करते थे कि भाव से रहित रस श्रोता और पाठक को बांध नहीं पाता। यद्यपि आचार्य तुलसी ने रस के लिए काव्य का सृजन नहीं किया फिर भी रसानुभूति उनके काव्य का प्राण है। प्राय: सभी रस उनकी लेखनी से चमक उठे हैं। चरितकाव्यों में भी उन्होंने केवल इतिवृत्त ही प्रस्तुत नहीं किया, रस भी भरा है।

आचार्य तुलसी इस सत्य को अंगीकार कर चलते थे कि कोई भी रस एक सीमा तक ही काव्य का सौन्दर्य बढ़ाता है। किसी भी रस का अत्यधिक

१. पं. रामदहिन मिश्र ; काव्य दर्पण, पृ. १९३।

उद्रेक काव्य को विकलांग बना देता है। उनके काव्य में प्रसंगानुसार प्राय: सभी रसों का हृद्य परिपाक हुआ है लेकिन उनका अंगीरस शान्तरस है। उनके काव्य में हृदयपक्ष के सौन्दर्य को देखकर ऐसा लगता है कि वे वस्तुत: रसों के मर्मज्ञ कवि थे। ''चतुर शिल्पी जिस पाषाण खंड को अपने कौशल से छू लेता है, वही सौन्दर्य का प्रतीक बन जाता है। उसी में से रस का अक्षय स्रोत फूट पड़ता है।'' वासुदेव शरण अग्रवाल की उक्त पंक्तियां उनके काव्य में पूर्णतया चरितार्थ होती हैं। अनार के दानों की भांति उनके हर शब्द में अद्‌भुत रस झलकता है।

वीररस

वीररस ओजगुण से प्रभावित होता है। वीररस पाठक और श्रोता के मन में उत्साह, वीरता और साहस का संचार करता है। भरतमुक्ति काव्य में वीररस का सुंदर परिपाक हुआ है। योद्धाओं की राष्ट्रप्रेम की पुकार सुनकर एक अजीब सा शौर्य, स्फूर्ति और उत्साह तन-मन में मचलने लगता है।

कायरता को दूर भगाकर रग-रग में वीरता और नई उमंग का संचार करने वाली इन पंक्तियों को सुनकर कौन व्यक्ति ऐसा है, जिसकी धमनियों में देशभक्ति का खून न दौड़ने लगे—

- देशभक्त हम अड़े रहेंगे, सीना ताने खड़े रहेंगे। भरत पृ. ८१
- बहली का हर सैनिक कर सकता है उथल-पुथल भारी,
  एक एक से बढ़कर उसके, योद्धा वीर धनुर्धारी।
  तक्षशिला का बच्चा-बच्चा, आज बना है सेनानी,
  जाग उठी है देशभक्ति की, क्रांति यहां पर तूफानी॥ भरत पृ. ८५

युद्ध के समय का वर्णन साक्षात् बिम्ब सा प्रस्तुत करता है—

- एक ओर से अनिलवेग ने, आकर धावा बोल दिया।
  काट बाढ़ में नर-शोणित का, नया प्रणाला खोल दिया॥ भरत पृ. ९५
- भिड़े हाथियों से हाथी, घोड़ों से घोड़े रथ से रथ,
  पैदल से पैदल आपस में, वे मचा रहे भीषण कलमथ।
  मार-काट मच गई क्षणों में, बने वीर राक्षस विकराल,
  मानो रण-प्रांगण में ताण्डव, नृत्य कर रहा काल कराल॥ भरत पृ. ९५

युद्ध के समय सेनानायकों की हुंकार तथा बजने वाले नगाड़े सैनिकों में अभिनव जोश भर रहे हैं—

- सेनानायक की सुनते ही, ओज भरी हुंकार,
  टूट पड़े वैरी सेना पर, हो करके खूंखार,
  लगे छूटने वायु वेग से, तीखे-तीखे बाण॥ भरत पृ. ८८
- रण-तूर शूरवीरों का नव, साहस सौ गुना बढ़ाते थे।
  डंके की चोट नगारों पर, सुन मृत जीवित हो जाते थे॥ भरत पृ. ८०

लव कुश और राम के युद्ध में वीररस की जो पयस्विनी बही है, वह अद्भुत है। वीररस का चरम प्रकर्ष नाद-सौन्दर्य युक्त निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

सेना का स्कन्धावार जमा, हैं रचे रचाए विविध व्यूह।
शस्त्रास्त्रों से होकर सज्जित, हैं अड़े खड़े सैनिक समूह।
भू कांप रही पाद-ध्वनि से, नभ बधिर हो रहा नारों से।
फुंकारों से, हुंकारों से, ललकारों से, टंकारों से।
आंखें अंगारे बरसाती, है आग धधकती अंतर में।
रणभूमि गूंजी अम्बर में॥ परीक्षा पृ. ११९

वीर और वात्सल्य रस का संयुक्त रूप बाहुबलि की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है, जब वह अपने भतीजे सूर्यकुमार को कहते हैं—

लड़ना ही यदि तुझे भतीजे!, लड़ तूं सोम आदि के साथ,
मेरे से लड़ना बेटा! यह, नहीं तुम्हारे वश की बात।
हाथी लड़े हाथियों से जा, सिंहों से उसका क्या काम?
तेरे पर हार्दिक वत्सलता, तुझे दिखाऊं मैं क्या स्थाम? भरत पृ. १०४

मुहावरेदार भाषा में वीररस की अभिव्यक्ति मन को आकृष्ट करने वाली है—

जब सुगति केतु, चक्री सेना पर टूटे,
उनके आते ही सबके छक्के छूटे।
घुसते ही लगे तड़ातड़ तीर चलाने,
करवालों से कितने मारे क्या जाने?
आहत हत कर ऊपर से कसते ताने,
चंचल चपला से लगे दृश्य दिखलाने,

---

१. आचार्य तुलसी; मेरा जीवन : मेरा दर्शन, भाग-९, पृ. १४२।

वे खेल रहे रण-भू में खेल अनूठे॥ भरत पृ. ९८,९९

रौद्ररस

रौद्ररस वीररस का पोषक होता है। जहां विरोधी पक्ष की ओर से चुनौती, अपमान, अपकार, प्रतिशोध या क्रोध की भावना का जन्म हो, वहां रौद्ररस की दृष्टि होती है। कवि ने प्रसंगवश रौद्ररस को भी सम्यग् प्रस्तुति दी है। सेनापति अनिलवेग के शौर्य को देखकर क्रुद्ध भरत चक्रवर्ती ने चक्र का प्रयोग कर दिया। चक्र का प्रयोग साक्षात् रौद्र रस को प्रकट कर रहा है—

अति तीव्र वेग से चक्र चला, गुंजित करता धरणी अम्बर,
रह रह उठती थीं ज्वालाएं, रवि से बढ़ उसका तेज प्रखर,
नभ पथ से आकर अकस्मात्, वह अनिलवेग पर छूट पड़ा,
धड़ से शिर अलग किया मानो,नक्षत्र व्योम से टूट पड़ा॥ भरत पृ. ९६

जब सुगति और केतु सेनापति भरत चक्रवर्ती की सेना पर आक्रमण करते हैं, उस समय रौद्ररस साकार प्रकट हो गया है—

मार डालो काट डालो, सुगति की आवाज यों।
झपट पड़ते सैनिकों पर, पंखियों पर बाज ज्यों॥ भरत पृ. ९९

बाहुबलि जिस सघन जंगल में ध्यानस्थ खड़े हैं, वहां की प्राकृतिक स्थिति एवं जंगली जंतुओं की आवाज साक्षात् रौद्ररस का रूप प्रस्तुत कर रही है—

गहरी-गहरी पड़ी दरारें, चारों ओर झाड़-झंखाड़,
द्विरद-यूथ चिंघाड़ रहे हैं, शेर रहे हैं कहीं दहाड़।
चित्ते व्याघ्र भेड़िये भालू, वन बिलाव सूअर खूंखार,
घूम रहे हैं गैंडे रोझ, अरण्य-महिष सारंग सियार॥ भरत पृ. १४७

बीभत्स रस

बीभत्स रस का स्थायी भाव घृणा है। जहां मांस, कलेवर, श्मशान आदि देखकर मन में घृणा या ग्लानि का भाव उत्पन्न हो जाए, वहां बीभत्स रस होता है। अन्य रसों की भांति यह हृदय को आकृष्ट नहीं करता अतः कुछ विचारकों ने इसे रस के रूप में मान्यता नहीं दी है लेकिन काव्य दर्पणकार राम दहिन मिश्र ने इसे रस रूप में सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।''[१]

१. भरत ; नाट्यशास्त्र ; न यत्र दुःखं, न सुखं, न द्वेषो नापि मत्सरः।
समः सर्वेषु भूतेषु, स शान्तः प्रथितो रसः॥

बालमुनि गजसुकुमाल जब श्मशान में बारहवीं प्रतिमा की साधना करने जाते हैं, उस समय श्मशान का वर्णन बीभत्स रस का साकार बिम्ब प्रस्तुत करता है—

जंगल की झंकृत झांय-झांय, शव जले चिता में सांय-
स ा ं य ।
अधजल्या मृतक है पड्या, गीध चांचां स्यूं छोलै छाल॥
है पड़ी हड्डियां ढेर-ढेर, फिरतां फेरू कर फेर-फेर।
फंफेर कलेवर कहीं शुनी सुत, खावै खोद निकाल॥
डायणियां घूमै डगर-डगर, मानव शव ढूंढ़ै टगर-टगर।
भर-भर खप्पर जोगणियां, बावन वीर रहै खुशहाल॥ चंदन पृ. १४०

श्मशान का भयानक दृश्य प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

नरमुंड माल धर प्रेत फिरै, मिल अट्टहास निरहेत करै।
कायर नर को कमजोर कालजो, होवै देख दुडाल॥ चंदन पृ. १४०

भयानक रस

विकराल या भयंकर परिस्थिति में हृदय में जिस भाव का संचार होता है, वह भयानक रस कहलाता है। भयानक रस मन में अधीरता पैदा करता है। राजस्थान में गर्मी की ऋतु कितनी भयानक होती है, इसका वर्णन करते-करते कवि की लेखनी से भयानक रस प्रकट हो गया है—

ज्येष्ठ महीनो ऋतु गरमी नो, मध्यम सीनो हठ-भीनो,
लू री झालां अति विकरालां, वह्नि-ज्वालां ज्यूं चोफालां।
भू ज्यूं भट्टी तरणी तापै, रेणू कट्ठी तनु संतापै,
अजिन रु अट्ठी मट्ठी व्यापै, अति दुरघट्टी घट्टी मापै,
स्वेद-निझरणां रूं-रूं झारै, चीवर चरणां लुह-लुह हारै,
अंगे उधड़ै फुणसी-फोड़ा, भू पे उधड़ै ज्यूं भूंफोड़ा॥
कालू भा. १ पृ. २३७

द्वन्द्व-युद्ध में बाहुबलि के द्वारा वाग् युद्ध प्रारम्भ करने पर प्रकृति में हुआ भयंकर परिवर्तन कवि के शब्दों में पठनीय है—

मेघ ज्यों कल्पान्त का, सौदामिनी सह गरजता,
हिल गए गिरिवर-शिखर भी, पादपों का क्या पता?
फूटता ब्रह्माण्ड मानो, खिसकती जाती मही,
व्योम ऊपर उठ रहा, गुञ्जित दिशाएं हो रहीं॥ भरत पृ. १२५

युद्ध के वर्णन में भयानक रस का साक्षात् चित्र प्रकट हो गया है—

हक्की-बक्की सारी पलटन, हाहाकार मचाती,
उसके भय से कइयों की तो, फटी जा रही छाती।
भगदड़ मची भयंकर रण में, एक-एक से आगे,
ज्यों बिल्ली से डरते चूहे, पूंछ दबाकर भागे॥ भरत पृ. ९८
अर्ध क्षत विक्षत सभी, शव दूर फेंके जा रहे।
मांस लोलुप श्वान जम्बुक, गीध उनको खा रहे॥ भरत पृ. ९२

आषाढ़भूति आख्यान में महामारी के प्रभाव का वर्णन भयानक रस के रूप में परिणत हुआ है—

अनगिन जन बीमार, न कोई सेवा करने वाला।
त्राहि त्राहि कर रहे, न घर में पानी भरने वाला॥
छोड़ पितामह प्रपितामह को, पौत्र प्रपौत्र सिधारे।
माता मरी, रो रहे बच्चे, बिलख बिलख कर सारे॥ पानी पृ. २८

करुणरस

''एको रसः करुण एव'' कवि भवभूति की यह उक्ति करुण रस के माहात्म्य को प्रकट करने वाली है। वेदना का जितना निरावरण, मार्मिक, गंभीर और निर्मल वर्णन करुण रस में है, वैसा अन्य रसों में नहीं। काव्य दर्पण के अनुसार इसके आंसू अमल, शुद्ध और दिव्य होते हैं।[१] आचार्य तुलसी के काव्य में अनेक स्थलों पर करुणरस का हृद्य परिपाक हुआ है। देवकी की करुण व्यथा में संसार भर की माताओं की व्यथा का स्वर सुनाई देता है। मातृत्व के लिए देवकी का हृदय पीड़ा की अनुभूति से आप्लावित हो जाता है। कवि ने उसकी पीड़ा की अनुभूति को ऐसी मार्मिक अभिव्यक्ति दी है कि वह करुण रस में परिणत हो गयी है। राम द्वारा वनवास में अकेली छोड़ने पर सारथी की स्थिति करुण रस का उद्रेक उत्पन्न करती है—

सिंहनाद-अरण्य गंगा तीर पर, रथ रुक गया,
व्यथित सेनानी सती के, सामने आ झुक गया।
सजल पलकें, मूक वाणी, हृदय मुंह को आ रहा,
फट रही छाती न कुछ भी, जा सका उससे कहा॥ परीक्षा पृ. ५२

---

१. पं. रामदहिन मिश्र ; काव्य दर्पण पृ. २१३।

भ्रातृ-वियोग की कल्पना से सुभद्रा की पीड़ा का जो वर्णन कवि की लेखनी से हुआ है, वह सबके मन को प्रभावित करने वाला है—

एक-एक वनिता स्यूं प्रतिदिन, लेवै वीर विदाई,
अति चिन्ता अब पीहरियै में, किण नै केस्यूं भाई,
भाणेजां नै कुण ननिहाल बुलासी वार-तिवारे॥ चंदन पृ. १२०

जब बाहुबलि विरक्त होकर दीक्षित होने को उद्यत हो जाते हैं, तब भरत का अनुनय साकार करुण रस को उपस्थित कर देता है। वह कहता है मैंने अभिमानी होकर बिना सोचे समझे भाइयों पर आक्रमण कर दिया। अट्ठाणू भाई तो संन्यास के मार्ग पर प्रस्थित हो गए हैं, तुम भी दीक्षा ग्रहण कर लोगे तो इस दुनिया में मैं भाई किसे कहूंगा? इस वक्र चक्र ने मुझे मतवाला बना दिया। मन में आता है कि इसके टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दूं, इसे आंख उठाकर भी न देखूं। चक्रवर्ती भरत आंख में आंसू भरते हुए अनुनय करते हैं—

यों कहते-कहते चक्री के, धीरज की कड़ियां टूट पड़ीं,
आंखों से नीर लगा बहने, ज्यों मुक्ता-लड़ियां छूट पड़ीं।
गिर पड़े बाहुबलि-चरणों में, रोते हैं भर-भरकर आहें,
मझधार छोड़ मत जा भाई!, दे सजा मुझे तू जो चाहे॥ भरत पृ.१४६

कवि ने विरह में प्रकृति एवं वन्य पशुओं को भी दुःख के संवेदन से भरपूर दिखाया है तथा मनुष्य की भांति प्रकृति की व्याकुलता को प्रकट किया है। वन में सीता की स्थिति देखकर प्रकृति भी द्रवित हो जाती है—

यों देख बिलखते आनन को, वे मूक लताएं रोती हैं।
उन विकल वन्य जीवों के भी, मानस में पीड़ा होती है॥ परीक्षा पृ.६९

अपने गुरु कालूगणी के स्वर्गवास के समय गीत के माध्यम से प्रकट होने वाली कवि की मनोव्यथा पाठक और श्रोता के हृदय को द्रवित करने वाली है—

घणो असुहावणो रे, सुगुरु-विरह रो बाण,
घणो अलखावणो रे, सुगुरु-विरह रो बाण,
दहल उठै दिल देखतां रे, करड़ी विरह कृपाण॥ कालू भा. २ पृ. १९४

माणकगणी के अकस्मात् स्वर्गवास के पश्चात् तेरापंथ धर्मसंघ अनाथ

---

१. पं. विश्वनाथ ; साहित्य दर्पण, पृ. २६२ ; चमत्कारश्चित्तविस्ताररूपो विस्मयापरपर्याय:।

जैसा हो गया। उस अनहोनी घटना के बारे में मंत्री मुनि कहते हैं—

कहता नहिं चिन्तन करता ही, टूट पड़ै ज्यूं प्हाड़।
टुकड़ा-टुकड़ा हुवै कलेजो, बढ़ै व्यथा री बाढ़॥

कालू भा. २ पृ. १९०

उन विषम क्षणों में मुनि कन्हैयालालजी की मनोव्यथा का बिम्ब पाठक और श्रोता के हृदय में भी करुण रस का उद्रेक पैदा करने वाला है—

रयणी री नींद, भूख दिन री विललाई, विरह-व्यथा छाई,
छिन बरस बराबर लगी जाण, है बाढ़ विकल्पां री आई॥
साहस अपार, दिल धैर्य धार, मानो अंतर मन उमड़ायो,
अकुलायो सो, कुम्हलायो सो, अलसायो एकाकी आयो॥ डालिम पृ. ७४

देवकी जब दूसरी महिलाओं को मातृत्व का सुख भोगते देखती है तो उसकी मातृहृदय की वेदना फूट पड़ती है।

- नगरी री सोहागण भागण, नार्‌यां मौज उड़ावै,
  पटराणी वसुदेव देवकी, रो यूं दिल कुरलावै,
  कोई जाणणहारो ही जाणै, पीड़ित ही पीड़ पिछाणै,
  रो रो आ सूरत पड़गी सांवली॥ चंदन पृ. १३७

श्रृंगाररस

अध्यात्म प्रिय होने के कारण आचार्य तुलसी ने श्रृंगाररस की खुलकर प्रस्तुति नहीं दी लेकिन प्रसंगवश उसे अछूता भी नहीं छोड़ा। उनके द्वारा वर्णित संयोग श्रृंगार में आत्मा को मत्त बनाने वाली मादकता, मांसलता,

रीढ़ तोड़ रूढ्यां री सीखी, जीणै री सुघड़ाई,
पूर्ण समर्पित गुरु-चरणां, सुख री रेखा उमड़ाई,
धर्मनिष्ठ कर्तव्यनिष्ठ, श्रमनिष्ठ सहज मृदुताई,
जागृत नारी सुघड़ श्राविका, बहन हुलासी बाई॥

लम्बी-लम्बी पदयात्रा में, पैदल सेवा करती,
हर विकास रै कार्यक्रम में, अग्रिम पंक्ति वरती,
कठिन कठिनतम काम करण में , कदे नहीं अलसाई,
जागृत नारी सुघड़ श्राविका, बहन हुलासी बाई॥

कामुकता और अश्लीलता नहीं अपितु आत्मा को जागृत करने वाली मीठी झंकार तथा भावनाओं का वेग है। उद्दीप्त और मांसल सौन्दर्य वर्णन के संदर्भ में उनका स्पष्ट चिन्तन था कि कोई भी अभिव्यक्ति शब्दात्मक हो या चित्रात्मक, वह मनुष्य के मन को विकृत न करे, यह सीमारेखा रहनी चाहिए।''[1] जहां नैतिकता व आध्यात्मिक मूल्यों पर प्रतिकूल प्रभाव होता हो, मूल्यों में बिखराव होता हो, वैसे विचारों और तथ्यों की अभिव्यक्ति पर अंकुश रहना चाहिए।

चंदन की चुटकी भली के 'भरी जवानी आ कुर्बानी' आख्यान में श्रृंगार के मार्मिक चित्र उपस्थित हैं। भावना की उत्कृष्टता होने पर भी अध्यात्म का प्रभाव कहीं समाप्त नहीं हुआ, यही उनके संयोग श्रृंगार के चित्रण की विशेषता है। पति धन्ना अपनी पत्नी सुभद्रा के उदास चेहरे को देखकर अपनी वेदना को जिन प्रश्नों में व्यक्त करता है, वह उदात्त श्रृंगार का उत्कृष्ट रूप है—

आयो अकस्मात् पति 'धन्नो', पूछै प्राणपियारी,
तन की व्यथा, कथा कोई मन की, वा स्मृति पीहरिया री,
असमय में रुदती सुदती! तूं, म्हांरो हृदय विदारै॥ चंदन पृ.
१ २ ०

लौकिक विप्रलम्भ या वियोग को भी कवि ने सुंदर प्रस्तुति दी है। सीता को वन में भेजने के बाद उसके वियोग में विलाप करते हुए राम की स्थिति पठनीय है—

लगते फीके सरस स्वादु पकवान भी,
कुसुम सुकोमल शय्या तीखे तीर-सी,
नहीं सुहाते सुखकर मृदु परिधान भी,
मलयानिल भी दु:खद प्रलय समीर-सी॥ परीक्षा पृ. ८८

उनका विरह वर्णन काल्पनिक या गाथासप्तशती जैसा मांसल या अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं, अपितु जीवन से जुड़ा हुआ है।

---

१. डॉ. मनोरमा शर्मा ; महादेवी के काव्य में लालित्य-विधान, पृ. २२९।
२. डॉ. देवेन्द्रनाथ त्रिवेदी ; निराला काव्य में मानव-मूल्य और दर्शन, पृ. ५८।
३. रामचन्द्रशुक्ल; चिन्तामणि भाग-१, पृ. २८४।
४. दिनकर ; चक्रवाल भूमिका, पृ. २३।

हास्य रस

जहां विकृत वेशभूषा, अस्पष्ट वाणी या अंगभंगिमा के वैचित्र्य को देखकर हास्य उत्पन्न होता है, वहां हास्य रस होता है। समालोचकों की इस परिभाषा के अनुसार आचार्य तुलसी के काव्य में हास्य रस का समावेश नहीं है लेकिन गंभीर व्यक्तित्व के धनी होते हुए भी आचार्य तुलसी विनोद को जीवन का आवश्यक तत्त्व समझते थे। उनके काव्य-साहित्य में हास्य रस उच्च कोटि का है। हास्य या मनोरंजन के बारे में कवि का स्पष्ट मंतव्य था कि केवल मनोविनोद या हास्य के लिए काव्य की रचना नहीं होनी चाहिए। वह जन-जन के जीवन-विकास की सजग प्रेरणा देने वाली होनी चाहिए। आचार्य तुलसी वैयक्तिक जीवन में हास्य और मनोरंजन को बहुत महत्त्व देते थे अत: विनोद या हास्य का पुट कहीं-कहीं उनके काव्य में भी उतर आया है।

राजा श्रेणिक के घर आने पर मां भद्रा जब अपने पुत्र को बुलाकर कहती है कि अपने घर दुर्लभ वस्तु आई है, इसकी प्राप्ति अत्यन्त दुष्कर है। तब शालिभद्र राजा को किराणे की वस्तु समझकर उसे खरीदने का आदेश देता हुआ कहता है—

राजा आयो तो मुंह मांग्यो, मोल द्यो-मोल द्यो।
तुरत खरीदै भंडारी नै, बोल द्यो-बोल द्यो॥ चंदन पृ. ११६

उसकी बात का प्रत्युत्तर देते हुए भद्रा बोली—

हंस बोली मां राजा नहीं, किराणो है, किराणो है।
तूं बण बैठ्यो बाबू मन में, स्याणो है, स्याणो है॥ चंदन पृ. ११६

शान्तरस

निर्विकार होने के कारण कुछ विद्वान् शान्तरस को पृथक् रस न मानकर उसका बीभत्स या वीररस में अन्तर्भाव कर देते हैं। लेकिन शान्तरस का स्वतंत्र अस्तित्व होना चाहिए। भरत के अनुसार जहां सब प्राणियों में समभाव है तथा जहां न दु:ख है, न सुख, न द्वेष, न मात्सर्य वहां शान्त रस होता है।[१] आचार्य तुलसी के काव्य-साहित्य में शान्त और वैराग्य रस की सबसे अधिक सृष्टि हुई है। कुछ कवियों की मान्यता है कि शान्तरस जीवन को निराशा की ओर ले जाकर व्यक्ति को अकर्मण्य बनाता है पर आचार्य

१. आचार्य तुलसी ; मेरा जीवन : मेरा दर्शन, पृ.१४३।
२. शिवबालक राय ; काव्य में सौन्दर्य और उदात्त तत्त्व, पृ. ६८।

तुलसी के काव्य में वर्णित शान्तरस व्यक्ति में एक विशेष पौरुष भरता है। उनके शान्तरस प्रधान गीतों में दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता की विशेष पुट है। शान्तरस के गीतों में उन्होंने ऐसे अद्‌भुत रस की सृष्टि की है, जिससे व्यक्ति संसार के वास्तविक स्वरूप को समझकर सत्य और आनंद की उपलब्धि कर सके। पर में आत्मतत्त्व की अनुभूति अशांति का कारण है, आत्म स्वरूप की अनुभूति शांति का कारण है। आत्म-स्वरूप की अनुभूति कवि के शब्दों में पठनीय है—

- तू स्वभाव से ही है हल्का, भार ढ़ो रहा क्यों पुद्‌गल का?
  पता नहीं है अपने बल का, माया ने दिग्मूढ़ बनाया॥ अणु पृ. ९५
- अपना मान रहा है पर को, हाय! लुटाता है क्यों घर को?
  मरना पड़ता अजरामर को, इसका कारण है यह काया॥ भरत पृ. १७३

शान्तरस में संसार की असारता और क्षणभंगुरता का वर्णन होता है। संसार की क्षणभंगुरता का वर्णन मन में निर्वेद भाव का संचार करने वाला है—

- स्वप्निल जग का सारा रिश्ता नाता कामचलाऊ।
  बेल्या आई बिस्तर बांध्या, चाल्या बाट बटाऊ॥ सोम पृ. ९६
- क्षण में सुख रो अम्बार लगै, क्षण में दुःख-दुविधा ज्वार जगै।
  सुख-दुःख रो संगम जंगम जग, स्याद्वाद बण्यो साकार॥ सोम पृ. ९७

युद्ध के पश्चात् भरत चक्रवर्ती के मन में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। षट्‌खण्ड का राज्य करते हुए भी उनके आदर्श जीवन की झलक शान्तरस की सृष्टि करने वाली है—

आज राज्य जंजाल लग रहा, लगती है फीकी विभुता,
शासन भार चलाने को, यद्यपि सब कुछ करना पड़ता।
किन्तु उन्हें होता प्रतीत, इसमें न जरा अपनापन है,
अनासक्ति का अद्वितीय, आदर्श भरत का जीवन है॥ भरत पृ. १६५

वात्सल्य रस

१. डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलाल ; आधुनिक हिंदी कविता में सौन्दर्य और प्रेमभावना।
२. गणपतिचन्द्र गुप्त ; साहित्यिक निबंध, पृ. ५३।
३. डॉ. जनक खन्ना ; तुलसी काव्य में प्रकृति, भूगोल तथा खगोल, पृ. २२।

साहित्य के ९ रसों में कुछ आचार्यों ने वात्सल्य रस को स्वतंत्र स्थान नहीं दिया है लेकिन पंडित रामदहिन मिश्र ने वात्सल्य और भक्ति को स्वतंत्र रस के रूप में सिद्ध किया है।[१] वात्सल्य रस के द्योतन में प्राय: मधुर वर्णों की योजना मिलती है। आचार्य तुलसी ने वात्सल्य रस के अनेक सुंदर चित्र उकेरे हैं। देवकी के मातृ हृदय की आशा और अतृप्त आकांक्षा का सफलतापूर्वक वर्णन कवि की लेखनी से चित्रित हुआ है। निम्न पंक्तियों में वात्सल्य रस के उद्रेक के साथ चित्रात्मक शक्ति भी उत्पन्न हो गई है—

- मैं तो कहण सुणण री माता, कोरो भार बह्यो है।
  लालन-पालन-चालन मन रो, मन में कोड़ रह्यो है॥ चंदन पृ. १३७
- थड़ी करावै, पगां चलावै, पकड़ आंगली कर में,
  तुतली बोली री रमझोली, छावै सारै घर में,
  बालक-बालक मिल धूम मचावै, माता झट दौड़ी जावै,

  धावै ज्यूं बाछड़िये पर गावड़ी॥ चंदन पृ. १३५

संतान का मुख देखते ही मां अपनी सारी प्रसव-वेदना भूल जाती है—

एक पलक में वीसरै, नव-नव महीनां को भार।
प्रसव समय री वेदना, मां क्षण में दै विस्मार॥ चंदन पृ. १३६

पुत्र की अनुपस्थिति में मां के मन में जिन भावनाओं का वेग उमड़ता है, उसे बांधना अत्यन्त कठिन कार्य है। मरुदेवा माता की अपने संन्यस्त पुत्र ऋषभ के प्रति जो वात्सल्य की धारा प्रवाहित हुई है, वह सबको भीतर तक भिगोने वाली है—

मैंने झूर-झूरकर अपना, सारा अंग सुखाया,
पर उस निर्मोही ने तो आ, मुंह तक नहीं दिखाया,
सखियो! रो-रो मैं नयन गंवाऊं, ऋषभे की रटन लगाऊं,
देखो यह वदन हुआ कंकाल है।
ध्यान सदा रखती थी उसने, क्या खाया क्या खाना,
अब उसके खाने-पीने का, होगा कहां ठिकाना?
गर्मी-सर्दी से सदा बचाती, रहती थी मैं समझाती,

अब उसकी कौन करे सम्भाल है? भरत पृ.२३

अपने संन्यस्त पुत्र भगवान् ऋषभ को देखकर मरुदेवा के मुख से जो उपालम्भ की धारा बही है, वह वात्सल्य रस का उत्कृष्ट रूप कहा जा सकता है—

तूं क्यों सोचे बेटा मां की, तेरे तो सब ठाट हैं,
ऊंचा बैठा अरे! अकड़कर, ज्यों कोई सम्राट् है।
माता मन सागर में उठती, यों उत्ताल तरंग है,
अरे ऋषभ! यह छटा तुम्हारी, देख हुआ दिल दंग है॥ भरत पृ. २७

वनवास से लौटने के पश्चात् जब लक्ष्मणजी कौशल्या के चरणों में प्रणाम करते हैं, उस समय कौशल्या का वात्सल्यभाव चाक्षुष बिम्ब उत्पन्न करता है—

सर पर धरकर हाथ पूछती—'बेटा! कहां हुआ था घाव?
लालन! क्या बतलाऊं कैसा उभरा था तब ममताभाव॥' परीक्षा पृ. १३

गजसुकुमाल का जन्म होने पर कवि उनकी बाल सुलभ चेष्टाओं एवं क्रीड़ाओं का वर्णन कर सकते थे पर विस्तार भय से उन्होंने इस प्रसंग को बिल्कुल अनछुआ छोड़ दिया। बालक गजसुकुमाल सीधे संन्यास के पथ पर प्रस्थित हो गए।

अनपढ़ होते हुए भी मां वदना अपने बच्चों के पालन-पोषण में अत्यन्त जागरूक महिला थी। किसी भी रोग में अपने बच्चों के लिए वह गृह-वैद्य थी। इसी बात की लोकभाषा में मनोहर प्रस्तुति पठनीय है—

टाबरियां रै सी-सरदी, सिरदर्द बोदरी माता,
खुलखुलियो खांसी खलकावण, माता बणी विधाता,
लख नाड़ी लेती भेद जी,
क्यूं आवै घर में वेद जी॥ मां पृ. १२

कुछ विद्वानों का मंतव्य है कि वीर, भयानक और बीभत्स आदि रसों का संगीत से कोई सरोकार नहीं है पर आचार्य तुलसी ने इन रसों को भी संगीतमय अभिव्यक्ति देकर रस के अनुसार रागों का चयन किया है।

अद्‌भुत रस

विचित्र वस्तु देखने से जहां आश्चर्य, विस्मय और चमत्कार के भाव उत्पन्न हों, वहां अद्‌भुत रस की सृष्टि हो जाती है। पं. विश्वनाथ के अनुसार

चमत्कार का अर्थ हृदय-विस्तार है, उसे आश्चर्य भी कहते हैं।''[१] सभी समालोचकों ने इसे रस की कोटि में परिगणित नहीं किया है लेकिन यह एक विशेष भाव एवं संवेग को पैदा करता है अत: इसे रस के अन्तर्गत समाहित किया जा सकता है। जब बाहुबलि ने भरत-चक्रवर्ती को आकाश में उछाला तो उस अद्‌भुत दृश्य को देखकर सभी आश्चर्य चकित हो गए—

घुमा-फिरा कर बड़े वेग से, उन्हें उछाला नभतल में।
हलचल-सी, खलबल-सी, उथल-पुथल सी है दर्शक दल में॥ भरत पृ. १२८

नभ की ऊंचाई को पार करते भरत को देखकर देवी-देवता भी आश्चर्यचकित हैं—

नभ में जाते उन्हें देख हैं, देव-देवियां भी भयभीत।
मर्त्यलोक से अरे! उछल यह, आया कौन काल को जीत? भरत पृ.
१ २ ८

विभिन्न रसों की सृष्टि से आचार्य तुलसी के काव्य में भावनाओं को उद्वेलित करने की शक्ति उत्पन्न हो गयी है। 'कवि की निखरी हुई रुचि की छलनी से सब मलिनता छन जाती है, तब अपूर्व रस लोक की सृष्टि होती है।' हजारी प्रसाद द्विवेदी की ये पंक्तियां आचार्य तुलसी के साहित्य पर पूर्णतया लागू की जा सकती है।

सौन्दर्य-बोध

सौन्दर्य मनुष्य के मन को बांधने वाला तत्त्व है। अगर मानव में सौन्दर्य के प्रति आकर्षण न हो तो मानव और पशु मे कोई अंतर न रहे। सौन्दर्य व्यक्ति की

महाप्रज्ञ को सम्मुख रख, सम शम श्रम साधें,
श्रद्धा ज्ञान चरित्र त्रयी को ही आराधें।
मन उत्साही मधुर प्रमित वच, काय सजग है,
अंतरंग धर्मानुराग रंजित रग-रग है॥
सम्बोध पृ. १३१

दृष्टि में नया निखार लाता है। भाव काव्य की आत्मा है तो शैली उसका शरीर। जब कवि दोनों में सामंजस्य स्थापित करता है, तभी सौन्दर्य की सृष्टि होती है।''[१] वामन ने **सौन्दर्यमलंकार :** कहकर सौन्दर्य को ही अलंकार के रूप में स्वीकार किया है। सुकरात ने सुंदर और शिव को एक माना है किन्तु प्लेटो ने सौन्दर्य को अलौकिक शक्ति से सम्बद्ध माना है। क्रोचे ने द्रष्टा के सुंदर चित्त की अवस्था को सौन्दर्य के रूप में स्वीकार किया है। हीगल सौन्दर्यजन्य आनंद को ही काव्य का कारण मानते थे। रस्किन का मानना है कि सौन्दर्य ईश्वर की विभूति है।''[२] रवीन्द्रनाथ टेगौर के अनुसार व्यक्ति-व्यक्ति का जहां तक असामंजस्य है, वही कुरूपता है, जहां वह मिटकर सामंजस्य ला देती है, वहीं सौन्दर्य है।''

डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में सौन्दर्य या सौन्दर्य उत्पन्न करने की विधि ही काव्य की आत्मा है। बुद्धि और हृदय का योग होने पर ही काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सौन्दर्य बाहर की वस्तु नहीं, मन के भीतर की वस्तु है।''[३] दिनकर के अनुसार प्रकृति के प्रति आकर्षण में उठी मानव मन की भावलहरियां ही सौन्दर्यानुभूति की जननी हैं।''[४]

कालिदास सौन्दर्य को नित नवीन मानते थे क्योंकि एकरूपता मन को लम्बे समय तक आकृष्ट नहीं कर सकती। वस्तुतः सौन्दर्य की अनुभूति जब सृजन की ओर सक्रिय होती है, तभी वह कला की अनुभूति में परिणत होती है। आचार्य तुलसी के शब्दों में उस साहित्यकार का सौभाग्य अखण्ड होता है, जो सौन्दर्य की उपासना करता हुआ सत्य और शिव को पा जाए। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सौन्दर्य की अनुभूति जितनी सहज, सरल एवं आनंदप्रद है, उसे किसी एक परिभाषा में बांधना उतना ही जटिल कार्य है क्योंकि सौन्दर्य की अवधारणा हर व्यक्ति की भिन्न-भिन्न हो सकती है।

आचार्य तुलसी उदात्त और सूक्ष्म सौन्दर्य के उपासक थे। उनका सौन्दर्य-बोध अत्यन्त परिष्कृत था क्योंकि वह सत्य और शिव के साथ जुड़ा हुआ था। उनकी सौन्दर्य दृष्टि पूर्णतः आध्यात्मिक थी। वे कहते थे— 'प्रकृति हो या पुरुष, उसमें सौन्दर्य का जितना अधिक निखार होता है, वह उतना ही प्रभावित करता है। किन्तु सत्य और शिव से विहीन सौन्दर्य केवल आंखों के लिए सुखद हो सकता है, जीवन के लिए उसका कोई उपयोग नहीं होता।''[१]

---

१. सुमित्रानंदन पंत ; पल्लव, भूमिका, पृ. १९।
२. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावलि, भाग-७, पृ. २०५।

आचार्य तुलसी ने रूप-रंग की सौन्दर्य छटा पर विशेष ध्यान नहीं दिया लेकिन अंत:सौन्दर्य को प्रकट करने में उनकी लेखनी अविश्रान्त गति से चलती रही। वे आंतरिक सौन्दर्य के चितेरे थे। उनका मानना था कि काव्य में सौन्दर्य का महत्त्व है पर वह केवल शब्दावलि का न होकर भावों और विचारों का होना चाहिए क्योंकि आत्मिक धरातल पर संस्थापित होकर ही सौन्दर्य मनोहारी बनता है।

किसी भी घटना में सौन्दर्य नहीं होता, कवि की अभिव्यंजना शक्ति उसमें सौन्दर्य उत्पन्न करती है। यदि कवि की अनुभूति और अभिव्यंजना ऊंची नहीं है तो वह महान् पात्र पर भी सुंदर काव्य नहीं लिख सकता। यदि अनुभूति और अभिव्यंजना में मार्मिकता है तो खलनायक को भी सुंदर प्रस्तुति दे सकता है। आचार्य तुलसी ने अपनी विशिष्ट प्रतिभा से सौन्दर्य के जो चित्र निर्मित किए, वे जीवन्त, स्पष्ट और प्रभावशाली हैं। सारथि कृतान्तमुख द्वारा सीता को वन में छोड़कर वापिस आने पर राम के सम्मुख सीता की स्थिति का मुहावरेदार भाषा में चित्रण सुन्दर चित्र सा प्रस्तुत करता है—

तब किंकर्तव्यविमूढ़ हुआ, संताप गूढ़ से गूढ़ हुआ।
चैतन्य पवन-प्रेरित पाया, तो मेरे जी में जी आया।
विह्वल-सी वे विक्षिप्त बनीं, आंखों में आ छायी रजनी।
गद्गद स्वर आंखें भर आतीं, फटती छाती, फिर मूर्छाती।
छूटा जीवन का संबल है, वह घोर भयावह जंगल है॥ परीक्षा पृ. ७८, ७९

आचार्य तुलसी ने प्रतिक्षण सहजानन्द का जीवन जीया अत: उनका आनंद काव्य में प्रकट होकर सौन्दर्य चेतना को जगाने में निमित्तभूत बन गया। सांतायन का अभिमत है कि अपने मन के आनंद को जब हम किसी मूर्त्त रूप में देखना चाहते हैं, तब उसे जिस वस्तु में प्रक्षिप्त करेंगे, वह सुंदर हो जाएगी। व्यक्ति के आनंद का प्रक्षेपण ही काव्य को सुंदर बनाता है।''[२] डॉ. रामेश्वरलाल खंडेलवाल का अभिमत इससे भिन्न है। वे मानते हैं कि बाह्य जगत् का सौन्दर्य काव्य में आकर जिस पद्धति से आनंददायक या रमणीय बन जाता है, उसे कलागत सौन्दर्य या काव्य शैली का सौन्दर्य कहते हैं।''[१]

कवि के सौन्दर्य की कसौटी उसके सम्यक् और प्राणवान् विशेषण-चयन में है। आचार्य तुलसी ने विशेषणों के उचित प्रयोग द्वारा काव्य के

सौन्दर्य और शब्द की शक्ति को वृद्धिंगत करने का प्रयत्न किया। निम्न पंक्तियों में विशेषण एवं शब्द चयन का सौन्दर्य द्रष्टव्य है—

- समता के साधक में क्यों हो, मादक सी ममता बेमानी। आत्मा पृ. २४
- जन्मजात संस्कार सलोने, दिए दिखाई हर कृति में। शासन पृ. ७०

आचार्य तुलसी का मंतव्य था कि सौन्दर्य यदि नैतिकता विहीन होगा तो वह स्थायी और प्रभावी नहीं हो सकेगा। गणपति चन्द्र गुप्त नैतिकता और सौन्दर्य में सामंजस्य स्थापित करते हुए कहते हैं कि कला के क्षेत्र में सौन्दर्य को नष्ट करने वाली अति नैतिकता और नैतिकता को ठेस पहुंचाने वाली सुंदरता—ये दोनों त्याज्य हैं।''[२]

अग्नि परीक्षा में कवि ने सीता के बाह्य और आंतरिक सौन्दर्य को सशक्त प्रस्तुति दी है—

- नारी रत्न अमूल्य, शारदा-तुल्य सयानी सीता।
  गृहलक्ष्मी, माधुर्य-मूर्ति सी, सद्‌गुण गौरव गीता॥ परीक्षा पृ. ४५
- आकृति में आकर्षण, नव अमृत-वर्षण वाणी में।
  कोमलता सारल्य सौम्य सौजन्य महारानी में॥ परीक्षा पृ. ८४

सीता की सुंदर मनोवृत्ति के सौन्दर्य का अत्यन्त मार्मिक चित्र निम्न पंक्तियों में उपस्थित है—

कुलकमले! कमनीयकले! अमले! अचले! सन्नारी।
सहज सुव्रते! सौम्य सुशीले! अननुमेय अविकारी॥ परीक्षा पृ. १५१

कवि साधारण व्यक्ति की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होने के कारण प्रकृति सौन्दर्य के दर्शन और उसके उद्‌घाटन की क्षमता रखता है। उसकी प्रकृति सौन्दर्य संबंधी दृष्टि अधिक व्यापक एवं प्रबल होती है।''[३] प्रकृति की सौन्दर्य राशि को देखते हुए आचार्य तुलसी ने नए परिवेश में प्रकृति के सुंदर और मोहक चित्र उकेरने का प्रयत्न किया है। यद्यपि उन्होंने स्वतंत्र रूप से प्रकृति का वर्णन कम किया है लेकिन अप्रस्तुत विधान में उनका अभिव्यञ्जना कौशल प्रकट हुआ है। प्रकृति-सौन्दर्य के दो उदात्त चित्र निम्न पंक्तियों में दर्शनीय हैं—

- पक्के पत्ते तरु से गिरकर, आते थे शरणागत बनकर,
  दूर्वा मन ही मन हंसती थी, पादप पर ताने कसती थी।

परछाई सरयू के जल में, मानो वनिता हो अंचल में।
रह-रह कर उठती जो तरंग, वह थी उसके मन की उमंग॥ भरत पृ. २२

- वे ऊंचे शैल गगनचुम्बी, चोटियां हजारों फुट लम्बी।
मानो बहली के हों प्रहरी, जिनमें थी राष्ट्रभक्ति गहरी॥ भरत पृ. ६५

ग्रीष्मकाल की गर्मी की भांति राजस्थान की शीतऋतु भी प्रचंड होती है। शीत की भयंकरता में भी कवि ने उसकी सौन्दर्यमयी आभा का रूप उकेरा है—

झीणी झीणी निशि ओस पड़ै, झांझरकै जम ज्यावै जंगल,
जंगल जा हाथ ऊजलातां, जाड़े स्यूं बर्फ हुवै जम जल।
धोरां-धोरां में धोला-सा, चांदी रा जाणै बरग बिछै,
जम ज्याय जलाशय भी सतीर, कित्ती सुंदर तस्वीर खिंचै॥ कालू भा. १ पृ. १ ८ ८

जब भरत चक्रवर्ती दिग्विजय करके लौटते हैं तो उनके स्वागत में वनिता नगरी में सजाए गए मंडपों का आलंकारिक सौन्दर्य वर्णन चाक्षुष बिम्ब पैदा करता है—

मंडप की मंजुलता ने, देवों का चित्त लुभाया,
मानो साकार धरा पर, है स्वर्ग उतरकर आया,
थी स्वर्ण खचित स्तम्भों पर, वे मणि मंडित पुत्तलियां,
गमलों में महक रही थीं, सुरभित सुमनों की कलियां,
नव-नव नामांकित सुन्दर, द्वारों की छवि मनहारी॥ भरत पृ.३९

पुनरुक्ति के साथ निम्न पंक्तियों में चित्रांकित माणकगणी के व्यक्तित्व का सौन्दर्य मन को आकृष्ट और मुग्ध करने वाला है—

लम्बी गरदन अरु लम्बी ही डग भरता,
लम्बे स्वर स्यूं अति लम्बी राग उचरता। मगन पृ. २१

हार्दिक अनुभूति के योग से उनके काव्य में चेष्टागत सौन्दर्य की सजीवता भी प्रकट हो गयी है। राम की द्विधापूर्ण मन:स्थिति का सुंदर चित्र द्रष्टव्य है—

लोकहित के सामने, हित प्रेयसी का गौण-

स ा ,
अब रहा अतिरिक्त इसके, दूसरा पथ कौन-
स ा ।
बैठते-सोते कभी वे बोलते उद्वेग से,
हो रहे हैं, कवि-हृदय की, कल्पना के वेग से॥ परीक्षा पृ.
४ ३

श्रद्धा की उपस्थिति सौन्दर्य, आनंद और रमणीयता की सृष्टि कर देती है। अपने अग्रज भाई राम के प्रति भरत की मूक श्रद्धा भावना में भावपूर्ण सौन्दर्य का प्रवाह प्रवाहित है—

प्रश्न सुनते ही भरत का, गला सहसा भर गया,
हो गई पलकें छलाछल, ज्वार सा आया नया।
धैर्य कर एकत्र सविनय, ज्येष्ठ से कहने लगे,
भाव मन के स्रोत बन, वदनाद्रि से बहने लगे॥ परीक्षा पृ. ९

जब भरत चक्रवर्ती अपने अनुज बाहुबलि के बाह्लीक देश में चतुरंगिणी सेना के साथ पहुंचते हैं तो बाहुबलि के सैनिक अभिनव जोश के साथ समरांगण में उतरने के लिए तैयार होते हैं। युद्ध के लिए बहिनों एवं पत्नियों से विदा लेते वीरों के वर्णन में भावना की सुकुमारता और अर्थ-सौन्दर्य हृदय को आह्लाद देने वाला है—

- आरती उतार रहीं बहिनें, करती हैं मंगल तिलक कहीं,
  वीरो! आना घर जीत समर, हो कायरता का नाम नहीं।
  राखी बांधी जिन हाथों पर, उनका अब पौरुष दिखलाना,
  यह देश सुरक्षा का व्रत है, टस से मस कहीं न हो जाना॥ भरत पृ. ८२

बाबू गुलाबराय के अनुसार सौन्दर्य वहां होता है, जहां रमणीयता के साथ माधुर्य का भी योग हो।'' चक्रवर्ती की स्त्री रत्न श्रीदेवी के चित्रण में आचार्य तुलसी ने रस के साथ माधुर्य भी उंडेल दिया है, जिससे सौन्दर्य का सजीव और सूक्ष्म चित्र इन पंक्तियों में साकार हो उठा है—

हथिनी सी गति, कोयल सी मीठी वाणी,
पा स्पर्श स्वस्थ, हो जाते आतुर प्राणी।
परिपूर्ण निरामय, कलावती कल्याणी,

वह नित्य यौवना, नारी शुभ सहनाणी॥ भरत पृ. ५६
सब शब्द शिल्पियों ने, मिल उसे तराशा।
हर कलाकार के कुशल, करों की आशा।
शालीन सुघड़ सुविनीत सुशीला नारी,
उसकी छवि देव-सुता, सी थी मनहारी॥ भरत पृ. ५५,५६

सौन्दर्य-बोध के लिए कल्पनापटुता आवश्यक है। इससे कवि नीरस व्यक्ति में भी सरसता और सौन्दर्य का दर्शन कर लेता है। कवि ने श्रेणिक के मुख से अनाथी मुनि के आंतरिक और बाह्य सौन्दर्य को एक साथ उजागर कर दिया है—

आंख्यां स्यूं ज्यूं इमरत बरसै, तरणी सो मुख तेज है।
धरती धरणीधर सो धीरज, अप्रतिहत सो हेज है॥ चंदन पृ. १८६

'जो भाव क्षुद्रता से औदात्य की ओर ले जाएं, राग-द्वेष के बंधन से मुक्त होने में सहायता दें, वही साहित्य का सौन्दर्य है।' जैनेन्द्रजी की ये पंक्तियां आचार्य तुलसी के काव्य-साहित्य पर खरी उतरती हैं। कहा जा सकता है कि रचना-चातुर्य, भाषा सौष्ठव, रस-परिपाक तथा अलंकार-योजना आदि सभी दृष्टियों से आचार्य तुलसी का सौन्दर्य-बोध अत्यन्त रमणीय और स्वाभाविक है।

अलंकार-योजना

अलंकार वाणी के विभूषण होते हैं अत: काव्य जगत् में भाषा को आकर्षक बनाने के लिए अलंकृत भाषा की उतनी ही महत्ता है, जितनी शरीर को आकर्षक और सुंदर बनाने में आभूषणों की। सुमित्रानंदन पंत के अभिमत से अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं···· वे वाणी के हास-अश्रु, स्वप्न-पुलक और हाव-भाव हैं।''[1] भामह ने अलंकार को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया किंतु अलंकरण काव्य की आत्मा नहीं अपितु उसके बाह्य पक्ष को सुसज्जित करने के साधन मात्र हैं।

लोंजाइनस के अनुसार अलंकारों का प्रयोग इस ढंग से करना चाहिए कि श्रोता या पाठक को उसके प्रयोग का पता न चले। अलंकारों का अधिक प्रयोग भाषा में कृत्रिमता ला देता है। इस संदर्भ में हजारीप्रसाद द्विवेदी का अभिमत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—"यदि कवि ऐसी कविता लिखने बैठ जाए, जिसमें काव्यगत सत्य की तो कोई परवाह ही न की गयी हो केवल छंद, अलंकार और पद-लालित्य को ही बड़ा दिखाने की चेष्टा की गयी हो तो उसकी कविता उत्तम नहीं मानी जाएगी।"[२] सुमित्रानंदन पंत ने वाणी को संबोधित करते हुए इसी सत्य को अभिव्यक्ति दी है—

तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार॥

आचार्य तुलसी कुशल शब्दशिल्पी थे अत: कविता उनकी अनुगामिनी और शब्द उनके सहचर थे। उन्होंने स्वतंत्र रूप से अलंकार शास्त्र का अध्ययन नहीं किया लेकिन प्राय: सभी अलंकार सहज रूप से स्वत: उनके काव्य में प्रयुक्त हो गए। आचार्य तुलसी ने अलंकार प्रयोग के क्षेत्र में अनेक नवीन रूपों की उद्‌भावना की है अत: काव्यशास्त्रीय अलंकार-योजना के घेरे में ही उनको सीमित नहीं किया जा सकता। अलंकार-योजना में उनके प्रतिभा-वैशिष्ट्य को पग-पग पर देखा जा सकता है। अलंकार के कारण भावधारा में रुकावट नहीं अपितु अभिव्यक्ति में एक प्रवाह और गति उत्पन्न हो गयी है। काव्य में अनुप्रास युक्त शब्द उनके संकेत मात्र से कविता में आकर विराज जाते थे।

आचार्य तुलसी की अलंकार-योजना में बिम्ब-विधान अत्यन्त समृद्ध है। बिम्ब-विधान की क्षमता के कारण उन्होंने विगत घटनाओं और विषय-वस्तु को रंग, रूप, ध्वनि, गति एवं आकार-प्रकार सहित प्रस्तुत कर दिया। इसी कारण उनके अलंकार-विधान में अद्वितीय चित्रात्मकता की झलक मिलती है।

शब्दालंकार

एक शब्द के कई अर्थ होते हैं अत: शब्दालंकार का प्रयोग सक्षम कवि

---

१. दिनकर ; चक्रवाल, भूमिका, पृ. ७३।

२. डॉ. भोलानाथ तिवारी ; व्यावहारिक शैली विज्ञान, पृ. ४९।

ही कर सकता है। कवि यदि काव्य में जैसे तैसे, अनावश्यक या चेष्टापूर्ण शब्दालंकार की झंकार ही प्रस्तुत करता रहे तो अर्थ-गौरव की हानि हो जाती है। वे पाठक की अनुभूति में तीव्रता उत्पन्न नहीं कर सकते। शब्दालंकार में अनुप्रास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके प्रयोग से काव्य श्रुतिमधुर और संगीतमय हो जाता है। जब एक ही ध्वनि बार-बार पुनरुक्त होती है तो श्रोता और पाठक आनंद-विभोर हो जाते हैं।

अनुप्रास

अनुप्रास आचार्य तुलसी का प्रिय अलंकार था। यह उनके काव्य में स्वतः प्रसूत हुआ है। अनुप्रास लाने के लिए आचार्य तुलसी ने अनावश्यक रूप से न शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा और न ही व्याकरणहीन निरर्थक शब्दों का प्रयोग किया। सानुप्रासिक पदावली से उनकी भाषा में श्रुतिमाधुर्य ही नहीं, संगीत एवं सौष्ठव भी उत्पन्न हो गया है। माधुर्य और गतिमयता से अभिमंडित श्रद्धा के प्रकर्ष में उनकी सानुप्रासिक पदावली द्रष्टव्य है—

श्रुति में स्मृति में संस्कृति में। तुम हो मेरी कृति-कृति में॥ नंदन पृ १९१

उनके अनुप्रासों का नादसौन्दर्य और संगीत शब्दों के भावों को कहीं भी दबने नहीं देता—

हा हा कुटिल कृतघ्न कषायी, क्रूर कर्म अपणावै। चंदन पृ. ८८

आचार्य के गुणों को प्रकट करने वाले निम्न पद्य की सभी पंक्तियों में आनुप्रासिक छटा दर्शनीय है—

अमलतम आचारधारा में, स्वयं निष्णात हैं,
दीप-सम शत दीप दीपन, के लिए प्रख्यात हैं।
धर्म-शासन के धुरंधर, धीर धर्माचार्य हैं,
प्रथम पद के प्रवर प्रतिनिधि, प्रगति में अनिवार्य हैं॥ शासन पृ. ५

पद-लालित्य के लिए आचार्य तुलसी ने वृत्यनुप्रास के प्रचुर प्रयोग किए हैं। जिससे उनके पदों में एक प्रकार की गति एवं लयबद्धता उत्पन्न हो गयी है। उनके काव्य-साहित्य में लगभग सभी वर्णों के वृत्यनुप्रास मिलते हैं। यहां कुछ वर्णों के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

अ — अक्षय अरुज अनंत अचल जो। अटल अरूप स्वरूप अमल जो।
शासन पृ.

३

क — काटी करमां री कारा। शासन पृ. ७

ग — गण-सिणगार गुरु री महिमा, गा गा कर्म खपाया जा। सुधा पृ. ४४

घ — घटा घनाघन घोर। कालू भा. १ पृ. ६४

च — चित्त चिन्ता की चहल में। चंदन पृ. ११८

छ — छटा छबीली छाई।

ज — जाणै जंग सो मचावै, जीव जंत जंगली। चंदन पृ. २४

त — 'तुलसी' तरुण तपस्वी रो पथ, तरणो तारणो जी। चंदन पृ. ६

द — दुर्गति री अति दारुण दलना।

न — भैया! इसी निकम्मी नगरी, नहीं निजर में आई। चंदन पृ. १०९

प — प्रवंचना का क्यों प्रपंच, अपने पौरुष में आस्था। श्रावक पृ. १२०

ब — बो बजरंगी वीर बांकुरो, बार-बार बलिहारी।

स —सुख शांति समृद्धि सिद्धि सम्पत, साकार समूचे भारत में। परीक्षा पृ. २०

तुक या छंद के लिए कहीं-कहीं उन्होंने शब्द-चयन को विकृत भी किया है पर उससे नाद-सौन्दर्य और माधुर्य गुण द्विगुणित हो गया है। गायक होने के कारण अन्त्यानुप्रास स्वतः उनके गीतों में समाविष्ट हो गए हैं। राजस्थानी भाषा में स्वतः प्रसूत अन्त्यानुप्रास के प्रयोग श्रुतिमधुर ही नहीं, शब्द-चयन की निपुणता को भी प्रकट करने वाले हैं—

- अविहड़ नेहे दम्पति गेहे, रहता वहता साता ।
  सांसारिक सुख विलसत उलसत, काल न जाण्यो जातां॥
  कालू भा. १ पृ.६२
- वचन चूक स्यूं मूक भलो, नहिं थूक चाटणो चावै। चंदन पृ. १२१
- फिरता च्यारूं ओर भोर स्यूं, पोर पाछलो आवै। चंदन पृ. ९०
- तपोवन-वास, अटल उपवास, सजग प्रतिश्वास।
  चरम जिनराज, भवाब्धि-जहाज, समस्त समाज॥ शासन पृ. ३२
- हणहणाट करतो संचरतो, मनहरतो हयवर है। चंदन पृ. ६
- पांचों आंगुलियां परतंत्र, फिर भी पांचों पूर्ण स्वतंत्र। नंदन पृ. १३

जहां वर्णों की ध्वनि से ही अर्थ की प्रतिध्वनि मिले, वहां श्रुत्यनुप्रास होता है अथवा समान स्थान वाले वर्णों की आवृत्ति भी श्रुत्यनुप्रास है। यह पाश्चात्य अलंकार है पर हिंदी में भी प्रचलित है। नाद-सौन्दर्य से युक्त

श्रुत्यनुप्रास के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- पावापुर स्यूं शिवनगर रे, पावन कीन्हो अघदलिया,
  छिम छिम छिम छिम छिम छिम बाजै, धौं धौं धपमप
  मादलिया,
  रयणावलियां दीपावलियां, मोच्छव में सुर नर सहु मिलिया॥ शासन पृ. ३७
- पलक-पलक प्रभु मुख वयण, स्मरण समीरण लाग।
  छलक-छलक छलकण लग्यो, कालू-हृदय-तड़ाग॥
  कालू भा. १ पृ. ७३

प्रथम उदाहरण में महावीर के निर्वाणोत्सव पर होने वाली वाद्य-ध्वनि तथा दूसरे में तालाब में पानी के छलकने की ध्वनि सुनाई पड़ रही है।

कहीं-कहीं उन्होंने शब्द-छटा दिखाने के लिए भी अनुप्रास का प्रयोग किया है, जिससे भाषा बोझिल और दुरूह हो गयी है पर उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि अलंकारों के बोझ से रस में अवरोध न आने पाए।

यमक

यमक अलंकार में एक ही शब्द की पुनरावृत्ति होती है पर उनका अर्थ भिन्न होता है। यमक अलंकार में शब्दों की आवृत्ति निरर्थक भी होती है लेकिन कवि ने प्रायः सार्थक पदों पर आवृत्ति की है। आचार्य तुलसी के काव्य में यमक अलंकार के प्रचुर प्रयोग मिलते हैं। निम्न पंक्तियों में व्यक्ति के नाम के आधार पर यमक अलंकार स्वतः आकर विराज गया है—

- 'मिसरी' मिसरी सो मधुर, भंसाली गुरुभक्त।
- प्रलयकरण पृथ्वी रो बाहूबल, बाहूबल पायो है। चंदन पृ. १८
- 'कनक' कनक सो टंच को, अणसण दिन तेवीस।
  'कुंदन' कुंदन सो बण्यो, मेटी मन की टीस॥ डालिम पृ. १३७
- 'भंवर' भंवर ज्यूं उड़ गयो, हा! हा! विधि विद्रूप॥

यहां प्रथम 'मिसरी' (मिश्रीमल) नाम का वाचक तथा दूसरा 'मिसरी' मिश्री का वाचक है। दूसरे उदाहरण में प्रथम बाहूबल ऋषभपुत्र बाहूबल का तथा दूसरा बाहुबल—भुजाबल का द्योतक है। तीसरे और चौथे उदाहरण में कनक और कुंदन साधुओं के नाम के वाचक हैं तथा दूसरा कनक और कुंदन सोने के पर्याय हैं। इस प्रकार व्यक्ति के नाम के आधार पर यमक के अनेक प्रयोग

आचार्य तुलसी के काव्य में मिलते हैं, जैसे—मगन मगन, अमर अमर, गुलाब गुलाब आदि। इनमें प्रथम व्यक्तिपरक नाम हैं तथा दूसरे अपने-अपने मूल अर्थ को द्योतित करते हैं। यमक अलंकार के कुछ अन्य उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- घूमते गली-गली, आज अकेले राम।
  एक ही हवा चली, नहीं राम में राम॥ परीक्षा पृ. ३४
- मघवा-कृति कालू स्यूं आंको।
  मघवाकृति कालू स्यूं चांको॥ शासन पृ.६१
- उदित प्रकम्पित-सा अरुण, अरुण अभ्र को चीर। परीक्षा पृ. ४३
- रोगी, ग्लानी, स्थविरां स्यूं, करै न ग्लानी। डालिम पृ. १९०
- परनिंदा आत्मप्रशंसा रा प्रतिपक्षी।
  प्रतिपक्षी नै भी उचित सला शुभलक्षी॥ डालिम पृ. १९७
- जरा जरा भी नहीं सतासी, मर ज्यासी महामारी। मैं तिरूं पृ. १५

यहां दूसरे उदाहरण में मघवा-कृति का अर्थ आचार्य मघवा की कृति तथा दूसरे का मघवा की आकृति अर्थ है। तीसरे उदाहरण में प्रथम 'अरुण' अरुण रंग का तथा दूसरा सूर्य का वाचक है। तीसरे उदाहरण में प्रथम 'ग्लानी' रोगी का तथा दूसरा 'ग्लानी' घृणा अर्थ का संवाहक है। चौथे उदाहरण में प्रथम 'गुलाब' साध्वीप्रमुखा गुलाब सती का तथा दूसरा गुलाब के फूल का वाचक है। पांचवें उदाहरण में प्रथम 'प्रतिपक्षी' पक्ष लेने वाला अर्थ का तथा दूसरा शत्रु का वाचक है। इसी प्रकार छठे उदाहरण में प्रथम 'जरा' बुढ़ापा का तथा दूसरी 'जरा' तनिक अर्थ की प्रतीक है।

कहीं-कहीं कवि ने यमक का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए दो अलग-अलग भाषा के समान शब्दों को भी ग्रहण किया है। निम्न पंक्ति में प्रथम 'सारी' गुजराती भाषा में अच्छे अर्थ में प्रयुक्त तथा दूसरा 'सारी' राजस्थानी भाषा में निभाने या करने के अर्थ में प्रयुक्त है—

शेष समय लग सद्‌गुरु-सेवा, सारी रीते सारी। कालू भा. १ पृ.७२

गीतों में उन्होंने ऐसी रागों का भी चयन किया है, जिसमें टेकपदों में वीप्सा के कारण यमक का प्रयोग स्वाभाविक रूप से प्रकट हो गया है—

- पुण्यवान् के पग-पग हुवै, निधान यूं, धान यूं।
  कंस हाथ स्यूं क्यूंकर मरै, सुजान यूं, जान यूं॥ चंदन पृ. १३३

- राजमहल में पटरानी, वसुदेव की देवकी।
  हसितमुखी हरि-माता, ऊभी देवकी देवकी॥ चंदन पृ. १२९

कहीं-कहीं कवि ने यमक का चमत्कार उत्पन्न करने के लिए तत्सम शब्दों का सहारा भी लिया है। निम्न उदाहरण में क्लिष्टता होने पर भी नाद-सौन्दर्य मन को आकृष्ट करने वाला है—

नमो वीर मुख भारती, भविक भा रती हेत।
लहै मूक नर भारती, वाणी रै संकेत॥ कालू भा. १ पृ. १७६

संवाद शैली एवं बोलचाल की राजस्थानी भाषा में यमक का चमत्कार द्रष्टव्य है—

श्री मघवा—कालू!, तू बखाण दे देसी,
गुरुदेवदयालू!, मनै न आवै देशी।
देशी मैं स्वयं धरा देस्यूं तब देसी?
ठावो कर देस्यूं, साथ मिलाणै देशी॥ मगन पृ. १९

उक्त उदाहरण में 'देसी' होने के अर्थ में तथा देशी शब्द राग या लय के अर्थ में प्रयुक्त है।

श्लेष

श्लिष्ट पदों के द्वारा अनेक अर्थों का कथन श्लेष अलंकार है। यह अलंकार चमत्कारपूर्ण अर्थगाम्भीर्य की स्थिति उत्पन्न करता है लेकिन इसका प्रयोग करते समय कवि को बहुत सतर्क रहना पड़ता है। इसमें कवि एक शब्द में कई अर्थों को प्रकट करता है। आकाश में बादलों को देखकर कवि कल्पना करते हुए कहते हैं—

अब्धि-शेष-शय्या तजी, सझी वेश अभिराम।
जाणै क्यूं नभ में कियो, घनश्याम विश्राम॥ कालू भा. २ पृ. ११५

उपर्युक्त पद्य में 'घनश्याम' शब्द बादल और श्रीकृष्ण दोनों का वाचक है।

अर्थालंकार

भावों को व्यञ्जित, सुबोध और प्राञ्जल बनाने में अर्थालंकार का प्रमुख स्थान है। अर्थालंकार में सादृश्यमूलक अलंकारों का समावेश होता है। निम्न पंक्तियों में सादृश्यमूलक अलंकारों की छटा दर्शनीय है—

- पूंगी पर ज्यों नाग डोलने, लगता था मन जन-जन का। पानी पृ. २४
- वदन वचन घन बरसतां, हर्षित भवि जन मोर। कालू भा. १ पृ. ८१
- है उतर रहा जन-जन मन से, अज्ञान अनास्था का पारा।
- रंग मेंहदी में महकती, फूल में ज्यों वासना।
  प्राणधारा में रहे त्यों, संघपति की शासना॥ नंदन पृ. ७६
- झपट पड़ते सैनिकों पर, पंखियों पर बाज ज्यों। भरत पृ. ९९
- प्हाड़ सो दृढ़ कालजो। मगन पृ. २३

उपमा

कवि के काव्य-कौशल एवं कल्पना-वैभव की सच्ची कसौटी उपमा-प्रयोग में है। उपमा बिम्ब-रचना में सहायक उपकरण है। उपमा से बिम्ब में चित्रात्मकता का समावेश हो जाता है। दिनकर के अनुसार सही अर्थों में मौलिक कवि वह है, जिसके उपमान मौलिक होते हैं।''[१] आधुनिक भाषा में इसे अप्रस्तुत विधान कहा जा सकता है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार अप्रस्तुत विधान काव्यभाषा का मेरुदण्ड है क्योंकि इसमें विषय की प्रभावी और सटीक अभिव्यक्ति के लिए प्रस्तुत से इतर किसी अन्य का विधान किया जाता है।''[२]

आचार्य तुलसी ने संसार और जीवन को सूक्ष्म दृष्टि से देखा इसलिए अनेक नए उपमान उनके काव्य में प्रयुक्त हो गए। व्यवहार एवं प्राचीन शास्त्रों से गृहीत अनेक उपमाएं उन्होंने कुशलतापूर्वक काव्य में गुम्फित कर दीं। प्रकृति एवं सिद्धान्त से सम्बन्धित अनेक नये उपमान उन्होंने काव्य में प्रयुक्त किए हैं। आचार्य तुलसी ने उपमाओं द्वारा अपने भावों की अभिव्यक्ति में हेतु और शब्दों का सुन्दर चयन किया है। अप्रस्तुत प्रयोग में वे अत्यन्त पटु थे इसी कारण उनके काव्य में विविधता उत्पन्न हो गयी। काव्य साहित्य में प्रयुक्त उपमानों के वैविध्य और वैपुल्य को देखकर आचार्य तुलसी की विराट् कल्पना का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। सामान्य बात को भी उन्होंने उपमा से अलंकृत करके उसमें विशेष मनोहरता भर दी है—

- गंगा-यमुना की धारा ज्यों, मिले भरत लक्ष्मण के साथ। परीक्षा पृ. ८
- सभी शान्त हो सुन रहे, ज्यों मंदिर के स्तम्भ॥ भरत पृ. १२४
- मधुधूली धूली समी, गुरु शिक्षा आगे। कालू भा. १ पृ. ९३

आचार्य तुलसी ने प्रकृति, लोकव्यवहार, पुराण शास्त्र तथा काव्य आदि से तो अनेक उपमान गृहीत किए ही हैं, अपनी कल्पनाशक्ति से काव्य जगत् में प्रयुक्त उपमानों की परम्परा से हटकर भी अनेक नए उपमानों का प्रयोग किया है। उनके काव्य साहित्य में कहीं उपमान परम्परागत हैं पर उनका प्रयोग सर्वथा नवीन है, कहीं उपमेय पुराने हैं पर उपमान सर्वथा नवीन हैं। मौलिक और नवीन उपमानों का प्रयोग उनके विशिष्ट प्रतिभा-वैशिष्ट्य के निदर्शन हैं—

- आचरण की उर्वरा में, लक्ष्य तरुवर लहलहाए। शासन पृ. १४
- मां रै दूध जिसा मीठा, गीतां नै नहीं गमास्यूं। मैं तिरूं पृ. ११
- मोटो सो फोड़ो हुयो, विषधर सो खूंखार। सेवा पृ. ३२
- एकता ज्यूं गगन खग में॥ नंदन पृ. ८४
- संयम रै संगे साहस स्यूं, यूं बढ़ ज्यावै।
  पावक परसंगे दूध, जियां रढ़ ज्यावै॥ मां पृ. ३०
- नरमुण्ड चूंटते ज्यों खेतों में बूंटे। भरत पृ. ९९
- है प्रवाह यह जड़ जनता का, अस्थिर ज्यों शिखरस्थ पताका। परीक्षा पृ. ३४
- पण आ तो बिचरी बाघण बणी लुगाई। माणक पृ. ७७
- कर अपमानित वन में छोड़ा, बेचारी को तृण ज्यों तोड़ा। परीक्षा पृ. १५०

राम के विरह को महामारी से उपमित करते हुए कवि कहते हैं—

- लम्बा विरह सहा नारी का, ज्यों आघात महामारी का॥ परीक्षा पृ. ४२

प्राचीन उपमानों को भी कवि ने जिस अनूठे ढ़ंग से उपमित किया है, उससे काव्य में सौन्दर्य की अभिवृद्धि हो गयी है। उपमानों से उनके व्यावहारिक अध्ययन और पांडित्य का परिचय मिलता है। यौवन, धन और शरीर एक क्षण में धागे की भांति टूट जाता है, इस बात की अभिव्यक्ति में कवि का उपमा वैशिष्ट्य दर्शनीय है—

ओ यौवन तन धन तरुणाई,
ऐश्वर्य अलौकिक अरुणाई,
इक खिण में टूटै ज्यूं तागो॥ सोम पृ. १२

उपमा, रूपक आदि के साथ अनुप्रास अलंकारों के उदाहरण मन को बांधने वाले हैं—

- मघवा मुनिपति सादृश दिनपति, जिनपति ज्यूं अवतारी॥ कालू भा. १ पृ.

६८

- वर वदनारविंद री आभा, निरख न नयन अघावै।
  शारद शान्त शंशाक-चंद्रिका, शीतलता सरसावै॥ कालू भा. १ पृ. ६५
- कालो कज्जल सोदरू, घटा घनाघन घोर। कालू भा. १ पृ. ६४
- अष्टमपट्टाधिप अरुण, तरुण करुण रसपूर।
  श्री कालू अशरण शरण, कोहिनूर सो नूर॥ कालू भा. २, पृ. २५२
- मूल मलिन ओ तन है थांरो, चाहे जितो न्हुवालै।
  काक-कालिमा कदै न छूटै, कोटि उपाय सझालै॥ सुधा पृ. २३

आचार्य तुलसी ने प्रकृति के अलंकृत वर्णनों को भी भावना, अनुभूति और मानव-प्रकृति के साथ जोड़ दिया, जिससे उसमें स्वाभाविक सौन्दर्य का निखार आ गया है—

- हर्षोत्सव है इधर तो, उधर विषाद विशाल।
  ज्यों सुमेरु के उभयतः, है प्रकाश तम जाल॥ भरत पृ. १२४

पौराणिक एवं आगमिक उपमानों का भी आचार्य तुलसी ने यथास्थान उपयोग किया है—

कुसुम-कली सम कोमल काया, व्रत है खड्गां धार।
मैण दांत लोह चणां चबाना, कितोक दुक्कर कार॥ माणक पृ. ४२

आचार्य तुलसी ने कालिदास की भांति सैद्धान्तिक और तात्त्विक उपमाओं को भी नये रूप में प्रस्तुत किया है। इनके प्रयोग से जहां एक ओर जैन दर्शन एवं जैन तत्त्व का ज्ञान होता है, वहां कवि की कल्पना-प्रौढ़ता का दर्शन भी होता है। कल्पना-शक्ति द्वारा कवि ने जैन तत्त्व एवं उसके अनेक सिद्धान्तों को उपमान में बांधकर उन्हें सरस और सुबोध बना दिया है। उनकी गंभीर एवं ज्ञान-वर्धक तात्त्विक उपमाओं के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

विग्रह गति के जीव ज्यों, लेकर एक घुमाव।
शब्द जिधर से आ रहे, बढ़े उधर ही पांव॥ पानी पृ. ५५

राम और लक्ष्मण के साथ लव और कुश के युद्ध में सैद्धान्तिक उपमाओं की झड़ी देखने योग्य है। यद्यपि ये उपमाएं जैन दर्शन को नहीं जानने वाले सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन हो सकती हैं पर जैन दर्शन जानने वाले व्यक्ति

के लिए ये सैद्धान्तिक उपमाएं सुबोध ही नहीं, आनन्दप्रद भी हैं—

- सुनकर टंकारें चापों की, टिक सके विपक्षी वीर नहीं।
  कैवल्य-युगल के आगे क्या? रह सकते घातिक कर्म कहीं? परीक्षा पृ. १०५
- एक-एक भट लगा भागने, कोई भी टिक सका नहीं।
  यथाख्यात चारित्र सामने, क्या ठहरेगा मोह कहीं?॥ परीक्षा पृ. १२२
- पृथु-प्रबल-बल सामने, दल वज्र का हटने लगा।
  उदय के ज्यों मोह के, चारित्र-बल घटने लगा॥ परीक्षा पृ. १०३

चातुर्मास के बाद हेमन्त ऋतु का वर्णन कवि ने अनेक सैद्धान्तिक उपमाओं के द्वारा किया है। उन उपमाओं में कवि का बाहुश्रुत्य और सिद्धान्त का सूक्ष्म पाण्डित्य प्रकट हो रहा है—

- आ रहा विस्तार वर्षा का, सहज संक्षेप में।
  ज्यों समाहित तत्त्व सारे, चतुर्विध निक्षेप में॥ परीक्षा पृ. ९३
- हो रही कृशकाय नदियां, क्षीण निर्झर-पीनता।
  क्षपक श्रेण्यारूढ़ मुनि की, ज्यों कषाय प्रहीणता॥ परीक्षा पृ. ९४
  वर्ष भर का कृषक श्रम, अब हो रहा साकार है।
  खींचता तन सार अनशन में, यथा अनगार है॥ परीक्षा पृ. ९४

तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य सूरज के समान तेजस्वी पुरुष थे और पंचम आचार्य चांद के समान शीतल। जब जयाचार्य ने मघवागणी को अपना युवाचार्य बनाया तो कवि कल्पना करते हैं कि जन्म कुंडली में मानो सूरज ने चांद को अपने पास बिठा लिया—

- जन्म-कुंडली में सूरज ने, शशि को अपने पास बिठाया। शासन पृ.६३

सीता के सतीत्व एवं अटल पतिव्रत धर्म को अनेक सैद्धान्तिक उपमानों से उपमित करते हुए लक्ष्मण अपने अग्रज राम से कहते हैं—

चाहे बिना निर्जरा कोई, कर्म-कटक को मोड़े।
तो भी कभी न जंचता भाभी, अटल पतिव्रत तोड़े॥
अभवी मुक्त बने, अलोक में चाहे पुद्गल दौड़े।
तो भी कभी न जंचता भाभी, अटल पतिव्रत तोड़े॥ परीक्षा पृ. ४५

भाई भामण्डल सीता को देखकर हर्षातिरेक से भावविभोर हो जाता है।

वह अपनी प्रसन्नता को सीधी भाषा में प्रकट न करके आलंकारिक भाषा में उपमाओं की झड़ी सी लगा देता है—

अब मुझे दीप में ज्योति मिली, मृत में संजीवन शक्ति
ढ . ल ी ,
पादप से बिछुड़े फूलों की, खिल रही आज तो कली-कली।
कल-कल बहती सूखी सरिता, मुखरित हो रही मूक
क ि व त ा ,
पाषाण भेदकर कमल खिला, रजनी में उदित हुआ सविता,
सलिला-प्लवित है मरुस्थली, पतझड़ में हरियाली छाई।
आया है भामण्डल भाई॥ परीक्षा पृ. १२४

शरीर दाबने के लिए कवि का उपमा वैशिष्ट्य चाक्षुष बिम्ब उत्पन्न करने वाला है—

रात्यूं रोज-रोज व्यावचियो, गणेश गंगा न्हावै।
घंटा भर आटे ज्यूं गूंदै, बाबो तो न अघावै॥ मगन पृ. ६९

कहीं कहीं कवि ने अमूर्त्त उपमेय को मूर्त्त उपमान से उपमित किया

जो संकल्प-विकल्पों के वश, काम-निवारण नहीं करे।
कैसे श्रमण धर्म का पालन? पग-पग जो अवसाद वरे॥
सम्बोध पृ. ११६

ग्रीष्म-काल में गर्मी, सर्दी, सहें शान्तमन ऋतु हेमन्त।
प्रतिसंलीन रहें वर्षा में, हैं समाधिमय वे ही सन्त॥
सम्बोध पृ. ११६

संयत समुचित जीवनचर्या, समुचित शयन जागरण हो।
सुप्रसन्न इन्द्रिय मन आत्मा, शुभ भावों का विकिरण हो॥
सम्बोध पृ. १२१

है—

- पति पुत्र विरह की जो तीखी असिधारा। परीक्षा पृ. १५०
- यदि स्वार्थों की पड़े न छाया, चढ़े न पक्षपात का पारा। परीक्षा पृ. १४३

कवि ने सागर, पर्वत, कमल, सूर्य आदि को विविध रूपों में उपमान के रूप में प्रस्तुत किया है। यहां सागर को विविध उपमान के रूप में प्रकट करने वाले कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं, जो उनकी विलक्षण प्रतिभा-वैशिष्ट्य को प्रकट करने वाले हैं—

- संघ रत्नों का समंदर। नंदन ३४
- हृदय-सागर में हर्ष तरंग। नंदन ८२
- अगम उदधि तुम युग आगम थे। नंदन ५७
- ओ मन अगम्य अपरम्पार पारावार है।
  उठै संकल्पां विकल्पां रा ज्वार है॥ सुधा पृ. ६३
- भीड़ पारावार की ज्यों, उमड़ती ही जा रही। परीक्षा पृ. १५६
- तो समता सागर लहराया। नंदन पृ. ३१
- प्रामाणिक बनकर ही, संकट-सागर तर सकते हैं। अणु पृ. १५
- श्रद्धा भरा समंदर देखो, गण के आंगण में लहराए। शासन पृ. ७०
- ज्वार विविध विचार के, हृदयाब्धि में आने लगे।
  लहर बनकर ओष्ठ-तट से, शब्द टकराने लगे॥ परीक्षा पृ. ३२
- ज्ञान दीप कर में लेकर, तम सागर के पार उतर। नंदन पृ. ४०
- सागर में लहरें ज्यों, अहंभावना स्वयं विलय हो। नंदन पृ. ५२
- यह गण समुद्र कहलाए,
  छोटी-बड़ी सब नौकाओं को, मंजिल तक पहुंचाए॥ नंदन पृ. ४९
- मघवा-सा युवाचार्यवर, दुर्लभतर सुकृत समंदर॥ शासन पृ. ५८
- आंखों से गिरते वाष्पबिन्दु, गहरे चिन्ताम्बुधि में पैठी। परीक्षा पृ. १२४
- संघ अतल अमाप्य सिंधु, व्यक्ति तो है एक बिन्दु। नंदन ५६

---

१. प्रो. कृष्णदेव शर्मा ; महादेवी वर्मा की काव्य-साधना, पृ.१३८।
२. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ; साहित्य का मर्म, पृ. १७।
३. डॉ. नीलम कालड़ा ; भवानीप्रसाद मिश्र की काव्य-भाषा का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन, पृ. ६७।
४. एस. के पद्मावती ; कवि दिनकर कृतित्व एवं व्यक्तित्व, पृ. २६८।
५. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली भाग ७, पृ. १३६।

उपमा और रूपक के लिए नदी को भी विविध रूपों में प्रस्तुति दी गई है—

- विविध प्रयोगों की सरिता में, सबने जी भर स्नान किया। नंदन पृ. ९
- समर्पण की पुण्य सरिता में नहाएं हम। नंदन पृ. १७
- और असफलता निराशा की नदी में डूबकर। अणु पृ. ३२
- त्याग की पावन प्रतिष्ठा, सत्य-सरिता में नहा। परीक्षा पृ. २१
- मर्यादा-सरिता में कैसे, कल्लोलित हृदयाब्धि? नंदन पृ. ५३
- क्यूं अशुभोदय, नदी उफणगी। सहिष्णुता पृ. ७

एक ही वस्तु को अनेक उपमाओं से उपमित करना कविकर्म का कौशल है। आचार्य तुलसी ने अपनी बहुश्रुतता से भिन्न-भिन्न स्थानों पर एक ही चीज को अनेक उपमाओं से उपमित किया है। इससे उनके काव्य में विविधता प्रकट हो गयी है। संघ के प्रति अनेक उपमाओं का प्रयोग द्रष्टव्य है—

- संघ सुरंगा बरगद। नंदन पृ. २१
- संघ हिमालय के चरणों में, 'तुलसी' शीष झुकाएं। नंदन पृ. २५
- शासन है नंदनवन, हंसता-खिलता सा उपवन। नंदन पृ. ४०

इसी प्रकार मन को उन्होंने बंदर, तोता, भंवरा, सागर, तेज हवा, चंचल घोड़ा, बिना पंख का पंछी तथा बिना अंकुश का हाथी आदि उपमाओं से उपमित किया है। बिना पंख के पक्षी की उपमा का सौन्दर्य राजस्थानी भाषा में निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

लम्बी उड़ाण भरै, पंखी बेपांख ओ,
दूर-दूर झांख झांखै, के है बेआंख ओ,
पैरां बिना ओ भटकोल॥ सुधा पृ. ६३

कवि ने कहीं-कहीं एक उपमेय पर अनेक उपमानों का आरोपण भी किया है पर इससे भाव और रस की कहीं हानि नहीं हुई है। गुरु की महत्ता को अनेक उपमानों से रूपायित करते हुए कवि कहते हैं—

बूढ़ा रो जोबन, आंधां री आंख्यां, पंगू रा पांव गुरु।
रोगी रो स्वास्थ्य, मूक वाणी, गिरतां उठणै रो दांव गुरु॥

---

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-७, पृ. १०९।

२. डॉ. के. जी. कदम ; कवि श्री शिवमंगलसिंह सुमन और उनका काव्य, पृ. ३४२।

डालिम पृ ६१

थावच्चापुत्र के शरीर की कोमलता को प्रकट करने के लिए कवि ने अनेक उपमान प्रस्तुत कर दिए हैं—

कुसुम कली सो कोमल मुखमल, मुलमुल जिसो मुलायम। मैं तिरूं १८

गुरु और शिष्य के तादात्म्य को प्रकट करने वाली ये दोनों उपमाएं कितनी सटीक बन पड़ी हैं—

चातक-घन चेतन-तन सम रहि, कालू-गुरु इकतारी। कालू भा. १ पृ. ७२

राम और लव-कुश के मिलन की प्रसन्नता को प्राकृतिक उपमा से उपमित करते हुए कवि कहते हैं—

पुत्र पिता से, पिता पुत्र से, परम मुदित-मन मिलते हैं।
शशि को देख सिंधु रवि दर्शन से पंकज ज्यों खिलते हैं॥ परीक्षा पृ. १४२

कवि ने परिस्थितियों एवं संघर्षों की भट्टी में जलने वाले को तो स्वर्ण की उपमा से उपमित किया ही है, साथ ही सत्य की प्राप्ति में आने वाले संघर्षों को भी स्वर्ण से उपमित किया है—

स्वर्ण विघर्षण से ज्यों सत्य, निखरता संघर्षों के द्वारा। शासन पृ. ४७

अहंकार रूपी हाथी को विविध उपमाओं से उपमित करने में कवि का प्रतिभा-वैशिष्ट्य दर्शनीय है—

ओ गज मतवालो,
दुर्जन कै दिल सो कालो,
है मुक्ति महल रो तालो॥ चंदन पृ. २६

अपने प्रतिभा वैशिष्ट्य से कवि ने एक ही व्यक्तित्व में दो विरोधी गुणों को एक पद्य में दो उपमानों से प्रकट कर दिया है—

चढ़ते सूरज-सी कठोरता, अनुशासन में पाई।
नई सुबह-सी मोहक ऋजुता, व्यवहारों में छाई॥ नंदन पृ. १३०

रूपक

जब उपमेय और उपमान में केवल सादृश्य ही नहीं अपितु दोनों को एक बना दिया जाता है, तब रूपक अलंकार होता है। रूपक अलंकार के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- पल-पल रटन लगावै, ओ म्हांरो मन कीर। शासन पृ. २७
- अंधियारी रातों में मर्यादा दीप है।
  लहराते सागर में असंदीन द्वीप है॥ नंदन पृ. ३५

वनवास होने पर सीता की करुण स्थिति का चित्रण करने वाले हर रूपक से उसके हृदय की पीड़ा साकार हो रही है—

ममता की गांठें शिथिल हुईं, भावों की गगरी फूट गई,
निर्यामक का मुंह फिरते ही, पतवार हाथ से छूट गई।
सीता की सरिता सूख गई, सपनों की रजनी रूठ गई,
अब क्या जीने में जीना है, जब आकांक्षाएं टूट गईं।
सब गतरस किया कराया है, न्यारी काया से छाया है॥ परीक्षा पृ. ८१, ८२

रूपक के माध्यम से आत्मोपलब्धि की प्रक्रिया प्रस्तुत करते हुए आचार्य तुलसी कहते हैं—

तपे जमे मन्थान से, मन्थन फिर नवनीत।
यही सयाने! समझ ले, आत्ममिलन की रीत॥ सम्बोध पृ. १२८

उत्प्रेक्षा

उपमेय में उपमान के साथ जो सम्भावना व्यक्त की जाती है, वहां उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। काव्य भाषा में उपमा से उत्प्रेक्षा अलंकार का अधिक महत्त्व है क्योंकि उत्पेक्षा के प्रयोग में कवि कल्पना-लोक में विचरण कर सकता है। आचार्य तुलसी ने उत्प्रेक्षा के प्रयोग में भावों की प्रेषणीयता, प्रभावोत्पादकता, विशदता और रमणीयता का विशेष ध्यान रखा है। उत्प्रेक्षा में कवि का कल्पना-वैभव मन को आकृष्ट करने वाला है—

- हुआ प्रकोप महामारी का, अकस्मात् उस पुर में।
  मानो चला प्रचण्ड वेग से, प्रलय-पवन घर-घर में॥ पानी पृ. २८
- दुर्बलता ने मानवता की, आत्म-शक्ति को गुप्त किया।
  मानो पारे ने सोने के, सही रूप को लुप्त किया॥ अणु पृ. २८
- भौतिकता की चकाचौंध में, मानव-मन चुंधियाया है।
  ज्ञान-सूर्य के आगे मानो, काला बादल छाया है॥ अणु पृ. २८
- भीड़ उमड़ी जा रही, मानो कि पारावार है। भरत पृ. २६

---

१. रघुनंदन शास्त्री ; हिन्दी छंद प्रकाश, पृ. ३९।

- खधबध खधबध कर शिर सीझै, जाणै खीचड़ो। चंदन पृ. १४४
- ऊपर से आ गिरते निर्झर, झरते करते मुखरित गिरिवर।
  टकरा-टकरा वे रहे उछल, दिखलाते मानो अपना बल॥ भरत पृ. ६५

आचार्य आषाढ़भूति मुनि वेश में अकृत्य आचरण कर लेते हैं। वे धन एवं स्वर्णाभूषणों के लिए छह बच्चों की नृशंस हत्या कर देते हैं, तब जन-समुदाय उनके कृत्य को देखकर आश्चर्य मिश्रित शब्दों में उत्प्रेक्षा की झड़ी सी लगा देता है। कवि द्वारा वर्णित कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

- अमृत से हा! मृत्यु हो गई, दिनकर से अन्धेर,
  शशी से बरसी आग, सलिल से हुआ राख का ढ़ेर।
  खाने लगी बाड़ भी फल, लोकोक्ति बनी साकार॥
  सीमा तोड़ सिन्धु अवनी पर, करता है उत्पात,
  माता भी डायन बन करती, है बच्चों की घात।
  जीवन-दायक, जीवन द्वारा जीवन का संहार॥ पानी पृ. ९०,९१

उपर्युक्त विरोधमूलक कथनों से भावों का उत्कर्ष तथा कथ्य की प्रभान्विति बढ़ गई है। अनुप्रास के साथ उत्प्रेक्षा का चमत्कार और शब्द-चयन नाद-सौन्दर्य ही नहीं, कवि-कौशल को भी प्रकट करने वाला है—

भूषण-भूषित अंग अदूषित, झूसित मनु शुभ झाण।
सद्गुण-सदन मदन-मद मूषित, शम-रस-पूषित जाण॥ कालू भा. १ पृ. ६७

निम्न पद्य की प्रथम पंक्ति में अनुप्रास, दूसरी में उत्प्रेक्षा तथा तीसरी में विचलन का प्रयोग द्रष्टव्य है—

कर सिर धर देवै सीखड़ली, मीठी मनु शाकर सूंखडली।
श्रुति सुणतां पावै प्रीतड़ली॥ कालू भा. १ पृ. ६९

कवि ने गुरु से प्राप्त स्नेहमय प्रसंगों को भी उत्प्रेक्षा के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। शीतऋतु में एक दिन कवि के दीक्षा गुरु कालूगणी को पंचम आचार्य मघवागणी ने अपना ऊनी वस्त्र उनको ओढ़ा दिया। कवि कल्पना करते हैं कि मानो उसी दिन गुरु ने उन्हें युवाचार्य पद की निशानी दे दी—

गुरुदेव द्रवित करुणा आणी, निज गाती शिशु-तन पर ठाणी।
दीन्हीं मनु युवपद सहनाणी॥ कालू भा. १ पृ. ७०

मघवागणी चलते समय मुनि कालू के कंधे का सहारा लेकर चलते थे। उस प्रसंग के लिए कवि कल्पना करते हैं कि मानो गुरु इस बहाने उनके कंधों पर शासन का भार रोप रहे थे—

कर कालू स्कन्धे आरोपै, गुरु इत उत टहलत हद ओपै,
मनु शासन भार भुजा रोपै॥ कालू भा. १ पृ. ६९

उपमान के रूप में ऐतिहासिक पात्र मीरा को प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

मीठी वाणी मीठियो रे, बोलै तोलै हीरां स्यूं।
डरै न तिल भर, भर परिषद में, उत्तर देवै धीरां स्यूं।
मनु लियो मनोबल मीरां स्यूं॥ कालू भा. २ पृ. १३१

कायर सैनिकों के लिए कवि नये उपमान का प्रयोग करते हुए कहते हैं—

सेना है या लाए हो, भाड़े के पकड़-पकड़ रंगरूट।
केवल धावन ही सीखे, ये मानो रेगिस्तानी ऊंट॥ परीक्षा पृ. १२२

सीता के अग्निकुंड में प्रवेश करते ही वह स्थान सरोवर के रूप में परिणत हो गया। उस सरोवर पर स्वर्णिम सिंहासन पर बैठी सीता कैसी लग रही है, इस प्रसंग में उत्प्रेक्षा के रूप में कवि ने विविध उपमानों की झड़ी लगा दी है—

मणि-मंडित स्वर्णिम सिंहासन, कर रहा सूर्य-सा उद्भासन,
है समासीन उस पर सीता, सुखपूर्वक साधे पद्मासन।
मानो मराल पर सरस्वती, उत्पल पर कमला कलावती,
सद्ज्ञानोपरि सम्यग्-श्रद्धा, त्यों हुई सुशोभित महासती॥
परीक्षा पृ. १६१, १६२

अर्थान्तरन्यास

जहां सामान्य का विशेष से तथा विशेष का सामान्य से समर्थन होता है, वहां अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। अर्थान्तरन्यास के प्रयोग से आचार्य तुलसी के काव्य में उक्ति वैचित्र्य, वेधकता एवं प्रभान्विति की वृद्धि हो गयी है। अर्थान्तरन्यास अलंकार के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- नहीं कृत्याकृत्य कुछ भी, सोच सकता भृत्य है,

जो कहे स्वामी वही बस, कृत्य उसका नित्य है।
दृष्टि के विपरीत उसका, बोलना भी पाप है,
दासता मनुजत्व का, सबसे बड़ा अभिशाप है। परीक्षा पृ. ५३

- कितने श्रम से घड़ा बने, यह कुंभकार ही जानता,
  घायल की पीड़ा को कोई, घायल ही पहचानता। पानी, पृ. २९

भाषा, भाव और लय की अभिव्यक्ति में सहायक आचार्य तुलसी का अलंकार-प्रयोग बाह्य और आंतरिक—दोनों समृद्धि में सहायक है। कहा जा सकता है कि अलंकार और सौन्दर्य दोनों का मणिकाञ्चन योग उनके साहित्य में मिलता है। अलंकार-प्रयोग से उनकी अभिव्यक्ति में स्पष्टता, प्रेषणीयता, भावों में प्रभाव तथा भाषा में एक विशेष सौन्दर्य प्रकट हो गया है। उनका अलंकार-विधान गुण और भावों को तीव्र करने के लिए प्रयुक्त हुआ है, केवल चमत्कार-प्रदर्शन के लिए नहीं।

छंद-विधान

अज्ञेय के अनुसार छंद काव्य-भाषा की आंख है। सामान्य भाषा स्वयं को केवल सुनकर काम चलाती है पर काव्यभाषा स्वयं को देख भी लेती है। पाश्चात्त्य समीक्षक लैसल्स एबर क्राम्बी लयात्मक आदर्श की निश्चित आवृत्ति को छंद कहते हैं।

काव्य को मधुर, रमणीय एवं वेगपूर्ण बनाने में छंद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्य में छंद एकता और सामंजस्य के पर्याय हैं, बंधन या विरोध के सूचक नहीं। छंदों में बंधने पर शब्दों के स्वर एक निश्चित स्थान पर आकर बैठ जाते हैं। जिस प्रकार अनुभूति और अभिव्यक्ति एक दूसरे से अभिन्न है, उसी प्रकार छंद को भी कविता से अलग नहीं देखा जा सकता है।''[१] छंद-योजना के बिना कोई भी रचना सच्चे अर्थ में काव्य की अभिधा नहीं पा सकती। विद्वानों के अनुसार हृदयगत भाव को सहज मार्दव और आवश्यक ओज के साथ प्रस्तुत करने में छंद का बहुत बड़ा हाथ है।

कविता की भाषा छंद पर आरूढ़ होकर गति एवं आरोह-अवरोह करती है। छंद के भीतर की गति काव्य को प्रसादक और मोहक बना देती है।''[२] सुमित्रानंदन पंत के अनुसार कविता प्राणों का संगीत है तो छंद हृत्कम्पन।

कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान होता है। मुक्त कविता की अपेक्षा छंदोबद्ध एवं लयबद्ध कविता का आनंद अधिक होता है क्योंकि उसमें काव्यकला और संगीतकला दोनों ही एकरस होकर आत्मसात् हो जाती हैं। छंदों का प्रयोग काव्य में प्रेषणीयता को बढ़ाता है अत: छंद काव्यभाषा का वह संरचनात्मक सहचर है, जो उसे सस्वरता में ढालकर गेय बनाता है।''[३]

छंद के बारे में कविवर दिनकर की टिप्पणी पठनीय है—'कविता और गद्य के बीच की विभाजक रेखा छंद है। छंद के कारण काव्य-चेतना दैनिक जीवन के धरातल से जरा ऊपर उठ जाती है····' छंद कविता में अर्थ-जागृति का वातावरण उत्पन्न करते हैं।''[४] हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार छंद मनुष्य को देवता बनाने का संकल्प है।''[५] उनके अनुसार छंद द्वारा साधारण बात में भी एक ऐसी गति आ जाती है, जो मनुष्य के चित्त की अनुवर्तिनी हो उठती है।''[१] द्विवेदीजी के उक्त कथन से स्पष्ट है कि भाषा का प्रवाह धर्म छंद है। छंद के माध्यम से ही चित्त के काव्यगत अनुभव या वेग को कवि अनेक चित्तों में संचरित करता है। छंद रहित काव्य में कल्पना और बिम्ब का तो ग्रहण हो सकता है, पर आवेश नहीं होता। डॉ. के.जी. कदम के अनुसार छंद काव्य के प्रभाव को भावनाग्राही और संवेदनात्मक बनाता है।''[२] कहा जा सकता है कि छंद कविता के प्रति पाठक के आकर्षण को बांधे रखता है अत: यह काव्यकला का अनिवार्य उपकरण कहा जा सकता है।

दिनकर के अनुसार जब छंद काव्य के भावों के अनुकूल रूप धारण करके आते हैं, तभी वे सार्थक प्रतीक होते हैं। गुरुदेव तुलसी भावानुकूल छंदों के प्रयोग करने में सिद्धहस्त थे इसलिए उनके द्वारा प्रयुक्त छंदों में भावों की गति के अनुकूल चलने की शक्ति है। उन्होंने अपने काव्य-साहित्य में विविध भावों के अनुसार अनेक नवीन एवं पारम्परिक छंदों का सुघड़ प्रयोग किया है। छंदों की विविधता से उनके काव्य में सौन्दर्य और नवीनता का प्रस्फुटन हो गया है। विषयानुकूल छंद की परिधि में बंधा गुरुदेव तुलसी का काव्य जीवन से सम्बद्ध अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों की कलात्मक प्रस्तुति करता है।

छंद काव्य का परिधान है अत: यह काव्य का बाह्य सौन्दर्य बढ़ाता है। पूज्य गुरुदेव ने काव्य-रचना में इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि बाह्य

---

१. उदयभानु सिंह ; तुलसी, पृ. २३८ ।

सौन्दर्य के साथ काव्य के आंतरिक सौन्दर्य को ओझल न किया जाए क्योंकि छंद, स्वर एवं अनुप्रास की शक्ति बाह्य है लेकिन काव्य का मूल उद्देश्य आनंद का अतिरेक है। आधुनिक कवियों की यह भ्रमपूर्ण मान्यता है कि पुराने छंदों में नवीन जीवन का उल्लास व्यक्त नहीं किया जा सकता। आचार्य तुलसी ने पुराने छंदों का प्रयोग करके इस धारणा को निर्मूल करने का प्रयत्न किया है।

छंदों में रमणीयता लाने के लिए लय की समष्टि का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरुदेव द्वारा प्रयुक्त अधिकांश छंद लय, नाद और संगीत का सर्जन करने वाले हैं अत: हजारों व्यक्ति एक साथ उनके काव्य का सहगान कर सकते हैं। उनके छंदों में गति, लय और ध्वनि का अद्वितीय संगम है।

गुरुदेव तुलसी ने हिन्दी में मुख्यत: दोहा, सोरठा, चौपाई, रामायण, सवैया, गीतिका, हरिगीतिका, लावणी, छप्पय, सहनाणी आदि छंदों का प्रयोग किया है। फिर भी छंदों को लेकर उनके मन में कोई पकड़ या पूर्वाग्रह नहीं था। उन्होंने ऐसे अनेक स्वतंत्र दोहों एवं सोरठों की रचना की, जो तीर की भांति श्रोताओं के मन में चुभते हैं। उनके दोहे एवं सोरठे सरलता, स्पष्टता, मधुरता एवं प्रभावकता की दृष्टि से बेजोड़ हैं। चरित काव्य में उन्होंने एक प्रसंग के अंत में तथा प्रारम्भ में दोहे छंद का बहुलता से प्रयोग किया है। कुछ दोहे एवं सोरठे कबीर और रहीम की स्मृति दिलाने वाले हैं—

- आग नहीं सहते कभी, मोम लाख या काठ।
  मिट्टी पकती आंच में, त्यों मुनि सहते डांट॥ सम्बोध पृ. ३९
- जब-जब बनता मन अमन, होती चित्त-समाधि।
  नामशेष होती स्वयं, आधि व्याधि उपाधि॥ आत्मा पृ. ४७
- पर में जो आत्मीय मति वही दु:ख का मूल।
  विस्मृत है निज भाव की, यह कैसा वातूल॥ आत्मा पृ. ३८

गुरुदेव तुलसी ने पारम्परिक एवं मात्रिक छंदों का प्रयोग अधिक किया है लेकिन जहां स्वतंत्र विषय का वर्णन है, वहां भावों के उतार-चढ़ाव को प्रस्तुत करने हेतु मुक्त छंद में भी अपनी बात प्रस्तुत की है। उनके मुक्तछंद भी गेय एवं तुकान्त हैं। मुक्तक काव्य की निम्न पंक्तियां सबको सचेत करने की

अद्भुत सामर्थ्य रखने वाली हैं—

छोटी-छोटी मर्यादा पर लापरवाही,
धीरे-धीरे बढ़ती ही जाएगी खाई।
प्रतिस्रोत का पथ जो हमने अपनाया है,
खबरदार! जो सुविधावाद पनप पाया है॥ सम्बोध पृ. १२४

जीवन के सान्ध्य काल में रची 'अर्हद्वाणी' में महावीर-वाणी का अनुवाद है। वह छंदमुक्त और प्रायः अतुकान्त रचना है। अर्हद् वाणी के दो उदाहरण आज के कवियों को भी नव्य प्रेरणा देने वाले हैं—

◆ समर अगर करना हो कर तू,
अंतरंग अरि को संहर तू,
दुर्लभ समर योग्य सामग्री,
पौर-पौर में पौरुष भर तू,
बनना है उदग्र अभियानी,
आयारो की अर्हत् वाणी॥ आत्मा पृ. २९

आचार्य तुलसी की मान्यता थी कि छंदों के माध्यम से काव्य को लम्बे समय तक स्मृति में रखा जा सकता है इसीलिए उन्होंने अध्यात्म, व्यवहार और आचार का प्रशिक्षण देने के लिए अनेक छोटी-छोटी काव्य कृतियों की रचना की।

पंडित रघुनंदन शास्त्री का मंतव्य है कि छोटी-मोटी ध्वनियों का तोल-माप में बराबर होना छंद रचना का मूल आधार है। नियमों में बंधी ध्वनियां ही लय उत्पन्न कर सकती हैं।''[1] गुरुदेव तुलसी ने छंदशास्त्र का व्यवस्थित अध्ययन नहीं किया लेकिन उनके काव्य को पढ़कर कोई उसमें कहीं भी छंदभंग की त्रुटि नहीं निकाल सकता। मात्रा की कमी के कारण काव्य में छंदभंग होना पूज्य गुरुदेव को अखरता था। इस दृष्टि से तुलसी और सूर को वे अपना आदर्श मानते थे। वे अनेक बार कहते थे कि छंदभंग मुझे कानों में शूल की भांति खटकता है। जहां कहीं भी छंदभंग की संभावना लगती है, जब तक उसमें परिवर्तन नहीं करता हूं, मुझे चैन नहीं पड़ता।''

शब्दों और छंदों पर आचार्य तुलसी का पूरा अधिकार था। शब्द उनकी कलम की नोक पर थिरकते थे तथा छंद उसकी गति पर ताल देते थे।

सटीक छंदों के प्रयोग से उनके काव्य को पढ़ते हुए ऐसा लगता है मानो निर्जीव शब्दों में कलरव भरकर उन्हें सजीव बना दिया हो।

छंदों का संबंध विभिन्न मनोभावों से होता है। हर एक भाव को किसी एक ही छंद में नहीं बांधा जा सकता। कोमल भावों को अभिव्यक्त करने के लिए जिन छंदों का उपयोग किया जाता है, कठोर भावों के लिए वे उपयुक्त नहीं हो सकते क्योंकि छंदों की गति के आधार पर भावों का प्रकाशन होता है। आचार्य तुलसी ने छंदों का चुनाव भाव एवं रस के आधार पर किया है। वीररस में सहनाणी छंद का प्रयोग चमत्कार की सृष्टि कर रहा है—

कर रहीं पत्नियां विदा उन्हें, सोत्साहित प्रोत्साहित करतीं,
जाओ पौरुष का परिचय दो, यह आशा रखती मां धरती।
वीरों की वीर नारियां यह, कहलाने का सौभाग्य मिले,
सुन विजय-दुंदुभी गौरव से, हम फूलें मानस-कमल खिले॥ भरत पृ. ८२

कवि सुमित्रानंदन पंत के अनुसार छंद का राग भाषा के तारों पर झूलता है। जहां दोनों में मैत्री नहीं रहती, वहां छंद अपना स्वर खो देता है। आचार्य तुलसी के छंदों की शब्द-योजना और संगीत तत्त्व के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- दिया धर्म को मूर्त्त रूप, जिसने अपने जीवन से।
  तन से, मन से और वचन से, निज प्राणों के धन से॥ नंदन पृ. १५३
- नहीं किसी से मोह द्रोह का, बन्धन जिसने तोड़ा।
  सत्यशोध के लिए सभी, सम्बन्धों से मुंह मोड़ा॥ नंदन पृ. १५३
- चौक चोहटा मध्य बाजार, गली-गली घर-घर गुलजार।
  एक हि चरचा एक हि बात, अपणी नगरी रा पितु मात॥ चंदन पृ. ८५

भाषा में प्रवाह तथा छंदों की गति और सामंजस्य के लिए उन्होंने शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है। कहीं शब्दों को संक्षिप्त तथा कहीं उसका कलेवर बढ़ाया भी है—

- अहा! अभिनव उच्छव छाए तेरापंथान में। नंदन पृ. १९७
- चम्पक चतुराण अवसर रा जाण। मां पृ. २१
- सुणतां ही मानो शीतलताई छाई। कालू भा. १ पृ. २११
- भैक्षव गण उपवन-कुसुमन को, परिमल प्रबल प्रसारी। कालू भा. १ पृ. ७१

- योगक्षेम वरस री गतियां विधियां सहज सयाणी। मैं तिरूं पृ. ९८

यहां तेरापंथ के लिए तेरापंथान, चतुर शब्द के स्थान पर राजस्थानी प्रभाव से चतुराण, जानकार को संक्षिप्त करके जाण, कुसुम के स्थान पर कुसुमन तथा गतिविधियां के स्थान पर गतियां, विधियां शब्द का प्रयोग हुआ है।

छंदानुरोध के कारण वर्ण के द्वित्व, ह्रस्वीकरण एवं दीर्घीकरण के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं—

द्वित्व

- अबला उसे बनाकर रक्खा अधिकारों में। परीक्षा पृ. ६७
- मार्‌यो कनिष्ठ कम्मर तक धरा धस्यो है। चंदन पृ. १७
- ओलम्भो जद देवता रे, दिल में बड़ो दरद्द।
  संतां थे गलती करो तो, पड़ै सुणाणो सद्द॥ माणक पृ. ५०
- वैष्णव-अनुयायी पण हा सुल्लभबोधी। डालिम पृ. १७७
- नीचे उत्तरकर लिटकर लीक मिटाई।
  फिर नाग-नागणी सरर सरर गति पाई॥ डालिम पृ. १८४
- गिरि गह्वर में गूंजतो मनु, जब्बर बब्बर सीह। कालू भा. २ पृ. १४२

पूछे या पूछे नहीं, करें भूल स्वीकार।
सधे अभय की साधना, हो छलना परिहार॥ सम्बोध पृ. ३९

अपने प्रति गुरु के प्रति, और लक्ष्य के हेतु।
सहज समर्पण भाव है, स्वयं सिद्धि का सेतु॥ सम्बोध पृ. ४०

श्रम है जीवन श्रमण का, छोड़ें सुविधावाद।
पौरुष की बल-वीर्य की, धार बहे अविवाद॥ सम्बोध पृ.
४ ०

पापभीरुता सरलता, है मुनि की पहचान।
जागरूक पग-पग रहें, भूलें कभी न भान॥ सम्बोध, पृ. ४०

दीर्घीकरण

- आंदोलन में ऊतरी, अलग-अलग कर ग्रूप।
  कालम का कालम भर्या, अखबारां में न्यूज॥ मां पृ. ३२
- दी दीक्षा री अनुमती रे, छाती वज्र कठोर।
  साहस सींहणी मावड़ी रे, दी कालेजा कोर॥
- सरस्वती सो रूप अनूपम, मिलै न धरती आभां। शासन पृ. १०७
- है संघ संघ व्यक्ती, आखिर व्यक्ती है।
  नहिं केन्द्र छोड़ किण ही पर अनुरक्ती है॥ डालिम पृ. १९१
- ओ तरुण कवी रघुनंदन है,
  वाग्देवी रो अभिनंदन है,
  रूं रूं प्रकाश रो स्पंदन है॥ कालू भा. १ पृ. १४४

ह्रस्वीकरण

- पलक-पलक साझी सहज, झुक झुक सेव सदीव। डालिम पृ. २०९
- देखो द्वन्द्व जगत् में क्यूं? जग लग्यो कषाय ममत में यूं।
  कालू भा. १ पृ. १९५
- विकसित चित आमोद में, खिलि पदम-पांख सी आंख।
  कालू भा. १ पृ. ८२
- ऊठण बैठण सूवण री शक्ति रही ना। डालिम पृ. १९५

छंदानुरोध, उच्चारण-लाघव या तुक के लिए कहीं-कहीं अतिरिक्त स्वरागम तथा व्यञ्जन या स्वर के लोप या ह्रस्वीकरण के उदाहरण भी मिलते हैं—

- साधेस्यां प्रभु रो पंथ जी। शासन पृ. ४९
- किन्तु क्रुद्ध कृतान्त सा, वह वीर बढ़ता जा रहा।
  बढ़ रही प्रलयाग्नि मानो, आज करने को स्वहा॥ भरत पृ. ८९
- इतर मतालम्बी कइ दम्भी, अवलम्बी दिल हांसी। कालू भा. १ पृ. १६०

अनुप्रास और छंदानुरोध के लिए उपसर्ग युक्त शब्दों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ है—सुप्रसन्न, सुस्वर, सुशोभित, प्रगति आदि।

संस्कृत छंदों में हिन्दी पद्यों की रचना कवि के काव्य का विशिष्ट

---

१. आधुनिक कवि, भाग-५, पृ. १२।

२. डॉ. यतीन्द्र तिवारी ; दिनकर की काव्य भाषा, पृ. ३६१, ३६२।

वैशिष्ट्य है। कवि ने नवीनता लाने के लिए अनेक स्थलों पर ऐसे प्रयोग किए हैं, जिससे भाषा में नाद एवं गति पैदा हो गयी है। कवि ने द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, भुंजगप्रयाति, दुर्मिल एवं शार्दूलविक्रीडित आदि संस्कृत के छंदों का हिन्दी में प्रयोग किया है। यहां शिखरिणी और उपजाति छंद में कवि अपने गुरु के साथ बिताए समय की स्मृतियां ताजा कर रहे हैं—

- अरे रे! बै रातां, विगत दिन बातां सुमरतां,
  भरीजै है छाती, विरह दुःख बाती उभरतां।
  कठै बै श्रीकालू, वरद कर म्हांरै शिर धर्‌यो,
  मनै पाल्यो पोस्यो, मधु मधुर शिक्षामृत झर्‌यो॥ मगन पृ. १६
- न आंख झांक्यो, बरसां रह्यो मैं, सानंदसेवी गुरु छत्रछाया।
  न गर्म में लू, नहिं सी सियाले, सारो जमारो, सुख स्यूं बितायो॥
  मगन पृ. १६

म्हांरै सम्मुख एक बार फिरस्यूं, सारो नजारो दिखा,
सारी सारण-वारणा गुरुवरु! मोनै दुबारा सिखा।
ज्यूं त्यूं एकरस्यूं वस्यूं हृदय में, मैं आंख स्यूं झांकल्यूं,
तो म्हांरै मन रा मनोरथ फलै, साक्षात् स्वयं आंकल्यूं॥ मगन पृ. १७

तुक-निर्वाह एवं छंद के लिए उन्होंने कहीं नए शब्दों को गढ़ा है तो कहीं संस्कृत का प्राकृतीकरण भी किया है—

क्यूं है बुलाऊ माऊ? चंदन पृ. ११७

यहां माता के लिए 'माऊ' शब्द का प्रयोग लीक से हटकर है।

हलको मन है मांहरो रे, अन्तर बाह्य प्रसन्न।
उचराया महाव्रत बली रे, कालू विनय अनन्न॥ डालिम पृ. २०७

यहां 'प्रसन्न' शब्द के साथ तुक मिलाने के लिए उत्तरार्ध में 'अनन्य' शब्द के स्थान पर प्राकृत के 'अनन्न' शब्द का प्रयोग किया गया है।

तुक-निर्वाह एवं छंदानुरोध के लिए कवि ने अनेक स्थलों पर लिंग-परिवर्तन भी किया है—

जय हे! जय जीवनदाता,
समभाव सुधा का सिंचन दो, अमिताभ अहिंसा माता। अणु पृ. ११५

यहां स्त्रीलिंग में प्रयुक्त अहिंसा का पुल्लिंग में प्रयोग हुआ है।

कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी का छंदविधान भाव एवं लय से परिपूर्ण है। छंदों की गति और प्रवाह असाधारण है। उन्होंने छंद एवं गीत के

लय–चयन में अत्यन्त सूझ–बूझ को काम में लिया है।

पात्र एवं चरित्र–चित्रण

काव्य में घटना को व्यक्त करने के लिए पात्रों की आवश्यकता होती है। बिना पात्र के घटना को प्रस्तुति नहीं दी जा सकती। कवि समाज में रहने वाले विविध पात्रों का सृजन करता है। आचार्य तुलसी ने पात्रों का चयन बहुत सोच–समझकर जागरूकता के साथ किया है। लगभग सभी पात्र जीवन की किसी समस्या का व्यावहारिक हल प्रस्तुत करते हुए मिलते हैं।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार जीवन्त पात्र केवल श्वास–प्रश्वास ही नहीं लेते, सिर्फ हमारे भांति नाना प्रकार की संवेदनाओं का ही अनुभव नहीं करते बल्कि वे आगे बढ़ते हैं, पीछे हटते हैं। अपनी उदात्त वाणी और स्फूर्तिप्रद क्रियाओं से हमारे अंदर ऊपर उठने का उत्साह भरते हैं। हमें साथ ले चलते हैं, उमंगते हैं और सन्मार्ग पर चलने में जो विघ्न–बाधाएं आती हैं, उन्हें जीतने का प्रयास करते हैं।''[१]

प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द कहते हैं कि कल्पना से गढ़े पात्रों में हमारा विश्वास नहीं है। वे पाठक को इतना प्रभावित नहीं करते। लेखक को अनुभव के आधार पर उन पात्रों की सृष्टि करनी चाहिए, जहां वह पात्रों की जबान से स्वयं बोले। मानव–मन की विकृतियों को उभारने में उन्होंने पात्रों का चयन बहुत जागरूकता से किया है। अपने काव्य में उन्होंने उन्हीं पात्रों का चयन किया, जो प्रलोभन के आगे सिर न झुकाएं। जो वासना के पंजे में न फंसकर उसका मार्गान्तरीकरण करे तथा कर्त्तव्य के वेदी पर सहर्ष बलिदान होने की भावना रखे। कहीं कहीं निषेधात्मक भाव वाले पात्रों का चयन एक विशेष उद्देश्य से हुआ है। उन्होंने तलहटी से शिखर तक पहुंचने वाले चरित्रों को अधिक छुआ है। पात्रों के माध्यम से कवि ने मानव–मनोविज्ञान का गहराई से विश्लेषण किया है।

उनके पात्र ऐतिहासिक होते हुए भी युग को चेतना देने एवं उसे आगे बढ़ाने में सक्षम हैं। उन्होंने पात्रों के माध्यम से आदर्श का सृजन किया है। प्रत्येक पात्र अपने जैसा जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। कल्पना और अनुभूति के तीव्र आवेग से उन्होंने अपने पात्रों में नई गति का संचार कर दिया। आदर्श और यथार्थ की कसौटी पर यदि उनके चरित–काव्य के नायकों को कसा

जाए तो वे इन दोनों के समन्वित रूप प्रतीत होते हैं। लघु आख्यायिकाओं एवं चरित काव्यों में कवि ने नारी पात्रों का चयन प्रियतमा या शरीर के रूप में नहीं, प्रेरणास्रोत के रूप में अधिक किया हैं। फिर चाहें वह नागला हो या विजया, कुम्हारी हो या महासती चंदनबाला, भद्रा सेठाणी हो या मां वदनां।

चरित्र-चित्रण

काडवेल के अनुसार कविता मानव-मन की आदिम सौन्दर्यात्मक अनुभूति है। महान् साहित्यकार मानव स्वभाव का चित्रण अपनी अन्तर्दृष्टि से करते हैं इसीलिए उसमें जीवन्तता आ जाती है। वस्तुतः किसी भी आख्यान का प्राणतत्त्व चरित्र-चित्रण होता है।

अमृतलाल नागर ने एक बार अपने भाषण में कहा था कि अपने उपन्यास के पात्रों का जीवन्त चरित्र चित्रण करते समय मुझे परकाया प्रवेश जैसा दुष्कर कार्य करने में प्रवृत्त होना पड़ता है।'' चरित्र चित्रण में जितनी स्वाभाविकता और सजीवता रहती है, काव्य उतना ही रोचक और प्रेरक बनता है। अनुशास्ता होने के कारण आचार्य तुलसी को मानव प्रकृति का आश्चर्यजनक सूक्ष्म ज्ञान था इसलिए उनके काव्य में मनोभावों की अभिव्यंजना एवं चरित्र-चित्रण की अद्‌भुत विलक्षणता एवं स्वाभाविकता है। हर पात्र का चरित्र पूर्ण परिपाक के साथ प्रस्तुत हुआ है।

उन्होंने पात्रों का चरित्र एक रूप में न करके अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है, जैसे पात्र के आत्मचिंतन द्वारा, उसके कार्य द्वारा, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में पात्र की प्रतिक्रियाओं द्वारा तथा कथोपकथन या संवाद द्वारा। कहीं-कहीं मुख की मुद्राओं से भी पात्र का चरित्र प्रकट हुआ है।

मानव-मन के सुख-दुःख एवं संवेदना का जैसा सजीव चित्रण आचार्य तुलसी ने किया है, वह दुर्लभ है। आचार्य आषाढ़भूति की गहरी वेदना प्रकट करने में उनकी लेखनी सिद्धहस्त बन पड़ी है। उन्होंने पात्र के चरित्रों के माध्यम से जीवन की उदात्त कल्पना की सृष्टि की है तथा जीवन की समस्या का हल भी पात्रों के चरित्र चित्रण के माध्यम से किया है।

सप्तम आचार्य डालगणी की धीरता, गंभीरता और शालीनता को प्रकट करने वाली निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

सांवरी सूरत सांई, छोटो सो शरीर,
नान्हा नान्हा हाथ पांव, छाती रो वजीर,

भारी धीर है गंभीर, भव पीर हरै॥ डालिम पृ. ३३

आध्यात्मिक कवि होने के कारण कवि ने आत्मचिंतन के माध्यम से पात्र के चरित्र को अधिक उकेरा है, जिससे उसकी भावना सहज ही दूसरों में संप्रेषित हो सके। बाहुबलि के संन्यस्त होने पर भरत का आत्मविश्लेषण उसके नए रूप को प्रकट करता है। यहां उसके आत्मचिंतन के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

हाय! मुझे इस वक्र चक्र ने, बना दिया मतवाला,
मुंह फुलाकर बाहर बैठा, घुसा न आयुधशाला,
जी मैं आता है इसे न देखूं, टुकड़े-टुकड़े कर फेंकूं,
जिसने करवाया यह संहार है॥ भरत पृ. १४५

मैंने बनकर यों अभिमानी, कितनी की है अपनी हानि।
भाई से भी लड़ी लड़ाई, फिर भी रही वही अकड़ाई॥ भरत पृ. १५०

इसी प्रकार आचार्य भिक्षु के चरित्र की विशेषताओं का अंकन अनेक विशेषणों द्वारा हुआ है—

न्यायाधीश नियामक नीति-निपुण निर्मलता वाले।
निरतिचार निःशल्य निरामय, जग से बने निराले॥ नंदन पृ. ७८

आचार्य तुलसी के चरित्र-चित्रण में अन्तर्मुखता अधिक है। उन्होंने पात्र के बाह्य चरित्र को न उभारकर आंतरिक चरित्र को अधिक उभारा है। निम्न पंक्तियों में मां वदनां के चरित्र की कितनी सटीक एवं सजीव प्रस्तुति हुई है—

- छोटा-मोटा म्हां सगलां नै, परम पोख स्यूं पोख्या।
  सयण-सगां बायां बेट्यां नै, समै समै संतोख्या॥
  पाड़ोस्यां साथे प्यार जी,
  बोली में मृदु व्यवहार जी,
  खाणै पीणै रै खरचै में, कदे न की तंगाई हो॥ मां पृ. ७
- तीन घड़ी रै तड़कै उठती, करती फूस-बुहारी,
  पाणी-लूणी ईंधन-कण री, कर लेती तैयारी,
  नित-कर्म क्रिया अनिवार्य जी,
  करणीय न भूलै कार्य जी,
  नवकरवाली धूलधड़ी ले, करती सदा समाई हो॥ मां पृ. १०

- मूर्च्छा-लालच लालसा, आकांक्षा अरु लोभ।
  खिण भर भी देख्यो नहीं, वदना मन विक्षोभ॥ मां पृ. ४०

सीता के चरित्र का एक उदात्त और सबल पक्ष कवि ने उसी के मुख से कहलवाया है—

परम हर्ष होता यदि अपनी
भूल समझ मैं पाती,
स्वीकृत करने में न कभी
भी त्रिया-चरित्र दिखाती।
कोई अनशन-उपवास न करती,
करके अपघात न मरती,
ऊंचे कुल का ऊंचा आचार है॥ परीक्षा पृ. ५७

कवि ने अपनी ज्येष्ठा भगिनी साध्वी प्रमुखा लाडांजी की दो विरोधी चारित्रिक विशेषताओं को संक्षिप्त शैली में बिम्बायित किया है—

- हीन भावना नहीं सतावै।
  अहं अस्मिता रो नहीं आवै॥ सहिष्णुता पृ. १८

इसी प्रकार बाहुबलि की चारित्रिक विशेषताओं को उसके स्वयं के संवाद में खोजा जा सकता है। बाहुबलि का आत्मविश्वास और अन्याय के प्रति विद्रोह को निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है—

- तू नहीं कुछ कर सका तो, क्या करेगा चक्र भी?
  दण्ड से कर चूर्ण अम्बर में, उड़ा दूंगा अभी।
  तूं कहे तो गाड़ दूं मैं, लात से पाताल में,
  तोड़कर अर एक-एक, उछाल दूं तत्काल मैं॥ भरत पृ. १३३
- नमा ले वह चक्र को पर, बाहुबलि नमता नहीं।
  मुझे निष्ठुर और निर्मम, बंधु से ममता नहीं॥ भरत पृ. ११५
- जब तक कोई मुझे न छेड़े, मैं ना अड़ने वाला हूं।
  स्मरण रहे यदि छेड़ लिया तो, कभी न टलने वाला हूं॥ भरत पृ. ७३

औपदेशिक छटा एवं जीवन मूल्यों को प्रकट करने वाली पात्र के मुख से कही जाने वाली पंक्तियां भी उसके चरित्र का उत्कर्ष प्रकट करने वाली हैं—

- खिण राजी खिण में नाराजी, गिरगिट को सो रूप।
  स्वार्थ साधना हित मत ल्यावो, मंत्री वचन अनूप॥ शासन पृ. १५७

'तहत' सिवाय शब्द नहिं कहणो, रहणो संयम राख।
आचारज जद दै ओलंभो, आ मंत्री री भाख॥ शासन पृ. १५७

कवि ने पात्रों के देश, सामाजिक स्तर एवं शिक्षा के अनुरूप ही भाषा के प्रयोग का यत्न किया है। एक ग्रामीण कुम्हार सीधी-साधी बोलचाल की भाषा में अपनी पत्नी को कहता है—

सुण लै बात भंवरियै री मां!, ओ है साध उदाई।
इण नै अपणै घर ठहराणो, नृप री सख्त मनाही॥ चंदन पृ. ९३

आचार्य तुलसी द्वारा प्रयुक्त प्राय: पात्र मानव को नयी प्रेरणा देने वाले हैं चाहें वे मुख्य पात्र की भूमिका निभा रहे हों या गौण पात्र की, चाहें ऐतिहासिक हो या अर्वाचीन। उनकी दृष्टि स्फटिक की भांति पारदर्शी एवं निर्मल थी अत: अंतर् को भेदकर पात्र के चरित्र को पकड़ लेती थी।

लोकोक्तियां एवं मुहावरे

संसार की प्राय: सभी भाषाओं में कहावतें मिलती हैं। जर्मन में इन्हें अलंकार युक्त कथन माना जाता है। मुहावरे एवं लोकोक्तियां लोक-प्रगति एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की सशक्त संवाहिकाएं होती हैं। किसी भी समाज का मेधा-वैशिष्ट्य उसमें प्रचलित लोकोक्तियों एवं कहावतों में देखा जा सकता है क्योंकि इनमें ज्ञान-राशि संचित रहती है। अतीत की परम्परा को वर्तमान में गतिशील रखने में लोकोक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्य में इसे प्रोक्ति चमत्कार भी कहते हैं। आचार्य हरिऔध के अनुसार मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग निकृष्ट को श्रेष्ठ तथा श्रेष्ठ को श्रेष्ठतर बना देता है।''[१] मुहावरे किसी भी भाषा की जीवनी शक्ति होते हैं क्योंकि इनके प्रयोग से भाषा में सचेतन प्रवाह आ जाता है।

लोकोक्ति को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि लोकोक्ति बिना वक्ता की वह उक्ति है, जो संक्षिप्त, अर्थपूर्ण और रोचक होती है। यह थोड़े शब्दों में सजा हुआ बृहद्ज्ञान है।''[२] मुहावरे के स्वरूप को अभिव्यक्ति देते हुए गयाप्रसाद शुक्ल कहते हैं कि किसी भी भाषा में दिखाई देने वाली असाधारण शब्द-योजना का प्रयोग मुहावरा कहलाता है। कहा जा सकता है

कि समाज के सम्मिलित अनुभव जब अपने लक्ष्यार्थ में रूढ़ होकर अभिव्यक्त होते हैं, तब वे कहावत या मुहावरा बन जाते हैं। लक्षणा और व्यंजना शक्ति से युक्त होने के कारण लोकोक्तियां शाब्दिक अर्थ से भिन्न नवीन अर्थ को प्रकट करती हैं अत: इनके प्रयोग से काव्य में उक्ति-वैचित्र्य और प्रभाव उत्पन्न हो जाता है।

भाषा को लाक्षणिक बनाने के लिए आचार्य तुलसी ने मुहावरों एवं कहावतों का प्रचुर प्रयोग किया है, जो उनके बाहुश्रुत्य को प्रकट करने वाला है। इनके प्रयोग से उनकी भाषा-शैली सशक्त, प्रभावी, परिष्कृत, सक्षम, गतिशील, व्यंजक, सुगठित और अर्थगर्भित बन गई है तथा लोकभाषा और लोक-अनुभव के साथ उसका सम्बन्ध हो गया है। सशक्त अभिव्यंजना के प्रसाधन के रूप में इनका प्रयोग करने से अनेक स्थलों पर उत्तम बिम्ब उत्पन्न हो गए हैं। अपनी प्रतिभा शक्ति से कवि ने इस बात में पूरी सजगता बरती है कि कहां सामान्य वाक्य का प्रयोग किया जाए और कहां मुहावरों एवं लक्षणा शक्ति का। उन्होंने लोकोक्तियों को आत्मसात् करके उसका परिष्कृत, सही और बहुविध प्रयोग किया है। आचार्य तुलसी ने अनुभूति के साथ एकात्म करके मुहावरों का काव्य में प्रयोग किया है। गुरुदेव तुलसी के काव्य-साहित्य में मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग मुख्यत: चार उद्देश्यों से हुआ है—

- कथ्य की प्रभान्विति।
- उक्ति-वैचित्र्य।
- भाव-सौन्दर्य की उत्पत्ति।
- लोक-संस्कृति की सुरक्षा।

आचार्य तुलसी ने प्रचुर मात्रा में सुचिन्तित और सम्यक् रूप से लोकोक्तियों एवं कहावतों का प्रयोग किया है। यहां राजस्थानी एवं हिन्दी भाषा में उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ मुहावरों एवं कहावतों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

- संयम नहिं नानी रो धाम। कालू भा. २ पृ. ११८
- माता के अपमान पर, उबल रहा है खून। परीक्षा पृ. १२७
- बांसां उछल पड्‌या दिल मानो, मिल्यो स्वर्ग रो राज। माणक पृ. ९४
- बण्यो वातावरण सहसा, धणी ऊपर कुण धणी? सेवा पृ. ३६

- बूथै सारूं मौके रो मंतर साध्यो। मगन पृ. १९
- सेना उन सबको, दो दो हाथ दिखाती। भरत पृ. ३७
- सदा बजाएं चैन बांसुरी, कंठ कपोल फुलाकर। शासन पृ. ६७
- तुम पूर्णतया निश्‍चित रहो, ये लोग हंसे तो हंसने दो।
  हलवा खाते भी दांत घिसे तो, भले खुशी से घिसने दो॥ परीक्षा पृ. ७५
- हो देर भले अंधेर नहीं। परीक्षा पृ. ९
- दर्द शान्त हुआ पुराना, क्या पुनः खुजली चली? भरत पृ. १३२
- केवल एक मात्र ओ कारण, थांरै प्हाड़ै आयो। चंदन पृ. ९१
- आखिर तो फूट्यां सरै पाप रो फोड़ो।

अनेक हिन्दी मुहावरों का राजस्थानी भाषा में रूपान्तरण भी कवि के प्रतिभा-वैशिष्ट्य को प्रकट करने वाला है—

- है अठी खाड़ अरु कूप बठी। चंदन पृ. १३
- खोद्यो प्हाड़ निकल्यो उंदर। चंदन पृ. २९
- दूध पिलाणो सांप नै, आंनै विद्या दान। कालू भा. १ पृ. ८४
- आटा मांही नमक जिता सा, तेरापंथी सारा। कालू भा. १ पृ. १६४
- हम डंके की चोट सती सीता को लौटा लाए। परीक्षा पृ. १४
- शरमिन्दा-सा अब, बगलां झांकण लाग्या। डालिम पृ. १७६
- नीम्बू नामे ज्यूं मुखड़ा में, अम्बू रो उद्भावो। कालू भा. १ पृ. १९७
- संदेह नहीं प्रत्यक्ष दाल में कालो। चंदन पृ. ८७
- कर कंगन आंख्यां स्यूं दीसै, फिर के करसी आरसी? तेरापंथ पृ. १४
- जाणक सिर पर ढुल्यो सौ घड़ा नीर है। चंदन पृ. ११७
- हो अवाक बिच दांत आंगुली। शासन पृ. ४९
- आखिर नाक भाल के नीचे रहकर शोभा पाए। नंदन पृ. ६६
- भाग भुंवाली खायो। माणक पृ. ७४
- च्यार दिनां की दिखा चानणी। मां पृ. १८
- किन्तु सुता को मैं न कूप में, डालूंगा कर आंखें बंद। परीक्षा पृ. १०३

कवि ने एक ही कहावत को भिन्न-भिन्न स्थान पर अलग-अलग रूप में प्रस्तुत किया है। यहां 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' तथा 'हाथ कंगन को आरसी क्या?' मुहावरे के कुछ परिवर्तित रूप द्रष्टव्य हैं—

- देखी होनहार विरुवै री, ह्वै पहचान चीकणां पात।
- होनहार विरुवान चीकणा, पात बात विख्यात है। तेरापंथ पृ. ११
- कर कंगन देखण नै दर्पण, मूरख ही मंगवावै। चंदन पृ. २१४
- कर कंगन क्या करे आरसी? पानी पृ. ३०

प्रसिद्ध मुहावरों को अपने ढंग से परिवर्तित करके प्रस्तुत करना मुहावरा विचलन है। मुहावरे एवं कहावत विचलन के प्रचुर प्रयोग आचार्य तुलसी के साहित्य में द्रष्टव्य हैं। न केवल उन्होंने भाषागत परिवर्तन किया बल्कि छंद और उक्ति-वैचित्र्य की दृष्टि से भी मुहावरों और कहावतों में परिवर्तन किया है। मुहावरे एवं लोकोक्ति में किया गया परिवर्तन कहीं संक्षिप्त रूप में हुआ है तो कहीं विस्तृत भी हुआ है। कवि की मौलिक प्रतिभा से परिवर्तित कहावतों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं, जिनमें कहीं विशेषण तो कहीं क्रिया-विचलन के प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

- चुग लेसी कोई चुगल, चिड़ी ज्यूं चावलिया-चावलिया। चंदन पृ. ११६
- देखो यूं तस्कर कोतवाल नै डांटै। कालू भा. १ पृ. २४०
- दौर्भाग्य दुरितवश, निकल्यो बुद्धि दिवालो। चंदन पृ. ८७
- घर रा पूत कंवारा फिर भी, पाडोस्यां रा परणावै। चंदन पृ. १८९
- कोरी खल रही न तैल तिलां। चंदन पृ. १३
- क्यों खांच गले में आफत लै अणतेड़ी। डालिम पृ. १७८
- वासना में मग्न मानव, जाग ज्यावै जब सवेरो। चंदन पृ. ११८
- घर हाणी हुवै न हास जी। चंदन पृ. ११
- घर में क्षति जग में हंसी। परीक्षा १२७
- तब लों दीक्षा कल्पना, गगन कुसुम अनुहार। कालू भा. १ प. १५४
- बंदर घुड़की स्यूं क्यूं पीछे पग ठाया? कालू भा. १ पृ. १५२
- आकाश फाट्यां कियां कारी लागै? चंदन पृ. १५६
- जिण खोज्या तिण पाइया, ऊंडै पाणी पेठ॥ डालिम पृ. २०१
- पैठकर गहरे समंदर, आत्म-अनुसंधान हो अब। नंदन पृ. ४३
- हाथ प्राणों से यशस्वी, हाय! कितने धो गए। भरत पृ. १००
- मुंह देख तिलक करणै री पद्धति आसी। डालिम पृ. १९१
- ओढ़ी जिसी ऊजली चादर, सादर धरी निलय में। चंदन पृ. १३३

◆ अंध यष्टि सा मेरे आगे-पीछे एक सहारा। पानी पृ. ४५

◆ छाती ठोक मगन बोलै,-आ जोखिम मैं ल्यूं ओटी। सेवा पृ. ३५

कहीं-कहीं मुहावरों एवं लोकोक्तियों का संक्षेपीकरण भी हुआ है। 'दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीता है' इस लोकोक्ति की आत्मा ग्रहण कर राजस्थानी भाषा में इसका संक्षेपीकरण करके कवि कहते हैं—

◆ जल्यो दूध रो डरै छाछ स्यूं, बा ही गति आपां री है। डालिम पृ. १९४

◆ जल्यो दूध रो बहमी मानव, छाछ पिवै दे फूंक। कालू भा. १ पृ. १८९

◆ जल्यो दूध रो फूंक फूंककर, तक्र पीवै सो न्याय। मगन पृ. १३५

कवि ने लोकोक्ति या मुहावरे का विस्तार भी किया है। आनुप्रासिक छटा के साथ निम्न मुहावरों का प्रयोग द्रष्टव्य है—

◆ मोटो सो मोदक, मुख में दाब दियो है। कालू भा. १ पृ. ७९

◆ आपां तो अरजी रा मरजी, मरजी मां बापां री। डालिम पृ. १९४

◆ जले-कटे घावों में क्यों अब, नमक मसाले भरते हैं। परीक्षा १२३

उपमा के साथ मुहावरे का प्रयोग सौन्दर्य की सृष्टि कर रहा है—

◆ नौ दो ग्यारह हो गए, ज्यों प्रातः उडु वृंद। भरत पृ. १०४

तुक के साथ लोकोक्ति जोड़ने में कवि का अभिव्यञ्जना कौशल दर्शनीय है—

मानता हूं हो रही जो, घोर हिंसा है बुरी।
कहो कैसे दूं चलाने, मैं गले पर यों छुरी॥ भरत पृ. ११४

आचार्य तुलसी सही स्थान पर उपयुक्त लोकोक्ति या मुहावरे का प्रयोग करने में सिद्धहस्त थे। 'सपणै रो संसार' आख्यान में नेपाली व्यापारी राजगृही नगरी में घूम-घूम कर हताश हो जाते हैं। राजभवन में जाने पर भी उनका काम नहीं बनता। व्यापारी के मुख से उस समय की स्थिति का वर्णन मुहावरेदार भाषा में पठनीय है—

◆ राजघराणै तक पहुंच्या, तो भी रोटी सिकी नहीं। चंदन पृ. १०९

युग्म शब्दों से युक्त लोकोक्ति एवं मुहावरों के माध्यम से भावों की तीव्रता और प्रभान्विति पठनीय है—

---

१. रीतिकाल का मूल्यांकन, पृ. ९।

२. आधुनिक हिन्दी गीतकाव्य का स्वरूप और विकास, पृ. ६५ ।

- दर-दर का मैं बना भिखारी, खाख घरों की छानी। पानी पृ. ५०
- पग फूंक फूंक भू पर धरणो, दुनिया तलवार दुधारी है। डालिम पृ. ७६

संयम में अस्थिर होने पर आषाढभूति के मानसिक चिंतन का चित्रण पठनीय है—

सीधा सट्टे का व्यापार, मुट्ठी में होगा बाजार। पानी पृ. ५१

मनोभावों को प्रकट करने में भी उन्होंने मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग किया है। कवि ने आचार्य आषाढ़ की मानसिक अकुलाहट और विरह वेदना को 'आशा के तारे' मुहावरे के द्वारा मार्मिक अभिव्यक्ति दी है—

- हा! वत्स विनोद! कहां तू, मेरी आशा के तारे।
  करुणार्त्त पुकार रहे हैं, आ वत्स! शीघ्र तू आ रे॥ पानी पृ. ४७

राम नारद के समक्ष अपनी वेदना को मुहावरेदार भाषा में प्रकट करते हैं—

- रे ऋषिवर! क्यों कर रहे, यों घावों पर घाव। परीक्षा पृ. १४०

कवि ने बोलचाल की भाषा में भी मुहावरों को इस प्रकार फिट किया है कि वे एक विशेष ध्वनि पैदा करते हैं—

चुपकी रह मत बोल भारज्या! सुणसी दुर्जन दोषी।
तो होसी कुपीत फिर बैठी, माईतां नै रोसी॥ चंदन पृ. ९४

प्रसंगवश अनेक स्थलों पर एक ही पद्य में अनेक कहावतों और लोकोक्तियों का प्रयोग कवि की विचक्षणता, गतिशीलता और बाहुश्रुत्य को प्रदर्शित करने वाला है। निम्न पंक्तियों में कहावतों एवं मुहावरों की झड़ी सी लगी हुई है—

- दिखा रहे आनन्द तुम्हारे, ये चेहरे फीके-फीके,
  दाई से भी पेट छुपाना, कहो कहां से तुम सीखे?
  सांप सरल हो बिल में घुसता, तो बाबे से डाई क्यों?
  गुरु के सम्मुख सत्य बोलते, 'तुलसी' व्यर्थ सफाई क्यों?
- जितरा मूंढ़ा उतरी वाणी,
  जुदो-जुदो कुवां रो पाणी

---

१. आचार्य तुलसी ; जो सुख में सुमिरन करे, पृ. १३३।

२. आचार्य तुलसी ; सुधारस, स्वकथ्य, पृ. १।

पार लहै कोई निर्मल नाणी। कालू भा. १ पृ. ७८

- आ तो जल में लागी आगी,
  बाड़ खेत नै खावण लागी,
  हियड़ै तलवार दुधारि लागै। चंदन पृ. १५६
- ठाकुर साहिब घर आई, मौत बुलाई।
  अपने हाथां स्यूं पगां, कुल्हाड़ी बाही॥ डालिम पृ. १८४
- वह बोला क्यों और चढ़ाते, हाय! राम! मेरे सिर पाप।
  छाती पर पत्थर रख मैंने, सहा दासता का अभिशाप॥ परीक्षा पृ. ८७

सीता की करुण स्थिति को विविध मुहावरों के माध्यम से प्रकट करते हुए कवि का उक्ति वैचित्र्य दर्शनीय है—

- अम्बर से मैं गिरी हाय!, अब झेल रही ना धरती,
  टुकड़े-टुकड़े हृदय हो रहा, रो-रो आहें भरती,
  टूटे मन के तार हैं, छूटे सब आधार हैं,
  पत्थर को पिघलाने वाले, सीता के उद्‌गार हैं॥ परीक्षा पृ. ७२

निम्न पद्य में कहावत एवं मुहावरों का प्रयोग अभिव्यंजना-सौन्दर्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं—

सात हाथ की सोड़, अप्रमत्त बन जो रहै।
नीम्बू लियो निचोड़, बार-बार गफलत करत॥ डालिम पृ. १९२

आचार्य तुलसी ने कहीं-कहीं लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग इस प्रकार किया है, जिससे उसमें लय एवं नाद-सौन्दर्य उत्पन्न हो गया है—

- नट गयो साफ गिट गयो, जीवती माखी। डालिम पृ. १५६
- पुण्यवान रै पग-पग ऋद्धि-सिद्धि, आ सही कहावत है।
  जंगल में भी मंगल दसूं, दिशावां देवै दावत है॥ चंदन पृ. ३१

कुछ लोकोक्तियां एवं मुहावरे ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं एवं व्यक्तियों से सम्बन्धित हैं—

---

१. डॉ. भोलानाथ तिवारी ; व्यावहारिक शैलीविज्ञान, पृ. ८८।
२. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ; हिन्दी साहित्य कोश भाग-१, पृ. ७४१।
३. डॉ. नीलम कालड़ा ; भवानीप्रसाद मिश्र की काव्य-भाषा का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन, पृ. २४१।
४. राममूर्ति त्रिपाठी ; भारतीय काव्य शास्त्र के नए क्षितिज, पृ. २२७।
५. डॉ. जगदीशकुमार ; नई कविता अंक ३, पृ. ६७

- क्यूं राम निकलग्यो, लियां फिरो हो ठेको। डालिम पृ. २७३
- कुंभकर्णी नींद आ अब, नाक में एवड़ उछेरो। चंदन पृ. ११८
- भाग सिकंदर संघ रो। कालू भा. १ पृ. ८२
- द्रुपद सुता रो चीर।

लोकप्रचलित लोकोक्तियों एवं मुहावरों के अतिरिक्त आचार्य तुलसी ने अपनी स्वोपज्ञ बुद्धि एवं मौलिक कल्पना से लोकोक्ति की आत्मा ग्रहणकर नयी कहावतों एवं मुहावरों का निर्माण भी किया है, जिससे भाषा में चमत्कार उत्पन्न हो गया है—

- मोहन मुंह री म्याऊ।
- जग शोभा घरे कमाई।
- पैंठ बिना रो क्यां रो जीणो ?।
  आंख बिना ज्यूं कपड़ो सीणो॥
- श्रवण सुनै पण नयन न निरखै, दोन्यां बीच विवाद है। चंदन पृ. २०
- कब ? क्यूं कर खुलसी ? म्हांरै ओ जड्यो बारणो भाग रो।
- गिरिगढ़ भाग्य रो गुब्बारो आसमान उतर्यो।

हिन्दी में माता-पिता के प्रिय पुत्र के लिए 'आंखों का तारा' मुहावरे का प्रयोग होता है। इसी अर्थ को प्रकट करने में मां वदना एवं आषाढ़भूति के मुख से आचार्य तुलसी ने नए मुहावरे का प्रयोग करवाया है—

- रे मोभी बेटा! म्हांरै तो तूं ही दिल्ली आगरो।
- निर्बल का बल, निर्धन का धन, यदि वह भी बच जाता।
  तो उसके आधार बुढ़ापा, सुखपूर्वक कट जाता॥पानी पृ. ४५

विशुद्ध राजस्थानी भाषा की कहावतों का प्रयोग कवि के राजस्थानी भाषा के प्रति आकर्षण को प्रकट करता है—

- शान्ता दान्ता म्हांरी कान्ता, बस बस बसका फाटै। चंदन पृ. १८२
- नाकां में नाथ घलावै। सोम पृ. ७
- म्हे कोरां मोरां रहग्या ढ़ाऊं माऊं। डालिम पृ. १७३
- मां स्यूं मोसाल किस्यो छानो। चंदन पृ. १३
- चढणो संयम री खरसाण, नहिं कोई दहि बाटी रो खाण।
  कालू भा. २ पृ. ११७

- जाणक घर रो ऊपरलो पानो आयो। सेवा पृ. ८

 नहीं स्वयं तो भटकां जी, सेण सगा नै हटकां जी।
 साच सुणावां सटकां जी, नहिं कोइ खावै बटकां जी॥
 कालू भा. १ पृ. २०१

- अनधिकार चेष्टा स्यूं सच, मोरां में मूसल बाजै। सेवा पृ. ११८
- छोटी रात बड़ी रामत यूं, उथल-पुथल सी है मची। सेवा पृ. १६

धर्म क्षेत्र में चलने वाली धांधली को उन्होंने स्पष्ट शब्दों में उजागर किया। तथाकथित धार्मिकों की स्थिति का चित्रण मुहावरेदार भाषा में पठनीय है—

डोल रही आस्था दुनिया री, हां नास्तिकता छाई।
मुंह पर राम बगल में छुरी,हा! हा! करुण कमाई॥ सुधा पृ. ४६

आचार्य तुलसी ने मुहावरों का ऐसा सटीक प्रयोग किया है कि आंखों के सामने बिम्ब सा प्रस्तुत हो जाता है—

- बाहर-भीतर मोहन भैया री इकदंडी बाजै।
 बणै मोम री मक्खी सारा, जद मोहनजी गाजै॥

'इकदंडी बाजै' मुहावरा जहां कवि के ज्येष्ठ भाई मोहनलालजी की तेजस्विता को चाक्षुष करता है, वहां 'बणै मोम री मक्खी' मुहावरा पारिवारिक सदस्यों की निष्क्रियता और भय को साक्षात् करता है।

कुछ लोकोक्तियां अन्योक्ति के माध्यम से जीवन में नयी प्रेरणा देने वाली हैं—

- पत्थर री सिर में खासी, बो पिछतासी। मगन पृ. ४०
- मघवा महान् कहता, 'करसी सो भरसी'। मगन पृ. १९
- दो लोचन बिना निरर्थक है सौ दर्पण। कालू भा. १ पृ. १३१
- आंख कान रो आंतरो रे, च्यारांगुल रो चतुर कहे।
 लाख हाथ रो अगर कहूं मैं, तो पिण सभ्य समाज सहे॥
 कालू भा. २ पृ. १३३

आचार्य तुलसी ने अपने प्रातिभ वैशिष्ट्य से संस्कृत भाषा में प्रचलित लोकोक्तियों को भी हिन्दी भाषा में बहुत सुंदर प्रस्तुति दी है। ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्, यथा राजा तथा प्रजा, इतो व्याघ्रस्ततो तटी तथा प्रथमकवले मक्षिकापात:—इन संस्कृत सूक्तियों का हिन्दी भाषा में लोकोक्ति के रूप में प्रयोग दर्शनीय है—

---

१. आचार्य तुलसी के संदेश, भाग-३, पृ. ४।

- बन कर्जदार भी घी पीना, क्यों यह सिद्धान्त बनाया है ? पानी पृ. २५
- जैसा राजा वैसी जनता, यह लोकोक्ति हुई चरितार्थ। भरत पृ. १५८
- इधर व्याघ्र तो उधर तटी है, उभय बीच में आया। भरत पृ. ६०
- प्रथम कवल में मक्षिका, हुए सभी निस्पन्द। भरत पृ. १२४

कवि ने कहीं-कहीं सैद्धांतिक लोकोक्तियों का प्रयोग भी बहुत करीने से किया है—

- छद्मस्थां री है छोल। मगन पृ. २६

घटना विशेष या कथानक रूढ़ि से जुड़ी लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग भी द्रष्टव्य है—

- बेला बाह्या मोती निपजै।
- बारह महिनां कात्यो पीन्यो, मानो हुयो कपास। कालू भा. १ पृ. ११७

उनके काव्य-साहित्य में प्रकृति सम्बन्धी कहावतें एवं मुहावरे प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हैं, जैसे, बिजली कड़कना, आकाश में उड़ना, पानी में आग लगना आदि।

प्रलयकाल की बीज कड़कती, धगधगती सी आग है।
धूजी धरा गगन ज्यूं पलट्यो, उलट्यो उदधि अथाग है॥ चंदन पृ. १८

कहीं-कहीं कहावतों के माध्यम से उन्होंने प्रेरणा और प्रतिबोध भी दिया है। निम्न उदाहरण जीवन के लिए शिक्षासूत्र प्रस्तुत कर रहे हैं—

व्यर्थ बात में क्यों कभी, करें समय बरबाद।
'बातेरी की बिगड़ती', रखें सूत्र यह याद॥ सम्बोध पृ. ३९

- आज रह-रह खा रहा, उनको उन्हीं का पाप है।
- शस्त्र अपना हाय! अपने लिए संहारी बना। परीक्षा पृ. ८९
- लेना अंत किसी का अनुचित, नीतिकार बतलाते। परीक्षा पृ. १५७

भरी जवानी में एक शय्या पर सोते हुए भी मन का विकृत न होना ब्रह्मचर्य की उत्कृष्ट साधना है। कवि ने विजय-विजया के इस प्रयोग को मुहावरेदार भाषा में प्रकट किया है—

पावक पर मक्खन नहिं पिघल्यो, ढल्यो न नीर निवाणां।
खल्यो न शील एक शय्या में, मुश्किल समझै स्याणां॥ चंदन पृ. १७३

कहीं-कहीं मुहावरों के प्रयोग से आचार्य तुलसी के काव्य में ओजगुण

प्रकट हो गया है—

- उनके आते ही सबके छक्के छूटे। भरत पृ. ९८
- दाल न गलने देंगे हरगिज, अन्यायी शैतान की। भरत पृ. ८३
- मूछों पर ताव चढ़ाते हैं, आपस में जोश जगाते हैं।

जय तूर बजा नक्कारों पर, डंके की चोट लगाते हैं॥ परीक्षा पृ. ११९,१२०

- मुट्ठी में लेकर मौत चले।
गहरे तम में बन जोत जले॥ नंदन पृ. १३५
- डटकर के हम लोहा लेंगे, एक इंच भी धरा न देंगे। भरत पृ. ८१

कुछ कहावतें एवं लोकोक्तियां कवि को अत्यन्त प्रिय थीं अत: वे बार-बार पुनरुक्त हुई हैं—

- धर कूंचा धर मंजलां। चंदन पृ. ६९
- कर कंगन क्या करे आरसी? नंदन पृ. ६८
- कुण छेड़छाड़ कर रांत गले में घालै।
- नीवाणां नीर ढ़लै है।
- कोड्यां साटै अहल हार मत। सोम पृ. १७
- मौन रह्यो मोकै रो मंतर साध्यो। मैं तिरूं पृ. ७४

लोक प्रकृति का ज्ञान होने से आचार्य तुलसी ने अर्थव्यंजक और बिम्बपरक मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। यहां कथन में तीव्रता और प्रभाव उत्पन्न करने वाले मुहावरों का प्रयोग द्रष्टव्य है—

छाती रे ठड्ड़े स्यूं, कोई बात करेला,
जो जिसी करेला, निज में बिसी भरेला॥ मगन पृ. २८

कहीं विधेयात्मक भाषा में प्रसिद्ध मुहावरों को कवि ने निषेधात्मक भाषा में प्रकट कर दिया है—

- बाल नहीं बांका कर पाई, शांत हुआ तूफान। शासन पृ. २९

आचार्य तुलसी ने हिन्दी काव्य में राजस्थानी कहावत तथा राजस्थानी काव्य में हिन्दी मुहावरों का खुलकर प्रयोग किया है। लोकोक्ति एवं मुहावरों का सटीक चयन उनके काव्य को अर्थगर्भित एवं व्यञ्जक बनाता है। कौन सा मुहावरा या लोकोक्ति कहां क्या अर्थ देगी, इस प्रयोग में वे दक्ष थे। इनके सम्यक् प्रयोग से उनकी भाषा स्पष्ट, संप्रेषणयुक्त, जीवंत और प्रवाहमयी बन गई है। आचार्य तुलसी के सम्पूर्ण काव्य-साहित्य में प्रयुक्त लोकोक्ति एवं मुहावरों का यदि संचयन किया जाए तो एक छोटा सा मुहावरा एवं लोकोक्ति कोश तैयार किया जा सकता है।

काव्य में संगीत तत्त्व एवं लय

कार्लाईल ने कविता को संगीतमय विचार घोषित किया है। काव्य में शब्दों की लड़ी यदि संगीतपूर्ण होती है तो वह आनंद के प्रवाह में मनुष्य के मन को बहाकर ले जाती है।''[१] संगीत यद्यपि नाद पर आधारित है पर जब संगीत के स्वर शब्दों का रूप लेकर किसी विशिष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं, तब वह काव्य की परिधि में आ जाता है। ''काव्य और संगीत का गहरा संबंध है। काव्य यदि दीपक है तो संगीत उसकी ज्योति। कवि का हृदय झंकृत होकर ही गीतों का निर्माण करता है।''[२] डॉ. आशाकिशोर के अनुसार लय, स्वर और नाद के द्वारा संगीत जिन भावनाओं को निराकार रूप देता है, काव्य उसे ही शब्द और अर्थ द्वारा साकार करता है। गीत में संगीत का समावेश होने से वह भाषा को चारु और मधुर बनाकर उसकी संप्रेषण-क्षमता में अतिशय वृद्धि कर देता है। भावाभिव्यक्ति, प्रेषणीयता एवं रस-परिपाक के लिए काव्य में संगीत अपेक्षित है। संगीतात्मकता की झंकृति कानों में लम्बे समय तक गूंजती रहती है। आधुनिक युग पश्चिमी सभ्यता से पूर्णत: प्रभावित है अत: छंद और अलंकार से रहित मुक्तक काव्य का अधिक प्रचलन है पर अरस्तू ने काव्य के छह तत्त्वों में संगीत और लय—दोनों को प्रधानता दी है।

गुरुदेव तुलसी के पद्य-साहित्य में काव्य और संगीत का अनोखा संगम है। उन दोनों में देह और आत्मा का संबंध है। कहा जा सकता है कि संगीत तत्त्व ने उनके काव्य में सरसता एवं चुम्बकीय आकर्षण पैदा कर दिया है। आचार्य तुलसी को जन्मजात सुरीला कंठ मिला था। दीक्षा लेने के बाद जब वे अपने गुरु कालूगणी के साथ गाते तो गांव के बाहर बालू के टीलों पर रहने वाले लोग आचार्य कालूगणी के पास आकर पूछते—''रात्रि में आपके साथ कौन साधु गाता है ? एक साधु का बहुत बारीक और बांसुरी जैसा स्वर सुनाई देता है। आचार्य तुलसी उस समय का अनुभव सुनाते हुए कहते हैं—''स्वर बारीक होने पर भी मेरा स्वर भंग नहीं होता था। यह सब गुरुदेव की कृपा का परिणाम था। संगीत साधना के कुछ सूत्र गुरुदेव ने मुझे बता दिए, इससे मेरा गला सदा ठीक रहा।······ मैं ज्यों-ज्यों अवस्था में बड़ा होता गया, त्यों-त्यों

मोटे स्वर में गाने और बोलने का प्रयास करने लगा। ऐसा किए बिना कंठों का माधुर्य बना नहीं रह सकता था क्योंकि शारीरिक विकास के साथ कंठ का ध्यान न रखने से कण्ठ एकाएक विस्वर बन जाते हैं।'' आचार्य तुलसी अल्पायु में ही गीतों की रचना करने लगे। संगीत के बिना वे अपने प्रवचन को अधूरा मानते थे। संगीत के प्रति उनकी आंतरिक अभिरुचि इन अभिव्यक्तियों में प्रकट हो रही है—

◆ संगीत मेरी रुचि का विषय है। मैंने कभी विधिवत् संगीत का प्रशिक्षण नहीं लिया फिर भी मुझमें संगीत का प्रभाव है, ऐसा मैं अनुभव करता हूं।

◆ ''संगीत मेरे लिए औषधि है। इसके द्वारा मैं स्वास्थ्यलाभ भी कर लेता हूं। कभी-कभी ऐसा अनुभव होता है कि शरीर में बोलने की शक्ति नहीं है, उस समय मैं गाना शुरू कर देता हूं। मुझे ऐसा लगता है मानों नयी शक्ति का संचार हो रहा है।''[१]

◆ ''मेरे अनुभव से संगीत में तुष्टि है। जब कोई व्यक्ति एकाकीपन या वीरानेपन का अहसास करता हो, तब उसे संगीत गाने या सुनने का अवसर मिल जाए तो उसे अपने आस-पास रौनक दिखाई देने लगती है।''[२]

संगीत के प्रभाव को बताते हुए महात्मा गांधी कहते हैं—''जब कोई बात गद्य में कही गई तो उसका असर नहीं हुआ लेकिन जब उसे ठीक से गाया गया तो उसने मुझे बेचैन करके रख दिया।'' वस्तुतः संगीत में एक विचित्र शक्ति होती है, जो वातावरण और मन:स्थिति को बदल सकती है।

आचार्य तुलसी जब भावभंगिमाओं के साथ गीत का आरोह-अवरोह युक्त संगान करते, तब कवि की कल्पना श्रोताओं की आंखों के सामने साकार हो उठती तथा श्रोता किसी स्वर्गिक आनंद में डूब जाते थे। मालकोश एवं आसावरी जैसी रागों के आरोह में बीस-तीस साधु मिलकर भी उनके स्वरों का साथ देने में असफल हो जाते थे। उनके स्वर की बुलंदी इस बात से जानी जा सकती है कि अपनी युवावस्था में वे बिना माईक हजारों व्यक्तियों तक अपनी स्वरलहरी पहुंचा देते थे।

पूज्य गुरुदेव लय एवं धुनों के मर्मज्ञ थे। उनके गीतों में ध्वनि-तरंगों एवं मात्राओं का इतना व्यवस्थित संयोजन हुआ है कि कोई भी गीत टूटता हुआ प्रतीत नहीं होता। सभी गीत स्वरबद्ध, तालबद्ध एवं छंदबद्ध हैं। छंदभंग या

मात्राओं से टूटता गीत उनको कान में शूल की भांति खटकता था। छंद के लिए राजस्थानी काव्य में अनेक स्थलों पर वे मात्रा में परिवर्तन कर देते थे। मुक्त छंद में भी उन्होंने स्वरों के आरोह-अवरोह का पूरा ध्यान रखा है। मात्रा-परिवर्तन के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- ईं दुनिया री मोटी दुविधा, मौत और बूढ़ापो। मैं तिरूं पृ. १२
- वीर प्रभू रै चरणां में जा, आज खतास्यूं ख्यात। मैं तिरूं पृ. ५२
- हर्षित है अनुकूल स्थिती में।
  शोकाकुल दिल रोजमिती में॥ सुधा पृ. २१

काव्य का प्रभावशाली तत्त्व है—नाद, लय या शब्दात्मक राग। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार भाषा के सुसंयोजित प्रवाह को लय कहते हैं।''[१] काव्यभाषा में प्रयुक्त शब्दों, पदों एवं वाक्यांशों में नियोजित गति, यति और विराम आदि के क्रमिक संघात से लय का संयोजन होता है।''[२] सुमित्रानंदन पंत के अनुसार कविता लय की पांखों पर बैठकर ही उन्मुक्त उड़ान भर सकती है। धुन या लय को देखा नहीं जा सकता क्योंकि यह चेतना की संगीतात्मक अभिव्यक्ति होती है। लय काव्य-भाषा की रीढ़ है। लय के बिना गीत निष्प्राण है। लय के सहारे काव्यभाषा कभी सीधी, कभी तिरछी, कभी लचकती, कभी फुदकती, मचलती प्रवहमान धारा सी अबाध बहती, अग्रसर होती हुई भी अपने नैसर्गिक कल-कल, छप-छप स्वर-निनाद से हमारे अंतस् को आह्लादित एवं स्पंदित करती है।''[३]

लयात्मकता काव्य को अमरता प्रदान करती है।''[४] काव्य भाषा के संदर्भ में लय के दो रूप मान्य हैं—शब्दलय और अर्थलय। शब्दलय का महत्त्व संगीत की दृष्टि से अधिक है और अर्थलय काव्यभाषा का प्राण है। काव्यभाषा एक साथ दोनों लयों का संवरण कर सकती है।''[५]

आचार्य तुलसी ने शब्दों के प्रयोग में गति, प्रवाह एवं यति के संयोजन का पूरा ध्यान रखा है, जिससे उनके गीत स्वतः संगीतमय हो गए हैं। शब्दलय से प्रस्फुटित होती संगीत की ध्वनि निम्न उदाहरणों में देखी जा सकती है—

- तन-मन-रंजन, नाथ निरंजन, भय-भंजन भगवंताणं। शासन पृ. १९
- व्यथा रात री भांत-भांत री, याद कियां आघात। मैं तिरूं पृ. ५२

- आस्वाद नहीं, आह्लाद नहीं, जीवन में सुख-संवाद नहीं।
  पीकर शराब, होकर खराब, इन्सानी-शान गंवाना है॥ अणु पृ.
२ ०
- सिंघ बाघ बिन, आग लाग बिन, नाग जाग बिन खावै। कालू भा. २ पृ.
१४०
- पीयूषवर्षिणी दृष्टि हुई, मानो मनचाही वृष्टि हुई।
  संतोष पोष की सृष्टि हुई, विश्वास वृद्धि उत्कृष्टि हुई॥ मगन पृ. ३३
- विषय वासना सर्व सुलभ है, दर्शन ज्ञान चरण दुर्लभ है।
  मरणो निश्चित ही जब-तब है, कुण किण नै जग में वल्लभ है॥ चंदन पृ.
४४

आचार्य तुलसी ने प्राय: विषय एवं भाव के अनुरूप राग का चयन किया है। किस प्रसंग को किस लय में अभिव्यक्ति देना, इसे वे बखूबी निभाना जानते थे। उनके काव्य में शोक और विरह के अवसर पर प्रयुक्त रागों में चापल्य नहीं वरन् एक गहराई है, जो हृदय को छू लेती है। हर्ष और उल्लास को व्यक्त करने में उछलती रागों का चयन किया है। कहीं-कहीं तो इतना सटीक चयन हुआ है कि राग या लय ही उन भावों को प्रकट करने लगती है।

सही लय का चयन एक कुशल संगायक ही कर सकता है। आचार्य तुलसी ने शास्त्रीय संगीत की उपेक्षा नहीं की लेकिन लोकगीतों की धुनों की परम्परा चलाने एवं उसे सुरक्षित रखने के लिए लोकधुन एवं लोक-संगीत पर अधिक ध्यान दिया। वे इस बात को स्वीकार करते थे कि भावों की सरलतम एवं मधुरतम अभिव्यक्ति लोक-संगीत में ही संभव है। लोकगीत की धुनें चित्त को आकृष्ट करने की अद्‌भुत क्षमता रखती हैं। लोक धुनों पर रचित होने के कारण आचार्य तुलसी के गीत आज भी हजारों कंठों में गुंजित होते रहते हैं।

फिल्मी धुनों के संदर्भ में आचार्य तुलसी अनेक बार अपना अभिमत प्रकट करते थे कि फिल्मी रागों में वह स्थायित्व नहीं है, जो लोकधुनों या पुरानी रागों में है। लोकधुनों के प्रयोग से उनके गीतों में एक विशेष प्रकार की गति उत्पन्न हो गयी। उनके इस अभिक्रम से अनेक प्राचीन लोकधुनें परिष्कृत

हो उठीं तथा अनेक अप्रसिद्ध लोकधुनों को प्रसिद्ध होने का मौका मिला। 'कीड़ी चाली सासरे जी', 'बाजरी री रोटी पोई'....'दुलजी छोटो सो, म्हांरी रस सेहड़ल्यां' पीपली, ओल्यूं, कुसुंभो, माढ़, तेजो आदि लोकधुनों पर उनके अनेक गीत मिलते हैं। शास्त्रीय संगीत में उन्होंने प्रभाती, आसावरी और मालकोश आदि रागों पर गीतों की रचनाएं की हैं।

राजस्थानी लोकधुनों में कांइ, जी, हां रे, हां रे लोय, रे मना, सुयणा आदि शब्दों की आवृत्ति भाषा-सौष्ठव के निखार में सहायक बनती है। आचार्य तुलसी ने भी अपने गीतों में लय के अनुसार इन आवृत्तियों का उपयोग किया है। इसके कुछ उदाहरण निम्न पंक्तियों में देखे जा सकते हैं—

- हे जिनशासन सेहरा रे, हे जिनशासन भाण।
  हे जिनशासन साहिबा रे, भैक्षवगण महाराण॥ कालू भा. १ पृ. ७६
- म्हांरो नाथ नगीनो, भारी सुजश जग लीन्हो रे। कालू भा. २ पृ. २०२
- प्रारम्भी दिल-दम्भी लम्बी, जंगी जिल्लाबंधी।
  जी! छानै छुप-छुप के टंटोलै, जो अपणा अनुबंधी॥ कालू भा. २ पृ.

७ ३

यद्यपि उनके द्वारा प्रयुक्त राग-रागिनियों का व्यवस्थित आकलन नहीं हो सका पर सैकडों राग-रागिनियों का उन्होंने अपने काव्य साहित्य में प्रयोग किया है। यह नि:संदेह कहा जा सकता है कि रागों की विविधता से उनके काव्य में मनोरमता एवं सौन्दर्य की सृष्टि हो गयी है।

लय के साथ तुक का भी संगीत के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। तुक से कविता को स्मरण रखने में सहायता मिलती है। सामान्यत: लोक गीतों में तुक नहीं होता लेकिन आचार्य तुलसी के अधिकांश गीत तुकप्रधान हैं। उनके गीतों में तुक का क्रम कहीं द्वितीय और चतुर्थ तथा कहीं प्रथम और तृतीय चरण में मिलता है। तुक और अनुप्रास के साथ उनको गहरा लगाव था। सामान्य बोलचाल की भाषा में भी वे तुक का ध्यान रखते थे। मोहन भाई जैन को दिए गए संदेशों में तुकबंदी एवं सानुप्रासिक भाषा के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

- मोहन भाई ने पेड़े नहीं, अपितु थपेड़े अधिक खाए हैं।
- प्रसन्नता से, आनंद से हंसते-खिलते अपने आपमें मस्त रहना और

स्वीकृत कार्य में व्यस्त रहना ही जीवन की परिभाषा हमने पढ़ी है।''[१]

अनेक बार वे ग्रामीणों के बीच अपनी बात प्रस्तुत करते हुए कहते थे— 'मुझे नोट नहीं, वोट नहीं, प्लाट नहीं, आप लोगों की खोट चाहिए'। 'नोट, वोट' और प्लाट के समक्ष 'खोट' शब्द के प्रयोग से जो उक्ति-वैचित्र्य प्रकट हुआ है, वह बुराई शब्द के प्रयोग से नहीं होता। इसी प्रकार वेदना की स्थिति में श्रेष्ठि-पुत्र अनाथी जो संकल्प दोहराता है, उसमें एक जैसी क्रियाओं के तुक नाद-सौन्दर्य पैदा करते हैं—

- सेवा करस्यूं, प्रवचन सुणस्यूं, नत पंचांग प्रणमस्यूं।
  एक बार आ मिटै वेदना, जैन धर्म में रमस्यूं॥ चंदन पृ. १८३

कुछ अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं—

- तन-छाया ज्यूं लारै की लारै रेस्यूं।
  पदरज सेस्यूं, हिम्मत रो परिचय देस्यूं। मां पृ. २०
- रे भाई होणो सो होयो, जग से जश खाणो सो खोयो,
  भावी भाव जिनेश्वर जोयो। चंदन पृ. १११

सम्बोधन रूप हाय आदि शब्दों का प्रयोग प्राय: पहले किया जाता है लेकिन आचार्य तुलसी ने तुक के लिए इनका अंत में भी प्रयोग किया है—

करोड़ां मानव आर्य कहाय,
न धार्मिक जिज्ञासा तक हाय,
धुक रही निशदिन लालच लाय॥ सुधा पृ. ३९

संगीत तत्त्व से आचार्य तुलसी के काव्य में नाद-सौन्दर्य, माधुर्य और भाव-सौन्दर्य आदि गुणों का समावेश हो गया है। उनके गीतिकाव्य में शब्दसंगीत, स्वरसंगीत तथा ध्वनिसंगीत का समुचित एवं संतुलित योग है। ध्वनि-संगीत के कुछ उदाहरण निम्न पंक्तियों में देखे जा सकते हैं—

- कष्ट मरणान्त, सहे मन शान्त, न दिल विभ्रान्त। शासन पृ. ३२
- करै चोट ऊपर चोट, खोट मिट ज्यासी। चंदन पृ. ५७

कवि के प्रत्येक गीत इतने प्रेरक, हृदयस्पर्शी और सहज लय में निबद्ध हैं कि युग-युगों तक जन-मानस की हृत्तंत्री को झंकृत करते रहेंगे। गेयता की दृष्टि से बीसवीं सदी के राजस्थानी कवियों में उनका नाम सर्वोपरि रखा जा सकता है।

प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण

मानव जीवन के साथ प्रकृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कवि प्रकृति का पुरोहित होता है। संवेदनशील होने के कारण प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति उसकी दृष्टि अधिक व्यापक और सशक्त होती है। प्रकृति अपनी सजीवता, ताजगी और सौन्दर्य से कवि हृदय को आकृष्ट ही नहीं करती, बल्कि ऐसी सामग्री भी परोसती है, जिससे वह सशक्त, प्राणवान् और वेगमय कविता का सर्जन कर सके। अरस्तू ने भाषा के माध्यम से प्रकृति के अनुकरण को कविता माना है। प्रायः सभी विशिष्ट कवियों ने प्रकृति-चित्रण में अपने वाग्वैदग्ध्य का प्रयोग किया है।

आचार्य तुलसी का प्रकृति के प्रति सौन्दर्य-प्रेम अत्यन्त परिष्कृत था। विविध स्थानों का पर्यटन करने के कारण आचार्य तुलसी को प्रकृति के सहज रमणीय सौन्दर्य को देखने का अवसर मिला। मुनि अवस्था में मेवाड़ प्रदेश का अनुभव लिखते हुए कवि कहते हैं— वृक्षों की गहरी छाया, प्रातःकाल की शीतल हवा, शान्त वातावरण, बीच-बीच में पक्षियों का मधुर कलवर। वैसे सुरम्य वातावरण में मुझे स्वाध्याय करने में बहुत आनंद का अनुभव होता। वहां की प्राकृतिक सुषमा ने मेरा मन मोह लिया।''

आचार्य तुलसी ने प्रसंगवश प्रकृति के कोमल और कठोर तथा रम्य और भयावह दोनों रूपों को सुंदर प्रस्तुति दी है। प्रकृति वर्णन से उनके काव्य में भावाभिव्यक्ति में सुगमता तथा रमणीयता का समावेश हो गया है। उन्होंने प्रकृति के बाह्य रंगों के द्वारा हृदय के रंगों की पारदर्शी अभिव्यक्ति दी है, यही उनके प्रकृति-चित्रण का वैशिष्ट्य है। प्रकृति के माध्यम से उन्होंने आंतरिक आनंद की अनुभूति को व्यक्त किया है।

आचार्य तुलसी ने बाह्य प्रकृति और मानव मन की प्रकृति में सुंदर सामंजस्य स्थापित किया है। भरत चक्रवर्ती की आंतरिक प्रकृति के चित्रण में कवि ने छहों ऋतुओं का सुंदर और हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है। शरद् ऋतु के वर्णन के साथ भरत का प्रकृति-चित्रण कवि के प्रतिभा-कौशल और कल्पना-सौष्ठव को प्रकट करता है—

---

१. सं. साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ; आचार्य तुलसी के संदेश भाग २, पृ. २६८।

स्वच्छ शरद ऋतु भरत-हृदय की, बता रही है निर्मलता,
भू नभ सर सरि-जल मारुत की, उपमित करती उज्ज्वलता।
मिलता दिन में सूर्य-ताप, सारा घन का आतंक हटा,
वृद्धिंगत क्षणदाओं में, खिलती शारद-शशि शुभ्र छटा॥ भरत पृ. १६१

कवि ने मानव के प्रति प्रकृति की अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों स्थितियों का सजीव चित्रण किया है। रात्रि के निःस्तब्ध और नीरव वातावरण में भरत के मन में उठने वाले विविध विकल्पों के ज्वार को सुनने में चांद भी लीन है—

मूक-सी सारी दिशाएं, गगन शब्द-विहीन है।
चांद चुपके भरत-हृदयोद्गार सुनने लीन है॥ भरत पृ. ५९

आचार्य तुलसी बाह्य प्रकृति की अपेक्षा आंतरिक प्रकृति-चित्रण में अधिक सफल रहे हैं। सीता को वन में छोड़कर सारथी राम के पास आकर सारी स्थिति का वर्णन करता है। सारथी के मुख से उद्गीर्ण सीता की आत्मतेज युक्त आंतरिक प्रकृति का चित्रण करने में कवि की लेखनी अत्यन्त वेधक और मार्मिक हो गयी है—

जाकर उनसे लोहा लूंगी, सब प्रश्नों के उत्तर दूंगी,
पूछूंगी क्यों ऐसे छोड़ा? क्यों मेरे से नाता तोड़ा?
वे पुरुष-पात्र कहलाते हैं, अबला को यों ठुकराते हैं,
क्या पैरों की दासी नारी, जो सहे यातनाएं सारी॥ परीक्षा पृ. ७९

दुर्घटना में स्वर्गस्थ होने पर सम्पत कठौतिया की आंतरिक प्रकृति का कवि ने आशुकविता में जो चित्रण प्रस्तुत किया है, वह भाषा-सौष्ठव के साथ नाद-सौन्दर्य का सुंदर उदाहरण है—

युवक रत्न सम्पत कठौतियो, दुर्घटना रो ग्रास बण्यो,
समुदाणी संचित कर्मोदय, होतब पर विश्वास बण्यो।
मितभाषी हो, मृदुभाषी हो, कर्मठ हो, अतिधीरो हो,
दृढ़निश्चय हो, स्थिरनिर्णय हो, बो समाज रो हीरो हो॥

कवियों ने प्रकृति का अनेक रूपों में उपयोग किया है, जैसे—आलम्बन के रूप में, उद्दीपन के रूप में, उपमान के रूप में, मानवीकरण के रूप में, प्रतीक के रूप में, उपदेशिका के रूप में और रहस्यात्मक रूप में।

आलम्बन रूप प्रकृति

जहां प्रकृति का विशुद्ध चित्रण होता है, वहां आलम्बन रूप प्रकृति होती है। आलम्बनात्मक प्रकृति चित्रण काव्य को सशक्त, चित्ताकर्षक और गौरवपूर्ण बनाता है। आलम्बन के रूप में आचार्य तुलसी ने प्रकृति के सुंदर, मनोहारी और प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किए हैं। छायावादी शैली में सहज प्रसन्न भाषा में वर्षा ऋतु का वर्णन वर्षा ऋतु का साक्षात् कराता है। बादलों के आगमन और वर्षा से उत्पन्न हरियाली का चित्रण सबके मन को आकृष्ट करने वाला है—

घनघोर घटाएं घिर-घिर, करती थीं रह-रह गर्जन,
चपला की चंचलता से, उन्मत्त बना देती मन।
वे चातक मोर पपीहे, मधुर स्वर शोर मचाते,
मानो प्रेरित वर्षा से, चक्री की स्तवना गाते॥
सावन की पावन झड़ियां, देतीं धरती को जीवन,
प्रस्फुटित नवांकुर होते, आनंदित सबका कण-कण।
वनराजी झूम-झूम कर, मानो नव नृत्य दिखाती,
बहती कल-कल सरिताएं, मृदुतर संगीत सुनातीं॥ भरत पृ. १६०

कवि ने शरद्ऋतु में होने वाले परिवर्तनों को कलात्मक प्रस्तुति दी है। शरद्ऋतु में निरभ्र आकाश के वर्णन में कवि-कौशल दर्शनीय है—

- शरद ऋतु की सुखद शीतल, पवन लहरी चल रही।
  विगत घन, अति शुभ्र अम्बर, पंक विरहित थी मही॥
- नाति शीत न चाति ऊष्मा, सम अवस्थित भाव में।
  सर्वथा ज्यों लीन रहते, संत सहज स्वभाव में॥ परीक्षा पृ. ९३

बसन्त, पावस और शरद्ऋतु पर सब कवियों का ध्यान आकृष्ट हुआ पर कवि तुलसी ने ग्रीष्म ऋतु का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली ढ़ंग से किया है। राजस्थानी भाषा में राजस्थान की गर्मी का साक्षात् चित्र निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है—

ज्येष्ठ महीनो ऋतु गर्मी नो, मध्यम सीनो अब हठभीनो।
लू री झालां अति विकरालां, वह्नि-ज्वालां ज्यूं चोफालां॥
भू ज्यूं भट्टी तरणी तापै, रेणू कट्टी तनु संतापै।
अजिन रु अट्ठी मट्टी व्यापै, अति दुरघट्टी घट्टी मापै।

स्वेद-निझरणां रूं-रूं झारै, चीवर चरणां लुह-लुह हारै।
अंगे उघड़े फुणसी-फोड़ा, भूं पर उधड़ै ज्यूं भूंफोड़ा॥

कालू भा. १ पृ. २३७

ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्डता का वर्णन भरत की प्रकृति के साथ तुलनीय है—

- उत्तप्त तवे -सा धरणी-तल, कूपों का जल अतीव शीतल,
  बतलाता ऊपर से कठोर, अंतस्थल में चक्री कोमल।
  रवि की प्रचण्ड किरणें उनके, उग्रातप को दिखलाती थीं,
  कोई न सामने दृष्टि करे, बस यह सबको सिखलाती थीं॥ भरत पृ. १६०

तेरापंथ धर्मसंघ का विशिष्ट उत्सव मर्यादा महोत्सव के नाम से प्रसिद्ध है। इस अवसर पर प्रत्येक प्रान्त के लोग सम्मिलित होते हैं। साधु-साध्वियों का एक बड़ा समुदाय आचार्य की सन्निधि में एकत्रित होता है। मर्यादा महोत्सव की छह ऋतुओं से तुलना कवि की कल्पना शक्ति की प्रखरता को प्रकट करने वाली है। भावपूर्ण एवं माधुर्य गुण युक्त पदावली में वर्षाऋतु के माध्यम से मर्यादा महोत्सव का वर्णन सर्वथा मौलिक, अद्वितीय और अनुभूतिपरक है—

गंगा, जमना और सुरसती, उछल-उछलकर गलै मिलैं,
विरह-ताप-संताप भुलाकर, रूं रूं हर्षांकूर खिलै।
गहरो रंग हृदय में राचै, नाचै मधुकर कर गुंजारो,
तेरापंथ पंथ रो प्रहरी, म्हामोच्छव लागै प्यारो॥

कालू भा. २ पृ. १४७

कवि का अधिक प्रवास राजस्थान में रहा अत: ग्रीष्म ऋतु की भांति वहां की शीत ऋतु का भी सजीव और यथार्थ चित्र कवि ने उकेरा है। हेमन्त और शिशिर ऋतु में जब बर्फीली हवाएं चलती हैं तो हाथ पैर की बिवाइयां फट जाती हैं। अत्यधिक सर्दी से चमड़ी जलकर काली पड़ जाती है। नाक और आंख से पानी झरने लगता है। इन पंक्तियों को पढ़कर लगता है मानो शीत ऋतु सामने आकर खड़ी हो गई है—

थर-थर कर कांपै सारो तन, दिन भर नहिं आलसड़ो जावै,

---

१. पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ, पृ. ४००।
२. आचार्य तुलसी ; ज्योति जले: मुक्ति मिले, पृ. ८८।

सिरखां सोड़ां में भी सी-सी, करतां नींदड़ली उड़ ज्यावै।
जदि हाथ रहै सिरखां बाहर, मिनटां में बणज्या ठाकर सो,
'हा! हा! बो के करतो होसी', मुख निकल पड़ै रव साकर सो।
हाथां पैरां में ब्याऊड़ी, फाटै ज्यूं पर्वत खोगालां,
कालूंठो चेहरो पड़ ज्यावै, जल ज्यावै चमड़ी सीयालां।
बेलूं-टीलां री बा धरती, पग धरत पराया सा पड़सी,
झरती आंख्यां झरती नाकां, कर शाखा करड़ी कंकड़ सी॥

कालू भा. १ पृ. १८७, १८८

मेवाड़ की पहाड़ियों एवं वहां की प्राकृतिक स्थिति का वर्णन सहृदयों के मानस में आह्लाद पैदा करने वाला है—

मोटा-मोटा है शैल जठै, वृक्षावलियां स्यूं हर्‍या-भर्‍या,
नदिया नालां रो पार नहीं, तालाब जमीं स्यूं जड्या पड्या।
मौसम-मौसम में लड़ालुम्ब, बै खेत खड्या लहरावै है,
कोयलियां कूजै कुहुक-कुहुक, पथिकां रो स्वागत गावै है॥ मगन पृ. १

निम्न पंक्तियों में सघन वन की भयंकरता का जीवन्त चित्र दर्शनीय है—

वन विड़ाल श्रृगाल शूकर, हैं परस्पर लड़ रहे,
द्विरद मद झरते कहीं, दंतूशलों से भिड़ रहे।
प्रबल पुच्छाच्छोट करते, कहीं मृगपति घूमते,
भेड़िए भालू भयंकर, घोर श्वापद झूमते॥ परीक्षा पृ. ६६

बसन्त का सुहावनापन, लहलहाती हुई आम्रमंजरी, सुरभित कुसुम उन पर मंडराते भ्रमर तथा प्रकृति की हरीतिमा ने कवि के हृदय को आकृष्ट किया है—

सहकारों पर पिक कू-कू कूज रही है।
पुष्पों पर मधुप मंडली गूंज रही है॥ भरत पृ. १५९

उद्दीपन रूप प्रकृति

मिलन या वियोग की स्थिति में प्रकृति के कण-कण में अपनी भावनाओं का प्रतिबिम्ब देखना प्रकृति का उद्दीपन रूप है। उद्दीपन में प्रकृति स्वतंत्र न होकर मानव मन के अनुसार प्रकट होती है। वियोग की स्थिति में शीतल चन्द्रमा भी सूर्य के समान उत्तप्त तथा दिशाएं भी आग बरसाती हैं। कुंदनमल

जी चोरड़िया के असामयिक निधन पर कवि प्रकृति का सहारा लेकर विधि को उपालम्भ देते हुए कहते हैं—

असमय में ही झड़ पड्यो, कुंदन कोमल फूल।
खिण-खिण जुग-जुग खटकसी, आ विधना री भूल॥

युद्ध में विकराल हिंसा देखकर सूर्य भी गमगीन होकर अस्त होने लगा। सूर्य की उद्दीप्त अवस्था का कितना सुंदर चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है—

मानवों को मारते शस्त्रास्त्र थकते थे नहीं,
दृश्य दारुण सदय कोई, देख सकते थे नहीं।
सूर्य भी अति खिन्न हो, ले ओट पश्चिम को गया,
दुखी दिल की दिखा ज्वाला, क्लान्त होकर सो गया॥ भरत पृ. ९१

भरत के द्वारा चक्र चलाने पर उसके अन्याय को देखकर बाहुबलि ने उस पर प्रहार करने के लिए मुष्टि ऊपर उठाई। उस स्थिति में प्रकृति में हुए उद्दीपन को कवि के कल्पना प्रकर्ष में पढ़ा जा सकता है—

- मंदराद्रि विचलित हुआ, अविचल धृति को छोड़।
  मानो अम्बुधि अवनि पर, झपटा सीमा तोड़॥
  थर-थर थर्राती धरा, कम्पित है शशि अर्क।
  नीली झांई व्योम पर, देख अनिष्ट उदर्क॥
  दशों दिशाओं में तुमुल, भीषण हाहाकार।
  होने वाला है अभी-अभी भरत-संहार॥ भरत पृ. १३७

आध्यात्मिक संत होने के कारण आचार्य तुलसी के साहित्य में प्रकृति के उद्दीपन रूप प्रणय का वर्णन बहुत कम मिलता है।

प्रकृति का मानवीकरण

अभिव्यक्ति को कलापूर्ण बनाने के लिए प्रकृति को चेतन सत्ता के रूप में निरूपित करना प्रकृति का मानवीकरण है। प्राकृतिक रूपों, दृश्यों, बिम्बों और क्रियाओं में मानवीय रूपों, दृश्यों, बिम्बों और क्रियाओं का आरोपण प्रकृति का मानवीकरण कहलाता है। कवि के संवेदनशील मानस को प्रकृति मानव के समान हंसती, गाती, चलती, फिरती एवं बात करती हुई प्रतीत होती है। आचार्य तुलसी ने अपनी अलौकिक शक्ति से प्रकृति को कहीं नारी के रूप में रूपायित किया है तो कहीं पुरुष रूप में। उन्होंने प्रकृति पर मानवीय

भावनाओं का आरोप किया है। प्रकृति को समानुभूति के रूप में प्रस्तुत करने के कारण उनकी प्रकृति भी मानव के सुख में सुखी तथा दु:ख में दु:खी होती है। वृक्ष, नदी, रात्रि आदि प्राकृतिक उपादान मानव के समान आचरण करते हुए दिखाई पड़ते हैं। निम्न उदाहरणों में प्रकृति का मानवीय रूप दर्शनीय है—

- देखो नरवर! यह भास्कर भी, चरणों में शीष झुकाता है।
  मीठे कंठों से विहग-वृंद, रह-रह गुण-गौरव गाता है॥ भरत पृ. ६०
- सरिताएं कलकल कर बहतीं, मानो पथिकों से वे कहतीं।
  चलते जाओ, चलते जाओ, पथ में न रुको, बढ़ते जाओ॥ भरत पृ. ६५
- नभ से उड़ते हैं विहग, कसते नृप पर व्यंग्य।
  मतिशाली भरतेश! क्यों, हुआ रंग में भंग॥ भरत पृ. ६०
- सघन शिलोच्चय ब्याज स्यूं रे, ऊंचा कर-कर हाथ।
  चंचल दल शिखरी मिषे रै, दै झाला जगनाथ॥ कालू भा. १ पृ. १२२

अत्यधिक गर्मी को प्रकट करने में विचलन से युक्त कथ्य की प्रभान्विति द्रष्टव्य है—

- इत गरमी चित्तौड़ की, बेशर्मी में लीन। कालू भा. २ पृ. १६३

शरदऋतु का मानवीकरण मन को आकृष्ट करने वाला है—

- धान्य पकाती धरा धराधिप को, करने मंजुल उपहार,
  सजा रहा अम्बुधि उपढ़ौकन, महंगे मोती कर तैयार।
  वह सबका आरोग्य बढ़ाती, नव शोणित का कर संचार,
  भरती है माधुर्य फलों में, हो जाता प्रमुदित संसार॥ भरत पृ. १६१

कहीं-कहीं प्रकृति का मानवी रूप शब्द-चमत्कार से बोझिल भी हो गया है—

तमा अमा की यामिनी, पहने कपड़े श्याम। परीक्षा पृ. ३४

आचार्य तुलसी प्रकृति की हर वस्तु से एक नयी प्रेरणा ग्रहण कर लेते थे। निर्झर स्वयं कवि को प्रेरणा देते हुए कहता है कि मुझसे तीन बातें सीखो—१. निर्मलता, २. गतिशीलता, ३. सतत उपयोगिता—

अभ्यागत स्वागत-सुस्वागत, तुम आदर्श मुझे मानो।
निर्मल हूं, गतिशील सदा हूं, उपयोगी हूं पहचानो॥ सम्बोध पृ. १२२

लताओं के द्वारा पथिकों के श्रम का अपनयन कवि की तूलिका से

चित्रित हुआ है—

गुच्छलता स्यूं वच्छलता स्यूं, पथ श्रम पथिक निवारे। मगन पृ. ७

सीता-वियोग के बाद राम की स्थिति देखकर प्रकृति के कण-कण में भी उदासी झलकने लगी—

झलक रही थी स्पष्ट उदासी, कानन के भी आनन में।
सीता! सीता! सीता! करते, राम घूमते वन-वन में॥ परीक्षा पृ. ८७

यहां कानन के साथ आनन शब्द के प्रयोग से उक्ति-वैचित्र्य उत्पन्न हो गया है। साथ ही तीन बार सीता की पुनरावृत्ति से राम की जो व्यथा प्रकट हुई है, वह सीता शब्द के एक बार उच्चारण से नहीं होती। बसन्त ऋतु नव प्रकृति के द्वारा भरत का अभिवादन कर रही है—

जागी वनस्थली मानो ले अंगड़ाई,
फिर जीर्ण-शीर्ण पत्तों की हुई सफाई।
हंसती-खिलती मृदु नई कोंपलें आई,
मानो कहती थीं लो सम्राट! बधाई॥ भरत पृ. १५९

पहाड़ पर गुफाओं में होने वाली प्रतिध्वनि के लिए कवि कल्पना करते हैं—

प्रतिनादित होते गिरिगह्वर, हो मिला रहें ज्यों स्वर में स्वर। भरत पृ. ६५

छापर के माणकचंदजी चोरड़िया के दिवंगत होने पर विधि को राजस्थानी सम्बोधन 'डाबड़ी' से सम्बोधित करते हुए कवि कहते हैं—

विधना बणी विरंग, क्रूरता इसी करी क्यूं?
असमय लियो उठाय, डाबड़ी! नहीं डरी तूं॥[१]

उपदेशिका रूप प्रकृति

प्रकृति के विविध क्रिया-कलापों से मानव को अनेक शिक्षाएं मिलती हैं। वह मौन रूप से मानव को अनेक प्रेरणाएं देती है। प्रकृति के कण कण में कवि को नीति और उपदेश का आभास मिलता है अत: उन्होंने प्रकृति को अप्रत्यक्ष उपदेश का साधन भी बनाया है। कवि ने गहन जीवन-मूल्यों को प्रकृति के माध्यम से सरस और प्रेरक बनाकर प्रस्तुत किया है। प्रकृति के माध्यम से नीति का उपदेश उनके प्रकृति चित्रण की प्रमुख विशेषता है। प्रकृति के द्वारा मानव को अनुशासन और मर्यादा की प्रेरणा देते हुए कवि

कहते हैं—

- मर्यादा में रहने वाला, दरिया मन को भाता,
  मर्यादा में बहने वाला, झरना सदा सुहाता,
  उछल-उछलकर लहरें गातीं, मर्यादा का गान॥ नंदन पृ. ४७
- ताप छेद कस ताड़ना, सहता मिश्रित स्वर्ण।
  शुद्ध रूप में वह कभी, होता नहीं विवर्ण॥आत्मा पृ. ८९

मर्यादा और सीमा को तोड़ने वाले को प्रकृति के अप्रस्तुत विधान से प्रेरणा देती ये पंक्तियां कुछ सोचने को विवश करती हैं—

सीमा तोड़ बहे जो सागर, कहो कहें फिर किससे जाकर।
शीतल जल प्रज्वलित करे, यदि चन्द्र झरे अंगारे॥ भरत पृ. १४१

प्रकृति के उग्र रूप से भी कवि नयी प्रेरणा ग्रहण करते हैं। उनका मानना था कि लूएं और सूर्य का प्रचण्ड आतप भी शरीर के लिए आवश्यक है। ग्रीष्म ऋतु का काल्पनिक शिक्षाप्रद चित्र पठनीय है—

- चलती है गरम-गरम लूएं, मानो आरोग्य बढ़ाने को।
  गलियों तालाबों नालों का, गंदा जल पंक सुखाने को॥ भरत पृ. १६०
- चलती हवा प्रचण्ड, पत्र विटप से झड़ रहे।
  यही मिलेगा दण्ड, यदि अकड़े चक्रीश से॥ भरत पृ १६१

प्रकृति के माध्यम से कवि ने उपमा के साथ अप्रत्यक्ष उपदेश भी दे दिया है—

कुण है सरल सीक सो, कुण है वक्र बांस की जड़ सो।
कुण है कृश एरंड और, कुण है विशाल दिल बड़ सो॥
डालिम पृ. १०३

उपमान रूप प्रकृति

उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार प्रकृति से अनुस्यूत हैं। भावपक्ष को स्पष्ट, सरल, सुबोध और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कवि सादृश्यमूलक उपमानों का चयन करता है। प्रकृति से रमणीय उपमान लेकर उपमा देने में कवि सिद्धहस्त हैं। सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमान के लिए कवि ने जड़ एवं चेतन प्रकृति का भरपूर उपयोग किया है। भावोत्कर्ष के लिए जहां अनेक नए उपमानों को गढ़ा है, वहां प्रकृति के प्राचीन उपमानों को नवीन संदर्भ में प्रस्तुत कर अनूठे

सौन्दर्य की सृष्टि भी की है—

- रहणो अपणै आप में भाइ!, ज्यूं जंगल रो कैर।
  नां कोई स्यूं मित्रता है, नां कोई स्यूं बैर॥ सुधा पृ. १७
- वैताढ्य कंदरा के कपाट दृढ़ दृढ़तम।
  खुलते मानो फट पड़ा, यहां कोई बम॥ भरत पृ. ५४
- वे वृक्ष लदे फल-फूलों से।
  हो प्रकृति-नटी के झूलों से॥ भरत पृ. ६६

- चूंट चूंट कर चींट्या ज्यूं, चिंता निशि वासर चोट करै।
  दिन की भूख रात की निद्रा, मूक होठ-जुग मौन धरै॥
  कालू भा. २ पृ. १८६
- अवगुणग्राही आग्रही जन, ज्यूं जंगल की जोंक। कालू भा. १ पृ. १५२
- ज्यों हिम ऋतु की यामिनी, बढ़ते दोनों भ्रात। परीक्षा पृ. ९४

कवि ने प्रकृति के मनोरम, क्रूर और करुण तीनों रूपों का सजीव चित्रण किया है। जब सीता को राम वन में छोड़ने का आदेश देते हैं, वहां वन की भयंकरता में सावन के गरजते मेघ एवं चमकने वाली बिजली का बिम्ब द्रष्टव्य है—

- वन भयंकर शिखर उन्नत, पूर्ण तम का राज्य है,
  सघन सावन घन-घटा से, हो रहा वह प्राज्य है।
  हृदय में सौदामिनी, उत्पन्न करती सनसनी,
  चल रहा शीतल पवन ज्यों, प्रेयसी हो उन्मनी॥ परीक्षा पृ. ६५

प्रतीक रूप प्रकृति

प्रकृति के सभी पदार्थों में प्राय: किसी न किसी गुणधर्म के प्रतीकत्व की शक्ति निहित होती है। जहां कवि प्रकृति से उपादान चुनकर भावसाम्य के आधार पर चित्रण करता है, वहां प्रकृति का प्रतीक रूप में चित्रण होता है, जैसे—तेज के लिए सूर्य, प्रकाश के लिए दीप, यौवन के लिए बसन्त आदि। आचार्य तुलसी ने प्रकृति से अनेक प्रतीकों को ग्रहण किया है। यहां प्रकृति से गृहीत कुछ प्रतीकों के उदाहरण दर्शनीय हैं—

- गतिमयता निर्मलता, निर्झर सी निरमाओ हे! नंदन पृ. ३
- सिद्धान्तों पर अटल हिमालय, संघर्षों से खेला। नंदन पृ. १३०

- मेरु भले डिगे पर सीता, डिग न सकेगी प्रण से। परीक्षा पृ. ४५
- है उज्जवल इतिहास हमारा, जैसे सुरसरिता की धारा। नंदन पृ. ४१
- खिण राजी खिण में नाराजी, गिरगिट को सो रूप। शासन पृ. १५७
- कोहिनूर सो नूर। शासन पृ। १६०
- व्योम ज्यूं विशाल उज्ज्वल-फेन सो आचार। कालू भा. १ पृ. ७३

आध्यात्मिक संत होने के कारण मानव जीवन की समस्याओं और आध्यात्मिक रहस्यों को प्रकट करने में उन्हें जितना रस था, उतना प्रकृति वर्णन करने में नहीं। आचार्य तुलसी ने स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में प्रकृति का वर्णन नहीं किया लेकिन प्रकृति चित्रण के लिए चरित काव्यों में कुशलतापूर्वक ऐसे मार्मिक स्थल खोज लिए, जहां वे उन्मुक्त हृदय से प्रकृति का चित्रण कर सकें।

भक्ति के स्वर

भक्ति हृदय के उत्ताल वेग का विलोड़न है। यह भारतीय जनता के प्राणों में पुष्प में सुगंध की भांति बसी हुई है। भक्ति वाङ्मय सम्पूर्ण भारतीय-साहित्य की अमूल्य धरोहर है। काव्य-साहित्य के इतिहास में भक्ति-काल हिन्दी का स्वर्णयुग कहा जाता है। कबीर, सूर, तुलसी, मीरां, जायसी आदि कवि इसी युग की देन हैं। भक्ति संबंधी कविता एवं गीतों का सम्बन्ध बुद्धि से नहीं, हृदय से होता है अत: भक्ति संबंधी कविताओं में हृदय का आनन्द और आत्मिक शांति अधिक मिलती है। आचार्य तुलसी मानते थे कि श्रद्धा भक्ति के बिना व्यक्तित्व में परिपूर्णता नहीं आती। भक्ति भक्त के मन को आकाश की भांति विशाल, सागर की तरह गंभीर तथा मेरु की भांति उन्नत बना देती है। भक्ति के द्वारा ही आध्यात्मिक सत्य की अनुभूति की जा सकती है।

विवेकानंद के अनुसार निष्कपट होकर ईश्वर की खोज करना भक्ति है। रामचरितमानस में संत तुलसीदास जी कहते हैं कि ज्ञान और वैराग्य का आश्रय लेकर अपनी दुर्भावनाओं का उन्मूलन कर देना भक्ति है। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार भक्ति एक भावावेश की चरमावस्था है, वह हृदय के भावों की उत्ताल गति चाहती है।''[१] भक्ति के सन्दर्भ में आचार्य तुलसी का मौलिक चिन्तन पठनीय है—''मैं उस भक्ति को महत्त्व देता हूं, जिसके साथ मानसिक

स्थिरता, गम्भीरता, चिन्तन और मनन जुड़ा हो तथा जो व्यक्ति के लिए आत्मशुद्धि एवं पवित्र जीवन जीने की प्रेरणा बनती हो।''[२]

भक्ति-साहित्य में मुख्यत: संत काव्य का समावेश होता है। इस साहित्य की रचना करने वाले मुख्यत: दो प्रकार के कवि होते हैं। प्रथम वे जो संसार छोड़कर वैराग्य धारण कर लेते हैं। दूसरे वे जो संसार में रहते हुए भी समय-समय पर भक्ति के उद्‌गारों को प्रकट करते रहते हैं। गुरुदेव तुलसी उन भक्त कवियों में से थे, जिन्होंने ११ वर्ष की अल्पायु में ही संन्यास का पथ स्वीकार कर लिया था। यही कारण है कि उनके भक्ति गीतों में वैराग्य एवं निर्वेद का पुट अधिक है। ज्ञान में आस्था टिकी होने पर भी गुरुदेव तुलसी भक्ति को भी उतना ही सम्मान देते थे। उन्होंने ज्ञान, कर्म और भक्ति इन तीनों को समान स्थान दिया। किसी एक को प्रमुख या दूसरे को गौण नहीं किया। वे मानते थे कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र की समन्वित उपासना से ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है। वीतराग प्रभु की प्रार्थना करते हुए वे कहते हैं—

ज्ञान से निज को निहारें, दृष्टि से निज को निखारें।
आचरण की उर्वरा में, लक्ष्य तरुवर लहलहाएं॥ शासन पृ. १४

गुरुदेव तुलसी ने भक्तिरस में डूबकर जो कुछ लिखा, उसने उन्हें मीरां और तुलसी के समकक्ष खड़ा कर दिया। उनके भक्तिगीत श्रोताओं और पाठकों में भी भक्तिरस का संप्रेषण करते हैं। उनकी भक्ति में दीनता और याचना नहीं, पुरुषार्थ और स्वाभिमान की झलक है। वे आराध्य के प्रति आत्मसमर्पण करते हैं पर उनके प्रति उनमें अंधविश्वास नहीं है। वे भावपूजा में तन्मय दिखाई पड़ते हैं पर जड़-पूजा के विरोधी हैं। भक्ति भावना से परिपूर्ण उनके गीत स्वान्त: सुखाय के साथ परत: सुख भी उत्पन्न करने वाले हैं। उनका भक्तहृदय जब अपने आराध्य का भावपूर्ण गुणगान करता है तो गायक एवं श्रोता के दु:ख, दैन्य, ताप, शोक आदि दोष समाप्त हो जाते हैं तथा आत्मा के भीतर आनंद, शक्ति एवं निर्मलता का झरना प्रवाहित होने लगता है। उनकी भक्ति में न अधिक भावुकता है और न ही तर्क के तीखे बाण। उनकी अटल आस्था और भक्ति को न आंधी उखाड़ सकती है और न ही जल प्लावित कर सकता है। उनके भक्तिरस में उन्मत्तता नहीं, मस्ती है। उच्छृंखलता नहीं, स्वतंत्रता है। अंधानुकरण नहीं, विवेक का बंधन है। उनके गीतों में जिस

भक्तिरस का उद्रेक हुआ है, वह हाट या बाजार में नहीं बिकता बल्कि अंत:करण से फूटता है। भक्ति के क्षेत्र में आत्मकर्तृत्व का स्वर मिलाकर उन्होंने कविता में असाधारण शक्ति भर दी। उनकी भक्ति का रूप कहीं-कहीं इतना सूक्ष्म हो गया है कि प्रत्यक्ष रूप में उसे पकड़ा नहीं जा सकता।

जैसे बूंद अपने अस्तित्व को सागर में विसर्जित करती है, वैसे ही भक्त अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को आराध्य में समर्पित कर देता है। आचार्य तुलसी के मन में अपने गुरु कालूगणी के प्रति एकनिष्ठ श्रद्धा और भक्ति के भाव थे। उनकी स्तुति में लिखे गए कालूयशोविलास काव्य में उनकी भक्ति का उद्रेक स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है। भक्ति रस में डूबकर उन्होंने जो कुछ लिखा, उसमें उन्होंने न अलंकार की चिंता की, न रसविधान की, न उक्ति-वैचित्र्य पर ध्यान दिया और न ही भाषा-सौष्ठव पर। उनकी भक्ति में तन्मयता की चरम स्थिति का बोध मिलता है। कालूयशोविलास ग्रंथ की प्रशस्ति गाथा में वे इसी बात को प्रकट करते हुए कहते हैं—

ढ़ाल ढ़ाल में भालज्यो, भव्य भक्ति रो भाव,
मत ना को संभालज्यो, प्रतिभापूर्ण प्रभाव।
प्रति प्रकरण में परखज्यो, शिक्षा रो संचार,
पिण कोई मत निरखज्यो, अलंकार टंकार॥ कालू भा. २ पृ. २५२

आचार्य तुलसी निर्गुण भक्ति के उपासक थे। उनके भक्ति गीतों में श्रद्धेय के प्रति सहज और नैसर्गिक एकात्मकता और समर्पण है। उन्होंने पंच परमेष्ठी एवं अपने पूर्वज गुरुओं का पतित पावन, करुणामय, दीनबंधु, विशालहृदय एवं शक्तिसम्पन्न स्वरूप उजागर करके उन आदर्शों के अनुरूप बनने की तीव्र अभीप्सा व्यक्त की है—

- वीतराग हो, समदर्शी हो, समता -रस संचारो।
  'तुलसी' तारण तरण तीर्थपति, अपणो विरुद विचारो॥ शासन पृ. ८
- भावभीनी वंदना भगवान्!, चरणों में चढ़ाएं।
  शुद्ध ज्योतिर्मय निरामय, रूप अपने आप पाएं॥ शासन पृ. १४

अपने इष्ट के प्रति निश्छल, निर्व्याज और अनौपचारिक समर्पण ही उनके भक्ति गीतों का अद्‌भुत वैशिष्ट्य है। अपने आराध्य की स्तवना में एकाकार कवि की आत्मानुभूति इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

- नस-नस में बस रहे हो, रस ज्यों कवित्व में।
  भगवान्! भक्त 'तुलसी', के तुम ही राम हो॥ शासन पृ. २६
- एकमना हो पल-पल छिन-छिन, ध्याऊं ध्यान तुम्हारो।
  सबदर्शी समदर्शी प्रभुवर!, आंतर भाव निहारो॥ शासन पृ. १७
- भक्ति भरा मन मेरा, तोड़ रहा घेरा।
  तन्मय बनकर 'तुलसी', करूं सदा संगान॥ शासन पृ. २८
- प्राण समर्पण कर प्रभु पथ पर, आगे चरण बढ़ाएं। नंदन पृ. ५७

कवि को ईश्वर-मिलन की उत्कट प्यास है, पर उनके विरह में आंसू बहाना पसंद नहीं। सिद्धस्तवना में प्रभुदर्शन की तड़प नपे-तुले शब्दों में पठनीय है—

एकर भी क्षण-भर भी साहिब!, साक्षात्कार कराओ,
तो मन चाह्या फलै मनोरथ, लाग्यो हृदय-उम्हावो।
उमगावो, पर नहिं मन घबराट मचाऊं॥ शासन पृ. ९

कवि तुलसी उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते केवल वीतराग प्रभु की भक्ति में तन्मय रहना चाहते हैं। उनके हृदय की अनंत श्रद्धा गीत के इन स्वरों में उभरती है—

- हृदय पुकारे, नयन पुकारे, जिन पर हमने तन-मन वारे। नंदन पृ. १५०
- श्रुति में स्मृति में संस्कृति में।
  तुम हो मेरी कृति-कृति में॥ नंदन पृ. १९१
- जब-जब स्मृति में आए, आस्था दीपक जल जाए। शासन पृ. ५६
- पल पल रटन लगावै, ओ म्हांरो मन कीर। शासन पृ. २७

आचार्य तुलसी ने अपनी सहज अभिव्यक्ति के द्वारा आराध्य के प्रति जिस अटूट विश्वास एवं श्रद्धा का प्रकाशन किया है, वह भक्त हृदय की अमूल्य धरोहर है। कवि जब अपने इष्ट की आराधना में लीन रहते हैं, तब उनके सारे कष्ट समाप्त हो जाते हैं तथा अग्रिम पथ आलोक से भर उठता है—

जादू अजब नाम में, सुमिरन से, हर आधि-व्याधि टलती।
अग्रिम पथ प्रशस्त हो जाता, सपनों की पौधें फलतीं॥ नंदन पृ. २३

आचार्य तुलसी मानते थे कि शक्ति के अनुसार ही भक्ति संभव है। शक्ति के बिना की गयी भक्ति फलदायी नहीं हो सकती—

रहे भक्ति में शक्ति संतुलन। श्रावक पृ. १६

आचार्य तुलसी की भक्तिभावना में शान्तरस का उद्रेक है। वे मानते हैं कि नश्वर मानव जीवन का सही उपयोग तभी संभव है, जब उसे भगवद्‌भक्ति में लगाया जाए। आत्मविभोर होकर आत्मदर्शन की प्रेरणा देते हुए कवि कहते हैं—

- भर्‌यो अनन्त अखूट खजानो, गाफिल! थांरै घर में।
  क्यूं न निहारै, बारै बारै, क्यूं भटकै दर-दर में॥ सोम पृ. १७
- बदल रही है प्रतिपल दुनिया, ज्यों बादल की छाया।
  वैभाविक तत्त्वों को तूने, अपना कह अपनाया॥ अणु पृ. ९३

व्यक्ति चंचलतावश स्वयं को नहीं जानता इसीलिए पग-पग पर दुःख का सामना करता है। एकाग्रता और संयम की साधना सधते ही सुख का स्रोत खुल जाता है।

चंचल मन ही हर मानव को, दर दर भटकाता है।
मन पर संयम करने वाला, पग-पग सुख पाता है॥ नंदन पृ. ४९

संसार की असारता, क्षणभंगुरता एवं संबंधों की अनित्यता का चित्रण आचार्य तुलसी की शान्ता भक्ति के प्रति झुकाव को अभिव्यक्त करता है। संसार की क्षणभंगुरता और अनित्यता का सुंदर और सटीक वर्णन दूसरों की अनुभूतियों को भी तरल बनाए बिना नहीं रहता—

- पतो नहीं पल रो अठै, तू देवै दढ़ नींव।
  थांरी हुंसियारी इसी, रे जड़ चेतन जीव!॥ डालिम पृ. २०९
- मन-मोहन परिजन सघन, क्षणभंगुर है सर्व।
  अभ्र-पटल ज्यूं पलटै पल में, मिथ्या मन में गर्व॥ चंदन पृ. ६८
- अपना-अपना कहता किसको, अपनी है ना काया।
  भौतिक सुख-सुविधा में निरुपम, हीरा जन्म गंवाया॥ अणु पृ. ९३

आचार्य तुलसी की भक्ति का संबंध केवल वाचिक स्तुति से नहीं, अपितु आराध्य के ऊंचे आदर्शों को स्वीकारने की प्रतिबद्धता से है। उन्होंने अपने इष्ट की केवल प्रशंसात्मक स्तवना ही नहीं की, बल्कि उनके जीवन-दर्शन एवं सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया है। महावीर के महान् सिद्धान्त अनेकान्त की स्मृति के बहाने उनकी स्तवना करते हुए वे कहते हैं—

अनेकान्त आदर्श दिखाया, बौद्धिक जगत् जगाने को।

उत्पीड़ित अतिशोषित मानवता का मान बढ़ाने को॥ शासन पृ. ३४

कवि ने आराध्य के प्रति उद्‌गीर्ण भक्ति गीतों में जीवन-दर्शन के साथ उनके जीवन के प्रेरक एवं विशिष्ट प्रसंगों का संकेत भी कर दिया है। इससे न केवल अतीत की सुरक्षा हुई बल्कि अनुयायियों को जीवंत प्रेरणा भी मिल गयी। महावीर के जीवन-प्रसंगों को गुम्फित करते हुए कवि कहते हैं—

- काली करतूतें संगम की, बीस बार मरणान्तक धमकी।
  बाल नहीं बांका कर पाई, शान्त हुआ तूफान॥
- क्रूर चंडकौशिक ने काटा, सुनकर छा जाता सन्नाटा।
  करुणा भरी दृष्टि से प्रभु ने, उसे दिया वरदान॥ शासन पृ. २९

गुरुदेव तुलसी का स्पष्ट मंतव्य था कि किसी भी सांसारिक कामना या लौकिक अभिसिद्धि के लिए आराध्य की स्मृति करना या उपासना करना एक प्रकार का व्यापार है तथा अपनी आत्मा के साथ धोखा है। उन्होंने भगवान् को समर्पण भाव से हृदय की पूरी तन्मयता से पुकारा किन्तु किसी मांग के साथ नहीं। वे कहते थे—"भौतिक समृद्धि तथा शारीरिक और मानसिक समाधि तो भक्ति का प्रासंगिक फल है। भक्ति का शुद्ध उद्देश्य है—आत्मशक्ति का जागरण, कषाय का उपशमन, लघुता से महानता की ओर प्रयाण तथा इष्ट के प्रति तादात्म्य भाव। महावीर की स्तवना करते हुए उनका भक्त हृदय यही याचना करता है—

- तप-संयममय शुभ साधन से, आराध्य-चरण आराधन से।
  बन मुक्त विकारों से सहसा, अब गीत विजय के गाएं हम॥
  शासन पृ. ३५
- आधि-व्याधि की माया, मिटे प्रेत-छाया।
  आत्मशक्ति जग जाए, लघु भी बने महान॥ शासन पृ. २८

काम, क्रोध और लोभ आदि विकारों को भगवद्‌भक्ति से ही दूर किया जा सकता है। भक्ति के मार्ग में अहंकार और ममकार— ये दोनों बाधक तत्त्व हैं। आचार्य तुलसी का स्पष्ट मंतव्य था कि जब तक अहंकार और ममकार का त्याग नहीं होगा, व्यक्ति अपने कर्तृत्व के अहं को नहीं भूलेगा, तब तक भक्ति में लीनता नहीं आ सकेगी। समर्पण की रसमय अभिव्यक्ति द्वारा भक्तों को प्रतिबोध देते हुए वे यही स्वर गुनगुनाते हैं—

- अरिहंत शरण में आज्या, समता रो स्रोत बहाज्या।
  तूं अपणो आपो पाज्या, तव-मम रो भेद भुलाज्या॥ सुधा पृ. ११
- शान्तरस सरस नस-नस में। शासन पृ. ४६

भक्ति का निष्काम रूप आचार्य तुलसी के काव्य में पदे-पदे पठनीय है। उनकी स्तवना, स्तुति, अर्चना और भक्ति निर्भार होने की है, कुछ प्राप्त कर भारी होने की नहीं। अंतिम तीर्थंकर की स्तवना करते हुए वे जिस उच्च आदर्श की कामना करते हैं, वह भक्ति के क्षेत्र में अनूठी याचना है—

- यश-लोलुपता पद-लोलुपता,न सताए कभी विकार-व्यथा,
  निष्काम स्व-पर कल्याण काम, जीवन अर्पण कर पाएं हम।
  महावीर तुम्हारे चरणों में, श्रद्धा के कुसुम चढ़ाएं हम,
  ऊंचे आदर्शों को अपना, जीवन की ज्योति जगाएं हम॥
  शासन पृ. ३५
- लो जैन-जगत के तीर्थंकर, मेरा प्रणाम लो।
  दो वीतरागता का वर, वंदन निष्काम लो॥ शासन पृ. १५

आचार्य तुलसी अपने शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए भगवत्स्तुति करते हैं। तार्किक युग में भी अपने इष्ट से अटल आस्था की मांग करते हुए वे भीतर के राम को जगाने की कामना करते हैं—

- आस्था दो हे स्वाम!, संघ तरुवर सरसाओ हे!
  जन-जन के तुम राम, हृदय का राम जगाओ हे!॥ नंदन पृ. ३
- तुम जनमे श्रद्धा के युग में, हम हैं बौद्धिक तार्किक युग में।
  श्रद्धा तर्क समन्वय का संगीत सुनाओ हे॥ नंदन पृ. ३

कवि की अर्चना में अखंड आत्मविश्वास और अहेतुकी भक्ति है। उनकी भक्ति भरी पुकार में चंचलता और बालकपन नहीं, अपितु प्रौढ़ता है। अपने प्रथम गुरु आचार्य भिक्षु की स्तवना में उनकी अद्‌भुत मांग प्राणों में पुलकन भरने वाली है—

आग्रहहीन गहन चिंतन का, द्वार हमेशा खुला रहे,
कण-कण में आदर्श तुम्हारा, पय मिश्री ज्यों घुला रहे,
जागें स्वयं जगाएं जग को, हो यह सफल हमारा नारा,
प्रभो! तुम्हारे पावन पथ पर, जीवन अर्पण है सारा,

बढ़े चलें हम रुकें न क्षण भी, हो यह दृढ़ संकल्प हमारा॥ शासन पृ. ४७

कवि की भक्ति राग और द्वेष से प्रभावित नहीं है। वे वीतरागी बनने के लिए वीतराग की उपासना करने की बात कहते हैं—

तुमसे न राग रत्ती, क्यों द्वेष और से?
यह वीतरागता तेरी, मेरा विश्राम हो॥ शासन पृ. २६

भक्त भगवान् के समक्ष अपनी कमजोरी प्रकट करके निश्चिंत हो जाता है। छद्मस्थ होने के कारण आचार्य तुलसी अपने मन को पूर्णतया निर्मल और स्वच्छ नहीं मानते। वे आराध्य की भक्ति में इसलिए लीन रहना चाहते हैं, जिससे मानसिक पावित्र्य को साधा जा सके। आराध्य के समक्ष अपनी भक्ति का प्रयोजन प्रकट करते हुए वे कहते हैं—

मन चंचल है और मलिन है, ओ है धीठ धुतारो।
सब कुछ है तब ही तो तेडूं, सकरुण दृष्टि निहारो॥ शासन पृ. ८

आराध्य की आराधना में मन भक्ति में लीन रहे, वाणी प्रभु के गुणों का उच्चारण करती रहे तथा तन उसी में तन्मय रहे, यही भाव उनके भक्ति गीतों में स्थान-स्थान पर मुखरित हुए हैं—

हे प्राणदेवते! तेरी, ज्यों-ज्यों स्मृति हो रही।
मेरी रसना रस-प्यासी, वाचाल हो रही॥ नंदन पृ. ७५

वीतराग-स्तुति के प्रसंग में उनकी शब्दावलि की संगीतमयी गति और प्रवाह देखने योग्य है—

- सब भार हरूं, उपहार करूं, यह मन-मंदिर प्रभु मेरा। शासन पृ. ३२
- दर्श हित क्षण-क्षण पलक-पल, तड़पती यह भक्त काया। शासन पृ. २३

वेधी भक्ति का एक रूप है—प्रभु के साथ तादात्म्य अर्थात् 'देवो भूत्वा देवं यजेत्।' गुरुदेव तुलसी ने आत्मकर्तृत्व के माध्यम से इस स्वर को बहुत प्रखर किया, वे सदैव भक्त बनकर भक्ति करते रहना ही नहीं चाहते। उनका उद्देश्य था—भक्त से भगवान् बनना। अणुव्रत प्रार्थना में उन्होंने इसी स्वर को मुखर किया है—

- प्रभु बनकर के ही हम प्रभु की, पूजा कर सकते हैं। अणु पृ. १५

सामाजिक दायित्व बोध से, नैतिक बल फिर जागे।
आध्यात्मिक बल का संबल पा, मानव मूर्च्छा त्यागे॥ अणु पृ. ११२

कवि के भक्ति गीतों में दैन्य नहीं, अपितु अटल आत्मविश्वास अभिव्यक्त हुआ है। अखण्ड आत्मविश्वास और अहेतुक भक्ति के बिना कवि इतने खुले शब्दों में अपनी प्रस्तुति नहीं दे सकते थे—

प्राणों की परवाह नहीं है, प्रण को अटल निभाएंगे,
नहीं अपेक्षा है औरों की, स्वयं लक्ष्य को पाएंगे,
एक तुम्हारे ही वचनों का, भगवन्! प्रतिपल सबल सहारा॥
प्रभो! तुम्हारे पावन पथ पर, जीवन अर्पण है सारा,
बढ़ें चले हम, रुकें न क्षण भी, हो यह दृढ़ संकल्प हमारा॥ शासन पृ. ४७

ज्ञानाश्रयी भक्ति के समर्थक होने के कारण आचार्य तुलसी प्रतिमा-पूजा के पक्षधर नहीं थे। मंडनात्मक नीति के प्रवक्ता होने के कारण उन्होंने कबीर की भांति कड़े शब्दों में बाह्य पूजा एवं क्रियाकाण्डों का विरोध तो नहीं किया पर लोगों के अंधविश्वास और मूढ़ता पर दर्द अवश्य प्रकट किया। आचार्य तुलसी मंदिर में वीतराग प्रभु की मूर्ति की सजावट और आडम्बर देखकर चुप नहीं रह सके। स्वयं भगवान् को सम्बोधित कर कितनी सटीक भाषा में वे प्रश्न पूछ बैठे—

- स्वच्छ सुरभित सलिल से, नहला तुम्हें निर्मल बनाते,
  मिष्ठ नव-नव भोज्य भगवन्, बिन बुभुक्षा जन खिलाते।
  कलित कोमल कुसुम कलिका, भेंट नव नेवज चढ़ाते,
  सुरभि धूप, सुरूप चन्दन, चरच सुन्दरता बढ़ाते।
  वीतराग! विडम्बना-सी, देख दिल में दर्द छाया॥ शासन पृ. २३
- बाह्याडम्बर और बवंडर, कदै न थांरै दाय है,
  तो क्यूं नाना भूषण स्यूं आ, भूषित कल्पित काय है,
  सझे सवारी व्योमभेदि, बाजां की धों धुंकार लो॥ डालिम पृ. ५२

कवि ने ईश्वर के प्रति होने वाले प्रपंचों को चुनौती दी है। चैतन्यमय सत्ता को पाषाणमय देखकर उनका अन्तर्द्वन्द्व कितने सशक्त स्वरों में उभरा है—

---

१. प्रेमचन्द; कुछ विचार, पृ.३।
२. कालिदास और उनकी कविता, पृ. ११८।
३. डॉ. आर्याप्रसाद त्रिपाठी ; कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. १९।
४. डॉ. मंजु शर्मा ; रहीम काव्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन-प्राक्कथन, पृ. ३।

- चेतनामय देव को पाषाणमय कैसे बनाऊं?,
  जो बने पाषाण के, कैसे उन्हें जिन-रूप गाऊं?।
  सर्वतन्त्र स्वतन्त्र जो, कैसे दीवारों में बिठाऊं?,
  जो बने बन्दी उन्हें, कैसे विनय से सिर झुकाऊं?,
  अमल अज अविकार साक्षात्कार करने मन उम्हाया,
  दर्श-हित क्षण-क्षण पलक-पल, तड़पती यह भक्त काया॥ शासन पृ. २४
- चिन्मय नै पाषाण बणाऊं, ओ परिचय जड़ता रो।
  स्वयं अमल अविकार प्रभु तो, स्नान कराऊं क्यां रो? शासन पृ. ८
- फल फूलां री भेंट करूं के, जीवन अर्पण म्हांरो।
  अगर-तगर चंदन के चरचूं, कण-कण सुरभित थांरो॥ शासन पृ. ८

वीतराग, सर्वशक्तिसम्पन्न, निराकार व्यक्तित्व की सवारी और आरती में प्रदर्शन एवं आडम्बर देखकर उनका क्रान्त हृदय चुप न रह सका। लयबद्ध, तालयुक्त, नादमयी भाषा में अपने मन की दुविधा प्रभु के समक्ष प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

- शिखरधर वर मंदिरों के, द्वार भी जा खटखटाए,
  प्रतिष्ठित प्रतिमा तुम्हारी, स्वर्णमय शिर छत्र छाए,
  सुबह-शाम हगाम से, होती निहारी आरती मैं,
  विविध वाद्य विनोद गायन, गा रहे सुर भारती में,
  बाह्य आडम्बरों में भगवन्!, न तुमको देख पाया॥ शासन पृ. २३
- समारोहों से सुसज्जित, आपकी होती सवारी।
  धौंधि धपमप धिधिकि धिक्कट, बज रहे आतोद्य भारी॥ शासन पृ. २३

ईंट, चूने और पत्थर से बने मंदिर में नहीं, अपितु मन को ही मंदिर बनाकर उसमें प्रभु का आह्वान करते हुए कवि कहते हैं—

- ओ मन मंदिर भाव भेंटणो, भक्ति उतारूं आरती।
  बाट निहारूं, जीवन वारूं, गाऊं स्वागत भारती॥ डालिम पृ. ५२
- जब-तब जिया-तिंया है प्रस्तुत, मन मंदिर ओ म्हांरो।
  'तुलसी' कण-कण तर्पण, जीवन-दर्पण! देव पधारो॥ शासन पृ. १७

आचार्य तुलसी की भक्ति में अंधश्रद्धा नहीं है, यही कारण है कि वे अपने आराध्य को भी चुनौती या उपालम्भ दे सकते हैं। ज्योतिष में अत्यधिक विश्वास होने के कारण माणकगणी अपने भावी उत्तराधिकारी का चयन नहीं

कर पाए। उनके प्रति अत्यधिक श्रद्धाशील एवं विनम्र होने पर भी कवि उनको उपालम्भ देते हुए कहते हैं—

नहीं निभायो माणक गणिवर, अपणो पूरो फर्ज,
अविनय माफ हुवै पर रहग्यो, जिणशासन रो कर्ज,
ओ ऋण बिना चुकायां, स्वर्ग सिधाया, साफ सुणावालां॥ माणक पृ. ८९

गुरुदेव तुलसी ने सफलता के अनेक शिखरों का स्पर्श किया। अपनी हर सफलता एवं प्रसिद्धि का श्रेय वे अपने पूर्वज गुरुओं को देना चाहते हैं। आश्चर्य मिश्रित वाणी में इसी यथार्थ को अभिव्यक्ति देते हुए कवि कह रहे हैं—

लगता था जो काम कठिनतम, कैसे हुआ सरल इतना।
पूर्वाचार्यों की करुणा का, हम व्याख्यान करें कितना॥ नंदन पृ. ९

आचार्य भिक्षु के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए प्राप्त सारे यश को उनके चरणों में समर्पित करके कवि कहते हैं—

यह नया मोड़, यह नई दिशा, उर्वर दिमाग की उपज नई,
केवल निमित्त ही हैं हम तो, प्रेरणास्रोत स्वामिन्! तुम ही,
यश मिला, मिलेगा जो जग में, उसके क्यों हम अधिकारी हैं? ॥
नंदन पृ. १६७

अपने आराध्य के उपकार के प्रति उनका अहोभाव एवं प्रतिदान का भाव इन पंक्तियों में प्रस्फुटित होता है—

- उऋण बनूं मैं कैसे, उपकार से अहो!
  चरणों में भले पन्हैया, यह मेरी चाम हो॥
  मेरे मानस के स्वामी, तुम एक धाम हो॥ शासन पृ. २६
- व्याप्त खून की बूंद-बूंद में, है उपकार तुम्हारा।
  हो जाए बलिदान अगर यह, औदारिक तन सारा॥ नंदन पृ. १६०
- घर घर में आदर्श तुम्हारा, फैलाएं संकल्प हमारा। नंदन पृ. १६६

वात्सल्यभक्ति प्रेम का शुद्ध रूप है। जैसे सूर ने श्रीकृष्ण की बालक्रीड़ाओं का मनोहारी वर्णन किया, वैसे ही अपने गुरु कालूगणी की बालक्रीड़ाओं एवं

---

१. २४.९.६५ का प्रवचन।

गजसुकुमाल के प्रसंग में देवकी के हृदय के मातृवात्सल्य को जो प्रस्तुति कवि ने दी है, वह अद्‌भुत है। मरुदेवा माता के लिए दीक्षित होने के पश्चात् भी ऋषभ बालक हैं। उनकी चिंता को व्यक्त करने वाला गीत मातृजाति की उदारता और महानता को व्यक्त करने वाला है—

कठै बो सोवसी? पाथरी जोवसी,
रात रा कोण देसी सिराणो,
पिलंग कर पोढ़तो, सीरखां ओढ़तो,
तेवड़ा ताकियां रो बिछाणो॥ चंदन पृ. ७

आचार्य तुलसी के भक्ति गीतों में ऐसे गीत भी हैं, जिनमें ईश्वर के स्वरूप के प्रति जिज्ञासाएं उभरी हैं। सिद्धस्तवन का पूरा गीत रहस्यवाद का उत्कृष्टतम नमूना कहा जा सकता है—

किण मारग स्यूं श्री जिनवरजी, अपणै धाम सिधावो,
समदर्शी सर्वज्ञ परम-प्रभु, परमातम पद पावो,
दरसावो, मैं भी तिण पथ निजर टिकाऊं॥ शासन पृ. ९

आचार्य तुलसी ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते थे पर ईश्वर का जगत्कर्तृत्व उन्हें अभिप्रेत नहीं था। महावीर को सम्बोधित करते हुए वे इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन कर रहे हैं—

- तुम तीन भुवन के त्रायी, उत्तरदायी नहीं।
  सुख-दुःख जब निज कर्माश्रित, तुम ज्योतिर्धाम हो॥ शासन पृ. १५
- नहिं जिन जगकर्त्ता, नहीं शंकर सम संहर्ता,
  है तीन भुवन रा भर्त्ता॥ शासन पृ. ३६

जगत्कर्तृत्व की अपेक्षा कवि ने ईश्वर या वीतराग देव को धर्मसृष्टि के कर्त्ता, पाप के हर्ता और त्रिभुवन के उद्धर्त्ता के रूप में प्रस्तुत किया है—

परमप्रभु धर्म-सृष्टि कर्ता, स्वयं भुवनत्रय रा भर्ता।
पाप-सन्ताप सकल हर्ता, नहीं जन्मान्तर संसर्ता॥ सोम पृ. ३९

कवि तुलसी का स्पष्ट मंतव्य था कि व्यक्ति की अपनी करणी/क्रिया ही उसे भवसागर में डुबोती है या पार उतारती है—

एक नयो पैसो भी थारै, नहीं चालसी सागै।
कर्‌या आपरा कर्मां स्यूं ही, सुख-दुःख मिलसी आगै॥ सोम पृ. १७

कर्म के कारण संसार की वास्तविक स्थिति का चित्र उकेरते हुए कवि

कहते हैं—

देखी दुनियां री आ है चाल दुरंगी।
खिण भर में नंगी खिण में रंगी-चंगी।
पहले क्षण जो हंस-हंस कर पेट दुखावै,
दूजै क्षण आंख्यां आंसूड़ा ढ़लकावै॥ सेवा पृ. ९

भक्ति के क्षेत्र में शौचवादी परम्परा बाह्य शौच पर अधिक महत्त्व देती है लेकिन आचार्य तुलसी ने इसका खंडन करते हुए आंतरिक शौच पर अधिक बल दिया। जलचर जीवों का उदाहरण देते हुए अपने मन को सम्बोधित करते हुए कवि कहते हैं—

जल बिच जनम मरै पुनि जल में, जलचर जल में चालै।
तो भी हाल हुई नहिं मुगति, तूं मन नै समझालै॥ सुधा पृ. २३

उदाहरण के द्वारा बाह्य शौच का खण्डन करते हुए कवि कहते हैं—

चोरी कर तस्कर गंगा में, सौ-सौ गोता खालै।
तो भी पड़ै तुरत हथकड़ियां, उपनय ओ अजमालै। सुधा पृ. २३

भक्ति-साहित्य में गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊंचा है। हर भक्त कवि ने गुरु-महिमा को उत्कृष्ट रूप में उकेरा है। भक्ति रस में डूबे आचार्य तुलसी गुरु की महिमा को गाते-गाते अघाते ही नहीं हैं। उन्होंने गुरु की महिमा को जिस ऊंचाई पर प्रतिष्ठित किया है, वह सबके मन को छूने वाली है। उनका विश्वास है कि सच्चे गुरु की भक्ति से बिन्दु भी सिंधु, रजकण भी सुमेरु और जलकण भी जलनिधि अर्थात् सागर बन सकता है तथा पंगु भी पहाड़ चढ़ सकता है—

- गुरु कृपया पल में बिंदु सिंधु बण ज्यावै,
  रज कण मेरू, अनभिज्ञ विज्ञता पावै।
  जन्मान्ध निहारै, मूंगो मृदु स्वर गावै,
  बहरो आकर्णे, पंगू पर्वत धावै॥ मगन पृ. ७८

कवि की दृष्टि में गुरु के प्रति भक्ति तभी सार्थक एवं साकार हो सकती है, जब गुरु के बताए आदर्श जीवन में उतरे। गुरु की भक्ति में लीन होकर कवि संकल्प करते हैं—

- हृदयहार आराध्य देव के, सपनों को साकार करें।
  अपने जीवन-व्यवहारों से, कण-कण में आलोक भरें॥ शासन पृ. ७०

- सच्चा स्मारक यही और, उपहार यही अविकल्प हो।
  पूज्य दिखाए पथ पर चलने, मानव दृढ़ संकल्प हो॥ नंदन पृ. १७१

कवि गुरु को ईश्वर का श्रेष्ठ प्रतिनिधि मानते हैं। सानुप्रासिक शैली में गुरु की महत्ता पठनीय है—

- है गुरु दिव्य देव घर-घर रा।
  पावन प्रतिनिधि परमेश्वर रा॥ सोम पृ. ४३
- गुरु धाता त्राता गुरु, सुखसाता दातार।
  पितु माता भ्राता गुरु, भव-भय-भंजनहार॥ कालू भा. २ पृ. १२५

अपने दीक्षा गुरु कालूगणी के प्रति अनन्य श्रद्धा विचलन प्रयोग के साथ द्रष्टव्य है—

कालू कालू बोलूं, अंतर मानस पट खोलूं रे।
श्री कालू री मोहन मूरत, हृदय बिठाऊं मैं॥
तन्मय बण ज्यांऊ मैं॥ शासन पृ. ६८

आचार्य तुलसी इस बात पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं कि मैं तो मिट्टी का एक ढेला मात्र था। गुरु के वात्सल्य ने मुझे काम-कुंभ का रूप देकर शक्तिसम्पन्न बना दिया—

- इक मिट्टी को ढ़ेलो, देखो खेलो अलबेलो रे।
  किंयां कुंभ रो रूप दियो, कुछ सोच न पाऊं मैं॥ शासन पृ. ६८
- अपरिमेय वात्सल्य निहारा, हमने प्रभु की आंखों में।
  अमित शक्ति संचार किया, गुरुवर ने कितनी पांखों में॥ शासन पृ. ७०

आचार्य तुलसी ने भक्ति में केवल स्तवना ही नहीं की, अपितु इष्ट के स्वरूप का वर्णन भी किया है। पंच परमेष्ठी में साधु का स्वरूप बताते हुए वे कहते हैं—

आत्म-साधना करै निरंतर, बो ही साध कहावै। शासन पृ. १२

आचार्य तुलसी के प्रायः सभी भक्ति-गीत संगीत के उत्कृष्ट नमूने कहे जा सकते हैं। वैसे भी भक्ति और संगीत का अभिन्न सम्बन्ध है क्योंकि भक्ति को जब संगीत का आधार मिल जाता है, तब वह तन्मयता से अपने भाव प्रभु के चरणों में समर्पित करती है—

चरम जिनराज, भवाब्धि जहाज, समस्त समाज। शासन पृ. ३२

मुंशीराम वर्मा के अनुसार भक्ति के चार परिणाम हैं—१. स्वाधीनता, २. पवित्रता, ३. विश्वबंधुत्व, ४. प्रभु-प्राप्ति। आचार्य तुलसी ने ऐसे भक्तिपथ का वर्णन किया, जो सर्वजनसुलभ तथा मोक्ष की ओर ले जाने वाला हो। उनकी भक्ति सब अंतर बंधनों को तोड़कर उन्मुक्त होना चाहती थी। भक्तिरस में डूबकर वे गा उठे—

- प्रभो! तुम्हारे पथ पर हमने, लो अपना बलिदान किया। नंदन पृ. १७८

स्वाधीनता दिवस पर आंतरिक स्वाधीनता प्राप्ति का आह्वान करते हुए कवि कहते हैं—

बंधन जो हैं परवशता के, समझो अंतर ज्योति जगा के।
तोड़ो अमित आत्मबल पा के, ज्यों स्वतंत्र बन जाओ॥ अणु पृ. १०३

पवित्रता की भित्ति पर ही भक्ति का प्रासाद टिकता है। भक्ति से ही भक्त की आंतरिक शुद्धि संभव है। आचार्य तुलसी कबीर की भांति स्पष्ट उद्घोषणा करते हैं कि काशी और मथुरा जाने मात्र से ही पवित्रता संभव नहीं है—

- वृन्दावन मथुरा काशी, जासी तो पाप पलासी।
  सुण-सुण मन आवै हांसी॥ कालू भा. १ पृ. १५७
- यूं जल झूल्यां मल धोवै, केवल पूजा अघ खोवै।
  तो सहुं पहिलां शिव होवै, जलज मछियां री॥ कालू भा. १ पृ. १५७
- केवल सलिल स्नान स्यूं पावन, व्यर्थ विचारो।
  सब तीर्थां में न्हायो तो भी, तुम्बो खारो॥ सुधा पृ. २२

केवल शरीर की पवित्रता आंतरिक पवित्रता का हेतु नहीं बन सकती। केवल शरीर-शौच पर केन्द्रित रहने वालों को प्रतिबोधित करते हुए कवि कहते हैं—

पल-पल इण री परिचर्या में, हलफल घणी मचावै।
दल-दल कहीं नहीं रह ज्यावै, जल में मल-मल न्हावै॥ चंदन पृ. २१३

भक्तिकाव्य की मुख्य प्रवृत्ति मानवीय एकता है, जिसमें जांत-पांत, ऊंच-नीच आदि का भेद न होकर मानव मात्र में एकत्व स्थापित होता है। आचार्य तुलसी का व्यक्तित्व इतना विराट् हो गया था, जिसमें स्व और पर की सारी सीमाएं समाप्त हो गयी थीं। विश्व-बंधुत्व को उजागर करने वाली निम्न पंक्तियां मन को आह्लादित करने वाली हैं—

- आ थांरो ओ म्हांरो, तव मम वाद जो।
  छोटै दिल री बातां, छोटा जन करै॥ डालिम पृ. ५६
- छूआछूत री कर-कर बातां।
  करो करोड़ां पर आघातां॥ चंदन पृ. १६२

आचार्य तुलसी समन्वय, विश्वबंधुत्व और मंडनात्मक नीति के पक्षधर थे। वे कहते थे—"मतभेद हो सकता है पर उसे लेकर मन-भेद नहीं होना चाहिए। उनके समन्वय का अर्थ सबको एक करना नहीं अपितु अपने सिद्धांतों को दृढ़ता से प्रस्तुत करते हुए भी दूसरों के साथ सामंजस्य स्थापित करना था—

चाहें हम हर समय समन्वय-पथ के हामी हो रहना।
अपने सच्चे दृष्टिकोण को, अविकल अटल रूप कहना॥ नंदन पृ. १८४

जो भक्ति भक्त को भगवान् न बनाए, उसकी उपयोगिता के आगे प्रश्नचिह्न लग जाता है। प्रभु बनने का उदग्र आत्मविश्वास कवि की पंक्तियों में पठनीय है—

- मर्यादा का कवच मनोहर, अनुशासन मजबूत किला,
  निर्भय निरुपद्रव चलते-चलते, पहुंचेंगे सिद्धशिला।
  खुद में लयलीन हों हम, कब ही क्यों दीन हों हम? नंदन पृ. २३

गुरुदेव तुलसी के भक्ति गीतों में कहीं करुण रस बरसा है तो कहीं वीरता का सिंहनाद हुआ है। कहीं शांत रस का झरना बहा है तो कहीं वैराग्य की मंदाकिनी प्रवाहित हुई है। मूलतः भक्ति-साहित्य नितान्त वैयक्तिक होता है पर आचार्य तुलसी के भक्ति परक गीतों में हृदय के परिष्कार की बात ही नहीं, अपितु आचरण की शुद्धता और नैतिक बल के जागरण की आवाज भी सशक्त, ओजस्वी और प्रखर स्वरों में उभारी गयी है। भक्ति गीतों में उनकी भाषा सरल और सुबोध हो गयी है, उसमें कृत्रिमता या बनावटीपन नहीं है।

कहा जा सकता है कि भक्तिगीतों में भावप्रवणता, अनुभवपरकता, अटूट आत्मविश्वास तथा आध्यात्मिक भावों के प्रकाशन में कवि पूर्णतः सफल रहे हैं।

सामाजिक चेतना का दिग्दर्शन

काव्य जीवित समाज की जागृत अभिव्यक्ति है अत: काव्य और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। उपन्यासकार प्रेमचन्द्र साहित्य और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध मानते हुए कहते हैं—''साहित्य जीवन की आलोचना है, चाहे वह निबंध के रूप में हो या कहानियों और काव्य के रूप में, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।''[१] महावीर प्रसाद द्विवेदी का अभिमत है कि जिस काव्य से समाज को कोई शिक्षा नहीं मिलती, वह व्यर्थ है।''[२]

साहित्यिक रचनाएं समूची सामाजिक चेतना का अनुकरण करती हैं। कवि या साहित्यकार अपने मौलिक और क्रान्त चिंतन से समाज में नव चेतना भरकर उसे सजग करता है अत: उसे सही माने में समाज का पथदर्शक, सुधारक या निर्माता कहा जा सकता है। कवि के व्यक्तित्व की महत्ता तभी प्रकट होती है, जब सामाजिक चेतना के साथ उसका अन्तर्विरोध समाप्त हो जाए। आर्या प्रसाद त्रिपाठी के अनुसार साहित्यकार या कवि अपने समय और समाज का प्रतिनिधि होता है। उसका यह दायित्व है कि वह समाज और देश की नाड़ी को परखे, उसकी धड़कन को समझे और फिर सृजन करे। सृजन की वेदना को स्वयं झेले पर समाज को मुस्कान के फूल अर्पित करे।''[३] समाज के सुख-दु:ख, रीति-रिवाज, आलोड़न-विलोड़न और संकल्प-विकल्प से ही कवि की हृदय-वीणा झंकृत होती है और इसी से वह सृजन की प्रेरणा पाता है।''[४] सामाजिक मूल्यों की पुन: स्थापना महापुरुष या संतवर्ग ही कर सकता है क्योंकि उनकी वाणी में आत्मतेज झलकता है, फिर चाहे वह बुद्ध हो या महावीर, कबीर हो या नानक, गांधी हो या आचार्य तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ।

आचार्य तुलसी संत कवि थे पर उनका समाज-सुधारक और क्रांतिकारी रूप अधिक मुखर हुआ है। आचार्य तुलसी ने काव्य के माध्यम से समाज के हृदय तक पहुंचने का प्रयत्न किया। वे तत्कालीन युगीनधारा की परिस्थिति में नहीं बहे, वरन् सामाजिक रूढियों एवं कुसंस्कारों को बदलने के लिए आजीवन जूंझते रहे। आचार्य तुलसी इस सत्य को स्वीकार करके चलते थे कि समाज

के परिवेश से प्रभावित हुए बिना सृजन कार्य प्रभावी एवं हृदयस्पर्शी नहीं बन सकता। समाज को आंदोलित करने वाला कवि ही क्रांतिकारी हो सकता है इसी कारण उनके काव्य में सामाजिक जीवन की यथार्थ स्थिति का उद्घाटन हुआ है। समाज के प्रति उनकी सक्रियता एवं सजगता का दिग्दर्शन निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—''शोषणमुक्त, स्वतंत्र और स्वस्थ समाज संरचना मेरा चिरपालित स्वप्न है। इसे आकार देने के लिए मैं प्रयत्नशील हूं। जीवन की अंतिम सांस तक मैं समाज और राष्ट्र-उत्थान के लिए कार्य करता रहूंगा पर मेरा दावा यह नहीं कि समग्र विश्व इस रूप में ढ़ल जाएगा।''

आचार्य तुलसी ने समाज की त्रुटियों, कमियों और विशेषताओं को यथार्थ की आंख से देखा और उसे साहित्य में उकेर दिया। सामाजिक कुरूढ़ियों की निर्भीक अभिव्यक्ति और उनके परिमार्जन के सूत्र प्रस्तुत करने से वे युग के प्रतिनिधि कवि बन गए। अंधभक्त की भांति उन्होंने जो है, उसे ही स्वीकार नहीं किया, जो होना चाहिए, उस पर भी गहरा विमर्श किया। उन्होंने व्यक्ति-व्यक्ति का विवेक जगाकर समाज को अंधरूढ़ियों से बाहर निकाला। वे जिस स्वस्थ एवं आदर्श समाज की रचना करना चाहते थे, वह स्वार्थत्याग और बलिदान सिखाने वाला था। इसके लिए समाज के हर वर्ग की बुराई पर व्यंग्य करना आचार्य तुलसी का लक्ष्य था। उनके व्यंग्य का शिकार कभी व्यक्ति बना तो कभी समाज, कभी धर्म बना तो कभी कर्म। उनके काव्य ने दिनकर की निम्न पंक्तियों को साकार किया है—

क्रांति धात्रि कविते! जागे, उठ आडम्बर में आग लगा दे।
पतन पाप पाखंड जले, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे॥

सामाजिक वेदना जब कवि के हृदय में स्पंदित होती है, तब उसके काव्य में मानवता का स्रोत प्रवाहित होता है। कोई भी मानवतावादी कवि समाज में संकीर्ण भावना को जीवित नहीं देख सकता। वर्ण, जाति या जन्म के आधार पर किसी को छोटा-बड़ा या अछूत मानना आचार्य तुलसी की दृष्टि में मानवता का अपमान था। जातिवाद के आधार पर मनुष्य को टुकड़ों में बांटने वाली मानवता को उन्होंने एकता के धागे में पिरोने का प्रशस्य प्रयत्न

किया। निम्न समझे जाने वाले वर्ग के प्रति केवल काव्य या भाषण से ही नहीं, आचरण से भी समानता का व्यवहार किया। इसके लिए उन्हें बाह्य और अंतरंग दोनों प्रकार के संघर्षों का सामना करना पड़ा। आचार्य तुलसी जाति, वर्ण एवं वर्ग से ऊपर उठकर स्वस्थ समाज संरचना के स्वप्नद्रष्टा थे। दिनकर की भांति उन्होंने स्पष्ट उद्घोषणा की कि जब तक मानव-मानव में समानता स्थापित नहीं होगी, शांति की स्थापना तो दूर उसकी कल्पना करना भी दुरूह है।'' वर्ण और जाति के आधार पर वैमनस्य को बढ़ावा देने वाले धर्म के तथाकथित ठेकेदारों की वे धारदार शब्दों में कड़ी आलोचना करते हैं— 'जिस घृणा को मिटाने के लिए धर्म है, उसी के नाम पर घृणा और मनुष्य जाति का विघटन! मंदिर में तथाकथित धार्मिक लोग हरिजनों का प्रवेश निषिद्ध कर देंगे पर यदि उन्होंने घर बैठे ही भगवान् को अपने मन-मंदिर में बिठा लिया तो उसे कौन रोकेगा? इस संदर्भ में उनकी दूसरी टिप्पणी भी पठनीय है—''यदि ईश्वर किसी को जन्म से ऊंचा और किसी को नीच बनाता है तो मैं उसे ईश्वर मानने के लिए तैयार नहीं हूं।''[१] कुरुक्षेत्र में राष्ट्र कवि दिनकर ने इसी बात को सहज, सरल किन्तु धारदार शब्दों में व्यक्त किया है—

- श्रेय होगा धर्म का, आलोक वह निर्बन्ध।
  मनुज जोड़ेगा मनुज से, जब उचित सम्बन्ध॥
- धंस जाए वह देश अतल में, गुण की जहां नहीं पहचान।
  जाति गोत्र के बल पर ही, आदर पाते हैं जहां सुजान॥

आचार्य तुलसी ने अपने काव्य में पूंजीवाद का विरोध किया लेकिन समाजवाद लाने का तरीका उनका मार्क्स से भिन्न था। वे बलप्रयोग से नहीं, अपितु हृदय-परिवर्तन से आए समाजवाद को उपयोगी मानते थे। सामाजिक वैषम्य को देखकर आचार्य तुलसी का करुणार्द्र हृदय उद्वेलित हो उठता था। उन्होंने समाज के निम्न वर्ग की वेदना और पीड़ा को काव्य में प्रस्तुत ही नहीं किया, वरन् उन्हें इस स्थिति के कारणों का अवबोध भी कराया। उन्होंने श्रमिक वर्ग में नयी चेतना भरी। मजदूरों की वास्तविक

स्थिति का चित्रण और उनमें जागृति की प्रेरणा भरने वाली निम्न पंक्तियां अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी हैं—

दिन भर कठिन परिश्रम करता, तो भी पूरा पेट न भरता,
तन पर चिथड़ा फटा-पुराना, घर का भी है नहीं ठिकाना,
तुझे चाहिए रोज सिनेमा, हो शराब में चूर॥ अणु पृ. ४९

निर्बल और सबल के बीच उत्पन्न वर्ग-संघर्ष की युग के संदर्भ में अभिव्यक्ति कितनी स्वस्थ, सार्थक, तर्कसंगत और सत्य प्रतीत होती है—

निर्बल का बस नहीं सबल के, आगे पल भर टिक पाता,
रोष रांक का होठों तक आ आकर 'तुलसी' रुक जाता।
किसे कहे बेचारा जिसका, कोई नहीं सहारा है,
मन मसोस रह जाने के, अतिरिक्त और क्या चारा है?॥

शक्य नहीं है नहीं देखना,
खुले चक्षु के हैं जब द्वार।
शक्य यही है हो न रूप में,
द्वेष-राग का अनुसंचार॥ आत्मा पृ. ६३

चार्वाक नहीं चिंतन देता, साम्प्रतिक सुखों का आश्वासन,
है केवल एक प्रलोभन सा, इसमें न दार्शनिक तत्त्व-मनन।
सैद्धान्तिक प्रबल प्रमाणों से, जाती है जड़ जिसकी खिसकी,
औदार्य भारती संस्कृति का, दर्शन में गणना की इसकी॥ पानी पृ. २७

जीने का उद्देश्य आत्महित,
साधन उसका यह तन है।
हो इसका समुचित संपोषण,
इसी दृष्टि से भोजन है॥
सम्बोध पृ. ११५

जहां कहीं कवि को समाज या राष्ट्र की व्यवस्था में गड़बड़ी महसूस हुई, वे इंगित करने से नहीं चूके। शोषण करने वालों के सम्मुख वे मजदूरों के मुख से अपने क्रांतिकारी विचारों को प्रकट करते हुए कहते हैं—''हमारा शोषण और उनका अहं-पोषण, इसमें पुण्य कैसा? वे दानी बनें और हम दीन, यह क्यों? वे हमारा रक्त चूसें और हमें ही एक कण डालकर पुण्य कमाएं, यह कैसी विडम्बना? शोषण करके दान द्वारा पुण्य कमाने वाले लोगों के समक्ष व्यंग्य उपस्थित करते हुए कवि कहते हैं—

शोषण से धन कमाया, दीनों का खून चूसा।
कैसे हो पाप-मुक्ति, अब तुच्छ दान द्वारा? अणु पृ. ४४

दूसरों द्वारा की गयी मिलावट को नहीं सहन करने वाले तथा दुकान पर बैठकर मिलावट करने वाले लोगों पर व्यंग्य करने में कवि कब चूकने वाले थे—

कितना पतला दूध अरे!, पानी क्यों लोग मिलाते हैं?
यों सिर धुनने वाले खुद, नकली घी दवा चलाते हैं॥ अणु पृ. २१

सामाजिक कल्याण के लिए कवि विषमता को नष्ट कर समानता की स्थापना करना चाहते थे। आर्थिक विषमता का समाधान उनकी दृष्टि में विसर्जन की भावना में निहित है। युग की आर्थिक विषमता और पीड़ित मानवता को देखकर कवि ने अर्जन के साथ विसर्जन की प्रेरणा दी—

अर्जन और विसर्जन की युति, नया मोड़ लाएगी।
संविभाग का अभिसिंचन पा, समता लहराएगी॥ अणु पृ. ११२

समाज में व्याप्त कृत्रिमता, प्रदर्शन, आडम्बर और अपव्यय के प्रति उन्होंने समाज का ध्यान आकृष्ट किया। देखादेखी प्रदर्शन करने वाले लोगों की स्थिति का चित्रण करते हुए कवि कहते हैं—

पाई री नहिं आय, खरच घर खमता बारै।
मरै दुतरफी मार, अरे! इण पंचम आरै॥ सोम पृ. १४

कवि अपने बचपन के समय की आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं—

बंगाल सिराजगंज स्यूं मोहन भय्या।
प्रतिमास भेजता गिण, पच्चास रुपय्या॥ मां पृ. ८

वैधव्य की स्थिति को प्राकृतिक उपमाओं से प्रकट करके मानो कवि ने उस दुःख का साक्षात् बिम्ब प्रस्तुत कर दिया—

उल्कापात अचानक धरती धूजी या आकाश गिर्‌यो,
अरे! हुयो के कुण जाणै क्यूं, एक साथ तकदीर फिर्‌यो,
क्षण में सधवा विधवा बणगी, ज्यूं अशुभोदय, नदी-उफणगी॥
सहिष्णुता पृ. ७

आचार्य तुलसी ने ऐसे स्वस्थ समाज-संरचना की कल्पना की, जहां मानवीय मूल्यों का विकास हो। विषमता और संघर्ष न हो तथा प्रेम, सौहार्द और सहअस्तित्व का वातावरण हो। इसके लिए उनका स्पष्ट अभिमत था कि बिना व्यक्ति-विकास के या व्यक्ति-सुधार के समाज-सुधार का स्वप्न निरर्थक है। इसी सत्य को काव्यमय प्रस्तुति देते हुए उन्होंने कहा—

स्वस्थ समाज नई रचना का, नारा सबको प्यारा है।
बिना व्यक्ति-संरचना के, रह जाता केवल नारा है॥ नंदन पृ. ११

टूटते परिवार एवं आपसी कलह की स्थिति को कवि ने इन शब्दों में बिम्बायित किया है—

छोटी-सी भी बात डाल, देती है बड़ी दरारें।
गलतफहमियों से खिंच जाती, आंगन में दीवारें॥ अणु पृ. १७

'मेरा ही चिंतन सत्य है' यह ऐकान्तिक आग्रह सामुदायिक शान्तसहवास का सबसे बड़ा शत्रु है। पानी में तैल डालने पर वह ऊपर-ऊपर तैरने लगता है, जबकि दूध उसमें पूर्णतया घुल-मिल जाता है। दाम्पत्य जीवन में अपने गलत-सही निर्णय को जीवन-साथी पर थोपने वाले लोगों को प्रतिबोध देते हुए कवि कहते हैं—

अपना ही वर्चस्व रहे,
एकांगी चिन्तन घातक है।
तेल बिन्दु जल पर छाए,
वैसे छा जाना पातक है।

क्षीर-नीर सम मिलना जाने,
वही सचेतन चातक है? सम्बोध पृ. १२२

भाई-भाई के बीच होने वाले द्वन्द्व को उन्होंने जिस प्रखरता और स्पष्टता से व्यक्त किया है, वह उल्लेखनीय है—

यदि सोचे गहराई से, भाई से बढ़ क्या नाता है?
किन्तु जहां इस नाते में, 'तुलसी' कड़वापन आता है।
होती नष्ट शांति जीवन की, चढ़ता स्वार्थों का पारा,
विनय स्नेह के स्थान रक्त, बरसेगा पलकों के द्वारा॥

आपसी तकरार के बावजूद आचार्य तुलसी का विश्वास था कि भाई-भाई के बीच जो रक्त की धारा बह रही है, उससे आंतरिक प्रेम कभी मिट नहीं सकता। विरोधी शैली में मनोवैज्ञानिक तरीके से भाई-भाई के मध्य तादात्म्य सम्बन्ध को प्रकट करने वाली ये पंक्तियां अत्यन्त हृद्य एवं मार्मिक बन पड़ी हैं—

कितनी ही तकरार भले हो, भ्रातृ-स्नेह घुला पाएगा,
आंगन में दीवार भले हो, मन का द्वार खुला पाएगा।
होठों पर हो खार भले पर, अन्तस् अमृत घड़ा मिलेगा,
'तुलसी' महाराणा प्रताप के लिए, सगतसिंह खड़ा मिलेगा।

द्वन्द्व युद्ध में यद्यपि बाहुबलि ने भरत को आकाश में उछाल दिया किन्तु तत्काल उनका भातृप्रेम उमड़ पड़ा। भरत बाहुबलि की स्थिति का कवि ने उपमा के द्वारा साक्षात् चित्र सा उपस्थित कर दिया है—

बाहुबलि ने व्यथित हो, यों बहुत कुछ चिंतन किया,
व्योम से गिरते भरत को, पाणि-पल्लव में लिया।
उस समय बेभान संज्ञाशून्य से, निष्प्राण से,
ज्यों गिरा हो विहग कोई, बिद्ध होकर बाण से॥ भरत पृ. १२९

वर्तमान युग की सबसे बड़ी समस्या है—संयुक्त परिवारों का विघटन। कवि को इस बात की अत्यन्त चिंता है कि इससे सांस्कृतिक विरासत का उत्तरोत्तर क्षरण हो रहा है। अलगाववादी मनोवृत्ति वाली युवापीढ़ी को रूपान्तरण की प्रेरणा देते हुए कवि कहते हैं— "जो व्यक्ति परिवार में बढते हुए झगड़ों के कारण अलग रहने का निर्णय लेते हैं, उन्हें स्थान के बदले स्वभाव बदलने

की बात सोचनी चाहिए।'' संयुक्त परिवार को बचाए रखने की प्रेरणा देने में कवि का काव्य-कौशल द्रष्टव्य है—

युग-युग तक चली फली-फूली, व्यापक संयुत-परिवार प्रथा,
वह छिन्न-भिन्न हो गई आज, कैसी है उसकी करुण कथा।
जो टूट-फूट हो गई, गई, जो बची सुरक्षित रहे वही,
परिवर्तन-परिष्कार से भी, मिलते जाएं संस्कार सही॥
श्रावक पृ. २०९

जिस भारतीय संस्कृति में माता-पिता को देव तुल्य माना जाता था, वहां पाश्चात्त्य प्रभाव से उन्हें भारभूत माना जा रहा है। समाज की इस स्थिति को अभिधा शक्ति में प्रकट करते हुए कवि कहते हैं—

पिता पुत्र को पालता, देकर अमित दुलार।
पुत्र मानता अंत में, उसी पिता को भार॥ आत्मा पृ. ९०

आचार्य तुलसी का काव्य मानवीय संबंधों का श्रेष्ठ दस्तावेज है। प्रसंगवश समाज और परिवार के अनेक शिष्टाचार उनके काव्य में अवतरित हो गए हैं—

- बड़ा बड़प्पन जब तक रखता, तब तक ही सम्मान है।
  छोटे से अड़ने में उसका, सभी तरह अपमान है॥ भरत पृ. ७३
- बडां नै तो सदा पड़सी, विनय स्यूं रीझावणां।
  जस-अजस रहसी अखी, जग दो दिनां रा पावणां॥ चंदन पृ. १२
- यों घर के भाई बेटे, जो उच्छृंखल बन जाएंगे।
  तो फिर औरों के अविनय पर, कैसे आंख दिखाएंगे? भरत पृ. ४०

वैवाहिक जीवन में नारी के लिए सबसे दु:खद स्थिति है—सौत का होना। समाज की इस स्थिति का वर्णन सहज, सरल भाषा में पठनीय है—

शूली से भी कष्टदा, होती स्त्री को सौत।
सौत न देना सांवरा!, दे दे चाहे मौत॥ परीक्षा पृ. २३

सामाजिक संगठन में एकता के बिना समाज का विकास असंभव है। 'संघे शक्ति: कलौ युगे' इस बात पर आचार्य तुलसी की पूर्ण आस्था थी। संघ में यदि संगठन या ऐक्य नहीं होता तो वह केवल हड्डी का ढांचा मात्र रह जाता है। संगठन और संघ को रूपायित करते हुए कवि कहते हैं—

संघ में ही शक्ति, इसमें है नहीं संदेह।
प्राण है आचार उसकी, संगठन है देह॥ नंदन पृ. १७

आचार्य तुलसी का स्पष्ट अभिमत था कि संगठन का मूल्य सर्वोपरि है। जहां व्यक्तिहित के लिए संघहित को उपेक्षित किया जाता है, वहां संगठन कमजोर हो जाता है। उनकी व्यक्तिवादिता समष्टि से जुड़कर अभिव्यक्त हुई—

- संघ अतल अमाप्य सिंधु।
  व्यक्ति तो है एक बिन्दु॥
- संघहित में सकल हित है।
  व्यक्ति हित उसमें निहित है॥नंदन पृ. ५६

व्यक्ति चेतना हावी होगी तो संघ नीतिनिष्ठ और शक्तिसम्पन्न नहीं रह पाएगा क्योकि हर व्यक्ति संघ को गौण कर व्यक्तिगत सत्ता तथा पूजा-प्रतिष्ठा की सुरक्षा में ही अपनी शक्ति का नियोजन करेगा। संघ के हर सदस्य को प्रेरणा देते हुए वे कहते थे—

- संघ का विस्तार, उसकी नीतिमत्ता में।
  हो नहीं विश्वास, पूजा और सत्ता में॥ नंदन पृ. १७

एक नेतृत्व संगठन को शक्ति सम्पन्न बनाता है। समाज बिना नेतृत्व के गति नहीं कर सकता। भावी उत्तराधिकारी के चयन न करने पर आचार्य माणकगणी के स्वर्गवास पर नेतृत्व के महत्त्व को उपमा-वैशिष्ट्य से प्रकट करते हुए कवि कहते हैं—

ग्रह-नक्षत्र चमकता सारा, तारां री रमझोल,
पिण अम्बरियो सूनो लागै, नहीं चांद-चमकोल,
सन्तां! बिना चांद की रजनी स्यूं, आपां तुल ज्यावांला॥
लड़ालुम्ब है फल-फूलां स्यूं, नाना वृक्ष-वितान,
बागवान कै बिना न शोभै, उपवन आलीशान।
सन्तां! माली बिना बगीचै की, उपमा बण ज्यावांला॥
खेती खड़ी नाज स्यूं नमती, दीखै सुघड़ सुडौल,

बिना रुखाली कै चुग ज्यावै, चिड़ियां चून टटोल।
संतां! बिना रुखालै री खेती, गण नै न बणावांला।।माणक पृ. ९०

आचार्य तुलसी की दृष्टि में युगीन गत्यात्मकता थी इसीलिए उन्होंने किसी भी परम्परा को रूढ़ नहीं बनने दिया। उन्होंने अतीत की मौलिक परम्परा को नए प्रयोग की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित किया। क्रांतिकारी विचारों के कारण उनके काव्य में पारदर्शिता पैदा हो गयी। परम्परा और परिवर्तन का समन्वय करते हुए कवि कहते हैं—

है अतीत बुनियाद हमारी, वर्तमान से जुड़े रहें॥ नंदन पृ. ११

आध्यात्मिक संत होते हुए भी आचार्य तुलसी ने लौकिक रीति-रिवाजों एवं उत्सवों की उपेक्षा नहीं की। उन्होंने जीवन के विभिन्न संस्कारों में आध्यात्मिकता की पुट देकर उसे नवीन रूप प्रदान किया। आचार्य तुलसी सामाजिक उत्सवों पर आमोद-प्रमोद के विरोधी नहीं थे लेकिन उन अवसरों पर होने वाली गलत प्रथा के विरोधी थे। होली पर होने वाली अपसंस्कृति को सानुप्रासिक छटा के साथ प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

देखो दुनिया भोली जी!
जीवित मरद बणै कइ मुरदा, सीढ़ी मांही सोवै।
करै खांधिया राम नाम सत, आंख्या भर-भर रोवै॥
अंग बिगाड़ै, रंग बिगाड़ै, ढ़ंग बिगाड़ै सारो।
असन बिगाड़ै, वसन बिगाड़ै, है अज्ञान प्रचारो॥ सुधा. पृ. ८६

पुत्र जन्म के अवसर पर मनाए जाने वाले उत्सव का वर्णन थावच्चापुत्र आख्यान में बहुत सुंदर शैली में प्रतिपादित है। उसी वर्णन का एक लौकिक बिम्ब यहां प्रस्तुत है—

देवी देव धोकतां, पाड़ोसी रै धीनड़ जायो,
मिल्यो रंक नै राज, नाज है पुत्र पनोतो पायो,
गावै, गोरड़िया गीत गावै, मोत्यां स्यूं चौक पुरावै,
मोच्छव रो सारो कारोबार है॥ मैं तिरूं पृ. १०

बालक के प्रति मां के संतान-प्रेम और उसे संस्कार देने के उपक्रम को

कवि ने जिस मार्मिकता के साथ चित्रित किया है, वह राजस्थानी काव्य परम्परा की विशिष्ट थाती है। मां वदनाजी अपने बच्चों को उठाकर किस प्रकार साधु-साध्वियों के यहां भेजती थीं, इसका कवि ने लोकभाषा में सुंदर चित्र खींचा है। कवि की स्वयं की अनुभूति इसके साथ जुड़ी है अतः यह अभिव्यक्ति और अधिक मार्मिक बन पड़ी है—

अबै जगाती मन मुसकाती, घर री टाबर-टोली,
उठो उठो बालूड़ा! सूरज-किरणां फिरगी दोली,
ल्यो पाणी-लोटो ग्लासजी,
आंख्यां में करो उजास जी,
हाजर पड्यो सिरावण दही-बाटियो थारै तांई हो॥
पिण देखो अपणै खेतर में, सतियां रो थिर थाणो,
जावो, दरसण कर आवो, बिण दरसण मिलै न खाणो,
आपां रो ओ नित-नेमजी,
नहिं लम्बी लागै टेम जी,
ओ अलसाग न आछो लागै, आ घर री पुण्याई हो॥ मां पृ. ११

प्रसंगवश सामाजिक लोकापवाद की भी सुंदर प्रस्तुति कवि ने अपने काव्य में की है। निम्न पंक्तियों में मानव मन की कमजोरी का कितना सुंदर चित्र उकेरा गया है—

प्रत्यक्ष बड़ों के सम्मुख आ, कोई भी नहीं कहा करता,
डर के मारे छुप-छुपकर ही, विप्लव का स्रोत बहा करता।
'म्याऊं के' मुंह पर कौन चढ़े, यह सबसे बड़ी पहेली है,
आगे स्तवना पीछे निंदा, साधारण जन की शैली है॥ परीक्षा पृ. ३१

अपनी मां वदनांजी को बुढ़ापे में दीक्षा देने पर लोकचर्चा का एक बिम्ब लोकभाषा में पठनीय है—

अपणी मां नै बूढ़ापे में, दीक्षा दे दी आज,
देखो ल्या बैठाया माजी, पर माजी म्हाराज,
आ चर्चा चौतरफी चिकचिक, जनता री जड़ताई॥ मां पृ. १९

आचार्य तुलसी क्रान्त द्रष्टा आचार्य थे। वर्तमान में प्रचलित अनेक अपसंस्कृतियां जिनका तर्क संगत उत्तर नहीं दिया जा सकता, उन पर कवि ने करारा आक्षेप किया है। जीवित माता-पिता की सेवा नहीं करने वाले व्यक्ति मरने के बाद श्राद्ध करते हैं, गंगा में फूल डालते हैं, यह तर्क-संगत नहीं है। उसमें भी

जैन कहलाने वाले श्रावक यदि इस परम्परा का पालन करते हैं तो और भी अधिक आश्चर्य की बात है। डालगणी के मुख से कवि ने गंगा में फूल डालने की संस्कृति का विरोध किया है—

सद्‌गति दुर्गति निज करणी रै अनुसारै,
प्राणी तो पहुंच्यो, लाश पड़ी है लारै।
अज्ञान आवरण रूढ़ मूढ़ता ऊंडी,
मुश्किल सुलझाणी पड़ी सूत में गूंडी।
सुविवेक-लोचनां लखै विज्ञ नर-नारी,
गंगा में घालै फूल जैन व्रत-धारी॥ डालिम पृ. १७९

अपसंस्कृति पर जब-जब किसी महापुरुष ने प्रहार किया है, उसे जनता के विरोध का सामना भी करना पड़ा है। सरल-सरस भाषा में तत्कालीन लोकापवाद की प्रस्तुति मन को आकृष्ट करने वाली है—

आचारज तो आगै ही हुया घणांई,
पण अै बातां तो अै म्हाराज सुणाई।
नहिं फूल घालणां आज कहै आपां नै,
काले कहसी मत दफणाओ मुरदां नै।
अै किसी आज री रीतां चलै सदा री,
गंगा में घालै फूल जैन व्रत-धारी॥
तीया, बारा, ओसर-मोसर सिर-पल्ला,
सारा छुड़वासी कुण जाणै के सल्ला?
यूं सारी रीत-रिवाजां जो तुड़वासी,
अपणै समाज री के हालत बण ज्यासी।
आ खड़्यै खेत नै है भेलण की त्यारी,
गंगा में घालै फूल जैन व्रत-धारी॥ डालिम पृ. १८०

कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी ने काव्य के माध्यम से न केवल समाज-विकास की नई दिशा एवं प्रेरणा दी अपितु उसे सब प्रकार से समुन्नत बनाने के सूत्र भी प्रस्तुत किए। समाज का शायद ही कोई विकृत अंश उनकी लेखनी से अछूता रह पाया हो। वे शाश्वत आदर्शों को समाज में मूर्त्त रूप में देखना चाहते थे। आचार्य तुलसी इस बात से आशान्वित थे कि अणुव्रत के

माध्यम से भारत में पुन: रामराज्य और स्वर्णिम युग आएगा और मानवता का नव-निर्माण होगा।

नारी के विविध रूपों की प्रस्तुति

वेदकालीन नारी पूजा और श्रद्धा की पात्र थी। उसे पुरुषों की भांति समान अधिकार प्राप्त था लेकिन मध्ययुग में उसे भोग्य सामग्री से अधिक नहीं माना गया। हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल में नारी के दो रूप मिलते हैं—शृंगार और जौहर। भक्तिकाल में नारी को विभिन्न रूपों में प्रताड़ित और तिरस्कृत किया गया। आधुनिग युग में सदियों से पीड़ित और प्रताड़ित नारी के प्रति संवेदना प्रकट की गयी, साथ ही उसे कर्मक्षेत्र में पुरुषों की भांति स्वतंत्रता देने की बात भी बुलंद की गयी।

नारी समाज के प्रति आचार्य तुलसी की भावना अत्यन्त उदात्त और उदार रही। उन्होंने प्राचीन कवियों की भांति नारी के दीन, हीन, असहाय, वासनामय या मांसल रूप को प्रकट न करके उसके उदात्त, महनीय, त्यागमय एवं प्रेरक व्यक्तित्व को उजागर करने का प्रयत्न किया। उनके काव्य-साहित्य में पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्र अधिक जीवन्त हुए हैं। फिर चाहे वह भद्रा सेठानी हो या विजया। चंदनबाला हो या मां वदना। नागला के रूप में कवि ने नारी के अबलापन को तिरोहित करके उसके दुर्गा स्वरूप को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। विष की बेलड़ी और नरक का द्वार समझी जाने वाली नारी की दीन अवस्था के प्रति विद्रोह प्रकट करती ये पंक्तियां कितनी मार्मिक और वेधक बन पड़ी हैं—

कुचले गए सदा से, नारी के मौलिक अधिकार यहां,
और दबाए गए सदा, सच्चे सात्त्विक संस्कार यहां।
जब जी चाहा 'तुलसी' उसको, मानव ने ठुकराया है,
समझ रम्य क्रीड़ा-स्थल उसको, मानव ने अपनाया है॥

नारी और पुरुष के बीच पनपने वाले साामाजिक वैषम्य के प्रति कवि

के मन में विद्रोह है। सानुप्रासिक भाषा में समाज के समक्ष नारी की इस दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए कवि कहते हैं—

है पुरुषों के लिए खुली यह वसुधा सारी,
पर नारी के लिए सदन की चारदीवारी।
सूर्य देखना भी होता है जिसको भारी,
किसे कहे अपनी लाचारी, वह बेचारी॥ परीक्षा पृ. ६७

कवि ने जिस समय ये पंक्तियां लिखीं, उस समय राजस्थान की नारी पर्दे के साथ घर की चारदीवारी में कैद थी। कवि ने नए मोड़ के माध्यम से नारी-जागृति के स्वर को बुलन्द किया और उसकी सोई शक्ति को जगाने का प्रयत्न किया। कवि को पूर्ण विश्वास है कि इस नवयुग में पुरुषों का अत्याचार अब ज्यादा समय तक नहीं चल सकेगा। पुरुषों को सम्बोधित करती कवि की वाणी समाज में नव-जागृति का शंखनाद करने वाली है—

चल न सकेगा पुरुषो!, अत्याचार तुम्हारा,
पल न सकेगा यह ऐसा, आधार तुम्हारा।
फल न सकेगा यह ऐसा, व्यवहार तुम्हारा,
छल न सकेगा ऐसा, झूठा प्यार तुम्हारा॥ परीक्षा पृ. ६८

आचार्य तुलसी महिलाओं को प्रेरणा देते हुए कहते थे—"नारी अबला नहीं, सबला बने, कलहकारिणी नहीं, कल्याणी बने। वह बिना किसी भय या आशंका के दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती के रूप में कर्मक्षेत्र में उतरे।····महिलाएं यदि प्रतीक्षा करती रहेंगी कि कोई अवतार आकर उन्हें जगाएगा तो समय उनके हाथ से निकल जाएगा और वे जहां खड़ी हैं, वहीं खड़ी रहेंगी। नारी के आत्मबल को जगाते हुए कवि की क्रान्त वाणी गूंज उठी—

अपने बल पर नारी!, तुझे जागना होगा,
कृत्रिम आवरणों को तुझे, त्यागना होगा।
खो संतुलन भीत हो नहीं, भागना होगा,
सत्य-क्रान्ति का अभिनव अस्त्र दागना होगा॥ परीक्षा पृ. ६८

आचार्य तुलसी ने नारी की वेदना, व्यथा और पीड़ा को समझा और उसे सटीक शब्दों में अभिव्यक्ति दी। उनका मंतव्य था कि नारी

स्वयं आंसू पीकर भी पुरुष को प्रसन्नता बांटती है। उसकी सहनशक्ति से कवि अभिभूत हैं —

मार-मार वह अपने मन को, सब कुछ सहती,
जैसा होता, नहीं किसी से, कुछ भी कहती।
चिन्ता सदा चिता बन उसको, दहती रहती,
व्यथा हृदय की छल-छल कर, पलकों में बहती॥ परीक्षा पृ. ६७

आचार्य तुलसी के मन में विधवा एवं असहाय महिलाओं के प्रति अपार करुणा थी। अंधरूढ़ियों से जकड़े समाज में विधवा की दयनीय स्थिति देखकर उनका करुण हृदय चीत्कार कर उठा। विधवा के प्रति होने वाले अत्याचार का उन्होंने डटकर विरोध किया और उसको अपने स्वतंत्र अस्तित्व का बोध कराया। इस संदर्भ में उन्होंने समाज को केवल उपदेश ही नहीं दिया, अपितु अपशकुन मानी जाने वाली विधवा बहिनों को प्रस्थान की बेला में सामने रखकर सक्रिय प्रशिक्षण भी दिया।

आचार्य तुलसी के काव्य-साहित्य में मुख्यतः नारी के इन रूपों को अभिव्यक्ति मिली है—

१. नारी का मातृत्व रूप।
२. शीलवती पत्नी का रूप।
३. उद्‌बोधिका शक्तिस्वरूपा का रूप।
४. उच्शृंखल एवं पतिता का रूप।

नारी का मातृत्व रूप

भारतीय ऋषियों ने 'मातृ देवो भव' कहकर मां के महत्त्व को उजागर किया है। नारी का श्रद्धास्पद एवं गरिमामय व्यक्तित्व माता के रूप में विख्यात है क्योंकि वह माता बनकर विश्व के भविष्य को संवारती है। नारी के मन में जब वात्सल्य का जन्म होता है, तब उसका सौन्दर्य अधिक निखर उठता है। पुत्र के उदरस्थ होते ही नारी के निःस्वार्थ बलिदान की कथा प्रारम्भ हो जाती है। वह संसार के समस्त संघर्षों से जूझने की शक्ति प्राप्त कर लेती है। बालक की प्रत्येक गतिविधि पर मां का पूरा ध्यान रहता है। कवि मां की इस उदारता और सेवाभावना से प्रभावित हैं—

---

१. समणी कुसुमप्रज्ञा ; आचार्य तुलसी की साहित्य-संपदा, पृ. १८४।

- उदरस्थ पुत्र होता जब से, मां संरक्षण करती तब से।
  सब संकट स्वयं झेल लेती, सुत को न आंच आने देती॥ परीक्षा पृ. ४
- बच्चे का कैसे पालन हो, कैसे जीवन संचालन हो,
  हो खाद्य-पेय कैसे नियमित, कैसे अन्तर प्रक्षालन हो ?
  क्यों कम बेशी हंसता रोता, क्यों कम बेशी जगता सोता,
  उसकी गतिविधियों का पूरा, अनुमान उसी को होता है,
  वह सरल मनोवैज्ञानिक बन, सारी उलझन सुलझाती है।
  जननी संस्कार जगाती है॥ परीक्षा पृ. ९५

मां शब्द अपने भीतर दुनिया की व्यापकता और असीम ममता को संजोए हुए है क्योंकि मां शब्द प्यार, स्नेह और वात्सल्य का प्रतीक है। बालक का पूरा संसार मां के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। मां की महत्ता को उजागर करने वाली निम्न पंक्तियों में भावों की उदात्तता का वैभव मन को आकृष्ट करने वाला है—

- मां मां मां मां शब्द ही है, बालक नै वरदान।
  सार कितो मां शब्द में, जाणै जिनवर भगवान्॥ चंदन पृ. १३६
- मां स्यूं बढ़कर बालक रै, कोई न दूसरो सायो।
  माता ईसर परमेसर, माता ही चंदन केसर॥ मैं तिरूं पृ. १०

कवि मां को विश्व की सबसे बड़ी विभूति, शक्ति और संस्कार-प्रदात्री मानते हैं। कवि ने प्रसंगवश अनेक स्थलों पर पात्रों के मुख से मां के गौरव को प्रकट किया है। नारद, राम और लक्ष्मण के सम्मुख लवकुश के युद्ध का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

सत्पुत्र कभी यों माता का, अपमान नहीं सह सकते हैं।
पाते ही सचमुच शुभ अवसर, वे मौन नहीं रह सकते हैं॥ परीक्षा पृ. १४२

'समता रो समंदर' आख्यान में देवकी के मातृहृदय की आशा और आकांक्षा का वेगपूर्ण चित्र उपस्थित हुआ है। मां के सपनों का एकमात्र आधार शिशु होता है, उसके बिना उसे अपना जीवन व्यर्थ लगता है। देवकी को इस बात का अत्यन्त दुःख है कि सात पुत्रों को जन्म देने के बावजूद उसका मातृत्व तृषित है, अधूरा है क्योंकि उसने अपने किसी पुत्र का पालन-पोषण

---

१ हिन्दी गद्य रत्नावली, पृ. १००।

करके अपने मातृत्व को सार्थक नहीं किया। अन्य माताओं को बच्चों के साथ देखकर उसका मातृत्व बिलख उठा—

- मैं चढ़ ऊंचै महल-झरोखे, नगर-नारियां देखूं,
  हंसती-खिलती निज-निज सुत नै, प्रेम पोखती पेखूं।
  सादर अति सुख स्यूं गोद सुलावै, हंस-हंस हालरियो गावै॥
  थण रो मीठो दूध पिलावै, नहरावै-धुवरावै,
  काजल-रेखा चांक आंख में, टीकी भाल लगावै,
  झुग्गो टोपी पहरा पोढ़ावै, झीणी दुपटी ओढ़ावै॥ चंदन पृ. १३५

माता मरुदेवा के मातृहृदय की ममता, विशालता, अपनत्व और करुणा का जो सजीव चित्रण हुआ है, वह अद्‌भुत और अलौकिक है। अपनी कल्पना शक्ति का पुट देकर संन्यस्त पुत्र के प्रति मां मरुदेवा के वात्सल्य की जो धार कवि ने बहाई है, वह सबको भीतर तक भिगोने वाली है। बेटा चाहे कितना ही बड़ा हो या कितनी ही उच्च स्थिति में पहुंच जाए, मां के सामने वह बालक ही रहता है। मरुदेवा का व्याकुल मातृत्व पुत्र के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए कहता है—

कोण जीमावसी? दूध कुण पावसी?,
भूम बिण मांडसी कठै भाणो?,
कठै पग थामसी? सदा धूं-धामसी,
रहण नै ठोड़ है ना ठिकाणो॥ चंदन पृ. ७

कवि मां की ममता को छंद में बांधने में स्वयं को असमर्थ अनुभव करते हैं—

- मातृ मन के मोद को, बांधा न जाता छंद में। परीक्षा पृ. ६
- हृदय भरा हर्षातिरेक से, वचन सुधा मुख से झरती।
  माता के मन की ममता को, माता ही जाना करती॥ परीक्षा पृ. १२

मातृत्व की भांति पुत्र-भक्ति को प्रकट करने में भी कवि पीछे नहीं रहे हैं। जब श्रीकृष्ण को देवकी के दुःख का ज्ञान होता है तो वे व्यथित और व्याकुल होकर गीत गाते हैं—

म्हांरै सन्मुख म्हांरी अम्मा, यूं आंख्यां बरसावै,

---

१. सं. समणी कुसुमप्रज्ञा ; एक बूंद : एक सागर, पृ. २६।
२. जैन भा. २३ मार्च १९६९।

तो बेकार भार है जीवन, मनड़ो भी शरमावै,
सशपथ पूछै कृष्ण कन्हैया, कारण प्रणमत पय में॥ चंदन पृ. १३४

माता केवल बालक को जन्म ही नहीं देती, उच्च संस्कारों से संस्कारित भी करती है। कवि नारी के इस रूप को बहुत आदर की दृष्टि से देखते हैं। चरित काव्यों में जहां कहीं प्रसंग मिला, उन्होंने माता के इस प्रेरक रूप को बखूबी प्रकट कर दिया। वि. सं. १९७७ में आचार्य कालूगणी ने भिवानी चातुर्मास में दीक्षा की घोषणा की। बाल-दीक्षा के प्रति प्रबल विरोध को देखकर वहां के श्रावक घबरा गए। लाला पेसीराम की मां अत्यन्त श्रद्धालु और संघ की अनन्य भक्ता थी। जब दीक्षा-विरोध से घबराकर लोग पीछे हटने की बात सोचने लगे, तब अपने पुत्र पेसीराम में वीरता के भाव भरते हुए उसकी मां कहती है—

पेसी की मां बोली, बेटा! सुण लीजे,
जो मेरा जाम्योड़ा, मत पीठ तकीजे,
दीक्षा बाजंते ढ़ोल, बजार दिराजे।
वरना तू जिन्दा, मनै न मुंह बताजे॥ मगन पृ. ५९

शीलवती पत्नी का रूप

पत्नी के रूप में नारी पुरुष की पथ-प्रदर्शिका होती है। नागला के रूप में कवि ने नारी का उपासना, शक्ति और प्रेरणा का चित्र प्रस्तुत किया है। जब भावदेव संन्यास से विचलित होकर उत्पथ पर जाने के लिए उद्यत होता है, तब नागला अपनी सूझबूझ से उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए फुंफकार उठती है। नागला के चरित्र की यही उदात्तता कवि की वाणी में प्रकट हुई है—

- मैं खड़ी नागला नारी हूं,
  निरखो नारी के न्हारी हूं,
  रूं रूं मजबूती धारी हूं।
- म्हांरै भोलै मत भूलीज्यो,
  सपने पिण अंग न छू लीज्यो,
  स्वेच्छा दोझख में झूलीज्यो॥ चंदन पृ. ५८

पत्नी के रूप में सुभद्रा का चित्रण करुण रस उत्पन्न करने वाला है। सुभद्रा द्वारा किया जाने वाला उपहास जब स्वयं उसके लिए चुनौती बन गया

१. आचार्य तुलसी ; मनहंसा मोती चुगे, पृ. १८६।

तो उसकी मनोव्यथा इन शब्दों में प्रकट होती है—

प्राणाधार! हृदय-सदनेश्वर!, प्राण पाहुणा होसी,
हांसी फांसी बणी घणी यूं, जासी कंठ मसोसी,
गोद बिछाऊं, माफी चाहूं, मानो मोहनगारे॥ चंदन पृ. १२१

'भरी जवानी आ कुर्बानी' आख्यान में विजया के जिस उदात्त चरित्र का वर्णन कवि ने किया है, वह भारतीय नारी की गौरव-गरिमा को प्रकट करने वाला है। विजया अपने पति को दूसरे विवाह के लिए प्रेरित करती हुई कहती है—

प्रियतम! तुम दूजे परणीजो, म्हांरै खातर जरा न छीजो।
पुरुष पात्र हो म्हांरी अनुमति, सविनय सह सम्मान रे॥ चंदन पृ. १७२

तत्कालीन पुरुष प्रधान संस्कृति में विजय उसकी उदारता से प्रभावित होकर भावविह्वल स्वरों में कह उठता है—

विजये! अये! नहीं पहचाण्यो, प्रियतम-पौरुष रह्यो अजाण्यो।
है असह्य नर में नारी में, अंतर भू-असमान रे······॥ चंदन पृ. १७२

वाल्मीकि की सीता अपने पर हुए अत्याचार का विरोध नहीं करती लेकिन आचार्य तुलसी ने सलक्ष्य सीता के विद्रोही एवं शालीन दोनों रूपों को उभारा है। सीता का महिमामंडित चरित्र कवि की लेखनी के संस्पर्श से और अधिक प्रेरणास्पद बन गया है। परित्यक्ता सीता का आहत अभिमान कुचले सर्प की भांति दृप्त हुंकार भर उठा। उसके आकुल मन की पुकार अत्यन्त सहजता से मार्मिक रूप में प्रकट हुई है—

हाय राम! क्या नारी का, कोई भी मूल्य नहीं है,
क्या उसका औदार्य, शौर्य, पुरुषों के तुल्य नहीं है, परीक्षा पृ. ५७

नारी के उदात्त चरित्र के अनेक बिम्ब कवि की लेखनी से निःसृत हुए हैं। राम द्वारा सीता को बियावान जंगल में छोड़ जाने पर एक बार सीता के मन में आक्रोश उत्पन्न होता है लेकिन तत्काल वह भारतीय नारी की शालीनता और सहिष्णुता को याद करती हुई राम के मति-भ्रम को अपने ही अज्ञात अशुभ कर्मों का परिणाम मानती है—

कैसे प्रतिकूल प्रवाह बहा, कुछ भी जा सकता नहीं कहा,

१. आचार्य तुलसी ; विचार के वातायन में, पृ. ६८।

नस-नस मैं उनकी जान रही, अति भावुक भद्र स्वभाव रहा।
जो हुआ, दोष सब मेरा है, निर्दोष निरन्तर रहे राम,
कृतकर्मों का ही कुपरिणाम, जिससे उनकी मति हुई वाम।
झूठा कलंक यह आया है, रवि के रहते तम छाया है॥ परीक्षा पृ. ८१

कवि का मानना है कि नारी पुरुष को एकनिष्ठ प्रेम करती है पर उसके प्रतिदान में पुरुष उसको भाग्य भरोसे छोड़ देता है। राम ने सीता को सारथी के साथ जंगली पशुओं के बीच वन में भिजवा दिया। जब सारथी पुन: राम के चरणों में सीता की स्थिति बताने के लिए उपस्थित होता है, उस समय सारथी के मुख से नारी का क्षात्र तेज प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

- की नभ से ऊंची क्यों यदि यों, रौरव में मुझे गिराना था।
  क्यों वे सुख के दिन दिखलाए, यदि यह दुर्दिन दिखलाना था॥
  परीक्षा पृ. ८२
- अब तक जितने भी किए काम,
  उन सबमें उज्ज्वल हुआ नाम।
  जीवन की है पहली घटना,
  संतुलन खो दिया हाय राम!॥ परीक्षा पृ. ८१

विपदा की स्थिति में भी सीता धर्म को नहीं भूलती। वह उस दु:ख की परिस्थिति में अपना अंतिम संदेश भेजते हुए कहती है कि मेरे बिना आपका काम चल सकता है लेकिन धर्म के बिना एक क्षण भी नहीं चलेगा अत: मेरे साथ जैसा व्यवहार किया वैसा किसी अन्य के साथ मत करना। पत्नी के रूप में कही गई इन पंक्तियों में सीता का महिमा-मंडित व्यक्तित्व उजागर हो रहा है—

- पर नास्तिकता के भ्रमर-जाल में, आप कहीं मत आ जाना,
  मिथ्या तत्त्वों के चंगुल में, फंस सत्य-धर्म मत ठुकराना।
  चल सकता मेरे बिना काम, पर नहीं चलेगा धर्म बिना,
  सुख-शांति-सम्पदा सुर तरुवर, यह नहीं फलेगा धर्म बिना॥
  परीक्षा पृ. ६०
- हैं आप सूर्य-कुल-कमल-सूर्य, वैडूर्य तुल्य नव ज्योतिर्धर।

---

१. अणुव्रत १६ मार्च १९९१।
२. अमृत संदेश, पृ. २०, २१।

हो चिरंजीव जय-विजय वरें, आनंद करें भारत-शेखर!॥ परीक्षा पृ. ६०

उद्बोधिका एवं शक्तिस्वरूपा नारी का रूप

जब-जब पुरुष के चरण उन्मार्ग की ओर बढ़ते हैं, नारी पथदर्शिका बनकर उसके सामने खड़ी हो जाती है। इतिहास के ऐसे अनेक जीवन्त प्रसंग हैं, जब नारी ने पुरुष को सन्मार्ग पर प्रस्थित करने का प्रयत्न किया। संत उदाई को केशी की आज्ञा से जब कोई भी मकान देने को तैयार नहीं हुआ, तब पति का विरोध सहकर भी एक कुम्हारिन ने अपनी झोंपड़ी में मुनि को ठहराने के लिए अपने पति को तैयार किया। उस समय कुम्हारिन की प्रसन्नता का वर्णन करने में कवि का भाषा-सौष्ठव और पुनरुक्त शब्दों का सौन्दर्य दर्शनीय है—

अब तो रग-रग रोम-रोम में, नाच उठी कुंभारी।
रंग-रंग ईं अजब जंग में, नर स्यूं जीती नारी॥ चंदन पृ. ९५

आचार्य तुलसी ने नारी पात्रों की गरिमा अक्षुण्ण रखी है। उनके नारी पात्र पुरुषों को प्रेरणा देते हुए जीवन-रण में आगे बढ़ते हैं। तुलसीदास को सम्बोधित कर कवि ने रत्नावली के मुख से जिस गीत का संगान करवाया है, वह अध्यात्म की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि का है—

हाड़-मांस की पुतली ऊपर, निविड़ नेह निरमायो।
राम नाम स्यूं प्यार पलक भर, क्यूं नहिं पिउड़ा! पायो॥ सुधा पृ. ९३

कवि ने एक प्रभुता सम्पन्न राजा के समक्ष न्याय और नीति का रहस्य एक बुढ़िया के मुख से कहलवाया है। यह नारी जाति की पवित्रता और नीति के प्रति आस्था का एक विचित्र चित्र है। गन्ने के रस में इतना अंतर कैसे आया, इसका उत्तर देते हुए वृद्धा कहती है—

दुनिया में बरकत है नीति रै लारै,
आछा-भूंडा फल है नीति रै लारै,
नीति री फलती रेवै सदा कमाई,
रस इंयां सूखग्यो सुण रे! भोला भाई!॥ चंदन पृ. २८४

साधना के पथ पर प्रस्थित होने पर भी जब बाहुबलि का अहंकार नहीं छूटा, रोमांचक कष्टप्रद साधना करने पर भी अभिमान का शल्य भीतर दबा

---

१. आचार्य तुलसी ; राजपथ की खोज, पृ. १३७।

रहा, तब उनकी भगिनी साध्वियों—ब्राह्मी और सुंदरी ने रहस्यात्मक शैली में गीत गाकर उनको प्रतिबोध देते हुए कहा—

अब तो बन्धव! करिवर से उतरो,
अविकल अविचल उज्ज्वल केवलज्ञान वरो,
जिस पर चढ़े हुए हो वह, कुंजर कज्जल सा काला,
उच्छृंखल है, खल है और निरंकुश पीकर हाला,
वह बना हुआ मतवाला,
क्या यह वाहन उचित? विचार करो॥ भरत पृ. १४९

अनेक विशेषणों से नारी की शक्ति को राजस्थानी भाषा में भद्रा सेठानी के माध्यम से व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं—

सेठानी स्याणी है घर-धणियाणी, घर-अधिकारिणी।
क्यूं घबराणी? मन मरदाणी, कदे न हिम्मतहारिणी।
भारत में महिलावां रो, पुरुषां स्यूं के कम मान है? चंदन पृ. १११

वि. सं. २००६ जयपुर में बालदीक्षा के विरोध में भयंकर विरोध खड़ा हो गया। अनेक प्रभावशाली राजनेता और प्रबुद्ध व्यक्ति विरोध में खड़े हो गए। उस विरोधी वातावरण में आचार्य तुलसी की प्रेरणा से महिलाओं में अभिनव जोश जाग उठा। पर्दे और आभूषणों को त्याग कर शक्तिस्वरूपा दुर्गा का परिचय देते हुए बहिनों ने प्रथम बार जुलूस निकाला और योग्य दीक्षा के समर्थन में स्वतंत्र रूप से सार्वजनिक मीटिंग बुलाई। उनके साहस ने विरोधी लोगों को सोचने के लिए मजबूर कर दिया। महिलाओं के साहस को कलम बद्ध करते हुए कवि कहते हैं—

आखिर समाज री महिलावां, जद जागी,
दीक्षा विरोध री रीढ़ खिसकणै लागी।
पर्दानसीन बहनां घूंघट नै छोड़्यो,
जेवर-नेवर रो नेह तड़ाकै तोड़्यो॥
जब ले जुलूस चाली है भरे बाजारां,
जोशीला नारा हाजर हुई हजारां।
देखण सुणणै वाला रो फूल्यो सीनो,

१. विज्ञप्ति ९४४।

राजस्थानी बहनां कमाल सो कीनो॥ सेवा पृ. ८९

नारी के आत्मविश्वास को कवि ने जिस ओजस्वी स्वर में अभिव्यक्ति दी है, वह नारी इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ है। सीता जब अग्नि परीक्षा देने को उद्यत होती है, उस समय उसकी क्षात्र तेज युक्त वाणी सबमें आत्मतेज का संचार करने वाली है—

इतनी कठिन परीक्षा देते, किंचित् नहीं विषाद है,
सत्य शपथ से कहती मन में, अपरिमेय आह्लाद है।
चिर आकांक्षित सफल हो रहा, मेरा अन्तर् नाद है,
धुल जाएगा सहज सदा को, झूठा जन-अपवाद है॥ परीक्षा पृ. १६०

राम जब सीता के सतीत्व की परीक्षा लेना चाहते हैं, तब सीता अप्रतिहत आत्मबल के साथ कहती है—

कहो ज्यों दिखलाऊं, मेरा अटल सतीत्व,
पावक की ज्वाला झेलूं, या पन्नग से भी खेलूं,
उत्तप्त उठाऊं गोला, खा लूं मैं जलता शोला,
अम्बर में अधर रहूं मैं, आतप अत्युग्र सहूं मैं,
जल में स्थल, स्थल में जल लाऊं, मेरा अटल सतीत्व॥ परीक्षा पृ. १५५

उच्छृंखल एवं पतिता नारी का रूप

आचार्य तुलसी ने एक ओर नारी के उदात्त चरित्र को प्रकट किया तो दूसरी ओर नारी की स्वभावजन्य ईर्ष्या और कपट को भी प्रकट किया है—

कपट पिटारी नारियां, उक्ति हो रही सार्थ।
पर सुख में हो दुर्बला, खोती हैं परमार्थ॥ परीक्षा पृ. २२

कवि ने अन्य कवियों की भांति नारी को त्रिगुणों का नाश करने वाली, वासना की पुतली या साधना का विरोधी नहीं माना पर उसको दुर्बल और कमजोर बनाने वाली कमियों के प्रति उसका ध्यान अवश्य आकृष्ट किया है—

नई डिजाईन, नई फेशनां, ख्याल सिनेमा जाओ ए।
आजादी रो के ओ ही थे, लाभ उठाओ ए॥ सुधा ९२

आचार्य तुलसी पोस्टरों तथा पत्र-पत्रिकाओं में नारी-देह की अश्लील प्रस्तुति को नारी जाति के गौरव के प्रतिकूल मानते थे, जो धन के प्रलोभन

में अपने शरीर का प्रदर्शन करके सामाजिक शिष्टता का अतिक्रमण कर देती हैं। 'वैशाखियां विश्वास की' पुस्तक में नारी के अश्लील रूप की भर्त्सना करते हुए कवि कहते हैं—''मुझे ऐसा लगता है कि एक व्यवसायी को अपना व्यवसाय चलाने की जितनी आकांक्षा होती है, शायद उससे भी अधिक आकांक्षा उन महिलाओं के मन में ढेर सारा धन बटोरने की पल रही होगी, जो समाज के मूल्य-मानकों को ताक पर रखकर कैमरे के सामने प्रस्तुत होती हैं।''

कहीं कहीं प्राचीन आचार्यों का अनुगमन करके कवि ने नारी के प्रति प्रचलित मान्यताओं को भी अभिव्यक्त कर दिया है—

- नारी नर हित है वैतरणी। चंदन पृ. ४९

गहराई से देखें तो कवि को यह कथन करना पड़ा क्योंकि नागला के मुख से यह कहलवाए बिना भावदेव का मानसिक परिवर्तन संभव नहीं था अत: पात्र विशेष के मुख से कही गई उक्ति को कवि की अपनी मान्यता नहीं माना जा सकता।

आचार्य तुलसी नारी की शक्ति के प्रति पूर्ण आश्वस्त थे। उनका यह विश्वास अनेक बार इन शब्दों में व्यक्त होता था—''महिलाओं की शक्ति पर मुझे पूर्ण भरोसा है। जिस दिन मेरे इस भरोसे पर महिलाओं को पूरा भरोसा हो जाएगा, उस दिन सामाजिक चेतना में क्रांति का नया विस्फोट होगा, जो नवनिर्माण की पृष्ठभूमि के रूप में सामने आएगा।.....मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूं, जब स्त्री समाज का पर्याप्त विकास देखकर पुरुष वर्ग उसका अनुकरण करेगा।''[१]

राष्ट्रीय चेतना के स्वर

कवि या लेखक राष्ट्र के निर्माता होते हैं। वे अपनी लेखनी से राष्ट्र में नव प्राणों का संचार करते हैं। राष्ट्रकवि दिनकर के अनुसार साहित्य राजनीति का अनुचर नहीं किंतु उसे यह गौरव प्राप्त है कि वह राजनीति को भी अपने रंग में रंग दे। जो साहित्यकार देश के जन-जीवन की उपेक्षा कर मस्ती का राग अलापता है, उसे साहित्यकार कहलाने का अधिकार नहीं है।''[१]

तेरापंथ के आचार्य के साथ आचार्य तुलसी राष्ट्र के जागरूक एवं

---

१. अणुव्रत १६ मई, १९९०।

संवेदनशील विचारक और चिंतक भी थे। स्वतंत्र रूप से उन्होंने राष्ट्रीय भावना को उजागर करने वाला कोई काव्य ग्रंथ नहीं लिखा लेकिन अपनी लेखनी से वे समय-समय पर राष्ट्र को नयी दिशा देते रहे। खण्ड काव्यों में भी जहां कहीं युद्ध आदि का प्रसंग आया, उन्होंने मुक्त कंठ से देशभक्ति के गीत लिख डाले। आचार्य तुलसी का स्पष्ट मंतव्य था कि जिस कवि के मन में देश की अव्यवस्थाओं, समाज के गलत मूल्य-मानकों और व्यक्ति के असम्यक् दृष्टिकोण को बदलने की बेचैनी नहीं होती, उसके काव्य में शब्दशिल्पन तो हो सकता है, प्राण नहीं होते। मैं चाहता हूं कि हमारे देश के कवि, राष्ट्रकवि मानवीय और चारित्रिक भावना से प्रेरित होकर लिखें, इससे उनके लेखन में शाश्वत सत्यों का समावेश होगा और उनकी रचनाएं कालजयी बनने की अर्हता पा सकेंगी।''

यद्यपि आचार्य तुलसी का सार्वभौम व्यक्तित्व किसी देश या काल की सीमा में आबद्ध नहीं था लेकिन भारत में जन्म लेने के कारण इसके नव-निर्माण और सर्वांगीण उन्नति के बारे में नए-नए उन्मेष उनके चिन्तन में करवट लेते रहते थे। राष्ट्र के सभी दिग्गज नेता समय-समय पर मार्गदर्शन प्राप्त करने उनके चरणों में उपस्थित होते रहते थे। देश की हिंसक स्थितियों के प्रति समाधान का संकल्प व्यक्त करते हुए अपने जन्मदिन पर एक बार उन्होंने कहा—''मैं राष्ट्रीय एकता परिषद् के एक सदस्य के नाते अपना दायित्व समझता हूं कि अपनी शक्ति देश की समस्याओं को सुलझाने में लगाऊं। मुझे लगता है कि हिंसा, आतंक, अपहरण और क्रूरता आदि समस्याओं से भी बड़ी समस्या है—मानवीय मूल्यों के प्रति अनास्था। इस दिशा में मुझे अणुव्रत के माध्यम से लोकतंत्र की शुद्धि हेतु और भी तीव्र गति से कार्य करना है।'' देश की समस्याओं के संदर्भ में उभारे गए उनके प्रश्न किसी भी चिन्तनशील व्यक्ति के मानस को झकझोरने में समर्थ हैं—''जिस देश में करोड़ों व्यक्तियों को दलित समझा जा रहा है,उन्हें अस्पृश्य माना जा रहा है, उनके सामने भोजन और मकान की समस्या है, स्वास्थ्य और शिक्षा की

---

१. समणी कुसुमप्रज्ञा ; आचार्य तुलसी साहित्य : एक पर्यवेक्षण, भूमिका, पृ. १४७, १४८।
२. आचार्य तुलसी ; अणुव्रत: गति-प्रगति, पृ. १४७।

समस्या है, क्या उस देश में अपने आपको स्वतंत्र और सुखी मानना लज्जास्पद नहीं है?''

आचार्य तुलसी मानवता के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त थे। उन्हें विश्वास था कि अणुव्रत के माध्यम से पुनः रामराज्य लाकर वे नई रोशनी लाने में कामयाब होंगे। उनका यही आत्मविश्वास इन पंक्तियों में पठनीय है—''अणुव्रत भारत की जनता के लिए संजीवनी का काम करने वाला है। इस तथ्य से आज किसी की सहमति हो या नहीं पर कोई इतिहासकार जब भारत का इतिहास लिखेगा, तब अणुव्रत का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा।''[१]

आचार्य तुलसी की राष्ट्रीय भावना व्यक्तिपरक न होकर समष्टिपरक थी। उनकी दृष्टि में राष्ट्रीयता का अर्थ देश की एकता और अखण्डता से था। जाति, वर्ण, भाषा, प्रान्त आदि संकुचित विचारधारा के आधार पर राष्ट्र की एकता पर प्रश्नचिह्न लगाने वाले लोगों को वे कहते थे—''हरेक प्रान्त जब अपने ही हित की बात सोचता है, तब राष्ट्र की एकता खतरे में पड़ जाती है। उत्तर के लोग उत्तर की चिंता करते हैं, दक्षिण के लोग दक्षिण की, लेकिन भारत की चिंता कौन करे? भारत सलामत है तो सब सलामत हैं, भारत ही नहीं रहा तो उत्तर दक्षिण का क्या होगा?''[२]

राष्ट्रीयता देश के लिए उच्च कोटि का शौर्य एवं बलिदान की भावना जगाती है। आचार्य तुलसी की राष्ट्रीयता संकीर्ण या सामयिक नहीं, अपितु व्यापक एवं विशाल थी। निम्न पंक्तियों में उनकी राष्ट्रीयता मुक्त स्वर से मुखर हुई है—''प्रत्येक व्यक्ति अपने राष्ट्र से कुछ अपेक्षाएं रखता है तो उसे यह भी सोचना होगा कि जिस राष्ट्र से मेरी इतनी अपेक्षाएं हैं, वह राष्ट्र मुझसे भी कुछ अपेक्षाएं रखेगा, क्या मैं उन अपेक्षाओं को समझ रहा हूं? अब तक मैंने अपने राष्ट्र के लिए क्या किया? मेरा कोई काम ऐसा तो नहीं है, जिससे राष्ट्रीयता की भावना का हनन हो—चिंतन के ये कोण राष्ट्रीय दायित्व का बोध कराने वाले हैं।''[१]

भरतमुक्ति खंडकाव्य में देश-प्रेम का अत्यंत भव्य और उज्ज्वल रूप देखने को मिलता है। देश के लिए मर मिटने की प्रबल गूंज इस काव्य में

सुनाई पड़ती है। यह रचना भारत-पाक युद्ध के आस-पास की है। आचार्य तुलसी का तरुण रक्त राष्ट्रभक्ति के गीत लिखने को विवश हो गया। बाहुबलि के मुख से तक्षशिला के जवानों के माध्यम से कवि देश के जवानों में जोश भरते हुए कहते हैं—

- उठो-उठो हे देशवासियो!, अब कर्तव्य निभाना है।
  मातृभूमि की रक्षा करने, हम सबको जुट जाना है॥
  जिस अवनि में पले-पुसे हम, दाना खाया, नीर पिया,
  सब कुछ देकर जिसने हमसे, अब तक कुछ भी नहीं लिया,
  जन्मभूमि के उस ऋण को अब, हमें सहर्ष चुकाना है॥ भरत पृ. ८०
- वीरो! आज देश का गौरव, हम सबकी तलवार में,
  सबल सैनिको! जीत हमेशा, हम सबकी ललकार में,
  कभी न हो किंचित् कायरता, वीरों के व्यवहार में,
  सब कुछ भेंट चढ़ाएंगे हम, माता के उपहार में,
  डटकर हमें लगानी होगी, बाजी अब जी जान की॥ भरत पृ. ८३

कष्टों की परवाह भला क्या, जब अपने को अभय किया,
औरों को क्यों हो पीड़ा? जब हमने सबको अभय दिया।
संयम समता और अभयता, है यह मूल अहिंसा का,
तुमने बतलाया इनसे, होता उन्मूलन हिंसा का।
इसी तत्त्व को हृदयगंम कर, निज पर के सब पाप हरें।
देव! तुम्हारे श्रीचरणों में श्रद्धा का उपहार करें॥

भौतिकता के इस युग में अध्यात्मवाद का स्वाद मिला,
हैं कृतज्ञ हम सभी तुम्हारे, सचमुच ही सौभाग्य खिला।
पग-पग पर पाखण्ड पड़ा, प्रतिपद प्रवाह है पापों का,
हा! हा! हिंसा का हर घर में, आक्रन्दन अभिशापों का।
प्राप्त अमर वरदान तुम्हारा, भवसागर का स्रोत तरें॥
भक्त-हृदय के सादर सौ-सौ, साधुवाद स्वीकार करें॥ नंदन पृ. १८४

राजनीति पर धर्म का अंकुश उसे भटकने से बचा देता है। आचार्य तुलसी ने समय-समय पर राजनीति का पथदर्शन किया फिर चाहे वह राजीव लोंगोवाल समझौता हो या संसद का गत्यवरोध मिटाने की भूमिका। उनके साहित्य में स्वस्थ समाज एवं आदर्श राज्य के अनेक सूत्र उपलब्ध हैं। जज बसन्तीलाल बावेल आचार्य तुलसी को राजवेत्ता के रूप में देखते हैं— ''मैं आचार्य तुलसी के लिए राजवेत्ता शब्द का प्रयोग कर रहा हूं, 'राजनेता' का नहीं। राजनेता वह होता है, जो राज चलाता है और राजवेत्ता वह होता है, जो एक 'सुराज' का निर्माण करता है। अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी एक कुशल राजवेत्ता हैं। उन्होंने सदैव एक सुराज के निर्माण का स्वप्न संजोया है। वे एक ऐसे राज की कल्पना करते रहे हैं, जो विशुद्ध रूप से लोकतांत्रिक हो एवं सभी प्रकार की विकृतियों से मुक्त हो।''[१] भगवान् ऋषभ के मुख से कवि ने ऐसे राज्य को अभिव्यक्ति दी है, जिसका यथार्थ में होना कठिन अवश्य है पर उसे आदर्श राज्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—

कोई भी जहां विभाग नहीं, विद्रोहों की है आग नहीं,
सेना की नहीं अपेक्षा है, आतंक जहां है नहीं कहीं।
होते कोई उत्पात नहीं, शासन में है व्याघात नहीं,
चिंता की ज्वालाएं धधके, ऐसी कोई भी बात नहीं॥ भरत पृ. ४४

कवि का मानना है कि राजतंत्र तभी सुचारु रूप से चल सकता है, जब शासक और शासित के मध्य अटूट विश्वास हो, अधिकारी लोग रिश्वतखोर न हो तथा प्रजा को समय पर सही न्याय मिलता हो। बाहुबलि का आदर्श राज्य आज के लोकतंत्र को नई दिशा देने वाला है—

सुंदरतम है राज्य व्यवस्था, राज प्रजा में प्रेम अपार,
है विश्वास परस्पर एक दूसरे के प्रति वृत्ति उदार।
नहीं प्रपंच लंच का कोई, होता क्षीर नीर का न्याय,
सब संतुष्ट, सुखी जीवन है, हो जाती आवश्यक आय॥ भरत पृ. ६७

आचार्य तुलसी की राष्ट्रीयता में सांस्कृतिक चेतना की पुकार सुनाई देती है। संत होते हुए भी उनकी कविता में राष्ट्र के प्रति बलिदान की चेतना अत्यधिक तीव्रता और प्रखरता से अवतीर्ण हुई है। द्विधापूर्ण मन:स्थिति में पड़े नवयुवकों को सम्बोधित करते हुए कवि उनमें राष्ट्र-

प्रेम का जोश भरते हुए कहते हैं—

◆ मां से बढ़कर मातृ-भूमि है, इस गौरव में मत फूलो,
संस्कृति की रक्षा ही सबकी, रक्षा 'तुलसी' मत भूलो।
ऐसा काम न करना जिससे, कोई भी कस दे ताना,
जो कुछ कौशल पौरुष तुम में, समय आ गया दिखलाना॥

◆ वीरों की संतान वीर हो, 'तुलसी' आया है मौका।
बीच भंवर से पार लगादो, आज देश की तुम नौका॥

◆ बढ़ते रहें चरण साहस से, जोश तुम्हारा हर क्षण में।
देशभक्ति की ज्योति समुज्ज्वल, जगे तुम्हारे कण-कण में॥

◆ जीवन अर्पण करें देश के लिए, कौन सी बात बड़ी।
मातृभूमि ललकार रही है, वीरो! तुमको खड़ी-खड़ी॥

कवि को अपने देश के प्रति विशेष स्वाभिमान था। उनके मन में भारत के प्राचीन गौरव को पुनः लौटा लाने की तीव्र छटपटाहट थी। कवि राष्ट्र को सब ओर से शक्तिसम्पन्न बनाए रखना चाहते थे। भारत के प्राचीन गौरव को प्रस्तुति देते हुए कवि भारतीय जनता का मार्गदर्शन करते हुए कहते हैं—'एक समय भारत अध्यात्म-शिक्षा की दृष्टि से विश्व का गुरु कहलाता था। आज वही भारत भौतिक विद्या की भांति आत्मविद्या के क्षेत्र में भी दूसरों का मुंहताज बन रहा है।...... समस्या यह नही कि भारतीय लोगों ने अन्तर्दृष्टि खो दी। समस्या यह है कि उन्होंने अपना आत्मविश्वास खो दिया है।''[1] इसी तथ्य को कवि ने काव्य में भी गुम्फित कर दिया—

जिस विद्या से भारत ने, आध्यात्मिक गौरव पाया,
अखिल विश्व का एक मात्र जो, पथदर्शक कहलाया,
पा अनुशासन की छाया,
उसी दिशा में फिर युग-चरण चले॥ नंदन पृ. २६

स्वतंत्रता-प्राप्ति के साथ भारतीय जनता को प्रतिबोध देते हुए आचार्य तुलसी ने कहा—''कल तक तो अच्छे-बुरे की सब जिम्मेदारी विदेशी हुकूमत पर थी। यदि देश में कोई अमंगल घटना घटती या कोई अनुत्तरदायित्वपूर्ण बात होती तो उसका दोष, उसका कलंक विदेशी सरकार पर मढ़ दिया जाता

---

१. आचार्य तुलसी ; पानी में मीन पियासी, पृ. २७।

था लेकिन स्वतंत्र राष्ट्र होने के नाते अब अच्छे-बुरे की सब जिम्मेदारी जनता और जनसेवकों पर है।''[२] देश स्वतंत्र होने के बाद जब उन्होंने देखा कि भारतीय जनता अभी भी आंतरिक दासता से जकड़ी हुई है, दलबंदी और भ्रष्टाचार अपनी जड़ें जमा रहे हैं, आजादी का अर्थ अराजकता में बदल रहा है, रक्षक भी भक्षक बनकर देश की अस्मिता को निगल रहे हैं, तब उन्होंने लोगों को 'असली आजादी' अपनाने का आह्वान किया—

- असली आजादी अपनाओ,
  मिली तुम्हें जो यह आजादी,
  आगे कदम बढ़ाओ॥......अणु. पृ. १०३
- अपने पर अपना सुनियंत्रण, सच्चे सुख को है आमंत्रण।
  सही रूप में यह स्वतंत्रता, जन-जन को समझाओ॥ अणु पृ. १०३

आचार्य तुलसी प्रत्येक राष्ट्रीय समस्या का हल भारतीय संस्कृति के माध्यम से करना चाहते थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश के नेताओं को राष्ट्र के नव-निर्माण की ओर लगना था लेकिन लगभग नेता अपनी स्वार्थ-सिद्धि एवं व्यक्तिगत सुख-सुविधा के भोग में लिप्त हो गए। नेताओं की यह दशा देखकर आचार्य तुलसी अतीत के सांस्कृतिक मानकों से मार्मिक प्रेरणा देते हुए कहते हैं— 'यह भारतभूमि, जहां राम-भरत की मनुहारों में चौदह वर्ष पादुकाएं राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित रहीं, महावीर और बुद्ध जहां व्यक्ति का विसर्जन कर विराट् बन गए, कृष्ण ने जहां कुरुक्षेत्र में गीता का ज्ञान दिया और गांधीजी संस्कृति के प्रतीक बनकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर एक आलोक छोड़ गए, उस देश में सत्ता के लिए छीना-झपटी, कुर्सी के लिए सिद्धान्तों का सौदा, वैभव के लिए अपवित्र प्रतिस्पर्धा और विलास सने हाथों राष्ट्र-प्रतिमा का अनावरण हृदय में एक चुभन पैदा करता है।''[१] स्वतंत्रता के पश्चात् देश की दुर्दशा देखकर कवि राजनेताओं को ललकारते हुए गा उठे—

- कितनी ख्वाहिश आजादी को पाने की थी,
  क्या तमन्ना गुलामी मिटाने की थी,

अब दुराचारों के दास क्यों हो गए? अणु. पृ. ९९

- आजादी में बन मस्ताने, भूले निज कर्त्तव्य हो।
  तो आजादी यह बरबादी, सुनो वाक्य यदि श्रव्य हो॥ अणु पृ. १०१

सत्ता-प्राप्ति के बाद राजनीतिज्ञों के विलासपूर्ण जीवन का व्यंग्यचित्र खींचते हुए आचार्य तुलसी ने कहा—"गांधीजी ने कहा था कि मेरा ईश्वर दरिद्र-नारायणों में रहता है। यदि आज उनके भक्तों से पूछा जाए कि उनका ईश्वर कहां रहता है? संभवतः यही उत्तर मिलेगा कि हमारा ईश्वर कुर्सी में रहता है, सत्ता में रहता है। सत्ता और सुविधा पाकर उच्छृंखल एवं चरित्रहीन बने राजनेताओं को तीक्ष्ण और क्रान्त स्वरों में जागरण का संदेश देते हुए कवि कहते हैं—

कितने देकर आश्वासन, पाते हो तुम यह शासन।
शासक बन शोषक के संस्कार छोड़ दो॥ अणु. पृ. ४५
सेवा का वज्र कठिन व्रत, लेकर घर भरने में रत।
गुपचुप रिश्वत का कारोबार छोड़ दो॥ अणु. पृ. ४५

आचार्य तुलसी के चिंतन में पक्ष और विपक्ष लोकतंत्र के वृक्ष की दो शाखाएं है लेकिन जब देशहित को गौण कर एक दूसरे को नीचा गिराने की कोशिश होती है, तब राष्ट्रीय एकता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है। अनेक राजनैतिक दलों की पारस्परिक स्पर्धा पर व्यंग्य करते हुए आचार्य तुलसी कहते हैं—"भारत में एक दो दल नहीं, दल में भी उपदल हैं। उपदल में भी और दल-दल हैं। सभी में ऐसे दुर्दान्त कलह पनप रहे हैं कि भाड़ में चने की भांति एक-एक ओर भागता है तो दूसरा-दूसरी ओर। कभी-कभी तो वे बच्चों के खेल से भी ज्यादा घटिया हो जाते हैं।"[१] आचार्य तुलसी ने जिस लोकतंत्र की कल्पना की, वह दलीय संघर्ष एवं दांवपेच की राजनीति से दूर है। राजनीतिज्ञों की अनीति और भ्रष्ट आचरण का उद्घाटन विडम्बना के साथ नयी प्रेरणा देने वाला है—

यह सत्ता की रीति, स्वत्व पराया छीनना।

संग्रह शोषण-नीति, अपनापन रखती नहीं॥
उचितानुचित विवेक, होता है इसमें नहीं।
रहती है धुन एक, ज्यों त्यों अधिनेता बनूं॥ भरत पृ. ४०

चंद चांदी के टुकड़ों के लिए दल बदलने वाले या वोट खरीदने वाले नेताओं पर अचूक व्यंग्य करते हुए कवि कहते हैं—

- है स्वतंत्रता व्यक्ति-व्यक्ति की, लोकतंत्र की आत्मा।
  रहे सुरक्षित कैसे? जब हो, पैसा ही परमात्मा॥ अणु. पृ. १११
- बेच लड़कियां, लड़के बेचे, अब तो अपनी बारी है।
  वोटों की बिक्री में तुमने, यह भी बाजी मारी है॥ अणु. पृ. २२

कवि का मानना था कि लोगों में चुनाव के लिए पार्टी का टिकट पाने की जितनी उत्सुकता होती है, उतनी उत्सुकता यदि योग्य बनने की हो तो देश का नक्शा बदल सकता है। येन-केन प्रकारेण मानवता का गला घोंटकर पद पर आने वाले सत्ता-लोलुप राष्ट्रनेताओं को आह्वान करते हुए कवि कहते हैं—

मानवता की हत्या करके। क्या होगा उच्चासन वर के॥ अणु. पृ. १०४

चाहे देश का हित हो या न हो पर कुर्सी पर आंच नहीं आनी चाहिए, राजनेताओं एवं जननायकों की विलासपूर्ण स्थिति का चित्र उकेरते हुए कवि कहते हैं—

सुख-सुविधा के अभ्यासी, बंगले में बने विलासी।
आजादी के रखवाले! तुच्छ स्वार्थ तजो॥ अणु. पृ. १०४

राष्ट्र के समक्ष व्यक्ति और पदार्थ अकिंचित्कर हैं। नारी जाति के राष्ट्र प्रेम की जो उदात्त अभिव्यक्ति आचार्य तुलसी ने भद्रा के माध्यम से की है, वह अनुकरणीय है। भद्रा का स्वाभिमान दृढ़ शब्दों में ललकार उठता है कि मैं सब कुछ सह सकती हूं पर मगध राष्ट्र की अवज्ञा नहीं सह सकती। भद्रा सेठानी के मुख से उत्कृष्ट राष्ट्र-भक्ति का संगान कराकर कवि ने मातृजाति का सम्मान बढ़ाया है—

मगध देश नै यूं बदनाम, करणो जड़ता रो परिणाम।

---

१. सं. समणी कुसुमप्रज्ञा, एक बूंद : एक सागर, पृ. ५०३

मैं कोई मद में न छकूं, राष्ट्र-अवज्ञा सह न सकूं॥ चंदन पृ. ११०

भारत की भौगोलिक एकता का जो चित्र आचार्य तुलसी के मस्तिष्क में था, वह अत्यंत भव्य था। इस संदर्भ में उनके मौलिक एवं क्रान्त विचार पठनीय हैं—'विभिन्नताओं का लोप कर सबको एक कर देना असंभव है। ऐसी एकता में विकास के द्वार अवरुद्ध हो जाते हैं। अनेकता भी वही मूल्यवान् है, जो हमारी मौलिक एकता को किसी प्रकार का खतरा पैदा न करे। एक वृक्ष की अनेक शाखाओं की भांति एक राष्ट्र के अनेक प्रान्त हो सकते हैं, पर उनका विकास राष्ट्रीयता की जड़ से जुड़कर रहने में है, जब भेद में अभेद को मूल्य देने की बात व्यावहारिक बनेगी, उसी दिन राष्ट्रीय एकता की सम्यक् परिणति होगी।''[१]

पूंजीवादी और सामन्तवादी व्यवस्था के कारण समाज में अव्यवस्था फैलती है। इसी कारण सम्पन्न लोग गरीबों का शोषण करते हैं। राजनीति के क्षेत्र में आचार्य तुलसी पूंजीवादी व्यवस्था के प्रबल विरोधी थे। एक वर्ग दूसरे वर्ग को हीन माने अथवा उसका शोषण करे, यह उनकी करुणार्द्र चेतना को कदापि मान्य नहीं था। साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के विरुद्ध कवि ने तीखे विचार व्यक्त किए हैं—

- लगी अखरने अर्थ विषमता, पूंजी श्रम का प्रश्न खड़ा,
  सबका अग्रदूत बन आया, वादों का व्यामोह बड़ा।
  राष्ट्र-राष्ट्र को खड़ा निगलने, अविश्वास है जन-जन में,
  कथनी-करनी में न समन्वय, लगे धनार्जन की धुन में॥ नंदन पृ. ७२
- अर्थ का पंजीकरण ही स्पष्ट पूंजीवाद है।
  व्यक्तिगत हो राष्ट्रगत, उन्माद का संवाद है॥ अणु. पृ. ४१

आचार्य तुलसी ने भरत की राज्य-सभा में धार्मिक चर्चा की कल्पना करके राजनीति के क्षेत्र में नया आदर्श प्रस्तुत किया है। वे मानते थे कि धर्म के अंकुश बिना राजनीति उच्छृंखल हो जाएगी, साथ ही यह भी आवश्यक है कि राजनीति धर्म पर हावी न हो—

- बहुधा आध्यात्मिक चर्चाएं, राज्यसभा में चलती थीं।
  मानो उनकी राजनीति भी, धार्मिकता में पलती थी॥ भरत पृ. १६५

- कभी-कभी नय-निक्षेपों के, छिड़ पड़ते थे गहन प्रसंग,
  श्रोताओं को लगता था, मानो चलता सुंदर सत्संग।
  ईश्वर के कर्तृत्ववाद पर, जब चल पड़ता वाद-विवाद,
  आत्मा का कर्तृत्व सिद्ध होता था, स्पष्ट बिना अपवाद॥ भरत पृ. १६६

जिस प्रकार गांधीजी ने 'मेरे सपनों का भारत' पुस्तक लिखी, वैसे ही आचार्य तुलसी कहते हैं—'मेरे सपनों में हिन्दुस्तान का एक रूप है, वह इस प्रकार है—

- देश में गरीबी न रहे।
- किसी प्रकार का धार्मिक संघर्ष न हो।
- कोई किसी को अस्पृश्य मानने वाला न हो।
- कोई मादक पदार्थों का सेवन करने वाला न हो।
- खाद्य पदार्थों में मिलावट न हो।
- कोई रिश्वत लेने वाला न हो।
- कोई शोषण करने वाला न हो।
- कोई दहेज लेने वाला न हो।
- वोटों का विक्रय न हो।''[१]

दिनकर के बाद आचार्य तुलसी ही वे क्रान्त कवि हैं, जिन्होंने युद्ध को अपनी लेखनी का विषय बनाया। उनके काव्य में द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका संक्रान्त है। युद्ध के बारे में आचार्य तुलसी के विचार अत्यंत सुलझे हुए थे। वे मानते थे कि युद्ध में केवल धन, जन और शक्ति की ही हानि नहीं होती, मानवता भी विकलांग और अपाहिज हो जाती है। युद्ध वह आग है, जिसमें साहित्यकारों का साहित्य, कलाकारों की कला, वैज्ञानिकों का विज्ञान, राजनीतिज्ञों की राजनीति और भूमि की उर्वरता भस्मसात् हो जाती है।'' अहिंसा के पुजारी और प्राणी मात्र के प्रति मंगल भावना से भरे आचार्य तुलसी से जब राष्ट्र कवि दिनकर ने युद्ध में होने वाली हिंसा के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा—''युद्ध को मैं न अच्छा मानता हूं और न समर्थन ही करता हूं। समाज की सुरक्षा का दायित्व ओढ़ने वाला आदमी युद्ध के अनिवार्य कारणों को देखता हुआ भी नकारने का प्रयत्न करे, इसे

मैं खण्डित सत्य मानता हूं।''[२]

अहिंसा में प्रबल आस्था रखते हुए भी विरोधी पक्ष का सामना होने पर डटकर मुकाबला करने की बात कहकर उन्होंने अहिंसा को वीर्यवती बनाने का उपक्रम किया है—

चींटी भी क्यों अपने प्रमाद से मारें।
अनिवार्य अगर समरांगण में ललकारें॥ श्रावक पृ. १५५

राष्ट्र कवि दिनकर ने भी इसी बात की पुष्टि की है—

नहीं चाहता युद्ध लड़ाई, लेकिन अगर ठनेगी।
किसी तरह भी शांतिवाद से, मेरी नहीं बनेगी॥

युद्ध मानव को युगों पीछे पशुता की ओर ढकेलने का उपक्रम है। युद्ध के भीषण परिणामों का चित्रण कवि के शब्दों में पठनीय है—

लिए मन में कल्पनाएं, काल्पनिक कितने मरे,
क्रूर ए रणचण्डिके!, खप्पर नहीं तेरे भरे॥
साथ उनके हो गईं, कितनी कलाएं लुप्त हैं,
युद्ध से उत्पन्न क्षति भी, क्या किसी से गुप्त है॥
देखते ही अमित जन-धन का हुआ संहार है,
हाय! फिर भी रक्त की प्यासी खड़ी तलवार है॥ भरत पृ. १००

युद्ध के परिणामों का वर्णन व्यक्ति के भीतर युद्ध की निस्सारता, भीषणता और बर्बरता का साकार रूप प्रस्तुत कर देता है। युद्ध न करने का मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण देते हुए कवि कहते हैं—

आकर के कितने चले गए, यह धरती किसके साथ रही,
मेरी-मेरी कर मरे सभी, कोई भी अपना सका नहीं।
वैभव साम्राज्य अखाड़े में, सोचो तो कितने ही उतरे,
जो हारे वो तो हारे ही, जीते उनकी भी हार अरे!॥ भरत पृ. ४२,४३

युद्ध में समरांगण की स्थिति का वर्णन कितना हृदय-द्रावक बन पड़ा है—

कुचल-कुचल सेना रथ चलते, घोड़े लाशें रौंध,
प्रलयकाल की आज रही हो, मानो बिजली कौंध।

---

१. साहित्य सहचर, पृ. १९।

कहीं हाथ हैं, कहीं पांव तो, रुंड कहीं हैं मुंड,
समरांगण प्रत्यक्ष हो रहा, देखो रौरव-कुण्ड॥ भरत पृ. ९१

युद्ध के पश्चात् लावारिस पड़े शवों की स्थिति का मार्मिक चित्रण कवि की तूलिका से हुआ है—

हृष्ट पुष्ट सुंदर वपु जिस पर, थे मन स्वतः लुभाते,
काट-काट पैने दांतों से, उसको जम्बुक खाते।
जिन आंखों में तेज तरुण था, अरुण ओज की रेखा,
चोंचे मार रही हैं चीलें, दारुण वह दृश्य न जाता देखा॥ अणु. पृ. १०७

आचार्य तुलसी ने राष्ट्रीयता की जो धारा अपने साहित्य में बहाई है, वह अनेकों मृत प्राणों में प्राण फूंकने वाली हैं। उनके साहित्य में राष्ट्र की अनेक ज्वलन्त समस्याओं का सटीक समाधान खोजा जा सकता है।

दार्शनिक विवेचन

दर्शन का सम्बन्ध हृदय से होता है और काव्य का बुद्धि से फिर भी दोनों में कोई विरोध नहीं होता। काव्य जीवन की व्याख्या करता है तो दर्शन सहज ज्ञान की। पाश्चात्त्य विद्वान् कोलरिज के अनुसार ऐसा कोई भी व्यक्ति आज तक महान् कवि नहीं हुआ, जो कवि होने के साथ-साथ दार्शनिक न हुआ हो।'' कवि दर्शन की गुत्थियों और रहस्यों को सरल करके जनता के समक्ष प्रस्तुत करता है।

---

१. डॉ. भोलानाथ तिवारी ; व्यावहारिक शैली-विज्ञान, पृ. १३५।
२. कल्चर एण्ड एनार्की, पृ. ४४-४७।
३. स्टुअर्स चेज द प्रापर स्टडी आफ मेनकाइन्ड।
४. दिनकर ; अशोक के फूल, पृ. ७५।
५. डॉ. नगेन्द्र ; नई समीक्षा: नए संदर्भ, पृ. ४०।

आचार्य तुलसी ने किशोर अवस्था में ही लगभग सभी दर्शनों का गहन अध्ययन कर लिया था। प्रतिभा सम्पन्न कवि होने के कारण उन्होंने जीवन और जगत् से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों पर गहन विचार किया। उन्होंने अपने प्रतिभा-वैशिष्ट्य से दर्शन जैसे गूढ़, नीरस एवं शुष्क विषय को काव्य के माध्यम से जीवन की व्यावहारिकता के साथ जोड़ा। अनेक स्थलों में सघन दार्शनिकता की पुट होने पर भी उनकी कविता में पाठक के मन को पकड़ने की अपूर्व क्षमता है। प्रसंगवश जीव, जगत्, कर्म, आत्मकर्तृत्व, पुण्य-पाप, मृत्यु, पंचभूत, चार्वाक आदि अनेक विषय उनकी लेखनी से वर्णित हुए हैं। आत्मा और परमात्मा के रहस्य की सफल अभिव्यक्ति उनके काव्य में हुई है।

कर्मवाद पर आस्था भारतीय संस्कृति का प्रमुख तत्त्व है। विदेशी विद्वान् भारतीय दर्शन की इस विशेषता से प्रभावित हैं कि किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति को कर्मवाद का फल मानकर भारतीय जनता उस स्थिति में सहज प्रसन्नता से सामंजस्य स्थापित कर लेती है। वह मानती है कि कल का कर्म आज का भाग्य है और आज का कर्म कल का भाग्य। कर्मवाद क्रिया की प्रतिक्रिया का सिद्धांत है। टेपरिकार्डर की भांति वह वही सब कुछ बताता है, जो उसमें भरा गया है। आचार्य तुलसी कहते थे— 'जीव अपने शुभ-अशुभ कर्मों के द्वारा ही संसार में सुख-दुःख पाता है। संसार में जो कुछ वैविध्य है, वह इसी कारण दिखाई दे रहा है—

- है पुण्य-पाप का द्योतक यह, वैषम्य विश्व का विदित रूप।
  प्रत्यक्ष प्रमाणित कर्मवाद, संभुज्यमान सुख-दुःख सरूप॥ पानी पृ. २७
- क्या कहें सुनें, कर्मों की अलख कहानी।
  चलती न कभी इसके आगे मनमानी॥ परीक्षा पृ. ३०

कर्म के फल का सजीव और प्रेरक चित्रण विरोधाभासी शैली में द्रष्टव्य है—

- सूत्या काल राजमहलां में, मौज उड़ावै।
  आज भिखारी बै दर-दर रा, तूं पोमावै॥ सुधा पृ. ५
- हा जठै महल महलायत, मंजुल मनभावणा।

---

१. राममूर्ति त्रिपाठी ; भारतीय काव्य शास्त्र के नए क्षितिज, पृ. ३३७, ३३८।

२. सं. साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ; आचार्य तुलसी ; विचार के वातायन में, पृ. ५९

३. चंदन की चुटकी भली के 'सपणै रै संसार में', पृ. १०५।

बै बण्या खंडहर देख्यां, आंख्यां भर आवै है॥ सुधा पृ. ६

- कर्मों से हो जाते हैं, ऐसे ज्ञानी-अज्ञानी,
  जो धर्म, शुक्ल के ध्याता, बन जाते आर्त्त-ध्यानी,
  लाखों के तारक बनते, अपने हित में व्यवधानी,
  है शिथिल-ग्रथिल बन जाते, ऐसे उन्नत अवधानी॥ पानी पृ. ४७

सीता के मन का संताप कहलवाकर भी कवि पुनः कर्मवाद के माध्यम से सीता को आश्वासन देना चाहते हैं क्योंकि यही एक ऐसा उपाय है, जिसका गहरा विमर्श करके व्यक्ति दुःख में सुख का अनुभव कर सकता है—

री सीता! क्यों कर रही, व्यर्थ राम पर रोष।
वास्तव में तेरे सभी, कृत कर्मों का दोष॥ परीक्षा पृ. ५८

श्री अरविंद का मानना था कि पदार्थ और चेतना दो किनारे हैं, जिनके बीच जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित होता है। एक किनारा भूतवाद है तो दूसरा आत्मवाद अर्थात् नास्तिक और आस्तिक। पंत ने भूतवादियों को फटकारते हुए कहा था—

आत्मवाद पर हंसते हो, भौतिकता का रट नाम।
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे, तुम संवारकर चाम॥

आचार्य तुलसी मानते हैं कि यह भारतीय संस्कृति का औदार्य है कि चार्वाक जैसे भौतिक दर्शन को भी षड्दर्शन के अन्तर्गत प्रमुखता से स्थान दिया है।''[१] आषाढ़भूति काव्य में चार्वाक का तर्कसम्मत खंडन तथा चेतना की पृथक् सत्ता का प्रतिपादन हुआ है—

यदि भूतवाद ही सब कुछ है, चेतन की सत्ता पृथक् नहीं,
चेतनता धर्म कहो किसका? गुण अननुरूप होता न कहीं?
चेतना-शून्य क्यों मृत शरीर? धर्मी से धर्म भिन्न कैसे?,
यह जीव स्वतंत्र द्रव्य इसकी, सत्ता है स्वयं सिद्ध ऐसे॥ पानी पृ. २७

आचार्य तुलसी ने पूर्वपक्ष को भी हेतुपुरस्सर प्रस्तुत किया है। चार्वाक की मान्यता को सीधी-सादी भाषा में प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

नहिं स्वर्ग-नरक, नहिं पुण्य पाप रो फल है।

---

१. चंदन की चुटकी भली में 'कुम्हारी री करामात', पृ. ६७।
२. चंदन की चुटकी भली में 'पासो पलटग्यो', पृ. ४३।
३. चंदन की चुटकी भली में 'भरी जवानी आ कुर्बानी', पृ. १६९।

जप-तप री सारी, करणी बणी अफल है।
बण कर्जदार घी पीणो, माल उड़ाणो।
मर ज्याणो है फिर, कभी न आणो-जाणो॥ डालिम पृ. १७८

आचार्य आषाढ़भूति के मुख से पुनर्जन्म के खंडन का तर्क पठनीय है—

जो भी इस जग से जाते,
कोई ना वापस आते,
इससे यह साबित, पुनरवतार है नहीं॥ पानी पृ. ४९

आचार्य आषाढ़ जैसे आचार्य के मुख से जब शिष्य नास्तिकवाद की बात सुनते हैं तो आश्चर्यचकित हो जाते हैं। शिष्य के मुख से प्रकट आश्चर्य अलंकृत भाषा में पठनीय है—

पर सुनें हम आपके मुख से, अनोखी बात जब,
सत्य नास्तिकवाद है, होता कड़ा आघात तब।
दिव्य रवि क्यों कर रहा है, तिमिर छोड़ प्रकाश को,
शुक्ल शशधर-तुल्य श्रद्धा, जा रही क्यों ह्रास को? पानी पृ. ३५

आचार्य तुलसी जीवन की चिरंतनता और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे। उन्होंने देवी-देवता या भाग्य पर विश्वास करके उस पर आश्रित रहने का खंडन किया। साथ ही पुरुषार्थ की सत्ता को सर्वोपरि माना पर नियति को भी स्वीकार किया। नियति पर आधारित निम्न पद्य दुःख में सान्त्वना और आश्वासन देने वाला है—

अणहोणी होसी नहीं, होसी जो होणी।
बेमतलब बेचैन बण, क्यूं धीरज खोणी॥

स्वर्ग और नरक जैसे अप्रत्यक्ष विषयों पर आषाढ़भूति कथानक के माध्यम से पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष की सटीक अभिव्यक्ति हुई है। जब इंतजार करने पर भी शिष्य विनोद स्वर्ग से वापिस नहीं आता तो आचार्य अधीर हो उठते हैं। उनके मुख से उदगीर्ण स्वर्ग की नकारात्मक प्रस्तुति पठनीय है—

स्वर्ग होता यदि सुनिश्चित, शिष्य आता क्यों नहीं?
दे गया जो वचन उसको, वह निभाता क्यों नहीं?
स्पष्ट यह निष्कर्ष निकला, और कुछ है ही नहीं,
साम्प्रतिक जो दृष्टिगत हो, वही है केवल सही॥ पानी पृ. ४९

आचार्य तुलसी का मन जितना विराट् और सूक्ष्मदर्शी था, उनका प्रतिपादन भी उतना ही विराटता एवं सूक्ष्मता लिए हुए है। यही कारण है कि सिद्धान्त के सूक्ष्म रहस्यों को भी उन्होंने अपने काव्य में बहुत रोचकता से प्रस्तुत कर दिया है। सिद्धस्तवन में वे अनाम, अरूप परमात्म-सत्ता को ही प्रश्न पूछते हुए लोकवाद सम्बन्धी बहुत गहरा सिद्धान्त प्रस्तुत कर देते हैं—

निकट अनन्त अलोक पड्यो, क्यूं लोकांते थिति ठावो,
पैंतालीस लाख जोजन में, सारा किंयां समावो?
समझावो, मैं स्वयमेव समझणो चावूं॥ शासन पृ. ९

अनेकान्त जैन दर्शन का प्रमुख सिद्धान्त है। इसका मूल आधार सापेक्षता है। अनेकान्त के अनुसार दो विरोधी युगलों का सापेक्ष सह अस्तित्व रह सकता है। दर्शन के इस सिद्धान्त को व्यवहार में प्रस्तुति देते हुए कवि कहते हैं—

हर विरोधी युगल का, सापेक्ष सह अस्तित्व है।
प्रमुखता या गौणता ही, व्यक्ति का व्यक्तित्व है। श्रावक पृ. १४८

कवि ने अनेकान्त दर्शन की सापेक्षता को स्वयं के उदाहरण से प्रायोगिक रूप में प्रस्तुत किया है—

गण में हूं, गण का ऋणी, गणहित चिन्तनयुक्त।
करूं व्यक्तिगत साधना, तब गण चिन्तामुक्त॥ आत्मा पृ. १२

कवि ने 'आयारो की अर्हद्वाणी' में नय, निक्षेप तथा निश्चय-व्यवहार का दार्शनिक विवेचन बहुत संक्षिप्त एवं सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। निश्चय के साथ व्यवहार की महत्ता प्रदर्शित करने वाले निम्न पद्य कवि की व्यावहारिक एवं अनैकान्तिक दृष्टि के परिचायक हैं—

- कवि लेखक वक्ता, संगायक स्वाध्यायी,
  आध्यात्मिक मौनी, ध्यानी अनुसंधायी।
  श्रमशील तपस्वी, त्यागी सेवाभावी,
  व्यवहारकुशलता से ही, बने प्रभावी॥ आत्मा पृ. १०
- हो जाता उच्छिन्न तीर्थतरु, केवल निश्चय के बल से।

मिलता है अभिषेक अनवरत, उसको व्यवहृति के जल से॥

आत्मा पृ. ११

संसार की क्षणभंगुरता का वर्णन अनेक कवियों ने किया है। कवि प्राचीन उपमा को दार्शनिक शैली में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

सागर की चपल तरंगों का उन्मज्जन,
फिर उसी अंक में, उनका विवश निमज्जान।
है इन्द्रजाल सा, यह स्वजनों का संगम,
स्थिरतान्वेषी कैसे सकता इसमें रम? आत्मा पृ. ८७

काव्य में स्फुट रूप से प्रसंगवश किया गया दार्शनिक विवेचन दर्शन की अनेक गुत्थियों को सुलझाने वाला है। फिर चाहे 'अर्हद् वाणी' में किया गया नय और स्याद्वाद का वर्णन हो या 'पानी में मीन पियासी में' पुण्य, पाप, पुनर्जन्म आदि का विवेचन। 'अग्निपरीक्षा' में वर्णित व्यावहारिक कर्मवाद का विश्लेषण हो या 'आत्मा के आसपास' में निश्चय, व्यवहार और संसार के वास्तविक स्वरूप का चित्रण। आचार्य तुलसी के दार्शनिक विवेचन की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उन्होंने दर्शन को जीवन और व्यवहार के साथ जोड़ा। उनके निम्न दो उद्धरण दर्शन के क्षेत्र में चिंतन को नई दिशा देने वाले हैं—

- जो धर्म या दर्शन नया बोध नहीं देता तथा जन-जीवन की समस्याओं को अनदेखा छोड़ देता है, वह दीर्घकाल तक अपने अस्तित्व को सुरक्षित नहीं रख सकता।[१]
- दर्शन से जीवन को अलग नहीं किया जा सकता। वह जीवन की व्याख्या है, विश्लेषण है। कहीं वह उत्तेजक बनता है, कहीं अवरोधक और कहीं व्यापक। यह सत्प्रवृत्ति का उत्तेजक, असत्प्रवृत्ति का अवरोधक और सदाचार की दिशा में व्यापक होता है।

युग-चेतना की प्रस्तुति

कोई भी संवेदनशील रचनाकार पहले अपने समय से जुड़कर फिर लेखन में प्रवृत्त होता है। क्रान्तद्रष्टा कवि अपने काव्य के समस्त उपादानों को

युग से ही ग्रहण करता है और उन्हें युगधर्म के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता है। समय की मांग और युगीन संस्कृति को काव्य से अलग नहीं किया जा सकता। विद्वानों के अनुसार साहित्य के लिए यह महत्त्वपूर्ण नहीं कि उसमें कला के कैसे उपादानों का प्रयोग हुआ है, महत्त्वपूर्ण प्रयत्न यह है कि वह समय के समग्र सम्बन्धों एवं संदर्भों में जीने वाले मनुष्यों का प्रामाणिक दस्तावेज है या नहीं? कवि अपने युग की सभी परिस्थितियों को स्वीकार ही नहीं करता, अस्वीकार भी करता है, कहीं-कहीं विद्रोह भी करता है। मौलिक सर्जना वहीं होती है, जहां काव्य में कवि के व्यक्तित्व एवं उसके युग की समन्वित छाप हो, तभी वह युगचेतना का प्रतिनिधित्व कर सकता है।

आध्यात्मिक होने पर भी आचार्य तुलसी युग-चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाले क्रान्तिकारी कवि थे। उन्होंने युग की नब्ज को पहचानकर बीसवीं सदी की हर धड़कन को गहराई से सुना और लोगों को युगानुरूप ढलने की प्रेरणा दी। युग की अपेक्षाएं और आकांक्षाएं उनके काव्य में करवट लेती दिखाई देती हैं। उनका अभिमत था—"बदलते युग के साथ आवश्यकतानुसार बदलने वाला व्यक्ति ही युग के साथ चल सकता है अन्यथा वह युग के साथ गति नहीं कर सकता।" इसी कारण युग-चेतना को बदलने की छटपटाहट उनके काव्य में यत्र-तत्र देखी जा सकती है। आचार्य महाप्रज्ञ की निम्न पंक्तियां उनके काव्य की कसौटी हैं—

वह कम्पन हो कवि के स्वर में,
नाच उठे कण-कण भूमि का,
फूट पड़े अंकुर पत्थर में,
मृत जीवन में जगे चेतना,
खिल जाएं कलियां पतझड़ में॥

शाश्वत और सामयिक की भेदरेखा समझने वाला ही युग द्रष्टा कवि हो सकता है। आचार्य तुलसी ने युगसत्य और चिरन्तन सत्य में समान रूप से संतुलन स्थापित किया। इस संदर्भ में उनका मौलिक मंतव्य किसी भी क्रांति का सूत्रधार बन सकता है—"परिवर्तन के समय मैं स्थिरता में विश्वास बनाए रखना चाहता हूं और स्थिरता के लिए मैं परिवर्तन में विश्वास करता हूं।"

आचार्य तुलसी ने अपने काव्य के माध्यम से युगधारा को नया स्वर ही नहीं, नया मोड़ और नया परिवेश देने का प्रयत्न भी किया, तभी वे युगभाषा में युगचेतना से युक्त साहित्य का सृजन कर सके। आचार्य तुलसी

कहते थे कि युगधारा को तभी मोड़ा जा सकता है, जब अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय किया जाए क्योंकि कोरी आध्यात्मिकता रूढ़ होती है और कोरा विज्ञान विध्वंसक। दोनों में युति की प्रेरणा कवि के शब्दों में पठनीय है—

कोरी आध्यात्मिकता युग को, प्राण नहीं दे पाएगी,
कोरी वैज्ञानिकता युग को, त्राण नहीं दे पाएगी,
दोनों की प्रीति जुड़ेगी, युगधारा तभी मुड़ेगी॥ नंदन पृ. ११

पदार्थ की खोज हेतु शोध और अनुसंधान के लिए पश्चिमी वैज्ञानिक अपना सब कुछ न्यौछावर कर देते हैं। भारतीय जनता को उच्च स्वर में प्रेरणा देते हुए कवि कहते हैं कि आत्मा की खोज में भी यही दृढ़ आत्म संकल्प अनिवार्य है—

शोध होती आत्मव्रत से, सबक लें पश्चिम-जगत् से।
खोजकर अस्तित्व अपना, हम स्वयं भगवान हों अब॥ नंदन पृ. ४३

आचार्य तुलसी प्रगतिशील ही नहीं, प्रयोगवादी कवि थे। वे जागरण को घर-घर तक पहुंचाना चाहते थे अतः समाज की जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों को तोड़ गिराने में उनके गीतों ने अहं भूमिका निभाई है। अन्याय और शोषण के विरुद्ध उन्होंने खुलकर आवाज उठाई। युग की किसी गलत परम्परा की उन्होंने उपेक्षा नहीं की। वे आत्मविश्वास के साथ कहते थे—''समाज के जिस हिस्से में शोषण है, झूठ है, अधिकारों का दमन है, उसे मैं बदलना चाहता हूं और उसके स्थान पर नैतिकता एवं पवित्रता से अनुप्राणित समाज को देखना चाहता हूं इसके लिए मैं जीवन भर शोषण और अमानवीय व्यवहार के विरोध में आवाज उठाता रहूंगा।''

कवि को विश्वास है कि व्यक्ति-व्यक्ति का आत्मानुशासन जागने पर स्वर्णिम भविष्य हमारी प्रतीक्षा करता हुआ मिलेगा। जनचेतना को झकझोरते हुए वे कहते हैं—

आज अपेक्षा अपने से अपना अनुशासन जागे,
ऐसी क्रान्ति घटित हो मानव, उच्छृंखलता त्यागे,
स्वर्णिम भविष्य है आगे,
शम सम श्रम से जीवन क्रम बदले॥ नंदन पृ. २६

क्रान्त स्वर में युग का यथार्थ अंकन कर कवि कहते हैं—

- घोर चारित्रिक पतन, सब ओर बढ़ता जा रहा।
सत्य का सूरज स्वयं पर, आवरण है पा रहा॥ अणु पृ. २५

आचार्य तुलसी का मानना था कि भयंकरता शस्त्र में नहीं, व्यक्ति के चरित्र में होती है। शस्त्र तो उसका प्रतिबिम्ब मात्र होता है। सही अर्थों में मनुष्य का आग्रह और निषेधात्मक भाव ही शस्त्र हैं। शस्त्र की उपज मनुष्य के मस्तिष्क में होती है।' इसी सत्य को कवि ने काव्य में भी उकेर दिया है—

वैचारिक आग्रह ने अणुअस्त्रों को जन्म दिया है।
सहअस्तित्व समन्वय पर, परदा सा डाल दिया है॥ अणु पृ. ११२

हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार जो साहित्यकार अपने जीवन में मानव-सहानुभूति से परिपूर्ण नहीं है और जीवन के विभिन्न स्तरों को स्नेहार्द्र दृष्टि से नहीं देखता, वह किसी बड़े साहित्य की सृष्टि नहीं कर सकता।''[१] आचार्य तुलसी करुणा के महासागर थे। उनकी करुणा सम्पूर्ण मानव-जाति के साथ जुड़ी हुई थी। उनका स्वप्न था कि ऐसा सघन पुरुषार्थ हो, जिससे सम्पूर्ण मानव-जाति करुणा, मैत्री और शांति के धागे में आबद्ध हो सके—

करें प्रबल पुरुषार्थ सभी में, अभिनव आस्था जागे।
जोड़े सबके अन्तर-मानस, को करुणा के धागे॥ अणु पृ. १६

युगीन परिस्थिति में पारिवारिक सम्बन्धों में बढ़ती कटुता का चित्र कवि के शब्दों में पठनीय है—

- बाप रु बेटा चढ़ै अदालत।
  बालम वनिता बीच वकालत॥ सुधा पृ. १३
- सुत सुविनीत कर्कशा नारी,
  पुत्र-वधू है मोसा-मारी,
  घर में खुली कलह री क्यारी॥ सुधा पृ. १३

कवि द्वारा चयनित प्राय: पात्र ऐतिहासिक एवं प्राग् ऐतिहासिक हैं, लेकिन उनके माध्यम से युगचेतना पारदर्शी के रूप में अभिव्यक्त हुई है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि जिन युगीन परिस्थितियों ने कवि के संवेदनशील हृदय को मथा, उन्हें अपनी प्रतिभा से कलात्मक अभिव्यक्ति देकर उन्हें शाश्वत बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने युग के हृदय का स्पंदन अपने गीतिकाव्य में उतारने का प्रयत्न किया। युग-चेतना के सांस्कृतिक मूल्यों की सुरक्षा के लिए वे जीवनभर अहर्निश प्रयत्न करते रहे।

काव्य में संस्कृति के स्वर

१, २. एक बूंद : एक सागर, पृ. ७४३।

''संस्कृति जीवन के उन सूक्ष्मतर तत्त्वों की संहति का नाम है, जिससे मानव-चेतना का संस्कार होता है।''[१] संस्कृति मानवीय इतिहास की संरक्षिका और संवाहिका होती है। काव्य के रथ पर आरूढ़ होकर ही संस्कृति विकसित होती है अत: कवि काव्य में संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए नए स्वर देता है। जब-जब सांस्कृतिक संकट पैदा हुए, उस समय कुछ कालजयी कवियों द्वारा संस्कृति की रक्षा करने का प्रयत्न हुआ, फिर चाहे वे सूर या तुलसी के रूप में प्रकट हुए या दिनकर या जयशंकरप्रसाद के रूप में। मैथ्यू आर्नल्ड संस्कृति को व्यापक परिवेश में परिभाषित करते हुए कहते हैं—''संस्कृति जीवनगत परिपूर्णता, सौन्दर्य और प्रकाश है। इसमें विश्वास, भाव, नियम, आचार और कला का समाहार होता है, जिसे समाज के अन्तर्गत माना जा सकता है।''[२]

पाश्चात्त्य विचारक संस्कृति को सीमेन्ट मानते हैं, जो सम्पूर्ण समूह को जोड़ती है। इसके बिना समूह समाज न होकर एक भीड़, समुच्चय और पेषणपुंज मात्र रह जाता है।''[३] डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार मानव की श्रेष्ठ साधनाएं संस्कृति के अन्तर्गत आती हैं।''[४] डॉ. नगेन्द्र भी उच्चतम आदर्श से संस्कृति का सम्बन्ध जोड़ते हैं। उनके अनुसार केवल सत्य दर्शन का विषय है, केवल शिव नीति का तथा कला में सुंदरम् का माहात्म्य है किन्तु संस्कृति में तीनों का सामंजस्य रहता है।''[५] वासुदेव शरण अग्रवाल ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश को संस्कृति मानते हैं। इस संदर्भ में आचार्य तुलसी का मंतव्य था कि संस्कृति तो मानवीय संस्कारों का प्रवाह है, जो जीवन की अविच्छिन्न परम्परा को लिए बहता रहता है।

आचार्य तुलसी सांस्कृतिक चेतना जागरण के अग्रदूत थे। भारतीय संस्कृति के आदर्श उनके कण-कण में परिव्याप्त थे। उनकी प्राय: सभी काव्य कृतियां शाब्दिक चमत्कार की सीमा से ऊपर उठकर सांस्कृतिक परिवेश में प्रस्तुत की गयी हैं। उन्होंने संस्कृति के सैद्धान्तिक पक्ष को व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न किया। राममूर्ति त्रिपाठी का मंतव्य उनके कण-कण में

---

१. राममूर्ति त्रिपाठी ; भारतीय काव्य शास्त्र के नए क्षितिज, पृ. २१८।
२. A History of Modren ditisim p.१२३।
३. गुरुदेव नारायण ; बिहारी : एक नव्य बोध, पृ. १००।

परिव्याप्त था—"मनुष्य के पास हृदय, बुद्धि और दो हाथ हैं। इन तीनों की लोक मंगलमुखी दिशा में समन्वित यात्रा ही उसकी सांस्कृतिक यात्रा है, जय यात्रा है, मानवता की चरितार्थता का प्रस्थान है।"[१] भारतीय संस्कृति में अपसंस्कृति की घुसपैठ देखकर सुमित्रानंदन पंत का कवि- हृदय बोल उठा—

आज बृहत् सांस्कृतिक समस्या, जग के निकट उपस्थित।
खण्ड मनुजता को युग-युग की, होना है नव निर्मित॥

संतता संस्कृति की वाहक होती है अत: आचार्य तुलसी मानते थे कि संत समुदाय ही अधिक प्रामाणिक तरीके से सांस्कृतिक तत्त्वों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रान्त कर सकते हैं। आचार्य तुलसी के काव्य-साहित्य में पदे-पदे संस्कृति के स्वर मुखर हैं। वे सांस्कृतिक मूल्यों के क्षरण से अत्यन्त चिंतित थे। उनकी सुरक्षा के लिए वे जीवन भर अपनी आवाज बुलंद करते रहे। साहित्यकार कनुप्रिया के शब्दों में "आचार्य तुलसी एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक विशाल सांस्कृतिक संस्था हैं। उनका तेजस्वी व्यक्तित्व अब एक गौरवपूर्ण प्रतिष्ठान बन गया है।"[२]

आचार्य तुलसी इस बात के लिए अत्यन्त जागरूक और सजग थे कि भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत को छोड़कर प्राचीन जीवन-मूल्यों से विरत न हो जाए क्योंकि सांस्कृतिक विकास ही राष्ट्र एवं समाज के अभ्युदय का निमित्त बनता है। उन्होंने अपने खंड काव्यों और चरित काव्यों के माध्यम से भारत की प्राचीन संस्कृति को नए परिप्रेक्ष्य एवं नए परिवेश में उजागर करने का प्रयत्न किया। भारत के प्राचीन गौरव की पहचान देते हुए कवि सीधी सरल भाषा में कहते हैं—

◆ एक समय था भारत वाले,
नहीं कहीं रखते थे ताले,
अब जूतों पर भी रखवाले॥ अणु पृ. ७४

शालिभद्र[३] के आख्यान में जहां त्याग के उत्कर्ष को प्रकट किया गया है तो उद्रायण राजा[१] के आख्यान में संत-माहात्म्य को प्रदर्शित किया है। भावदेव नागला[२] कथानक में नारी के उत्कर्ष की गरिमा को गाया है तो विजय-विजया[३] आख्यान में अध्यात्म की उत्कृष्ट प्रस्तुति हुई है।

आचार्य तुलसी सांस्कृतिक परम्परा की सुरक्षा हेतु पूर्ण जागरूक थे।

१. १६/१०/६६ के प्रवचन से उद्धृत।

यद्यपि विदेशी शब्दों का प्रयोग उनके साहित्य में प्रचुर मात्रा में मिलता है लेकिन युगीन प्रभाव से पाश्चात्य संस्कृतिपरक शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। उन्होंने सांस्कृतिक शब्दों की गरिमा को सुरक्षित रखा है। मां जैसे महनीय शब्द को उन्होंने कहीं भी मम या मम्मी कहकर नहीं पुकारा अपितु अम्मा, मां, माई, मावड़ली, मावड़, मायड़, मावड़ी, मातुश्री, मातेश्वरी, मांजी, माऊ जैसे संस्कृति परक शब्दों का ही प्रयोग किया है।

गुरुदेव तुलसी ने अतीत के आख्यानकों द्वारा प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव को पुनरुज्जीवित किया है। उनके पात्र भी भारत की उज्ज्वल परम्परा का चित्र प्रस्तुत करते हैं। प्राचीन श्रमशील लोक संस्कृति के प्रति कवि का आकर्षण है। मां वदना की कठोर जीवन-चर्या के माध्यम से कवि तुलसी इसी बात को प्रकट करना चाहते हैं—

ऊखल मूसल री चोट जी, टांके टेबै री ओट जी।
तीनूं टेम आंच पर तपणो, कठै किसी टसकाई हो... ॥ मां पृ. ११

जैन परम्परा के अनुसार इस युग में संस्कृति का प्रारम्भ भगवान् ऋषभ से हुआ। सानुप्रासिक भाषा में इसी तथ्य को प्रकट करते हुए कवि कहते हैं—

असि-मसि-कृषि को कर्‌यो प्रवर्तन, परिवर्तन वर्तन में।
कर्म-भूमि को कर्म सिखायो, पौरुष तन में मन में।
खान-पान, परिधान स्नान को, शिक्षण दियो सदय हो। चंदन पृ. ५

युग के आदि में भगवान् ऋषभ ने जनता को हर बात का प्रशिक्षण दिया। उस समय सरलता होते हुए भी युग के आदि में होने वाले मनुष्यों की अज्ञता का एक सुंदर चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है—

साधारण से भी साधारण, बातों में जाते लोक उलझ,
कैसे खाना? पीना? रहना?, इतनी भी उनमें थी न समझ।
जीवन का कैसे यापन हो, यह सबसे बड़ी पहेली थी,
कुछ हुआ कि आते दौड़-दौड़, उनकी यह निश्चित शैली थी॥ भरत पृ. १५

संस्कृति की परम्परा चलती है। एक मां अपने बच्चे में किस प्रकार उच्च संस्कार भरती है, इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति राजस्थानी भाषा में पठनीय है। निम्न पंक्तियां कवि की निजी अनुभूति से संपृक्त होने के कारण अत्यन्त मार्मिक बन गयी हैं। मां वदना के माध्यम से कवि आज की माताओं को भी प्रतिबोध देना चाहते हैं—

सीख-सुमत देती सारां नै, बहो आपणै गेलै

भांग-तमाखू और व्यसन रै, जावो नहीं झमेलै,
नहीं घूमो घर रै बार जी, मानो मोटां री कार जी,
धरम-करम री बात न भूलो. आ है खरी कमाई हो। मां पृ. १०

कवि को अपनी जन्मभूमि राजस्थान से अत्यन्त लगाव है अत: मरुस्थल शब्द के स्थान पर पीली मिट्टी के कारण वे इसके लिए स्वर्णस्थल शब्द का प्रयोग करते हैं। साथ ही यह भी कहते हैं कि इस धरती की मिट्टी रात्रि में चांदी की भांति चमकती है। यदि यहां अधिक गर्मी और आंधी नहीं होती तो इस धरती की तुलना किसी से नहीं की जा सकती थी—

रयणी रेणुकणां शशिकिरणां, चलकै जाणक चांदी रे
मनहरणी धरणी न हुवै यदि, अति आतप अरु आंधी रे॥

कालू भा. १ पृ. ६१

जन्मभूमि से लगाव होने पर भी अन्य व्यक्तियों की धारणा को उन्होंने हूबहू संप्रेषित कर दिया है। हर्मन जेकोबी ने जब राजस्थान में आकर तेरापंथ के अष्टम आचार्य कालूगणी के दर्शन करने का मानस बनाया तो उन्हें बहकाने के लिए लोगों ने राजस्थान का चित्र खींचते हुए कहा—

सुणी मरुस्थल थल री यात्रा, करणी मन में ठाणी,
अति आतप अंधड़ असभ्य जन, निर्जल मुल्क निशाणी रे।
सरदी मौसम लक्कड़दाहो, घाम तपै ज्यूं भट्टी।
बरसाले बिरखा रा सांसा, उड़ै मोसमी मट्टी रे॥
मिलै न खाद्य पदार्थ सार्थ, जिण देशे साहिब! स्वादू।
बाजर रोट सोट सम नहिं कोई, फल रस रो आस्वादू॥
दाड़िम दाख अनार मौसमी, आलू आम जमेरी।
नींबू बिस्कुट डबलरोट नहिं, मिलै दूध री डेरी रे॥

कालू भा. १ पृ. ११७

कवि ने धार्मिक ग्रंथों के अंश उद्धृत करके भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति निष्ठा व्यक्त की है—

- हों 'अज्झप्परए' हम प्रतिपल, काल हमारा क्या कर पाए? नंदन पृ. १६६
- 'नापुट्ठो वागरे किंचि', मितभाषी रो आदर्श। सुधा पृ. ५८

---

१. विद्यानिवासमिश्र, अस्मिता के लिए, पृ. ५४।

- लड़ें स्वयं की दुष्प्रवृत्ति से, जबर जुझारु वृत्ति बढ़े।
  'जुद्धारिहं दुल्लहं' निश्चित, महासमर के शिखर चढ़ें॥ सम्बोध पृ. १२६

शिक्षा और संस्कृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। आचार्य तुलसी वार्तमानिक शिक्षा प्रणाली से असंतुष्ट नहीं थे पर उसकी अपूर्णता की ओर बार-बार ध्यान केन्द्रित करते रहते थे। शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ने वाली उच्छृंखलता और अनुशासनहीनता की ओर इंगित करते हुए कवि कहते हैं—

छोटी-छोटी बातों पर, कितना होता उत्पात।
विद्यालय में करनी पड़ती, आज पुलिस तैनात।
जो अध्ययन-कसौटी थी, वह क्यों बन गई कृपाण?
हाय! परीक्षा ले लेती है, कितनों के ही प्राण॥ अणु पृ. ५५

वार्तमानिक शिक्षा-प्रणाली में होने वाली त्रुटि की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कवि कहते हैं—

संयमशून्य आज की शिक्षण-शैली बनी विषैली।
जिससे यह आचारहीनता, उच्छ्रंखलता फैली॥ अणु पृ. ५९

शिक्षा का अधिकारी कौन होता है, इसे आगम के आलोक में प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

अविनय विपदा, विनय संपदा, आगम वाक्य उदार।
जिण रै हृदयंगम है तिण नै, शिक्षा रो अधिकार॥ चंदन पृ. २५

कवि का स्पष्ट मंतव्य था कि शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य यदि केवल बौद्धिक विकास या डिग्री पाना ही हो तो यह दृष्टिकोण की संकीर्णता है क्योंकि शिक्षा का सम्बन्ध शरीर, मन, बुद्धि और भाव सबके साथ है। एकांगी विकास की तुलना शरीर की उस स्थिति के साथ की जा सकती है, जिसमें सिर बड़ा हो जाए और हाथ-पांव दुबले-पतले रहें।''

शिक्षा का फलित प्रस्तुत करते हुए कवि आज की शिक्षा-पद्धति के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत कर रहे हैं—

सर्वांगीण विकास संतुलित जीवन और मनोबल।
अपना अनुशासन अपने पर, ये सब शिक्षा के फल॥ अणु पृ. १११

आचार्य तुलसी ने प्रसंगवश लोकसंस्कृति एवं लोकविश्वास के अकृत्रिम प्रतिबिम्ब भी अपने काव्य में प्रस्तुत किए हैं। जैसे शुभाशुभ शकुन, संस्कार, छींक, आकाशवाणी, अपशकुन आदि। गर्भवती स्त्री के मन में उत्पन्न दोहद

का सुंदर बिम्ब मेघकुमार के आख्यान में पठनीय है। धारिणी के मन में असमय में वर्षाऋतु में क्रीड़ा करने का दोहद उत्पन्न हुआ। उत्पन्न दोहद का सजीव चित्र खींचते हुए कवि कहते हैं—

घन गरजारव ऊपर केकारव करता केकी नाचै,
पिउ–पिउ शब्द पपीहा जीहां, जाणक जलधर जल जाचै,
डररर दादुरड़ां री अति प्यारी धुन–धुंकार हो
अद्‌भुत अजब बहार हो,
धन्य–धन्य बै मावां असमय वर्षा ऋतु रो रस लेवै,
मेघ–सलिल में न्हावै, मोद मनावै क्रीड़ारत रेवै,
म्हांरी मंशा कद फलसी ढलसी धारासार हो॥ मैं तिरूं पृ. ३९

अंधविश्वास में परिणत लोकविश्वास लोक–संस्कृति के महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। कवि ने प्रसंगवश अंधविश्वासों को भी प्रस्तुति दी है। वन में जाते हुए सीता को मिले अपशकुन और उनका सीता पर होने वाले प्रभाव का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

ज्यों ही चलने को सज्ज हुई, फड़ –फड़ फड़का दक्षिण लोचन,
यह क्या? इस मंगल बेला में, क्यों होते हैं ऐसे अशकुन?
होने दो मेरा क्या लेंगे, जब बुला रहे हैं प्राणेश्वर,
कुछ चिंतित–सी, कुछ विस्मित–सी, सीधी बैठी रथ में आकर॥

परीक्षा पृ. ५१

कवि ने प्रासंगिक रूप से क्षेत्र विशेष के खान–पान एवं रहन–सहन आदि का भी सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है। मेवाड़ के खान–पान की पूरी संस्कृति निम्न पंक्तियों में प्रकट हो गयी है—

जौ मक्की रो ही खास खाण, गेहूं री भी अब कमी नहीं,
उड़दां री दाल बाफलां री, बा जोड़ी किण नै गमी नहीं।
भुजिया झकोलवां–पूड्यां रो, जाझरिया रो जद स्वाद जमै,
घी–गल्या–ढोकला मकियां रा, लख मुख रो पाणी नहीं थमै॥

मगन पृ. १

कहीं कहीं कवि ने परम्परागत रूप से चलने वाली मान्यताओं को भी सहज सरल भाषा में अभिव्यक्ति दे दी है—

मोटो शुभ कारज शुभ दिन में ही कीजै।
आ बड़ा-बड़ेरा री रीती निवहीजे॥ मगन पृ. ७४

शराब सांस्कृतिक मूल्यों को नष्ट करके व्यक्ति को उन्मत्त बना देती है। शराब से होने वाले दुष्परिणामों का वर्णन करने में कवि का उक्ति-वैचित्र्य द्रष्टव्य है—

इसने समाप्त कर डाली, शाहंशाहों की शाही,
राजाओं सामन्तों की, इसने की बड़ी तबाही,
कितनों के उज्ज्वल यश पर, इसने फेरी है स्याही?
किस तरह खराबी की है? इसका इतिहास गवाही,
ऐसा लगता यह छलिनी, आई है सबको छलने॥ अणु पृ. ६७

शराबी की स्थिति का एक सटीक बिम्ब कवि के शब्दों में पठनीय है—

माख्यां रो भिणणाट बदन पर, गीड़ घुलै आंख्यां में।
शीष उघाणै पांव उभाणै, पंखी बिन पांख्यां में॥ चंदन पृ. १५३

चरितकाव्य के अन्तर्गत कवि ने अनेक स्थलों पर प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के चित्र भी प्रस्तुत कर दिए हैं। मंत्री मुनि मगनलालजी की दीक्षा के समय वस्तुओं के मूल्यों को दर्शाता निम्न पद्य—

पिण उण इण जुग री मंहगाई जद मापां,
तो समाधान पावां आपे ही आपां।
घृत पांच सेर रुपया रो उण जुग में थो,
रुपिया रो सोलै सेर तैल तब रेतो।
गुड़ बीस सेर पेंताली मिलता गेहूं,
ढाई मण रुपिये रा मक्की जो बेहूं॥ मगन पृ. ११

आचार्य तुलसी ने नवीनता और प्राचीनता का समन्वय किया। उन्होंने प्राचीनता की खिल्ली न उड़ाते हुए उसकी उपयोगिता का नवीनता के साथ सामंजस्य किया। वैसे वे प्राचीनता को वहीं तक उचित मानते थे, जो वर्तमान में उपयोगी हो तथा परिवर्तन को उसी सीमा में स्वीकृति देते थे, जो मौलिकता की सुरक्षा करता हो—

- मौलिकता रहे सुरक्षित, परिवर्तन सदा अपेक्षित । नंदन पृ. १८२
- सिर्फ पुरानी धारणा, रह जाएगी बन रूढ़।
  सिर्फ नयापन आदमी को, कर देगा दिग्मूढ़॥ नंदन पृ. ११४

किसी भी राष्ट्र या समाज में पारस्परिक आदान-प्रदान या सम्बन्ध बनाने के लिए एक भाषा का राष्ट्र-भाषा के रूप में होना अनिवार्य है, जिससे राष्ट्रीय

एकता और अखण्डता बनी रहे तथा सांस्कृतिक मूल्यों की सुरक्षा हो सके। 'पल्लव' की भूमिका में सुमित्रानंदन पंत कहते हैं— 'हमें भाषा नहीं, राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता है। पुस्तकों की नहीं, मनुष्यों की भाषा की आवश्यकता है, जिसमें हम हंसते-रोते, खेलते-कूदते, लड़ते-गले मिलते, सांस लेते रहते हैं।'' इस संदर्भ में आचार्य तुलसी का मंतव्य था कि यदि देश की एक भाषा होती है तो हर प्रान्त के व्यक्ति का दूसरे प्रान्त के व्यक्ति के साथ सम्पर्क जुड़ सकता है। मैं मानता हूं कि देश की एकता के लिए राष्ट्र में एक भाषा का होना अत्यन्त आवश्यक है। दक्षिण यात्रा के दौरान आचार्य तुलसी ने अपने सत्प्रयत्नों से भाषा के प्रान्तीय विवाद को सुलझाने का भगीरथ प्रयत्न किया और उसका शुभ परिणाम भी सामने आया।

संत किसी भी देश की संस्कृति के संवाहक होते हैं। कवि ने अपने समय के विविध साधु-संन्यासियों का साक्षात् चित्र प्रस्तुत किया है—

> कइ भस्म विलेपित गात्रा, शिर जटाजूट बेमात्रा।
> मृग-छाल विशाल बिछावै, मुख सींग डींग संभलावै॥
> बाबा बाघम्बर ओढ़ै, गंगा-जमना-तट पोढ़ै।
> कइ न्हां-धो रहै सुचंगा, कइ नंगा अजब अड़ंगा।
> कइ पंचाग्नी तप तापै, जंगम-थावर संतापै।
> ऊंचै स्वर धुन आलापै, कइ जाप अहोनिश जापै।
> कइ ॐ हरि ॐ हरि बोलै, उदरंभरि मौन न खोलै।
> कइ डगमग मस्तक डोलै, भव-वारिधि ज्यान झकोलै॥
>
> कालू भा. १ पृ. १५०

भारतीयता कवि तुलसी के रोम-रोम में रमी हुई थी। इसके प्रति उनके मन में गौरव के भाव थे। वे बार-बार देशवासियों आह्वान करते थे कि यदि हमने परम्परागत संस्कृति की उपेक्षा की तो यह महामूर्खता होगी। पाश्चात्त्य संस्कृति के प्रभाव को देखकर प्रवचनों में अनेक बार वे आत्मविश्वास के साथ इस स्वर को मुखर करते थे कि भारत में एक दिन अवश्य अपसंस्कृति की रीढ़ टूटेगी और उसके स्थान पर संयम की संस्कृति की प्रतिष्ठा होगी। समानता और विश्वबंधुत्व की भावना भारतीय संस्कृति का आदर्श है।''

भारतीय संस्कृति की त्याग एवं उत्सर्ग की भावना का चित्र खींचते हुए कवि तुलसी उस पर अभिमान करने की प्रेरणा देते हैं—''भारतीय संस्कृति में

त्याग, प्रेम, करुणा, ईमानदारी और सहिष्णुता जैसे गुण जुड़े हुए हैं अत: कोई भी ताकत भारत की अखण्डता को तोड़ नहीं सकती। हिन्दुस्तान के भाल पर उस दिन नया सूरज उगेगा, जिस दिन भारतीय जनता की आस्था त्याग, धैर्य और शौर्य पर केन्द्रित होगी।''[१]

भारतीय संस्कृति की व्यापकता को प्रस्तुत करते हुए डॉ. मंगलदेव शास्त्री कहते हैं—''भारतीय संस्कृति की तुलना अश्वत्थ वृक्ष से की जा सकती है, जिसकी नींव स्वर्ग में तथा शाखाएं पृथ्वी की ओर हैं।'' आचार्य तुलसी ने इसी व्यापकता को शब्दायित करते हुए कहा है—''भारतीय संस्कृति की यह विलक्षणता रही है कि उसने पदार्थ को आवश्यक माना पर उसे आस्था का केन्द्र नहीं बनाया। शस्त्रशक्ति का सहारा लिया पर उसमें त्राण नहीं देखा। अपने लिए दूसरों का अनिष्ट हो गया पर उसे क्षम्य नहीं माना। यहां जीवन का चरम लक्ष्य विलासिता नहीं, आत्मसाधना रहा, लोभ-लालसा नहीं, त्याग-तितिक्षा रहा।''[२]

संसार के दु:खों से मुक्त होने के लिए जो व्यक्ति आत्महत्या की बात सोचते हैं, उनकी सोच को परिमार्जित करते हुए आचार्य तुलसी कहते हैं—

ऊब दु:खों से तुमने जो यह, निर्णय किया कि मर जाऊं।
मर जाने का अर्थ हुआ इस, दुख-सागर को तर पाऊं॥
किन्तु यहां से मरकर भी तो 'तुलसी' कहां पर जाओगे।
जहां जाओगे वहां वही दु:ख, खड़ा सामने पाओगे॥
इससे तो अच्छा है 'तुलसी' कर्जा यहीं चुका जाओ।
अपना किया स्वयं पाओगे, हलका हृदय बना जाओ॥
रोक नयन के अन्तर आंसू, कर पत्थर-सा हृदय कठोर।
आंख मींचकर विष पी जाओ, बन अधीर मत सोचो और॥

◆ कष्ट कितने ही पड़ें, पर आत्महत्या पाप है।
क्योंकि अगले जन्म में भी, फिर वही संताप है॥ अणु पृ. ३२

आचार्य तुलसी के साहित्य में लोक संस्कृति एवं अध्यात्म-संस्कृति को उन्नत बनाने के अनेक तत्त्व बिखरे पड़े हैं। एक ओर जहां उन्होंने भारतीय संस्कृति का गौरवपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर उसमें स्थान पाने वाली अपसंस्कृति की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है।

धर्म और अध्यात्म के स्वर

श्री अरविन्द काव्य को सर्वोत्तम मंत्र तथा कविता को गहनतम आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार करते थे।[१] मैथ्यु आर्नल्ड के अनुसार नैतिक विचारों के प्रति विद्रोह की कविता जीवन के प्रति विद्रोह है और नैतिक तथा आध्यात्मिक विचारों के प्रति उपेक्षा भाव वाली कविता जीवन के प्रति उपेक्षा है।'' बायरन ने नैतिक काव्य को सर्वश्रेष्ठ माना है। टालस्टाय ने कला का मापदण्ड नैतिकता को स्वीकार किया है।''[२] कवि का अनुभव जितना व्यापक होगा, उसके नीति-कथन भी उतने ही व्यापक होंगे।''[३]

गुरुदेव तुलसी आध्यात्मिक अनुशास्ता थे। उनके संभाषण, लेखन एवं गायन में अध्यात्म के स्फुलिंग उछलते रहते थे। अध्यात्म की उच्चतम भूमिका पर प्रतिष्ठित उनका सम्पूर्ण गीति साहित्य जन-जन को आत्मदर्शन की प्रेरणा देता है। स्वामी रामतीर्थ के अनुसार केवल आत्मज्ञान ही ऐसा तत्त्व है, जो हमें सब जरूरतों से दूर कर सकता है। आचार्य तुलसी के अनुसार व्यक्ति स्वयं को नहीं पहचानता इसीलिए वह दर-दर भटकता है अत: आत्मस्वरूप का बोध ही व्यक्ति का सबसे बड़ा बोध है। आचार्य तुलसी के जागृत आत्मबोध के बारे में साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी का मंतव्य पठनीय है—'उन्होंने कभी रुकना नहीं सीखा, हटना नहीं सीखा, मुड़ना नहीं सीखा, लौटना नहीं सीखा। उनका पुरुषार्थ उनके फौलादी व्यक्तित्व की जीवंत कहानी है। किन्तु एक बिन्दु पर आकर वे रुकते हैं, हटते हैं, मुड़ते हैं और वापस भी लौट जाते हैं। वह बिन्दु है—आत्मबोध। जिस क्षण उन्हें यह अहसास हो जाता कि अमुक रास्ता अस्तित्व-बोध की मंजिल तक नहीं जाता, वे तत्काल रुक जाते हैं।''

धर्म और अध्यात्म की अप्रतिहत शक्ति के प्रति उनका मन पूर्णतया आश्वस्त था। स्वयं अध्यात्म का रस चखने के बाद उसका रस दूसरों को भी अनुभूत कराने के लिए उनका मन उत्कंठित हो उठा। वे कहते थे—'मेरा सबसे अधिक आकर्षण और विश्वास अध्यात्म-शक्ति पर है। मेरे जीवन की सबसे बड़ी साध है कि मैं अध्यात्म को तेजस्वी और ओजस्वी देखूं। जिस दिन ऐसा होगा, मैं कृतकृत्य हो जाऊंगा। यदि ऐसा नहीं होगा तो न जाने इस दुनिया की क्या गति होगी? लोग दुर्दिन की कल्पना करते हैं किन्तु मैं अध्यात्म के अभाव को ही सबसे बड़ा दुर्दिन मानता हूं।''[१] आचार्य तुलसी का पूरा काव्य-

साहित्य, अध्यात्म और नैतिकता के स्वर से झंकृत है। आत्मलक्ष्य के प्रति उनकी जागरूकता गीत की निम्न पंक्तियों में पठनीय है—

आत्मपक्ष के सम्मुख सभी, लक्ष्य फीके लगते हैं।
मिथ्या मानदण्ड उन्नति के, निज को ही ठगते हैं॥ नंदन पृ. ५२

कवि ने एक ग्रामीण कुम्हारिन के मुख से सीधी-सादी भाषा में अध्यात्म का ऊंचा दर्शन प्रस्तुत करवा दिया है—

घर लूटै तो भले लूटल्यो, आ कुटिया मटिया री।
हांडां-कुंडां ठाम ठीकरा, भरी राख री क्यारी॥ चंदन पृ. ९४

आचार्य तुलसी का सम्पूर्ण साहित्य भौतिकता के विरुद्ध संघर्षरत है। उनका स्पष्ट मंतव्य था कि केवल भौतिकवादी दृष्टिकोण से परमसुख की प्राप्ति असंभव है। आत्मज्ञान के प्रकाश के सामने भौतिक विज्ञान का नक्षत्र कभी तेजस्वी नहीं बन सकता। आत्मजागृति की महत्ता प्रदर्शित करने वाली ये पंक्तियां व्यक्ति को भीतर झांककर कुछ कर गुजरने की प्रेरणा देती हैं—

तोड़ अब इन बंधनों को, स्वयं को तूं स्वयं पा,
सुप्त अपनी चेतना को, स्वयं के द्वारा जगा।
बना केन्द्रित शक्तियों को, प्राप्त कर अपनी प्रभा,
स्वच्छ अभ्र विमुक्त नभ में, चन्द्र ज्योतिस्सन्निभा॥ भरत पृ. २९

धर्म की प्रथम सीढ़ी है— अनासक्त चेतना का विकास। अनासक्ति के बिना व्यक्ति केवल पदार्थ-चेतना के स्तर पर जीता है। वह मकान में नहीं रहता अपितु मकान उसके दिमाग में रहता है। अनासक्ति घटित होने की अवस्था कवि की अनुभूति के आलोक में पठनीय है—

सुख-दुःख के प्रति जागती, अंतः सम्यग्दृष्टि।
तभी घटित होती सहज, अनासक्ति की सृष्टि॥ आत्मा पृ. ४३

आचार्य तुलसी के अनुसार जब तक व्यक्ति के भीतर अहंकार और ममकार की भावना है, वह अध्यात्म का विकास नहीं कर सकता। दार्शनिक भाषा में हूं और है के भेद को समझाते हुए कवि कहते हैं—

मैं हूं मैं है भेद पर, जाता है जब ध्यान।

---

१. आचार्य तुलसी ; मनहंसा मोती चुगे, पृ. ८५।

संभव बनती है तभी, आत्मा की पहचान॥आत्मा पृ. ३६

विकासशील भौतिक विज्ञान के युग में जहां दूसरों को पराधीन बनाने की स्पर्धा में नित नए विनाशक अस्त्र-शस्त्रों का अम्बार लग रहा है, वैसी स्थिति में कवि का यह आह्वान कितना प्रेरक है कि जो अपनी आत्मा पर अधिकार नहीं कर सकता, वह दूसरों पर अधिकार करने का अधिकारी भी नहीं हो सकता। सच्चा विजेता वह नहीं, जो युद्धक्षेत्र में लाखों शत्रुओं को मौत के घाट उतारे। सच्चे विजेता की परिकल्पना कवि की निम्न पंक्तियों में पठनीय है—

जीतै जो दस लाख जोध नै, निज पशुबल रै पाण स्यूं।
एक मनुज अपणो मन जीतै, विमल विवेक कृपाण स्यूं॥ चंदन पृ. १९

कजिन के अनुसार कला का उद्देश्य नैतिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है। आचार्य तुलसी नैतिकता के अग्रदूत थे। नैतिकता की पुन: प्रतिष्ठा करने में उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी। उनके प्रवचन और गीत साहित्य ने भी नैतिक मूल्यों की स्थापना में अहम् भूमिका निभाई है। तत्कालीन सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री बी.पी. सिन्हा ने उनके व्यक्तित्व के इस वैशिष्ट्य पर अपनी टिप्पणी करते हुए कहा—''मेरी समझ में तेरापंथ की राष्ट्र को सबसे बड़ी देन आचार्य श्री तुलसी हैं, जिन्होंने ठीक समय पर सारे देश में नैतिक जागरण का शंख फूंका है।''

आचार्य तुलसी के नीतिपरक गीतों में सुख-दु:ख मिश्रित जीवन के गहरे अनुभव अभिव्यक्त हैं। उनके गीत एवं शिक्षाप्रद दोहे प्रत्येक मन को अध्यात्मरस में डुबकी लगवाने में सक्षम हैं। मानवता के फोड़ों पर उन्होंने गीतों के माध्यम से मलहम लगाने का प्रयत्न किया है। व्यक्ति संघर्ष और दु:खों से आक्रान्त भले हो जाए पर उसके मन में अनैतिकता और भौतिकता के प्रति आस्था न जगे, यही प्रेरणा उनके काव्य-साहित्य की हर पंक्ति में सुनाई पड़ती है। उनका स्पष्ट उद्घोष था कि अगर हम समय पर नैतिकता का पुनर्जागरण नहीं कर सके तो भारत का अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है।''

'कुछ लोग नैतिकता को धर्म से अलग करना चाहते हैं पर धर्म के आधार के बिना नैतिकता का अन्त हो जाएगा।' बारटोल की इस उक्ति से

१. विज्ञप्ति सं. ९८८।
२. सं. समणी कुसुमप्रज्ञा ; एक बूंद : एक सागर, पृ. ५५२।

आचार्य तुलसी पूर्णतया सहमत थे। उन्होंने जनता को चौंकाने वाला, मर्मस्पर्शी और एक नया तथ्य प्रस्तुत किया कि धार्मिक होकर भी यदि व्यक्ति नैतिक नहीं है तो वह बेईमान धार्मिक है। नैतिकताविहीन धार्मिकों पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए वे कहते हैं—

- धार्मिक है पर नहीं कि नैतिक, बहुत बड़ा विस्मय है,
  नैतिकता से शून्य धर्म का यह, कैसा अभिनय है?,
  इस उलझन का धर्मक्रान्ति ही, है कमनीय किनारा।
- धर्म-शून्य धार्मिक का जीवन, कैसा व्यंग्य करारा? नंदन पृ. ५०

आचार्य तुलसी की मान्यता थी कि नैतिक नियमों पर ही ब्रह्माण्ड टिका हुआ है अत: इसका उल्लंघन किसी भी दृष्टि से वांछनीय नहीं है—

टिक्यो पड्यो संसार समूचो, ओ नीती रै स्हारै।
सूरज चांद समय पर बिरखा, नीती लारै॥ चंदन पृ. २७९

कवि भारतीय जनता को उच्च स्वर में सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि अपनी शुद्ध नीति सदा सुखद भविष्य का निमित्त बनती है अत: धार्मिकता का मूल आधार नैतिकता होनी चाहिए—

नैतिकता आधार बने, जन-जन की धार्मिकता का।
समता स्वतंत्रता ही मूल मंत्र है मानवता का॥ नंदन पृ. १५९

विद्यानिवास मिश्र के अनुसार धर्म सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानव-मूल्य है। इसके अभाव में जीवन की सारी संगति नष्टप्राय: है। धर्म का अर्थ जीने के तौर तरीकों में एक ऐसा सामंजस्य है, जो गति तो बनाए रखता है पर विच्छृंखलता नहीं आने देता।''[१] आचार्य तुलसी कहते थे कि यदि जीवन में पवित्रता नहीं है तो केवल शास्त्रज्ञान धार्मिकता का प्रमाणपत्र नहीं बन सकता है—

केवल शास्त्रों के उच्चारण, से धार्मिकता आए।
राम राम रटने वाले, तोते ईश्वर बन जाएं॥ नंदन पृ. १५९

आचार्य तुलसी का स्पष्ट मंतव्य था कि धर्म और अध्यात्म को केवल कुछ व्यक्तियों तक सीमित नहीं किया जा सकता। उनका धर्म वर्ण, जाति, सम्प्रदाय आदि सभी संकीर्ण घेरों से मुक्त था। धर्म की जो परिभाषाएं एवं व्याख्याएं उनके काव्य में सहज रूप से अभिव्यक्त हो गयीं, वे धर्म-क्रान्ति की संवाहिकाएं हैं। उन्होंने उद्घोषणा करते हुए कहा कि साधना और धर्म का

पथ भय, प्रलोभन, चाटुकारिता और आडम्बर आदि से परे है—

- जातिवाद से, अर्थवाद से, व्यर्थवाद से दूर,
  बलात्कारिता चाटुकारिता, नहीं उसे मंजूर,
  धर्म हृदयपरिवर्तन है, फिर क्या निर्धन धनवान्॥ नंदन पृ. १८१
- आडम्बर में धर्म कहां है?
  स्वार्थ-सिद्धि में धर्म कहां है? शासन पृ. ९१
- वही धर्म है सही कि जो, जन-जन के मन को मांजे।
  घोर तिमिर से आवृत जन-जन, की आंखों को आंजे॥ नंदन पृ. ५०

आचार्य श्री तुलसी का धर्म हृदय का धर्म है, मस्तिष्क का नहीं। उनके धर्म की व्याख्या बौद्धिक कसौटी पर खरी उतरती हुई भी हृदय को वेधती है। उन्होंने विश्व के सामने धर्मक्रान्ति के पांच सूत्र प्रस्तुत कर नास्तिक और बौद्धिक जनता को भी धर्म की ओर आकृष्ट किया। वे पांच सूत्र इस प्रकार हैं—१. प्रायोगिकता, २. बौद्धिकता, ३. समाधानपरकता, ४. वर्तमानप्रधानता, ५. सर्वधर्मसद्‌भावना। सर्वधर्म समन्वय के लिए अणुव्रत के मंच से उन्होंने सन् १९७० में त्रिसूत्री कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की—

- सब धर्म सम्प्रदायों के आचार्यों का समय-समय पर परस्पर मिलन।
- समस्त धर्मग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन।
- सब धर्मों से ऐसे सर्वमान्य सिद्धान्तों का निर्यूहण, जिनमें सम्प्रदायवाद की गंध न रहे तथा आम आदमी उनका पालन कर सके।

धन के द्वारा धर्म करने वालों का उन्होंने कड़े शब्दों में विरोध किया। वे कहते थे—'मेरा यह निश्चित अभिमत है कि कोई भी व्यक्ति धन के बल पर कभी भी मोक्ष और स्वर्ग नहीं पा सकता। यदि ऐसा ही होता तो धनी व्यक्ति तो आज तक कब ही मोक्ष और स्वर्ग पहुंच गए होते और करोड़ों निर्धनों और हम जैसे अकिञ्चनों के लिए मुक्ति के द्वार हमेशा के लिए बंद हो जाते।'' धन से धर्म स्वीकार करने वालों के समक्ष 'अधेली' (आधा आना) शब्द का प्रयोग कर कवि ने एक नूतन चमत्कार की सृष्टि की है—

धार्मिक बणणै में लगै न एक अधेली॥ माणक पृ. ३२

धर्म के द्वारा सुख-समृद्धि की इच्छा रखने वाले लोगों की अन्तर्दृष्टि जागृत करते हुए कवि कहते हैं—

- सुख-समृद्धि की भले अपेक्षा, जन इससे रखते हैं।
  पर मैं कहता बिना धर्म, कोई जी भी सकते हैं? नंदन पृ. ५०
- धर्म नहीं चिन्ता करता, परलोक बने सुखदाई।
  उसको चिन्ता जीवन में, कितनी पवित्रता आई॥ नंदन पृ. १५९

महात्मा गांधी कहते थे कि धर्मस्थान में भिखारियों को खाना और पैसा देने को मैं पुण्य कार्य नहीं मानता। भीख मांगने वालों को काम देना चाहिए। यदि काम न देकर पैसा ही देते रहे तो भारत का नाश हो जाएगा।'' शोषण या गलत तरीके से धन कमाकर अपना घर भरने और संघर्ष करने वालों पर कवि ने करारा व्यंग्य किया है—

धर्म नाम से शोषण करते, धर्म नाम से निज घर भरते।
धर्म नाम से लड़ते-भिड़ते, कैसा धर्म बना बेचारा॥ शासन पृ. ९२

धर्म और अध्यात्म संबंधी सबसे अधिक मौलिक बात उन्होंने यह कही कि युगधारा में नया मोड़ लाने के लिए विज्ञान और अध्यात्म दोनों को एक दूसरे का पूरक बनना होगा। उनकी दृष्टि में धर्म और विज्ञान यदि अकेले हैं तो अधूरे हैं अत: दोनों का योग आवश्यक है। सर्वांगीण व्यक्तित्व के विकास हेतु वे विज्ञान के साथ अध्यात्म की युति की बात कहते हैं—

वैज्ञानिक युग में जीने का, बस उसको अधिकार मिला।
जिसको जीवन के विकास का, आध्यात्मिक आधार मिला।।नंदन पृ. ११

धर्म को हम अपने व्यवहार में उतार कर ही विज्ञान की कसौटी पर कस सकते हैं। कवि इसी स्वर को अभिव्यक्ति देते हुए कहते हैं—

धर्म एक वैज्ञानिक पथ है, हमें बताना होगा।
अपने जीवन के व्यवहारों, से समझाना होगा॥ नंदन पृ. ४७

धर्म का तेजस्वी नक्षत्र किसी भी काल में, किसी भी परिस्थिति में धूमिल नहीं हो सकता। कवि ने इसी आत्मविश्वास को काव्य की निम्न पंक्तियों में उभारा है—

अमर रहेगा धर्म हमारा,
जन जन मन अधिनायक प्यारा।
प्रलयंकार पवन भी बाजे,

तूफानों की हों आवाजें।
पलटे सब जग रीति-रिवाजें,
पर इसका ध्रुव अटल सितारा॥ शासन पृ. ९१

आचार्य तुलसी धर्म के उसी विचार को उच्च एवं उपयोगी मानते थे, जो हमारे आचरण में उतरे। धर्म-शास्त्र में लिखे आदर्श यदि आचरण में नहीं हैं तो कवि की दृष्टि में वह केवल तोता रटन्त है। वे अनेक बार धार्मिकों को प्रतिबोध देते हुए कहते थे— 'सत्तर वर्ष तक धर्म किया, माला फेरते-फेरते अंगुलियां घिस गईं पर मन का मैल नहीं उतरा। चढ़ते-चढ़ते मंदिर की सीढ़ियां घिस गईं, पर जीवन नहीं बदला। संतों के पास जाते-जाते पांव घिस गए पर व्यवहार में बदलाव नहीं आया, क्या लाभ हुआ धार्मिकों को ऐसे धर्म से?'' महावीरप्रसाद द्विवेदी का यह वक्तव्य भी इसी बात की पुष्टि करता है—'चिंतन वही उच्च है, जो लोक मंगल विधायक हो और ऐसा चिंतन जब तक आचरण में मूर्त्त न हो जाए, तब तक उसकी चरितार्थता ही क्या है?' धर्मस्थान और व्यवहार के बीच पड़ी खाई को मिटाने के लिए उनकी काव्यमयी सशक्त आवाज मन को झंकृत और आंदोलित करने वाली है—

- मंदिर में जा भक्त बने, प्रह्लाद भक्त से भी बढ़कर,
  हिरणांकुश से क्रूर कर्मकारी, बन जाते घर आकर।
  तो होगा यह प्रभु से धोखा, केवल मन बहलाते हो।
  सत्य धर्म की सही शान को, खोते या रख पाते हो? अणु पृ. ४३

आचार्य श्री तुलसी ने धर्मान्धता और अंधरूढियों पर करारी चोट की। उनके अनुसार विज्ञान ने हमें जीवन और जगत् के प्रति नए दृष्टिकोण से सोचने के लिए बाध्य किया है अतः धर्म के साथ यदि रूढिवादिता रहेगी तो वह धर्म को निस्तेज बना देगी। वह दिन मानवता के इतिहास में नया दिन

साम्य योग में सम्मुख रखें महाश्रमणी को,
श्रम सेवा स्वाध्याय प्रेरणा मिले सभी को।
संघ संघपति से ही अपना नाता जोड़ा,
एक पलक में सहोदरी से तांता तोड़ा॥
सम्बोध पृ. १३१

होगा, जब धर्म और विज्ञान एक दूसरे के पूरक होकर कार्य करेंगे। वे कहते हैं—

इस वैज्ञानिक युग में ऐसे, धर्म न टिक पाएंगे।
केवल रूढ़िवाद पर जो, चलते रहना चाहेंगे॥ नंदन पृ. ५१

कवि की दृष्टि में इस वैज्ञानिक युग में जब तक सत्यशोध द्वारा अतीन्द्रिय ज्ञान उत्पन्न नहीं होगा, तब तक पुस्तकीय ज्ञान भारभूत बना रहेगा। अभियान के रूप में सत्यशोध द्वारा अतीन्द्रिय चेतना जगाने की तड़प कवि के शब्दों में पठनीय है—

सत्य-शोध की खुले दिशाएं, वह अभियान जरूरी है।
ज्ञान अतीन्द्रिय जगे न जब तक, सारी बात अधूरी है॥ नंदन पृ. ११

कवि तुलसी युगंधर और युगद्रष्टा कवि थे। उनकी दिव्य चेतना ने यह अनुभव किया कि समस्या अनैतिकता से भी ज्यादा नैतिकता के प्रति लोगों की निष्ठा के अभाव की है। उन्होंने अणुव्रत के माध्यम से सशक्त धर्मक्रान्ति की। उनका धर्म मंदिर में पूजा-पाठ करने और क्रियाकाण्डमय उपासना करने तक ही सीमित नहीं था। उन्होंने कहा—'चरित्र की उच्चता ही धर्म का सबसे बड़ा प्रमाणपत्र हो सकता है।'

आचार्य तुलसी की दृष्टि में संत की महत्ता सर्वोपरि थी लेकिन धर्म और भगवान् के नाम पर पाखंड करने वाले साधुओं को उन्होंने नहीं बख्शा। साधु वेश में भोली-भाली जनता को ठगने वाले संतों की उन्होंने कसकर खबर ली। काव्य के माध्यम से उन्होंने प्रतिबोध दिया कि सही साधु की पहचान करना आवश्यक है अन्यथा वेशधारी साधु भोली-भाली जनता को ठगते रहते हैं। अनेक उपमाओं से धर्म की आड़ में दिग्भ्रमित करने वाले पाखंडी साधुओं की करतूत बताते हुए कवि तुलसी कहते हैं—

मीनों को आकर्षित करने, कांटा है यह आमिष-लिप्त,
और लुभाने भोले शलभों को, यह दीप-शिखा है दीप्त।

---

१. डॉ. देवेन्द्रनाथ त्रिवेदी ; निराला काव्य में मानव मूल्य और दर्शन, पृ. ६५।
२. डॉ. नामवरसिंह ; कविता के नए प्रतिमान, पृ. २०७ ।
३. गजानन माघव 'मुक्तिबोध' ; नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ. ७८।
४. रामदरश मिश्र, मधुमती जन.फर. १९७०।

अज्ञानी हरिणों का जीवन, हरने यह साधन संगीत,
फुसलाने जग की जड़ जनता, को यह मुनि का वेष पुनीत॥
पानी पृ. ५१

- बिल्ली की हज, बक-भक्ति देख, है स्वाभाविक विस्मित होना,
भीखण ने कहा—हाथियों का, यह भार गधों पर है ढ़ोना॥
पानी पृ. ५२

पाखंडी और तथाकथित संतों के कारण त्यागी और सच्चे साधु भी बदनाम हो जाते हैं। इसी बात की प्रस्तुति मुहावरेदार भाषा में द्रष्टव्य है—

दंभी पाखंडी मुनियों से, यह साधु नाम बदनाम हुआ,
उनकी काली करतूतों का, हा! कितना दुष्परिणाम हुआ।
उनके कारण सच्चे त्यागी, संतों पर भी लगता लांछन,
निर्दोष सदोषी कहलाते, मोठों में पीसे जाते घुन॥ पानी पृ. ५२

आचार्य तुलसी का दृढ़ विश्वास था सच्चे संतों की आत्मतेज युक्त वाणी ही समाज को नई दिशा दे सकती है। यही आत्मविश्वास गीत की इन पंक्तियों में प्रस्फुटित हुआ है—

संतों की वह ओजभरी, वाणी कुर्बानी साथ लिए,
निखर पड़ेगी जन-जन के, अन्तस्थल को आह्वान किए।
एक जगेगी अभिनव ज्योति, उसी प्रेरणा के बल पर,
बढ़ता ही जाएगा मानव, उन्नत पथ पर जीवन भर,
कोई नहीं रोकने पाए, ऐसा स्रोत बहाना है।
मिट जाए जनता की जड़ता, सक्रिय कदम उठाना है॥ नंदन पृ. ७२

आचार्य तुलसी साधुओं को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि अब साधु संस्था का तेजस्वी, ओजस्वी और लक्ष्यनिष्ठ होना युग की मांग है—

श्रमणसंघ अब तेजस्वी हो।
ध्येयनिष्ठ हो, ओजस्वी हो॥ नंदन पृ. ४१

केवल परलोक-सुधार का मीठा आश्वासन किसी भी धर्म को तेजस्वी नहीं बना सकता इसलिए आचार्य श्री तुलसी ने नगदधर्म की प्रतिष्ठा की। उनके अनुसार यह नहीं हो सकता कि व्यक्ति धर्म आज

---

१. महादेवी वर्मा, धर्मयुग २४ फरवरी १९८०।
२. डॉ. दूधनाथसिंह ; निराला : आत्महंता आस्था, पृ. १७१।

करे और उसका फल भविष्य में मिले। जो धर्म वर्तमान में सुख-शांति न दे, वह उनकी दृष्टि में वास्तविक धर्म नहीं हो सकता। स्वामी रामतीर्थ के अनुसार जिस धर्म का प्रत्यक्ष फल हमें इस जन्म में न मिले, वह उधार धर्म है। अज्ञात स्वर्ग के सुखों की आशा में इस लोक के कर्तव्यों को भुला बैठना बुद्धिमानी नहीं, वह उधारधर्म की बात है। आचार्य तुलसी भारतीय जनता को आह्वान करते हैं—

करनी होगी सत्य अहिंसा, की ही पुनः प्रतिष्ठा।
तेजस्वी जो धर्म उसी में, होती सबकी निष्ठा॥ नंदन पृ. ४८

आचार्य तुलसी इतिहास और कला की दृष्टि से मूर्ति की उपयोगिता स्वीकार करते थे लेकिन मूर्तिपूजा के प्रबल विरोधी थे। निम्न पंक्तियों में उन्होंने मूर्तिपूजा पर सीधा प्रहार नहीं किया लेकिन व्यञ्जना शैली में अपने आराध्य महावीर के सामने ही कुछ तीखे प्रश्न उपस्थित कर दिए—

सुण्यो निरंजन-निराकार तुम, निर्मल निरुपम रूप हो,
क्यूं अंजन मंजन चंदन घृत, दीप सुगंधित धूप हो,
मिलै क्यूं नहीं देखो साहिब!, लेखो अगलो-लारलो॥

वीतराग सब बंधन-विरहित, अलख अलौकिक वेश में,
तो क्यूं बंद किवाडां बीच, विराजो सीमित देश में,
आठूं पोर खड्या क्यूं, दरवाजै पर पहरेदार लो॥ डालिम पृ. ५२

आचार्य श्री तुलसी ने किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष की कभी आलोचना नहीं की। सार्वजनिक रूप से धर्म के क्षेत्र में जो विकृतियां या अराजकता प्रविष्ट हो गयी थीं, उनका उन्होंने खुले शब्दों में सार्वजनिक रूप से विरोध किया। वे कहते थे—'धर्म वही कामयाब है, जिससे जीवन उन्नत बने। भजन, कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय, ध्यान सभी उपयोगी हैं पर जब इनके सहारे धोखे का व्यापार चलता है तो मैं इनको बेकार मानता हूं।' उनके गीत की निम्न पंक्तियां इसी तथ्य को उजागर करती हैं—

सामायिक स्वाध्याय संतदर्शन तो धर्मस्थानों में,
जालसाजियां धोखेबाजी, करते बैठ दुकानों में,
दर्शन सेवा शास्त्र-श्रवण का, क्या यह लाभ उठाते हो? अणु पृ. ४३

---

१. डॉ. प्रेमशंकर ; कविता का समाजशास्त्र, पृ. २३।

धर्मस्थान में धार्मिक और दुकान पर बैठकर लोगों को धोखा देने वाले धार्मिकों को उन्होंने स्पष्ट कहा कि धर्म चद्दर नहीं, जिसे जब चाहा ओढ लिया जाए और उतार दिया जाए। धर्म जीवन के साथ जुड़ा हुआ तत्त्व हैं। सैद्धान्तिक उपमा के द्वारा इसी तथ्य को प्रकट करती उनकी पंक्तियां पठनीय ही नहीं, मननीय भी हैं—

पुद्गल में ज्यों वर्ण गंध रस, त्यों जीवन में धर्म।
ऊपर से ओढी चद्दर ज्यों नहीं, यही है मर्म॥ पानी पृ. २१

आचार्य श्री तुलसी शांति और अहिंसा के पुजारी थे। जब वे आचार्य पद पर आसीन हुए, तब साम्प्रदायिक कट्टरता उत्कर्ष पर थी। उन्होंने अणुव्रत के माध्यम से साम्प्रदायिक संघर्ष और धार्मिक कट्टरता को दूर कर समन्वय का वातावरण निर्मित करने का प्रयत्न किया। वे कहते थे कि सम्प्रदाय विशेष में सत्य बंदी नहीं हो सकता। धर्म तो आकाश की भांति विशाल और व्यापक है। वर्ण और जाति के आधार पर धर्म को विभक्त करने वाले लोगों के लिए कवि की प्रेरणा है—

वर्ण जाति का भेद न जिसमें,
लिंग रंग का छेद न जिसमें।
निर्धन धनिक विभेद न जिसमें,
समता शासन सत्य धर्म की, जय हो जय॥ शासन पृ. ९५

धर्म तो गंगा के नीर की भांति पवित्र है। वह प्रेम और विश्वबंधुता का संदेश देता है लेकिन चंद धार्मिकों की साम्प्रदायिक कट्टरता ने उसे संघर्ष और विरोध का अड्डा बना दिया। मैथिलीशरणगुप्त की निम्न पंक्तियां चिंतनशील मानव को कुछ सोचने को मजबूर करती हैं—

हम आड़ लेकर धर्म की, अब लीन हैं विद्रोह में।
मत ही हमारा धर्म है, हम पड़ रहे हैं मोह में॥

कवि तुलसी तथाकथित धार्मिकों के समक्ष एक ज्वलन्त प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं—

विश्वबंधुता समता सहअस्तित्व धर्म ने गाया।

---

१. सं. समणी कुसुमप्रज्ञा ; एक बूंद : एक सागर, पृ. १०९५।
२. सं. समणी कुसुमप्रज्ञा ; एक बूंद : एक सागर, पृ. ११००।

फिर किसने उसमें संकीर्णवृत्ति का विष फैलाया? नंदन पृ. ४७

आचार्य तुलसी ने एक सम्प्रदाय विशेष की आस्था स्वीकार करके भी साम्प्रदायिक सद्‌भाव के लिए अपनी सोच की खिड़कियों को सदा खुला रखा। आत्म-शुद्धि के लिए सम्प्रदाय विशेष का मोह करने वाले धर्म के ठेकेदारों को प्रेरणा देते हुए कवि कहते हैं—

आत्मशुद्धि का जहां प्रश्न है, सम्प्रदाय का मोह न हो।
चाह न यश की और किसी से, भी कोई विद्रोह न हो॥ शासन पृ. ४७

जातिगत वैषम्य को बढावा देने वाले धर्म के ठेकेदारों के कानों की खिड़कियां खोलते हुए कवि कहते हैं—"जातिगत वैषम्य और साम्प्रदायिक उन्माद को बढ़ाने में असामाजिक तत्त्वों का तो हाथ रहता ही है, कहीं-कहीं धर्मगुरु भी आग में ईंधन डालने का काम करते हैं....कांच के महल में बैठकर पत्थर फेंकने वाला क्या कभी सुरक्षित रह सकता है?"[१] आचार्य तुलसी की स्पष्ट उद्‌घोषणा थी कि धर्म और सम्प्रदाय दोनों भिन्न तत्त्व हैं। विद्यानिवास मिश्र के अनुसार रिलीजन और मजहब दोनों पूरी तरह भिन्न हैं। धर्म पूजापाठ, कर्मकाण्ड या जप-तप ही नहीं है। धर्म फल का रस है और सम्प्रदाय उसकी सुरक्षा हेतु छिलका। इसी प्रकार उपासना आदि क्रियाएं धर्म तक पहुंचने के लिए सीढियां हैं, उन्हें ही मंजिल न माना जाए—

रस-रस है छिलका-छिलका है, अंतर सीढ़ी मंजिल का है।
उपासना और सहजधर्म में, यही भेद है अंत॥ नंदन पृ. ४२

साम्प्रदायिकता के नशे में डूबे लोगों की आंखें खोलते हुए कवि कहते हैं—

- मतभेद से पड़ी हैं, मनभेद की दरारें।
  हा! लड़ रहे परस्पर, क्या धर्म है अखाड़ा? अणु पृ. ४४

आचार्य तुलसी के उदार दृष्टिकोण को निम्न प्रतिबोध में देखा जा सकता है—"व्यक्ति अपने-अपने मजहब की उपासना में विश्वास करे, इसमें कोई बुराई नहीं पर जहां एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय के प्रति द्वेष और घृणा का प्रचार करते हैं, वहां देश की मिट्टी कलंकित होती है, राष्ट्र शक्तिहीन होता है तथा व्यक्ति का मन अपवित्र बनता है।"[१]

आचार्य तुलसी धर्म और राजनीति के गठबंधन की स्थिति को सुखद नहीं मानते थे। उनका दृढ़ विश्वास इन पंक्तियों में मुखर हो रहा है—"धर्म जब अपनी मर्यादा से दूर हटकर राज्यसत्ता में घुल-मिल जाता है, तब वह विष से भी अधिक घातक बन जाता है। यदि राजनीति से धर्म का विसम्बन्धन नहीं रहा तो वह विरोध, संघर्ष और युद्ध का साधनमात्र रह जाएगा। जहां कहीं धर्म का राजनीति के साथ गठबन्धन कर उसे जनता पर थोपा गया, वहां हिंसा और रक्तपात ने समूचे राष्ट्र में तबाही मचा दी।"[२] कवि सीधी सादी भाषा में कहते हैं—

राजनीति से पृथक् सदा है।
द्वेष-राग से धर्म जुदा है॥ शासन पृ. ९१

कवि न तो ऐसी अंधश्रद्धा को स्वीकार करते हैं, जहां तर्क का स्थान ही न हो और न ही वैसे तर्क को स्वीकार करते हैं, जो भक्ति और श्रद्धा को व्यर्थ मानता हो। आचार्य तुलसी ने अपने काव्य में बुद्धि और हृदय का समन्वय किया। तार्किक युग में भी श्रद्धा का महत्त्व स्थापित करते हुए कवि उद्घोष करते हैं—

- तार्किक युग में भी श्रद्धा का, स्थान सदा है ऊंचा।
  केवल तर्कवाद से पीड़ित, है संसार समूचा॥ नंदन पृ. ६३
- जहां विचलित हुई श्रद्धा, वहां निश्चित ही पतन। पानी पृ. २२

'न हि मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' व्यास द्वारा उद्गीत इस सत्य से आचार्य तुलसी का रोम-रोम निनादित था। उनका सारा गीतिकाव्य इसी स्वर की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है—

- नर-जीवन धोली चादर है,
  चिंहु गति में इणरो आदर है,
  इण पर मत लागण द्यो दागो॥ सोम पृ. १२
- दुर्लभ चिंतामणि सम पायो, प्राणी! ओ मानव अवतार।
  ओ मानव अवतार, चेतन! क्यूं खोवै बेकार॥ सोम. पृ. १०

मानव मानवीय गुणों का लोप कर दानवता की ओर बढ़ रहा है, उसके आगे प्रश्नचिह्न लगाते हुए कवि का कहना है—

मानव! बोलो मानवता की राह, कहां तक चलते हो?

मानवीय आदर्शों के अनुरूप, कहां तक ढ़लते हो? पानी पृ. २६

मानव जीवन की क्षणभंगुरता शाश्वत सत्य है। जीवन और जगत् के प्रति कवि का दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट था। संसार के वास्तविक स्वरूप का सुंदर चित्रण उनके गेय गीतों में हुआ है। संसार की नश्वरता का बोध कवि ने अनेक उपमानों से अनेक रूपों में व्यक्त किया है—

- फूल खिलै जो डाली पर, आखिर कुम्हलावै रे।
  पाणी रा बुद्‌बुदा, देर कित्तीक टिकावै रे॥
- दिनूगै रवि ऊगै, आथण आथम ज्यावै रे।
  मिलै रात रा तारा, प्रातः पतो न पावै रे॥ सुधा पृ. ५
- घटती जावै आयू खिण-खिण, अंजलि जल अनुसारै।
  कुण जाणै कुण सी बेला में, मानव पांव पसारै॥ सोम पृ. ५७

बाप के समक्ष बेटा चला जाए या गुरु के सामने शिष्य चला जाए, यह संसार की विचित्रता है। आचार्य आषाढ़भूति की इसी व्यथा को कवि ने कितनी मार्मिक अभिव्यक्ति दी है—

जिसका जन्म मृत्यु भी उसकी, यह तो हमने जाना था।
उलट-पुलट का खेल खिलेगा, यह किसने पहचाना था? पानी पृ. २९

जीवन की अमरता और शरीर की नश्वरता का प्रतिपादन सीधी सरल भाषा में पठनीय है—

आत्मा अजर अमर अविनश्वर,
क्षणभंगुर यह काया नश्वर॥ सुधा पृ.१४

कवि का कहना है कि धन-वैभव विद्युत् और स्वप्न की भांति क्षणिक हैं। यह मानव का अज्ञान है कि वह उन्हें शाश्वत मान बैठा है—

- धन दौलत अरु सम्पत सब को।
  अस्तित्व बीजली रो झबको॥ सोम पृ. १३
- स्वप्निल जग रा सारा रिश्ता-नाता, काम चलाऊ।
  बेल्यां आई बिस्तर बांध्या, चाल्या बाट बटाऊ॥ सोम पृ. ९६
- जीवन कुशाग्र पर टिका हुआ जलकण है,
  जल-बुदबुद-सा यह वर्तमान का क्षण है।
  चपला सा चंचल, यौवन है मानव का,
  कैसे कुछ सार निकल पाए नरभव का? आत्मा पृ. ८७

संसार में आसक्त मानव की स्थिति का वर्णन कवि की अलंकृत भाषा में पठनीय है—

जकड़ा यौवन-धन-बंधन में,
अकड़ा अभिमान-निबंधन में,
भौतिक धुन में, नास्तिकपन में, भीषण घमसान मचाया है। पानी पृ. २४

संसार के संबंधों का स्वार्थ भरा चित्रण करने में कवि-कौशल इन शब्दों में मुखर हुआ है—

मनमोहक स्त्री परिजन न्याती।
स्वारथ में है सारा साथी॥ सोम पृ. १३

आचार्य तुलसी भोगासक्त जनता को प्रतिबोध देते हैं कि विषय-वासना में मग्न मानव कभी आनंद और आंतरिक प्रकाश की अनुभूति नहीं कर सकता। काम-भोग मनुष्य की चेतना को विकृत करके अतृप्ति की आग को भड़काने वाले हैं। इंद्रिय-चेतना के स्तर पर जीने वाले व्यक्तियों की चेतना को झकझोरते हुए कवि कहते हैं—

- इंद्रिय-सुख यह अंत में, देता सदा अतृप्ति।
  ईंधन से क्या अग्नि को, हुई कभी भी तृप्ति॥ आत्मा पृ. ४२
- विषय कषाय वासना रो तूं, दास आश अणपार।
  रीते चूल्हे फूंक दियां, छा ज्यासी मूंढ़ें छार॥ चंदन पृ. ७३

जन्म-मरण के दुःख का वर्णन राजस्थानी भाषा में कितना कारुणिक और सटीक बन पड़ा है—

किती बार तूं मर्‌यो गर्भ में, जननी नै संहार।
काट-काटकर बारै काढ्यो, हा! दुःख हृदय-विदार॥ सोम पृ. १०

यह शरीर जिसके सौन्दर्य पर मानव मिथ्या अभिमान करता है, वह जरा और रोग से आक्रान्त होता है। उसे सदा चिरयुवा और स्थायी बनाए रखने के लिए कोई भी रसायन पैदा नहीं हुआ। इस सत्य की ओर वे सबका ध्यान आकृष्ट करते हुए कहते हैं—

रोग बुढ़ापा घेरता, होता तन निस्सार।
कौन रसायन है यहां, जो कर दे उपचार॥ आत्मा पृ.८८

सुख-दुःख बादल की छाया के समान हैं अतः कवि मानव को उनमें न

उलझकर उच्च आदर्श ग्रहण करने की बात कहते हैं, साथ ही हर परिस्थिति में समता एवं संतुलन बनाए रखने की सीख भी देते हैं। कवि का स्पष्ट मंतव्य है कि सुख और दु:ख आत्मकृत हैं अत: वही कार्य करना चाहिए जो इहलोक और परलोक में सुखदाई हो—

पाप पुण्य दो परभव जातां, सागै जासी।
किया आपरा कर्मां स्यूं ही, दु:ख सुख पासी॥ सोम पृ. १५

कवि-कल्पना ने युद्ध-भूमि में भी आध्यात्मिकता का वातावरण तैयार कर दिया है। भरत बाहुबलि के सैनिकों के बीच होने वाले युद्ध में सांयकालीन समय का एक बिम्ब, एक ओर जैन दर्शन की मृत्यु-कला को प्रकट कर रहा है तो दूसरी ओर हिंसा के वातावरण में भी अहिंसा का स्वर बुलंद कर रहा है—

देख मरणासन्न, मंगल पाठ, मधुर सुना रहे,
शरण है श्री ऋषभ की, यों धर्मभाव बढ़ा रहे।
शान्त कर सब वृत्तियां, करवा रहे संलेखना,
कह रहे सब छोड़ चिन्ता, करो आत्म-गवेषणा॥ भरत पृ. ९२

युग की परिस्थितियों को देखकर आचार्य तुलसी ने धर्म के क्षेत्र में अनेक नई एवं मौलिक प्रस्थापनाएं कीं। धर्मसंघ में भी उन्होंने क्रांतिकारी और नूतन परिवर्तन करने का साहस किया। एक साध्वी चाहे ७० वर्ष से साध्वी-जीवन का पालन कर रही हो लेकिन उसे नवदीक्षित साधु को वंदना करना अनिवार्य था। वर्षों से यह परम्परा चल रही थी। आचार्य तुलसी ने अनुभव किया कि आने वाले युग में यह विषमता चल नहीं सकेगी अत: गंभीरता से चिंतन करके उन्होंने कहा—''वंदना न पुरुष को की जाती है और न स्त्री को, वंदनीय है—चारित्र अत: साधु-साध्वियों को परस्पर अभिवादन करना चाहिए। इसी तथ्य को व्यवहार बोध में प्रस्तुति देते हुए कवि कहते हैं—

साधु में चारित्र आत्मा, साध्वियों में भी वही,
तपस्या, श्रम, साधना, संकल्प में पीछे नहीं।
परस्पर अभिवादना आमोद से, उत्साह से,
भावना मुदिता रहे, उदिता समुन्नत चाह से॥ सम्बोध पृ. १२२

कहा जा सकता है कि आचार्य श्री तुलसी ने काव्य के माध्यम से धर्मक्रांति की जो गंगा बहाई है, वह साहित्य के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। कबीर की भांति उन्होंने स्पष्ट शब्दों में धार्मिक अंधरूढ़ियों पर करारी चोट की और धर्म के निखालस रूप को आम जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। उनके पूरे काव्य-साहित्य में अलौकिकता और आध्यात्मिकता प्रतिबिम्बित हो रही है।

काव्य में मूल्यबोध

मूल्य शब्द मूलत: अर्थशास्त्र का है पर वर्तमान में इसके साथ अध्यात्म और जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है। मूल्य संस्कृति, समाज और राष्ट्र का विकास ही नहीं करते, उन्हें सार्थकता भी प्रदान करते हैं। जीवन के मूल्य न शून्य से निकलते हैं और न ही आकाश से अवतरित होते हैं। समाज की गोद में ही मूल्यों का जन्म होता है। डॉ. वासुदेव शर्मा के अनुसार मूल्यों से मानवीय क्रिया-कलापों, सामाजिक अंत:क्रियाओं तथा व्यवहारों को नियंत्रित किया जाता है। पाश्चात्त्य विद्वान् रिचर्ड्स ने मूल्य के बारे में गहराई से चिंतन किया है। डॉ. बच्चनसिंह रिचर्ड्स ने मूल्यों का विवेचन करते हुए निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं—

- काव्य की सार्थकता उसके मूल्यबोध में है।
- इस मूल्य में ही उच्चतर नैतिकता समाहित है।
- उसका मूल्यवाद सुखवाद (हिप्नोटिज्म) से भिन्न है।''[१]

कविता के मूल्य के बारे में डॉ. नामवरसिंह की निम्न अभिव्यक्ति मननीय है—''नि:संदेह किसी कविता का सिरजा हुआ संसार ही उसका मूल्य है, किन्तु उस मूल्य की प्रासंगिकता इस बात पर निर्भर है कि वह सिरजा हुआ संसार कितना वास्तविक है अथवा वास्तविकता के बारे में हमारी समझ को कितना गहरा और समृद्ध करता है। हमारे आसपास के संसार को अर्थ प्रदान करने में ही किसी कविता के अपने संसार की सार्थकता है।''[२] गजानन माधव के अनुसार जनता का साहित्य वही है, जो जनता के जीवन-मूल्यों को, उसके जीवनगत आदर्शों को प्रतिष्ठापित करता हो तथा उसे अपने मुक्तिपथ पर अग्रसर करता हो।''[३]

ह्यूम के अनुसार साहित्य के मूल्य बदलते रहते हैं। साहित्य जहां युग से प्रभावित होता है, वहां युग को प्रभावित भी करता है। रामदरश मिश्र सौन्दर्य को मानवीय मूल्यों से जोड़ते हैं।''[४] महादेवी वर्मा ने मूल्यों को दो रूपों में स्वीकार किया हैं—प्रयोग रूप मूल्य, जो हर युग में बदलते रहते हैं। दूसरे हैं शाश्वत मूल्य, जैसे—स्नेह, सद्भाव, संवेदना, करुणा, सहअस्तित्व तथा समानता आदि। ये ऐसे मूल्य हैं, जिन्होंने समाज को बनाया है।''[१]

आचार्य तुलसी का मूल्य-बोध अत्यन्त व्यापक, गहन और तलस्पर्शी था। उनका लगभग साहित्य-सृजन विशद जीवन-मूल्यों की सबल अभिव्यक्ति के लिए हुआ। वे मानते थे कि मूल्य यदि जीवन के साथ नहीं जुड़ते अथवा मानवीय उत्कर्ष के साथ स्वयं को नहीं जोड़ते तो वे मूल्य नहीं हो सकते। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों, नैतिक आदर्शों एवं मानव मन के भावों की जैसी सरल अभिव्यक्ति आचार्य तुलसी ने दी, उसे देखकर उन्हें किसी सम्प्रदाय विशेष का आचार्य नहीं कहा जा सकता। आचार्य तुलसी का मानना था कि मूल्यों का ह्रास उतना चिंताजनक नहीं, जितना कि मूल्यों के प्रति विश्वास का उठना समस्या पैदा करने वाला है। ह्रास को विकास में बदला जा सकता है पर विश्वास उठने के मतलब है अपने अस्तित्व को नकारना।''

डॉ. दूधनाथसिंह के अनुसार कोई भी प्रतिभाशाली लेखक अपने समय की समस्याओं और जीवंतताओं के भीतर से ही शाश्वत और सामाजिक कला-मूल्यों की उपलब्धि कर सकता है। अगर वह सम-सामयिक नहीं है तो उसके शाश्वत होने का सवाल ही नहीं उठता।''[२] काव्य के माध्यम से आचार्य श्री तुलसी ने उन्हीं मूल्यों को छुआ, जो देश, काल, समाज और परिवार सापेक्ष हैं। उनकी मानवीय भावनाएं लोक-कल्याण के साथ जुड़ी हुई थीं। उनके मन की उदग्र अभीप्सा थी कि जनता के मन का अंधकार दूर हो और वहां प्रेम, दया, करुणा आदि मानवीय गुणों का विकास हो। काव्य द्वारा नैतिक-मूल्यों की प्रतिष्ठा करके वे समाज का सांस्कृतिक जागरण करना चाहते थे। उनके द्वारा प्रस्थापित नैतिक मूल्य शक्ति और गति प्रदान करने वाले हैं। पूज्य गुरुदेव ने केवल वार्तमानिक संदर्भ में ही मूल्यों की चर्चा नहीं की, युगद्रष्टा होने के कारण भावी जटिलताओं और

समस्याओं के समाधान भी प्रस्तुत किए हैं।

डॉ. प्रेमशंकर के अनुसार मूल्य जीवन के बीच पाए जाते हैं। रचना में उन्हें प्रमाणित करते हुए उनकी विश्वसनीयता स्थापित करनी पड़ती है, इसी में कविकर्म का कौशल है।''[१] चरितकाव्य, छोटे-छोटे आख्यानों एवं अनेक गीतों में कवि ने जीवन के माध्यम से मूल्यों एवं मानवीय गुणों को उभारा है। अपने ज्येष्ठभ्राता मोहनलालजी के चारित्रिक मूल्यों को उजागर करते हुए कवि कहते हैं—

त्याग रो तप रो तितिक्षा रो, प्रतीक शरीर हो।
कलेजै रो धीर हो अरु, पेट रो गंभीर हो॥

आचार्य भिक्षु के व्यक्तित्व को एक साथ अनेक विशेषणों में आबद्ध करने पर भी कवि अपनी अक्षमता व्यक्त करते हुए कहते हैं—

नैसर्गिक कवि, सहज प्रशासक, कलाकार, साकार,
लेखक, वक्ता, संघ-विभर्ता, वैज्ञानिक अविकार,
रूप अनेक, एक रसना यह, क्या कर सके बयान? शासन पृ. ५९

आचार्य तुलसी ने तत्कालीन रूढ़ परम्पराओं और सामाजिक मूल्यों को नया परिवेश देने का प्रयत्न किया फिर भी उनके साहित्य में निहित मूल्य परम्परा से कटे हुए नहीं हैं। उनके साहित्य में प्रवाह और गतिशीलता है। जब उन्होंने समाज के सड़े-गले मूल्यों और परम्पराओं के विरोध में अपनी सशक्त आवाज उठाई तो समाज में होने वाली तीव्र प्रतिक्रिया उन्हीं के शब्दों में पठनीय है—''मैंने समाज को सादगीपूर्ण एवं सक्रिय जीवन जीने का सूत्र तब दिया, जब आडम्बर और प्रदर्शन करने वालों को प्रोत्साहन मिल रहा था। इससे समाज में गहरा ऊहापोह हुआ। धर्माचार्य के अधिकारों की चर्चाएं चलीं। सामाजिक दायित्व का विश्लेषण हुआ और मुझे परम्पराओं का विघटक घोषित कर दिया गया। मेरा उद्देश्य स्पष्ट था इसलिए समाज की आलोचना का पात्र बनकर भी मैंने समय-समय पर प्रदर्शनमूलक प्रवृत्तियों, अंधपरम्पराओं और अंधानुकरण की वृत्ति पर प्रहार किया।''

पाश्चात्त्य कवि कीट्स ने सत्य और सौन्दर्य को एक माना है। महादेवी ने सत्य को काव्य के साध्य के रूप में स्वीकार किया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के

अनुसार कवि सत्य को शब्दों में गूंथकर ऐसी लय उपस्थित करता है कि उसकी झंकार से केवल रोम-कूपों में ही नहीं, गूढ़तम प्रदेशों में भी कम्पन हो जाता है। आचार्य तुलसी सत्य को भगवान् के रूप में स्वीकार करते थे। उनके शब्दों में सत्य का पौधा दीखने में भले ही छोटा दीखे किन्तु उसमें जो सौन्दर्य हैं, वह असत्य के बनावटी वृक्ष में नहीं है। सत्य का विघटन किसी भी भूमिका या सीमा में हो, वह धर्म, दर्शन, इतिहास और संस्कृति सब दृष्टियों से चिंता का विषय बन जाता है।''[१] आचार्य तुलसी ने 'सम्प्रदाय ही सत्य नहीं है' इस घोष को अणुव्रत के माध्यम से उठाया और कहा—''सम्प्रदाय में सत्य है पर सम्प्रदाय ही सत्य नहीं है, सम्प्रदाय के बाहर भी अनन्त-अनन्त सत्य विद्यमान है, इस तथ्य को स्वीकार कर चलने से हमारे सामने कोई कठिनाई या उलझन पैदा नहीं होगी।''[२] सत्य जातिगत या साम्प्रदायिक संकीर्णता में न बंधे, इसका प्रबल नाद उनके काव्य-साहित्य में गुंजित है—

नहीं सत्य को जो सुनते हैं, छोड़ फूल कांटे चुनते हैं,
सम्प्रदाय का पट बुनते हैं।
इसीलिए तो अब तक देखो, बढ़ता रहा विवाद,
सुनाएं फिर से वह सिंहनाद॥ नंदन पृ. १५७

आचार्य तुलसी धर्म को शाश्वत मूल्य के रूप में स्वीकार करते थे। धर्म नाम पर व्यक्ति-व्यक्ति को बांटने वाले धर्माचार्यों को वे आत्मविश्वास के साथ कहते हैं—

शाश्वत-मूल्य धर्म का जो, वह कैसे घट सकता है?
धर्म नाम पर मानव-मानव, कभी न बंट सकता है।
आश्रय लेकर धर्म नाम का, जहर नहीं फैलाए॥ नंदन पृ. ४९

शांतिपूर्ण जीवन जीने का महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक मूल्य है—अहिंसा। आचार्य तुलसी का मंतव्य था कि अहिंसा की शक्ति में तेज नहीं आ रहा है, इसका सबसे बड़ा कारण है कि दो डाकू, चोर या आतंकवादी आपस में मिल जाएंगे पर दो अहिंसक या धार्मिक नहीं मिल सकते। मेरा निश्चित अभिमत है कि हिंसा में जितनी शक्ति लगाई गयी, उस शक्ति का शतांश भी यदि अहिंसा की सृष्टि में लगता तो ऐसी विलक्षण शक्ति पैदा होती, जिसके परिणाम चौंकाने वाले होते।'' निम्न पंक्तियों में अहिंसा को सम्बोधित करके कवि

इसी तथ्य को संसार के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं—

- निष्क्रिय -सी बन रही अहिंसा,
  खुले आम उच्छृंखल हिंसा।
  पनप रही रण की आशंसा,
  निखरे तेज अहिंसा में, साकार बने स्याद्वाद॥ नंदन पृ. १५७
- शक्ति, श्रम, साधन की जग में, हिंसा जितनी आभारी,
  मिलता शतांश भी तुझे अगर, मिट जाती उलझन सारी,
  शोध, प्रयोग प्रशिक्षण तेरा, नूतन युग ले आता॥ अणु पृ. ११६

मारने की शक्ति होने पर भी नहीं मारना—अहिंसा के इसी उत्कृष्ट आदर्श को प्रस्तुति देते हुए कवि कहते हैं—

है वही यशस्वी वीर धीर, जो मार सके पर ना मारे।
आदर्श सामने रखकर वह, व्याकुल जनता की भीति हरे॥ भरत पृ. ११३

श्रावक समाज के समक्ष अहिंसा की सापेक्ष व्याख्या करते हुए कवि कहते हैं—

चींटी भी क्यों अपने प्रमाद से मारें?
अनिवार्य अगर समरांगण में ललकारें॥ श्रावक पृ. १५५

आचार्य तुलसी अहिंसा-प्रशिक्षण के माध्यम से ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे, जिसमें शोषण, अराजकता, अनैतिकता, असमानता और अशांति का अस्तित्व न रहे। मानव-मानव अपने दु:ख की भांति दूसरों के दु:खों के प्रति भी संवेदनशील रहे। समाज में सुख, शांति और समृद्धि के बीज अंकुरित हो सकें। अहिंसा को व्याख्यायित करते हुए आचार्य तुलसी कहते थे—'मन, वाणी और कर्म—इन तीनों को विशुद्ध और पवित्र रखना, इनको कलुषित और अपवित्र न होने देना ही अहिंसा है। यदि छोटी-छोटी बातों पर तू-तू, मैं-मैं होती है तो समझना चाहिए अहिंसा का नाम केवल अधरों पर है, जीवन में नहीं। सीधी-सरल भाषा में अहिंसा को व्याख्यायित करते हुए कवि कहते हैं—

समता संतुलन अहिंसा, मैत्रीमय मिलन अहिंसा।
उत्तम आचरण अहिंसा, अव्रत-संवरण अहिंसा॥ सोम पृ. ५९

आचार्य तुलसी कायरता के साथ अहिंसा का कोई सम्बन्ध नहीं मानते

थे। उनका कहना था—''अहिंसा समाज को कायर बनाती है'—यह भ्रम इसलिए उत्पन्न हुआ कि सही अर्थ में अहिंसा में विश्वास नहीं करने वाले धार्मिकों ने अपनी दुर्बलता को अहिंसा की ओट में पाला-पोसा। वास्तव में तो कहां अहिंसा और कहां कायरता? अहिंसा और कायरता का वही सम्बन्ध है, जो ३६ अंकों में दो तीओं का है। डर से छुपने वाला यदि स्वयं को अहिंसक कहे तो मैं उसे प्रथम दर्जे का कायर कहूंगा।'' अहिंसा के सही स्वरूप को व्यक्त करने वाली निम्न पंक्तियां नया प्रकाश देने वाली हैं—

होते आक्रमण पलायन, भयभीतों के दो लक्षण,
बचते जो इन दोनों से, वे ही गंभीर विचक्षण।
वर अभय अहिंसा देती, कुछ भय का काम नहीं है,
संत्रस्त भयाकुल प्राणी, लेते विश्राम वहीं हैं॥ भरत पृ. ४३

सरलता जीवन-विकास का महत्त्वपूर्ण मूल्य है। आचार्य तुलसी के अनुसार सत्य का सरलता के साथ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जो व्यक्ति सरल नहीं है, वह सत्य का पालन भी नहीं कर सकता। मानव को सरल और निष्कपट जीवन जीने की प्रेरणा अभिधा शक्ति में पठनीय है—

थोडै जीणै रै खातिर क्यूं, करै अणूंता काम तूं।
सरल बना तन मन वाणी नै, जो चावै आराम तूं॥ सोम पृ. ८५

अभय वह जीवन-मूल्य है, जो प्रभावी व्यक्तित्व का निर्माण करता है। अनुप्रास और नाद-सौन्दर्य के साथ अभय का माहात्म्य पठनीय है—

ओ है आभूषण वीरां रो,
गंभीरां रो, रणधीरां रो,
नहिं कायर काच कथीरां रो॥ सुधा पृ. ९०

छोटे से छोटे जीवन-मूल्यों पर भी आचार्य तुलसी की लेखनी चली इसलिए उनका काव्य जीवन सापेक्ष हो गया। वे अनुशासन, मर्यादा, विनम्रता और सहनशीलता को महत्त्वपूर्ण जीवन-मूल्य मानते थे। उनका मानना था कि इनके बिना व्यक्ति अपने अस्तित्व को सुरक्षित नहीं रख सकता। अनुशासन को नयी परिभाषा का परिधान पहनाते हुए वे कहते हैं—

जो देश, काल, सापेक्ष और, पूर्वाग्रह से हो मुक्त सदा।
नव-नव आयाम खुलें जिसमें, वह शासन ही अनुशासन है॥

नंदन पृ. २८

कवि की दृष्टि में अनुशासनहीनता की स्थिति का सबसे बड़ा कारण अहंकार है। वक्रोक्ति के माध्यम से इसे प्रस्तुति देते हुए वे कहते हैं—

अनुशासन है जटिल पहेली, आज समूचे जग में,
व्यक्ति, समाज, राष्ट्र सारे ही, उलझ रहे पग-पग में,
है अहं भरा रग-रग में
तम गहराता कैसे सूर्य तले? नंदन पृ. २६

मर्यादा के महिमा-वर्णन में उनका उक्ति-वैचित्र्य मन को बांधने वाला है—

मर्यादा ही नींव महल की और ध्वजा मर्यादा।
मर्यादा ने ही असीम जल को, सीमा में बांधा॥ नंदन पृ. ४९

मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले व्यक्ति को सागर और सितारे से उपमित करते हुए कवि कहते हैं—

वह जल पहुंच गया मंजिल तक, जिसको मिला किनारा।
छोड़ी सीमा जब नभ की तो, पत्थर बना सितारा॥ नंदन पृ. ४७

अनुशासनहीन और चंचल मानव को उसके दुष्परिणाम और मर्यादा के महत्त्व को प्रकट करने वाली ये पंक्तियां कितनी वेधक बन पड़ी हैं—

मन के पागलपन ने जब-जब, ज्वालामुखी उभारा।
मर्यादा ने ही तब-तब इस, नर को सदा उबारा॥ नंदन पृ. ४९

सहिष्णुता ऐसा जीवन मूल्य है, जिसके अभाव में व्यक्ति को पग-पग पर अनुत्तीर्ण होना पड़ता है। आचार्य तुलसी की सहिष्णुता का अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति कमजोर और अक्षम होकर दूसरों के अन्याय को सहता रहे। उनकी सहिष्णुता का तात्पर्य है कि हम सक्षम और सबल होकर हर प्रतिकूल परिस्थिति में संतुलन बनाए रखें और परस्पर एक दूसरों के भिन्न विचारों और रुचियों में तालमेल बिठाने का प्रयत्न करें। सामुदायिक जीवन में सहिष्णुता को आत्मगत करने का व्यावहारिक उपाय बताते हुए कवि कहते हैं—

मेरी हरकत सहे सहज वह, मैं भी उसकी क्यों न सहूं।

साथी रूप निभाना है तो, सहिष्णुता के साथ रहूं॥ सम्बोध पृ. ११७

कवि का दृढ़ मंतव्य है कि सहिष्णुता और आत्मबल की सही परीक्षा प्रतिकूल परिस्थितियों में होती है—

सुख में तो सब दिखलाते हैं, अपना-अपना स्वत्व।
किन्तु कष्ट में जो दिखलाए, उसका बड़ा महत्त्व॥

आचार्य तुलसी के चिंतन की धुरी मानवता थी। मानवीय संवेदन उनके कण-कण में व्याप्त था। इसी संवेदना से प्रेरित होकर उन्होंने गिरते मानवीय मूल्यों की पुनः स्थापना का बीड़ा उठाने के लिए अणुव्रत आंदोलन का प्रवर्त्तन किया। एक लाख किलोमीटर की पदयात्रा कर अणुव्रत के माध्यम से उन्होंने सिसकती मानवता के आंसू पोंछने का महनीय कार्य किया। मानव में मानवता की कमी देखकर उनका कवि हृदय बोल उठा—

मानव जीवन सहज मिले पर, दुर्लभ मिलती मानवता।
मानव की आकृति में प्रायः, पलती रहती दानवता॥ अणु पृ. ९०

आचार्य तुलसी मानते थे कि आज जो मूल्य संकट उत्पन्न हुआ है, उसका मूल कारण व्यक्ति-व्यक्ति में निहित स्वार्थ भावना है इसीलिए मानव न तो मूल्यों को जीने की स्थिति में है और न पूर्ण रूपेण उन्हें त्यागने की स्थिति में। विखण्डित होते मूल्य सांस्कृतिक चेतना पर निरन्तर प्रहार कर रहे हैं। मानव की इस दयनीय दशा का कितना सटीक चित्रण हुआ है—

कैसी है दयनीय दशा, मानव मानवता छोड़ रहा,
चलता है बीहड़-पथ में, पशुता से नाता जोड़ रहा।
बोझिल है जन-जन का जीवन, स्वार्थों का साम्राज्य खिला,
दुराचार के गहन गर्त में, मानो गिरने जगत् चला॥ नंदन पृ. ७२

आचार्य तुलसी की दृष्टि में अन्य को आघात पहुंचाकर अपरिमित अर्थ और शक्ति का संचय अनुचित है। अपरिमित अर्थलिप्सु लोगों को स्थिति प्रकट करती हुई ये काव्य-पंक्तियां अत्यंत मार्मिक बन पड़ी हैं—

धन की धुन में मानव कितने, सहते कष्ट महान्।
बना रात-दिन एक, छोड़कर खान-पान का ध्यान॥ पानी पृ. २२

समाज में मूल्यों की स्थापना तभी हो सकती है, जब प्रत्येक वर्ग की गलती पर अंगुलिनिर्देश किया जाए। दुर्बलता एवं त्रुटियों के प्रति आंखमिचौनी करने वाला समाज कालान्तर में दुर्बल एवं शक्तिहीन हो जाता है। अंगुलिनिर्देश के संदर्भ में प्रतीक के माध्यम से कही गई निम्न पंक्तियां समाज को नया आलोक देने वाली हैं—

औरों की दुर्वृत्ति देखकर, आंखमिचौनी नहीं करें।
दुर्बलता की शल्य-क्रिया में, सफल जटायू वृत्ति वरें॥ सम्बोध पृ. १२६

आचार्य तुलसी समाज का विवेक जागृत करना चाहते थे कि व्यक्ति केवल दूसरों के दोषों को ही नहीं देखे, अपने दोषों को देखने की दृष्टि भी जागृत रखे। परदोषदर्शन जैसी दुर्बलता पर किया गया तीखा व्यंग्य आत्मदर्शन की प्रेरणा देने वाला है—

- अपनी भूल भयंकर तो भी, ज्यूं-त्यूं ढ़ांकण ढ़ालो।
  कमी पराई राई जित्ती, प्हाड़ करै परबारो॥ सोम. पृ. ३७
- औरों की भूलों को भूलें, अपनी भूल सुधारें।
  कभी न करता मैं गलती, इस अहंवृत्ति को मारें॥ अणु पृ. १७

कवि की निश्चित मान्यता है कि दूसरों को दुःख पहुंचाने वाला व्यक्ति कभी स्वयं प्रसन्नता और आनंद का जीवन नहीं जी सकता—

जो औरों को दुःख पहुंचाते, सुख से न उन्हें बसते देखा।
जो औरों का जी तड़पाते, उनको न कभी हंसते देखा॥ परीक्षा पृ. ८९

जिस समाज में ईर्ष्या, मात्सर्य और व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण दूसरे के विकास में अवरोध पैदा किए जाते हैं, वह समाज प्रगतिशील और विकासशील नहीं हो सकता। आचार्य तुलसी समाज में इस मूल्य को स्थापित करना चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे की प्रगति को अपनी प्रगति माने और केकड़ा वृत्ति का परित्याग करे। सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में ये पंक्तियां कितनी वेधक और प्रेरक बन पड़ी हैं—

बढ़ें प्रगति के सही पंथ पर, एक दूसरे को सींचें।
क्यों ऊपर चढ़ने वालों की, ईर्ष्या से टांगें खींचें?
क्यों पनपे जागृत समाज में, व्यर्थ केकड़ा वृत्ति कभी,

एकनिष्ठ हो करना इसका, मूलोच्छेदन अभी-अभी॥ सम्बोध पृ. १२६

सुविधावाद समाज को अकर्मण्य और निष्क्रिय बना देता है। आचार्य तुलसी ने समय-समय पर सुविधावाद पर कड़ा प्रहार किया। सुविधावाद से निष्पन्न कतिपय रोगों की सूची उनकी काव्य-पंक्तियों में पठनीय है—

- खुला निमंत्रण है आमय को, जीना हो आरामतलब।
  रक्तचाप, मधुमेह, पीनता, हार्टट्रबल होता जब-तब॥ सम्बोध पृ. १२१
- सुविधावाद बिमारी हो, महामारी घर घर बारणे॥ सहिष्णुता पृ. ११

आचार्य तुलसी की कविता में निराशा, घुटन और कुंठा को दूर कर जीवन के प्रति आस्था भरने के स्वर मुखर हैं। घोर असफलता और निराशा के क्षणों में भी उनका उत्साही मन आशा का कोई न कोई तंतु ढूंढ़ लेता था, जिससे मानसिक उत्साह में कमी न आए। उनकी मान्यता थी कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी नव-निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। निम्न पंक्तियां उनके आशावादी और उत्साही व्यक्तित्व की झलक प्रस्तुत करने वाली हैं—

ज्यों-ज्यों चरण-बढ़ेंगे आगे, स्वतः मार्ग बन जाएगा,
हटना होगा उसे बीच में, जो बाधक बन आएगा,
रुक न सकेगी, मुड़ न सकेगी, सत्य-क्रांति की उज्ज्वल धारा॥

शासन पृ. ४७

हर बाधा को चीरकर निर्भय होकर आगे बढ़ना आचार्य तुलसी के जीवन का मूल लक्ष्य था। आत्मविश्वास की प्रखर लौ उनके जीवन की अभिन्न साथी रही। काव्य की निम्न पंक्तियां किसी भी कमजोर मनोबल वाले व्यक्ति में नया जोश भरने का सामर्थ्य रखती हैं—

- किसी तरह की कोई चिन्ता, आर्थिक पार्थिव मत करना,
  सदा भरोसा आत्मशक्ति का, नहीं किसी से भी डरना।
  'तुलसी' निश्चित सफल साधना, सुयश ध्वजा लहराएगी,
  कोटि-कोटि कंठों से जनता, गीत तुम्हारे गाएगी॥

जीवन को टिकाए रखने वाला एक महत्त्वपूर्ण मूल्य है—धैर्य। धैर्य के बारे में उनका मंतव्य आलंकारिक भाषा में पठनीय है—

धीरज सब रो साथी, धीरज जीवन की थाती।
ज्यूं तेल- ज्योत बिच बाती॥ चंदन पृ. ८३

मितभाषिता के मूल्य को तर्कसंगत भाषा में प्रस्तुति देते हुए कवि प्रेरणा देते हैं—

बदन बनावट खुद बतलावै,
बोलण रसना एक हि पावै,
दो आंख्यां दो कान॥ सुधा पृ. ६५

सामुदायिक जीवन का सबसे बड़ा मूल्य है— सेवा। सेवा के मूल्य को उजागर करते हुए कवि कहते हैं—

- सेवाभावी पर-तन अपणो तन मानै,
  सेवाभावी सेवा जीवन-धन मानै।
  सेवा शिव साधन, सेवा संयम-पोषण।
  सेवा भव-संचित कर्म कीच रो शोषण॥ डालिम पृ. १९०

संस्कृति का अनिवार्य सम्बन्ध मूल्य दृष्टि से होता है। उच्च संस्कार सांस्कृतिक धरोहर के साथ मूल्यों के सर्जक भी होते हैं। उसके समक्ष भौतिक वैभव का मूल्य अकिंचित्कर है—

संस्कारों की सम्पदा, है उत्कृष्ट अमूल्य।
धन-वैभव संसार का, रखता है क्या मूल्य॥ सम्बोध पृ. ३८

आचार्य तुलसी का मानना था कि सांस्कृतिक चेतना का अर्थ केवल यह नहीं है कि परम्परा से चले आ रहे मूल्यों को ही स्वीकार करते रहें। विवेकपूर्वक परिवर्तन के साथ सांस्कृतिक मूल्यों को जीने वाला समाज ही अपने अस्तित्व को बनाए रखता है। प्राचीन मूल्यों के विघटन के साथ नए मूल्यों की स्थापना हुए बिना संतुलन नहीं रहता, इसी कारण आचार्य तुलसी जीवन भर प्राचीन मूल्यों के प्रति आस्थावान् रहकर भी नए मूल्यों की प्रस्थापना हेतु भगीरथ प्रयत्न करते रहे। जीवन को सफल, शांतिमय और तेजस्वी बनाने के कतिपय सूत्र काव्य में नगीने की भांति चमक रहे हैं—

- नहीं निखर सकता व्यक्तित्व, स्वयं का जब तक त्याग न हो॥ परीक्षा पृ. १५८

- वही सफल हो सकता, जिसमें अविचलता है। परीक्षा पृ. १६३
- स्वावलम्बन का सृजन, जीवन न जग में भार हो।

आचार्य तुलसी मानते थे कि राष्ट्रीय एवं सामाजिक मूल्यहीनता बढ़ने का एक बहुत बड़ा कारण है—मादक द्रव्यों का सेवन। मदिरा से होने वाली बरबादी का एक प्रेरक चाक्षुष बिम्ब द्रष्टव्य है—

जिस घर में घुसी उसी का, इसने सर्वस्व गंवाया,
कितने बाबू लोगों को, इसने बेकार बनाया?
बच्चे भूखे रोते हैं, फिर शिर पर कर्ज चढ़ाया,
बीबी के गहनों कपड़ों को, बोतल ने बिकवाया,
यह सदा गिराती रहती, देती है नहीं संभलने॥
मानव की मानवता को, मुंह फाड़े खड़ी निगलने॥ अणु पृ. ६८

आचार्य तुलसी का दृढ़ आत्मविश्वास था कि मूल्य-क्षरण की चाहे कितनी ही विकट परिस्थिति हो, सतत पुरुषार्थ के द्वारा इस स्थिति में परिवर्तन लाया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है पहले वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना हो क्योंकि वैयक्तिक मूल्य ही सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्यों की आधारभूमि बनते हैं। आचार्य तुलसी ने एक बृहत्काय संगठन का सफल नेतृत्व किया। अपने सत्प्रयत्नों से अनेकों के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन करके मूल्यों को संचारित करने में वे सफल हो गए। उनका यही विश्वास काव्य की निम्न पंक्तियों में मुखर हो रहा है—

परिवर्तन के सूत्र मिले हैं, जागा मन में दृढ़ विश्वास।
आ सकता बदलाव प्रकृति में, चल पाए जो सतत प्रयास॥ नंदन पृ. ९

मूल्यहीनता के इस गहन संकट में आचार्य तुलसी का काव्य-साहित्य सांस्कृतिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के पुनर्गठन में अहं भूमिका अदा करता है। उन्होंने स्वयं मूल्यों को जीया इसलिए उनके मुख से निकलने वाली वाणी ने व्यक्ति-व्यक्ति की चेतना को भीतर तक झंकृत करके बदलने का आह्वान किया। मूल्य-स्थापना के संदर्भ में उनकी क्रान्त वाणी उद्धरणीय है—"मूल्यहीनता के संकट से आदमी को बचाने के लिए किसी पत्थर को भगवान् बनाने या भगवान् को धरती पर

उतारने की जरूरत नहीं है। मनुष्य-मनुष्य बन जाए, यही इस संकट से मुक्ति का उपाय है।'' कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी के काव्य साहित्य में उदारता, सहिष्णुता, करुणा, आत्मविश्वास आदि मानवीय मूल्य सर्वत्र स्पंदित हो रहे हैं।

काव्य-साहित्य का परिचय

मिल्टन का कथन है कि किसी अच्छी पुस्तक में उस महान व्यक्ति यानि लेखक का रक्त बहता है क्योंकि किसी पुस्तक के लेखन में कवि या साहित्यकार को काफी परिश्रम करना पड़ता है अतः साहित्य का मर्म वही समझ सकता है, जो साधना और तपस्या का मूल्य समझे। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों में एक प्रकार का धुंआ सा उठकर मन को बैचेन नहीं कर देता, तब तक सफल काव्य ग्रंथ की सृष्टि नहीं हो सकती। किसी भी देश में आध्यात्मिक, वैचारिक और सामाजिक क्रांति घटित करने में साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। शताब्दियों का ज्ञान, विद्वत्ता, संस्कृति आदि सब कुछ हमें पुस्तकों में मिलता है।''

''जिस साहित्य से हमारी सुरुचि नहीं जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति नहीं मिले, हममें शक्ति व गति पैदा न हो, हमारा सौन्दर्य-प्रेम और स्वाधीनता का भाव जागृत न हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश उपलब्ध न हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता उत्पन्न न करे, वह साहित्य हमारे लिए अर्थपूर्ण नहीं है, उसे साहित्य की कोटि में परिगणित नहीं किया जा सकता।'' उपन्यासकार प्रेमचन्द की इन सभी कसौटियों पर आचार्य श्री तुलसी का साहित्य खरा उतरता है।

सुंदर या स्थायी महत्त्व की पुस्तक-रचना में वर्षों या महीनों का अथक परिश्रम लगता है। यद्यपि आचार्य तुलसी के लिए काव्य-लेखन नैसर्गिक था फिर भी वे अपनी हर कृति को अंतिम रूप देने में काफी परिश्रम करते थे। अनेक बार पारायण करने के उपरान्त जब तक उनको मानसिक संतोष नहीं हो जाता, वे परिवर्तन करते रहते थे। पं. श्यामसुंदरदास के अनुसार यदि किसी रचना को प्रत्येक बार पढ़ने में कुछ और अधिक आनंद आवे, हमें उसके कुछ विशेष गुणों और उत्तमताओं का परिचय

मिले तो हमें समझ लेना चाहिए कि ग्रंथ बहुत अच्छा और ध्यानपूर्वक पढ़ने योग्य है।' लेखक की ये पंक्तियां आचार्य तुलसी के काव्य ग्रंथों के लिए उद्धृत की जा सकती हैं। सांस्कृतिक मूल्यों की सुरक्षा एवं सर्वजनहिताय की भावना से लिखा गया उनका काव्य-साहित्य अंधेरे में भटकते हर आदमी के लिए प्रेरणादीप का कार्य करने वाला है।

पुस्तक में हमें कवि या लेखक के विचारों या उसके दर्शन का बोध मिलता है। आचार्य तुलसी की हर कृति में वह शक्ति है, जो तलवार, तोप या आणविक बम में भी संभव नहीं है। आध्यात्मिक संत होने के कारण उन्होंने अपने साहित्य में केवल आदर्श की ही स्थापना नहीं की, कल्पना का भी सहारा लिया है। मानव मन की सूक्ष्म व्याख्या करने में उनकी लेखनी सिद्धहस्त थी। खंडकाव्य के अन्तर्गत चरितकाव्य में पात्रों का सुख-दु:ख, आशा-निराशा आदि अनुभूतियों को पढ़कर ऐसा लगता है कि मानो कवि की ये अपनी अनुभूतियां हों। उनकी प्राय: कृतियां आंतरिक संवेगों को सर्वांगीणता से चित्रित करने में सक्षम हैं। हृदय की सरसता, स्निग्धता, कोमलता और सरलता की सुंदर प्रस्तुति उनकी काव्य कृतियों में देखने को मिलती है।

आचार्य तुलसी ने गद्य की भांति पद्य में भी अनेक ग्रंथों की रचना की। उनका काव्य-साहित्य परिमाण में ही विपुल नहीं, गुणवत्ता और महत्ता की दृष्टि से भी उत्कृष्ट कोटि का है। देश और काल की सीमा से परे सार्वभौम सत्य की प्रतिष्ठा की अनुगूंज उनके साहित्य के पृष्ठ-पृष्ठ में देखी जा सकती है। पूज्य गुरुदेव की उदग्र आकांक्षा थी कि अध्यात्म के आलोक में समस्त मानव जाति अभिस्नात हो इसलिए उन्होंने अपने साहित्य में अध्यात्म और साधना के अनेक व्यावहारिक पक्षों का उद्घाटन किया। मानव तनाव-मुक्त और आवेग-मुक्त जीवन कैसे जीए? इसके अनेक सूत्र उनके साहित्य में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। भाषा, भाव और अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी उनकी काव्य कृतियां वरेण्य हैं। आचार्य तुलसी ने विपुल मात्रा में चरित साहित्य की रचना की है क्योंकि महापुरुषों का जीवन-चरित जीवन्त प्रेरणा देता है। कार्लाइल के अनुसार इतिहास को जीवन-गाथा पद्धति से प्रस्तुत करना सर्वोत्तम सृजन है।'' चरित काव्य में आचार्य तुलसी ने महान् आचार्य

एवं विशेष साधु-साध्वियों की जीवन-गाथा को प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त अनेक खण्ड काव्य एवं विपुल गीत साहित्य से भी उन्होंने मां सरस्वती के अक्षय भंडार को भरा है। यहां उनकी काव्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है—

अग्नि-परीक्षा

''जो बात असाधारण और निराले ढंग से शब्दों द्वारा इस भांति व्यक्त की जाए कि तीर की तरह अंत तक जा लगे, बुद्धि-पटल को भेदकर मर्म में घुस जाए और हलचल उपस्थित कर दे, उसी का नाम काव्य है।'' किसी विचारक की ये पंक्तियां अग्नि परीक्षा ग्रंथ पर सटीक बैठती हैं। अग्नि परीक्षा काव्य में वह शक्ति है कि नीरस हृदय भी सरस तथा वेरागी हृदय भी संगायक बन जाए।

राम का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति में इतना बहुचर्चित रहा है कि उस पर सैंकड़ों काव्य एवं कथाग्रंथ लिखे जा चुके हैं। विश्व की अनेक भाषाओं में रामायण का अनुवाद हो चुका है। प्राय: सभी धर्मों ने कुछ परिवर्तन के साथ राम-कथा को साहित्यिक अभिव्यक्ति दी है।

जैन परम्परा के आद्य वाल्मिकी विमलसूरी हैं, जिन्होंने 'पउमचरियं' में जैनदृष्टि से राम के चरित्र का विश्लेषण किया है। उसके पश्चात् अनेक जैनाचार्यों के द्वारा रामायण लिखी गई। अपभ्रंश भाषा में १२ हजार श्लोक प्रमाण 'पउमचरिउं' का भी साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसके लेखक स्वयंभू हैं। इसी परम्परा में आचार्य तुलसी द्वारा रचित 'अग्नि परीक्षा' खंड काव्य का भी अपना विशिष्ट स्थान है। बीसवीं सदी के बहुचर्चित पुस्तकों में एक नाम 'अग्निपरीक्षा' का है। इस काव्य की यह विशेषता रही कि आचार्य तुलसी ने स्वयं कलम हाथ में लेकर यह काव्य बोलकर मुनि श्री सागरमलजी को लिखाया है।

महासती सीता के चरित्र को कवि की विलक्षण आंखों ने इस रूप में पकड़ा है कि उसके चरित्र चित्रण में सहज ही एक चमत्कार की सृष्टि हो गई है तथा सीता के चरित्र को उदारता की इस भूमिका में रखा गया है, जिसके आगे कोई राह नहीं हो सकती।

इस खंडकाव्य में राम के अयोध्या आगमन से लेकर सीता की अग्नि-

परीक्षा तक का वर्णन है। काव्य में बालक लव कुश की वीरता, उनका शौर्य तथा वन में सीता की स्थिति का मार्मिक वर्णन हुआ है। काव्य के प्रारम्भ में राम और भरत के मिलाप का हृदयग्राही वर्णन का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

अविराम राम पादाम्बुज को, नयनाम्बुज से वे सींच रहे,
बाहों में भरकर अवरज को, अग्रज ऊपर को खींच रहे।
सर पर रक्खा है वरद हस्त, अत्यन्त स्नेह से गले लगा,
भरतेश विरह सब भूल गये, अन्तर में नव आह्लाद जगा॥ पृ. ८

नारी जाति के प्रति आचार्य श्री के मन में विशेष करुणा के भाव थे। उन्होंने नारी जाति को उसकी सोई शक्ति एवं खोई अस्मिता का बोध कराया। प्रस्तुत ग्रंथ में नारी की स्थिति का कितना मार्मिक एवं करुणामय चित्र प्रस्तुत किया गया है—

◆ पुरुष हृदय पाषाण भले ही हो सकता है,
नारी हृदय न कोमलता को खो सकता है।
पिघल-पिघल अपने अन्तर को धो सकता है,
रो सकता है, किन्तु नहीं वह सो सकता है॥ पृ. ६७

नारी की आत्म-शक्ति को शायद ही किसी कवि ने इस भाषा में जगाया होगा—

अपने बल पर नारी, तुझे जागना होगा,
कृत्रिम आवरणों को, तुझे त्यागना होगा।
खो संतुलन भीत हो, नहीं भागना होगा,
सत्यक्रान्ति का अभिनव, अस्त्र दागना होगा। पृ. ६८

जागृत नारी के महत्त्व को रूपायित करते हुए कवि की लेखनी चल पड़ी—

जागृत महिला का महत्त्व, इस महिमंडल पर अमर रहा,
जिसने प्राण प्रहारी संकट, प्रण को रखने सदा सहा।
उसके यश का उज्ज्वल अविरल अविकल अविचल स्रोत बहा,
दिखलाया है हृदय खोलकर, समय-समय वीरत्व अहा!॥ पृ. १५९

---

१. विज्ञप्ति ९६९।

सीता के माध्यम से भारतीय नारी की शालीनता, सात्त्विकता एवं समर्पण की अभिव्यक्ति इस काव्य के कण-कण में मुखरित हुई है। सीता राम के मति-विभ्रम को भी अपने ही कृत कर्मों का परिणाम मानती है—

जो हुआ दोष सब मेरा है, निर्दोष निरन्तर रहे राम।
कृत कर्मों का ही कुपरिणाम, जिनसे उनकी मति हुई वाम॥
झूठा कलंक यह आया है, रवि के रहते तम छाया है। पृ. ८१

जीवन के विविध उतार-चढ़ाव, घात-प्रत्याघात तथा काव्य-कला की सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति—ये सब तत्त्व इस काव्य की महत्ता को वृद्धिंगत करने वाले हैं।

काव्य में प्रसंगवश सड़ी-गली रूढ़ियों एवं प्रतिक्रियावादी तत्त्वों के प्रति भी कवि ने अपना विद्रोह प्रकट किया है। जब जनापवाद से डरकर राम सीता को निर्वासित करने की बात सोचते हैं तो कवि का विद्रोही मानस हनुमान, लक्ष्मण आदि के माध्यम से उन्हें अपने निर्णय पर सोचने को विवश करता है—

लोगों का क्या ये तो गोबर के कीले के साथी,
नहीं अस्थियां रसना में, ये इधर-उधर हो जातीं।
लोक-कथन से डरने वाले, जीवित ना रह पाते,
चढ़े और पैदल दोनों की लोक मजाक उड़ाते। पृ. ४६

करुणरस को अभिव्यक्ति की दृष्टि से सबसे प्रभावी रस माना जाता है क्योंकि यह अंतर को छूता है। सीता के परित्याग के प्रसंग में करुणरस की सरल एवं सरस अभिव्यक्ति इस काव्य में हुई है।

राम और लवकुश के युद्ध में कवि की भाषा ओजपूर्ण और प्रवाहमयी हो गयी है—

रथ चलाओ कुचल दो, यों कह रहे हैं सूत से,
तप्त प्रकुपित राम लक्ष्मण, हो रहे हैं भूत से।
करें क्या रथ हुए जर्जर, अश्व घायल हो गए,
खींचते वल्गा हमारे, हाथ दुर्बल हो गए॥ पृ. १३३

जैन आचार्य होते हुए भी रामायण के पात्रों का इतना उदात्त वर्णन कवि के मन की विराटता और उदारता को प्रकट करता है। काव्य के प्रारम्भ में ही कवि राम, सीता और लक्ष्मण की प्रशस्ति गाते हुए कहते हैं—

जय जय रघुपति जय जय लक्ष्मण, जय जय सीता का शील महा।
यों जनता के जय घोषों से, भूमंडल सारा गूँज रहा।।पृ. ३

यह रचना अपनी अलंकार योजना, प्रभावशाली अद्वितीय संवादों एवं अद्‌भुत वर्ण-कौशल के प्रयोग के कारण हिन्दी के खंड काव्यों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। ऐसा लगता है मानो प्रत्येक शब्दों का प्रयोग गढ़कर, तोलकर और कांट-छांटकर किया गया है। यही कारण है कि आदि से अन्त तक भाषा भावों की अनुगामिनी रही है।

सम्पूर्ण काव्य मानव मन की गहराइयों को छूने वाला है क्योंकि कवि ने अपनी भावुकता एवं संवेदना की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति इस काव्य में की है। भाषा का ओज और विचारों की क्रांति ने इस रचना को बहुत महनीय बना दिया है। यह काव्य अपनी सांस्कृतिक गरिमा एवं साहित्यिक महत्ता को सदैव प्रकट करता रहेगा।

अणुव्रत गीत

अणुव्रत आंदोलन आचार्य श्री तुलसी के जीवन का वह जीवन्त पुरुषार्थ है, जिसने लाखों मनुष्यों की सुप्त अंतरात्मा को जगाने का प्रयत्न किया है, हजारों लड़खड़ाते कदमों को संभलने का अवसर दिया है तथा सैंकड़ों क्रूर, आततायियों का हृदय-परिवर्तन किया है। आचार्य तुलसी ने अणुव्रत की आवाज को प्रवचनों में तो उठाई ही है, गीत और कविता के रूप में भी इस आंदोलन की आत्मा गूंज उठी है। 'अणुव्रत गीत' में अणुव्रत से संबंधित विविध गीतों का संकलन है। इसमें सीधी सरल भाषा में समाज के विविध वर्गों की बुराइयों पर करारी चोट की गयी है और उनकी नैतिक चेतना को जगाने का सार्थक प्रयास किया गया है। कान लगाकर ध्यान से सुनने पर अनैतिकता के विरुद्ध संघर्ष की आवाज इस कृति में पग-पग पर सुनाई देगी। 'अणुव्रत गीत' पुस्तक को पढ़कर यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि स्वस्थ सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना में वे कितने अधिक सक्रिय थे।

कवि ने इन गेय गीतों में केवल मधुर वाणी का ही आश्रय नहीं लिया अपितु ओजस्वी और क्रान्त वाणी से समाज के प्रत्येक वर्ग को ललकारा भी

१. चंदन की चुटकी भली, संपादकीय, पृ. २।
२. डालिम चरित्र, स्वकथ्य, पृ. १।

है। आज के धार्मिकों का विसंगतिपूर्ण चरित्र उपस्थित करके उसे चेतावनी देते हुए कवि कहते हैं—

सामायिक स्वाध्याय संतदर्शन तो धर्मस्थानों में,
जालसाजियां धोखेबाजी, करते बैठ दुकानों में,
दर्शन, सेवा, शास्त्र-श्रवण का, क्या यह लाभ उठाते हो?
सत्य धर्म की सही शान को, खोते या रख पाते हो? पृ. ४३

धर्म के क्रांतिकारी और नवीन रूप को प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

क्रियाकाण्ड हैं गौण जहां, आचार मुख्य कहलाए।
धार्मिक जड़ता में जो नई चेतना लेकर आए॥

आंदोलन के ध्येय को लोकगीतों के रूप में प्रस्तुत करके आचार्यश्री ने इस आंदोलन को लोकव्यापी एवं राष्ट्रव्यापी बनाकर 'कवयः क्रान्तदर्शिनः' इस उक्ति को सार्थक करने का प्रयत्न किया है।

यह काव्य कृति पाठक को बहुत दूर तक अपने साथ खींचकर ले जाने में सक्षम है क्योंकि मानव मन को छूने की अद्‌भुत क्षमता इन गीतों में प्रकट हो गयी है। अनाचार, अत्याचार, शोषण एवं उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाने वाली यह गीतिकाव्य की पुस्तक निश्चित ही समाज में क्रान्ति करने में सफल हो सकती है।

अध्यात्म-पदावली

'किसी अनुभवी की वाणी है कि बाह्य सौन्दर्य चतुर चित्रकार के चित्र में भी देखने को मिल सकता है पर मन और आत्मा का सौन्दर्य कवि की वाणी में ही मिलता है।' ये पंक्तियां गुरुदेव तुलसी द्वारा रचित 'अध्यात्म पदावली' कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। तृष्णा, अनासक्ति, एकाग्रता, चंचलता आदि अनेक विषयों पर दोहे के रूप में लिखी गयी यह कृति गागर में सागर की भांति अध्यात्म के गंभीर रहस्य को अपने भीतर समाए हुए है। अध्यात्म पथ के पथिकों को परमार्थ का अवबोध देने हेतु कवि ने योगक्षेमवर्ष सन् १९८९ में इस कृति की संरचना की। पूरे वर्ष सैंकड़ों व्यक्तित्वों को निर्मित करने हेतु अनेक उपक्रम चले। प्रवचन एवं आगम-वाचना का क्रम भी बहुत मर्मस्पर्शी और प्रेरक रहा।

सरल और सुबोध शैली में लिखी गयी यह कृति मानवीय संवेगों की सुंदर प्रस्तुति करने वाली है। 'मैं' और 'मेरा' विषय पर कवि की अनुभूति और उक्ति-वैचित्र्य द्रष्टव्य है—

मूर्च्छा यदि होती नहीं, तो 'मैं' मेरा भाव।
चेतन के चैतन्य का, बनता नहीं स्वभाव॥ पृ. ३७

ज्ञाता द्रष्टाभाव एवं मन के अमन होने पर चेतना की स्थिति का चित्रण कवि की अनुभवपूत वाणी में पठनीय है—

जैसे-जैसे जागता, आध्यात्मिक चैतन्य।
वैसे-वैसे देखता, मानव मात्र अनन्य॥ पृ. ५४

आध्यात्मिक अनुभूतियों से परिपूरित यह लघु कृति अध्यात्म क्षेत्र के अनेक प्रत्ययों का स्पष्टीकरण करने वाली है। यह कृति आत्मबोध के पथ पर प्रस्थित साधकों को नया पाथेय देने वाली है। इस कृति का संकलन ''आत्मा के आसपास'' पुस्तक में है।

अर्हत् वाणी

भगवान् महावीर आत्म-द्रष्टा ऋषि थे। उनकी क्रान्त वाणी में वे स्फुलिंग हैं, जो जीवन की अंधेरी घाटी में नव आलोक भर सकते हैं। उनका प्रत्येक शब्द सोयी चेतना को झंकृत करने वाला है।

अंग साहित्य में 'आयारो' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रत्येक सूक्त अध्यात्म की अभिनव ज्योति विकीर्ण करता हुआ दिखलाई पड़ता है। पूज्य गुरुदेव के शब्दों में आयारो ऐसा आगम है, जिसका एक-एक वचन नये रहस्यों का खजाना है, इसका एक-एक मंत्र शक्ति का स्रोत है, इसका एक-एक अक्षर जीवन-विकास का स्वर्ण-सूत्र है। जब-जब मैं आयारो का स्वाध्याय करता हूं, भाव विभोर हो जाता हूं।' व्यवहारबोध की रचना के पश्चात् आचार्य तुलसी के मन में एक चिन्तन उभरा कि आयारो के महत्त्वपूर्ण सूक्तों का काव्यानुवाद होना चाहिए जिससे सामान्य जनता भी उसका लाभ उठा सके। चिंतन के साथ ही क्रियान्विति करते हुए आचार्यश्री तुलसी ने कुछ सूक्तों का अनुवाद कर दिया। आचारांग के सूक्त अत्यन्त संक्षिप्त शैली में गंभीर अर्थ को प्रकट करने वाले हैं अत: कवि ने इनका शब्दानुवाद न करके भावानुवाद किया है। 'सिओसिणच्चाई से निग्गंथे' सूक्त का अनुवाद कवि के शब्दों में पठनीय है—

सर्दी गर्मी में सम रहता,
अनु प्रतिकूल परीषह सहता,
राग-द्वेष ग्रंथि का छेदन,
सही रूप निर्ग्रन्थ निशानी,
आयारो की अर्हत् वाणी॥ पृ. २४

अध्यात्म और बाह्य का सामंजस्य करने वाली भावानुवाद की निम्न पंक्तियां कितनी सरल, सरस एवं संवेद्य बन पड़ी हैं—

जो अध्यात्म तत्त्व का वेत्ता,
वही बाह्य को जान सकेगा,
बाह्य वस्तु विज्ञाता ही,
अध्यात्म तत्त्व पहचान सकेगा,
एक दूसरे को बिन जाने,
एकांगी वह अल्पज्ञानी,
आयारो की अर्हत् वाणी॥ पृ. २२

कृति के प्रारम्भ में कवि ने जैन दर्शन सम्मत नय, निक्षेप एवं पांच व्यवहार की संक्षिप्त अवगति दी है। व्यवहार नय और निश्चय नय का सामंजस्य स्थापित करने वाले बारह ही पद्य अध्यात्म और व्यवहार का समन्वय प्रस्तुत करने वाले हैं। उपमा के माध्यम से निश्चय और व्यवहार में ऐक्य स्थापित करते हुए कवि कहते हैं—

- सहयायी बन सदा निवृत्ति प्रवृत्ति रही है,
  धूप छांह की संरचना क्या सही नहीं है?
  फिर निश्चय व्यवहार क्यों नहीं साथ चलेगा,
  दोनों से ही संयम तप उद्यान फलेगा॥ पृ. १०
- मन निश्चय में लीन हो, साधे तन व्यवहार।
  सप्रण पनिहारी गति, होगी कभी न हार॥ पृ. ९

यह कृति 'आत्मा के आसपास' पुस्तक में संकलित है।

आचार-बोध

"आचार पर प्राणों की बलि चढ़ा देना स्वीकार्य है पर आचारहीनों का संगठन मुझे कभी अभीष्ट और स्वीकार्य नहीं है।" गुरुदेव श्री तुलसी की यह

आत्मतेज युक्त वाणी उनकी आचारनिष्ठा को उजागर कर रही है। तेरापंथ धर्मसंघ एक आचारनिष्ठ, जागृत और अनुशासित धर्मसंघ है क्योंकि इसका नेतृत्व आचरण की शुद्धता पर सर्वाधिक महत्त्व देता है। आचार्यश्री तुलसी का जागरूक नेतृत्व संघ में समय-समय पर प्रेरणा की अजस्र धारा बहाता रहता था। इसी क्रम में साधु-साध्वियों को श्रमणाचार का सम्यक् बोध देने हेतु आचार्य श्री तुलसी ने आचार बोध की संरचना की। आचार्य तुलसी स्वयं इस कृति के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए कहते हैं— 'मैंने अपने युग को देखा, उसकी स्थितियों का आकलन किया, शिष्यों की मानसिकता का अध्ययन किया और कुछ आगमाधारित एवं कुछ अनुभूतिपूर्ण रचनाएं करने का लक्ष्य बनाया। उस श्रृंखला की पहली कड़ी है— आचारबोध।' पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी स्वयं इस कृति की उपयोगिता का संगान इन पंक्तियों में करते हैं—

आचरण के क्षेत्र में पुरुषार्थ की अभिसेचना,
इसलिए आचार की, संस्कार की सुविवेचना।
सीख शुभ नवदीक्षितों को, निरन्तर मिलती रहे,
यह उपक्रम भावना-वनिका, सदा फलती रहे॥ पृ. २

चूंकि आचार का पालन गुरु करवाते हैं अत: गुरु की स्तुति इस काव्य कृति के प्रारंभ में बहुत ही सरल एवं सरस शैली में व्यक्त की गई है। गुरु की गरिमा को व्यक्त करने वाला यह पद्य कितना हृदयहारी बन पड़ा है—

गुरु के अनमोल बोल संजीवन देते,
तूफानों में भी जीवन-नौका खेते।
गुरु अत्राणों का त्राण, विश्ववत्सल है,
मिलता जिससे पल-पल नूतन संबल है॥ पृ. २

इस समीक्ष्य कृति में पांच आचार, दश श्रमण धर्म, शील की नवबाड़, सतरह संयम, महाव्रत की पच्चीस भावनाएं, दश समाचारी, भिक्षा के बयालीस दोष, बावीस परीषह, बीस असमाधि स्थान, इक्कीस सबल दोष आदि का वर्णन है। अंत में गुरु के प्रति होने वाली ३३ आशातनाओं का वर्णन है, जिनकी आधुनिक मनोविज्ञान के शिष्टाचार के नियमों के साथ तुलना की जा सकती है।

गुरुदेव तुलसी की सृजन-चेतना जागृत एवं नवोन्मेषिणी थी। एक बार

कलम की नोक से कागज पर पंक्तियां उतार देने मात्र से वे खुश नहीं होते थे। अपनी कृति में वे तब तक परिवर्तन करते रहते थे, जब तक उन्हें पूरा आत्मतोष नहीं हो जाता। उनकी इस जागरूकता ने उनके सभी काव्यों को इतना वेधक बना दिया कि उनको सुनते ही श्रोता आत्मविभोर और आत्मनिमग्न हो उठता है। इस कृति की रचना बहुत पहले हो चुकी थी पर दिल्ली १९८७ में गुरुदेव ने इसका आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। यह ग्रंथ अनेक छंदों में निबद्ध है अत: संगायक इसे गाता हुआ ऊबता नहीं, प्रत्युत् हर क्षण नए-नए रसों की अनुभूति करता रहता है।

यह ग्रंथ मुनि-आचार का ऐसा प्रकाशपुंज है, जिससे जब चाहें, जितना चाहे प्रकाश लेकर साधु अपने को तेजस्वी बना सकता है। अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों के साथ यह ग्रंथ दशाश्रुतस्कंध में वर्णित साध्वाचार का सहज, सरल अनुवाद कहा जा सकता है। इस लघु कृति का संग्रह 'सम्बोध' नामक पुस्तक में हुआ है।

आत्मा के आसपास

डॉ. विद्यानिवास मिश्र मूल्य के बिना साहित्य को प्रयोजन शून्य मानते हैं। 'आत्मा के आसपास' आचार्य तुलसी की आध्यात्मिक मूल्यों से सजी-संवरी एक विशिष्ट कृति है। अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों को प्रकट करने वाली यह कृति श्रीमद् राजचन्द्र की याद दिलाती है।

'आत्मा के आसपास' कोई स्वतंत्र कृति न होकर संकलित कृति है, जिसमें 'अर्हत् वाणी', 'अध्यात्म पदावली' और 'प्रेक्षा-संगान' इन तीन लघु कृतियों का समावेश है। इन कृतियों का परिचय स्वतंत्र रूप से अनुक्रम में दिया हुआ है।

कालूयशोविलास

आचार्य श्री तुलसी लाखों भक्तों के हृदय में विराजित थे पर उनके हृदय में एक कमनीय और श्रद्धास्पद प्रतिमा विराजित थी—उनके गुरु पूज्य कालूगणी की। कालूगणी की स्तवना एवं स्मृति में आचार्य तुलसी इतने तन्मय हो जाते थे मानो वे उनके चरणों में ही उपासना कर रहे हों।

डॉ. नरेन्द्र देव के अनुसार कविता का उद्देश्य प्रत्यक्षीकरण के किसी विशिष्ट क्षण को बिम्ब के माध्यम से पाठक के समक्ष प्रस्तुत करना है।'' ये

पंक्तियां कालूयशोविलास काव्य पर पूर्णतया चरितार्थ होती हैं। कवि ने अपने गुरु के साथ बिताए क्षणों एवं घटनाओं का ऐसा मूर्त्तविधान पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है कि पढ़ते समय पाठक को ऐसा प्रतीत होता है, मानो सब कुछ आंखों के सामने घटित हो रहा है। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी के शब्दों में—''कालूयशोविलास के साहित्यिक सौन्दर्य में निमज्जन करने पर ऐसा अनुभव होता है मानो एक तराशी हुई आवृत प्रतिमा का अनावरण हो रहा है अथवा एक सजीव आकृति शब्दों के आवरण को वेधकर बाहर झांक रही है।''

कालूयशोविलास में कवि ने ग्रन्थ-नायक के जीवन के विविध पक्षों को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। प्रकृति के विविध रूपों का सरस चित्रण भी इस काव्य में हुआ है। अनेक स्थलों पर प्रकृति के छायावादी प्रयोग मिलते हैं। प्रसंगवश दार्शनिक एवं तात्त्विक विश्लेषण भी इस काव्य को प्रौढ़ रूप प्रदान करते हैं। कालूयशोविलास महाकाव्योचित समस्त कसौटियों पर खरा उतरता है। उसका वर्णन-कौशल और घटना-वैचित्र्य भी महाकाव्य के अनुकूल है। सम्पूर्ण काव्य छः उद्देशकों में विभक्त है। काव्य की भाषा संस्कृत मिश्रित राजस्थानी है। राजस्थानी भाषा होते हुए भी तत्सम शब्दों का पूर्ण वैभव इस ग्रंथ में देखने को मिलता है।

अनुप्रास, यमक और रूपक अलंकार तो कवि के सहचर हैं, जो बिना प्रयास ही उनके काव्य का अनुगमन करते हैं। इस ग्रंथ रत्न के बारे में संपादिका महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी की अपनी अनुभूति निम्न शब्दों में प्रकट हुई है—''छुटपुट रचना बिन्दुओं का संख्यांकन न किया जाए तो आपकी सृजन-श्रृंखला में पहली कड़ी है— 'कालूयशोविलास'। इस प्रथम कृति में भी अनुभव शिल्प को जिस प्रौढ़ता से निखार मिला है, वह विलक्षण है। शब्द शिल्प को सर्तकता पूर्वक गढ़ने का प्रयास न होने पर भी इसके शब्द-विलास में आभिजात्य सौन्दर्य का उभार है। साहित्य जगत् की नयी विधाओं से अनुबंधित न होने पर भी इसमें आविर्भूत नव्यता एक पराकाष्ठा तक पहुंच रही है। सूर्य रश्मियों की भांति उज्ज्वल और गतिशील इस काव्य-चेतना में एक अनिर्वार आकर्षण है। इस अखंड और समग्र अस्तित्व को आकार देने वाले जीवन-वृत्त का सृजन अन्तर्लीनता के दुर्लभ क्षणों में ही संभव हुआ है।''

प्रस्तुत कृति में श्रद्धा और समर्पण की जो निर्झरिणी बही है, वह पाषाण हृदय को भी पिघलाने में सक्षम है। अनुभूति की तीव्रता ने इस महाकाव्य को आकर्षक और भव्य बना दिया है तथा असाधारण भावोद्रेक से उनकी अभिव्यक्ति में वक्रता एवं चमत्कृति का योग हो गया है। आचार्य तुलसी स्वयं इसकी प्रस्तुति में इस बात को स्वीकृति देते हुए कहते हैं—"कालूयशोविलास भक्ति सरोवर में डूबकर लिखा गया काव्य है, जिसमें कृत्रिमता को कोई स्थान नहीं है। उसे लिखना मेरी विवशता थी क्योंकि कालूगणी को अनन्त श्रद्धा की अभिव्यक्ति दिए बिना मैं बेचैनी का अनुभव कर रहा था।" ग्रंथ-रचना कौशल के बारे में 'मेरा जीवनः मेरा दर्शन' पुस्तक में कवि स्वयं आश्चर्यचकित होकर कहते हैं—"पूज्य गुरुदेव की कृपा कहूं या मेरी प्रगाढ़ आस्था का चमत्कार मानूं, 'कालूयशोविलास' की रचना अपने आपमें विलक्षण हुई। मुझे कल्पना भी नहीं थी कि मैं इस रूप में रचना कर पाऊंगा। अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं के बावजूद इसकी रचना-शैली मन को बांधने वाली प्रमाणित हुई। इसका एक-एक गीत रस से सराबोर है।" कालूयशोविलास ग्रंथ का वैशिष्ट्य आचार्य महाप्रज्ञ की काव्य पंक्तियों में पठनीय है—

- शब्द पुराने अर्थ नया है, अर्थ पुराने शब्द नया है।
  नया नहीं है कुछ भी जग में, सिर्फ सृजन का सूत्र नया है॥
- आंखों में है श्री कालू का, चिर परिचित प्रतिबिम्ब,
  कालूयशोविलास में देखें, श्री कालू का जीवित बिम्ब।
  जन्में ना हम कालू-युग में, कभी मुखर होता संलाप,
  कालूयशोविलास पास में, तब नहीं करे कोई संताप॥[१]

शब्दों का चयन, भावों की गभीरिमा, वर्णन की प्रौढ़ता तथा देश-काल परिस्थिति के अनुसार व्याख्यान—इन सब तत्त्वों ने इस काव्य को सजीव एवं महनीय बना दिया है।

छह उल्लासों से युक्त इस ग्रंथ के साथ जुड़े हुए तीन परिशिष्ट संपादन के श्रम को तो प्रकट करते ही हैं, साथ ही साथ ग्रंथ को समझने में भी सहायक हैं। कवि ने प्रशस्ति में संपादिका महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी के श्रम को काव्यमय प्रस्तुति देकर उनके श्रम को ऐतिहासिक और अमर बना दिया है—

नव रचना को सो श्रम लाग्यो, जागरणां में जागृति आई,
बूथै स्यूं ज्यादा कनकप्रभा, इणमें पुरुषार्थ लगा पाई।
परिमार्जित प्रतिलिपि स्वयं करी, परिशिष्ट सटिप्पण नामक्रम,
लिख कथावस्तु प्राक्कथन मथन, सम्पादन कीन्हो है सक्षम॥

कालू भा. २ पृ. २५५

कालूयशोविलास आचार्य तुलसी की सर्जक प्रतिभा का अप्रतिम उदाहरण है। राजस्थानी भाषा की मधुरता का यह प्रतिनिधि काव्य है। यह कृति युगों-युगों तक जन-मानस में नव चेतना का संचार करती रहेगी तथा गुरु और शिष्य के तादात्म्य भाव को अभिव्यक्ति देती रहेगी। इस काव्य में इतने रहस्य छिपे हैं कि केवल पारायण मात्र से उन्हें खोजना अत्यन्त कठिन है।

चंदन की चुटकी भली

अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक ट्राइडन एक स्थान पर अपनी अनुभूति लिखते हुए कहते हैं कि काव्य का लक्ष्य आनंदप्रद रीति से शिक्षा प्रदान करना है। काव्य यदि अश्लील व वासना को भड़काने वाला है तो वह सामाजिक स्वास्थ्य का विघातक है।' आचार्य श्री तुलसी द्वारा रचित काव्यमय १८ आख्यायिकाओं का संकलन 'चंदन की चुटकी भली' जीवन को रूपांतरित करने की प्रेरणा देने वाला महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रंथ है।

कवि का सबसे बड़ा गुण होता है—कल्पनाशीलता। भावों की उपज के बिना कविता नहीं लिखी जा सकती। आचार्य श्री तुलसी के प्रतिभा-कौशल एवं कवित्वशक्ति ने छोटी सी घटना को भी कल्पना के रंग में रंगकर उसे अतिशायी एवं सजीव बना दिया है। 'चंदन की चुटकी भली' के प्राय: सभी आख्यान ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर निर्मित हैं। इनके माध्यम से कवि ने प्राचीन भारतीय संस्कृति को उजागर करने का प्रयत्न किया है। इन आख्यानों को पढ़कर ऐसा महसूस होता है कि ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा चित्र उतारने में आचार्य तुलसी की टक्कर में दूसरा राजस्थानी कवि नहीं ठहर सकता। मानवीय संवेगों की प्रस्तुति भी इतनी सजीव हुई है कि मानो कवि स्वयं उस जीवन को साक्षात् जी रहा हो। 'प्रभुता री पराजय' में भरत और बाहुबलि का युद्ध-वर्णन इतना सरस और रोमांचक हुआ है कि वह चित्र की भांति आंखों के सामने थिरकने लगता है।

मानव प्रकृति और बाह्य प्रकृति दोनों का सरस और सुकुमार वर्णन इन आख्यायिकाओं में हुआ है। 'भरी जवानी आ कुर्बानी' में मानवीय संवेगों की जो तीव्र अभिव्यक्ति हुई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

किसी भी सांस्कृतिक जीवन को कुछ उदात्त चरित्रों की आवश्यकता होती है, जिनके आदर्श तथा सुख-दु:ख विपरीत परिस्थिति में भी आम आदमी को प्रेरणा दे सकें और बलिदान की भावना जगा सकें। इस दृष्टि से इसके सभी आख्यानों का चयन सार्थक है। संपादकीय में महाश्रमणी साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी भी इसी अनुभूति को प्रस्तुति देते हुए कहती हैं—"जिस प्रकार चुटकी भर चंदन सारे घर को सौरभ से भर देता है, उसी प्रकार आकार में छोटे होने पर भी ये आख्यान अपना अकल्पित प्रभाव छोड़ते हैं। ब्राह्मी और सुंदरी के उद्‌बोधन गीत ने बाहुबलि की जीवन-दशा को मोड़ दिया। एक अंगूठी ने भरत के जीवन को कैवल्य के आलोक से भर दिया। नागला के एक प्रयोग ने भावदेव को भटकने से उबार दिया। भद्रा के एक बोल— 'पुत्र! राजा अपना मालिक है' ने शालिभद्र को स्वप्न के संसार से यथार्थ के धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया। सुभद्रा के एक वचन ने धन्य कुमार के भीतर सोए हुए सिंह को जगा दिया। उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल्य आकार का नहीं, वेधकता का है। जो कृति जितनी अधिक वेधक होती है, वह उतनी ही अधिक मूल्यवान बन सकती है।"[१]

इन आख्यायिकाओं का यह वैशिष्ट्य है कि घटना में गुंफित आदर्श यथार्थ से विमुख नहीं हैं इसलिए वे श्रोता और संगायक के मर्म का स्पर्श करते हैं।

विभिन्न रागिनियों में निबद्ध ये अठारह आख्यान राजस्थानी भाषा में रचित हैं क्योंकि राजस्थानी भाषा में जो मिठास और स्वाभाविकता है, वह अन्य भाषा में नहीं है फिर भी ये आख्यान संस्कृतनिष्ठ और हिन्दी के अधिक निकट हैं अत: राजस्थानी नहीं जानने वाला व्यक्ति भी इन्हें समझ सकता है। ये आख्यान हमारी सांस्कृतिक धरोहर की सुरक्षा करते हुए सर्वदा प्रेरणा की नूतन लौ जगाते रहेंगे।

भाव वैशिष्ट्य, शब्द वैचित्र्य और सृजन-वैविध्य की त्रिवेणी में आकंठ स्नात यह कृति काव्य-रसिकों का पथ-प्रदर्शन करती रहेगी।

डालिम चरित्र

तेरापंथ के तेजस्वी आचार्यों की परम्परा में सप्तम आचार्य डालगणी का अपना विशिष्ट स्थान है। उनके व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देने और उपमित करने में आचार्य श्री तुलसी जैसे महान् साहित्यकार भी अपने को असमर्थ मानते हुए कहते हैं—'उनका ओज, उनका वर्चस्व, उनकी वक्तृत्व-कला, उनकी संघ सारणा-वारणा की विधि और संघ-संचालन नीति को किसी उपमा से उपमित कर सकूं, यह संभव नहीं लगता। आचार्य डालगणी अपनी विलक्षणताओं से इतने सम्पन्न थे कि उनके लिए कोई भी उपमा अपने अर्थ को सार्थकता नहीं दे सकती।''[२]

आचार्य श्री तुलसी ने चरित साहित्य की परम्परा में अनेक नई कड़ियां जोड़ी हैं। उनमें डालिम चरित्र गरिमायुक्त चरितकाव्य है। उनके चरित साहित्य में केवल व्यक्तित्व को ही अभिव्यक्ति नहीं मिली अपितु इतिहास, संस्कृति और कला की सुरक्षा भी हुई है। यह काव्य केवल शब्दों की संकलना ही नहीं अपितु जीवनरस से अनुप्राणित है।

तेरापंथ धर्मसंघ में भावी आचार्य की नियुक्ति वर्तमान आचार्य करते हैं पर डालगणी का निर्वाचन संघ के द्वारा हुआ, यह तेरापंथ इतिहास की एक विशेष घटना थी। कवि ने इस घटना का मार्मिक एवं रोमांचक वर्णन किया है। माणकगणी के आकस्मिक स्वर्गवास के समय संघ की स्थिति का उपमायुक्त वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

> दुधारू गायां गोकुल री, ओ सूनी छोड़ गयो ग्वालो,
> खेती लहरावै खड़ी-खड़ी, पण आज कठै है रखवालो,
> है सेना सगली कड़ाजूड़, पण सेनापति कोनी आगै।
> शासन रा सारा साध सत्यां, शोभे शासनपति रै सागै॥ पृ. ६९

जनसाधारण के कथन की अपेक्षा कवि के कथन में विलक्षणता होती है। साधारण व्यक्ति जहां नदी को बहते या पक्षी को चहकते हुए देखते हैं, वहां कवि उनमें उक्ति वैचित्र्य के द्वारा चमत्कार की सृष्टि करके उसे सजीव बना देता है। स्वल्प शब्दों में गुरु-गरिमा की अभिव्यक्ति कवि के उपमा-वैचित्र्य का दिग्दर्शन कराती है—

> बूढ़ां रो जोवन, आन्धां री आंख्यां पंगू रा पांव गुरु।

रोगी रो स्वास्थ्य, मूक-वाणी, गिरतां उठणै रो दांव गुरु ॥ पृ. ६१

डालिम चरित्र घटना प्रधान है अतः इसे पढ़ते हुए ऐसा महसूस होता है कि हम जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर रहे हैं। प्रसंग वश इसमें डालगणी के शासन से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का भी वर्णन हुआ है इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस कृति का अपना अतिरिक्त मूल्य हो गया है।

परिशिष्ट में लगभग ८७ सांकेतिक घटनाओं एवं विशेष शब्दों पर टिप्पणी का समावेश है। काव्य की मूल भाषा राजस्थानी है लेकिन गुजराती, खड़ी बोली आदि प्रान्तीय भाषाओं का भी यत्र तत्र उपयोग हुआ है। काव्य में प्रयुक्त विशेष राजस्थानी शब्दों का अर्थ भी दे दिया गया है, जिससे पाठकों को सुविधा हो सके। अंतिम परिशिष्ट नामानुक्रम भी महत्त्वपूर्ण है। इससे काव्यग्रंथ में प्रयुक्त सैकड़ों विशिष्ट व्यक्तियों तथा गांवों के नाम का ज्ञान हो जाता है।

तेरापंथ प्रबोध

''आज जिसे मैं एक हृदय से कह रहा हूं, कल उसे अनगिनत हृदय कहेंगे'' खलील जिब्रान की यह उक्ति उनके चरितकाव्य 'तेरापंथ प्रबोध' पर खरी उतरती है। आचार्य भिक्षु एक विलक्षण साधक थे। उन्होंने साधना की जो पगडंडी खोजी, वह धीरे-धीरे राजमार्ग में परिवर्तित हो गई। आचार्य भिक्षु का पूरा जीवन संघर्ष की स्याही से लिखा हुआ है अतः अनेक रोमांचक घटनाएं उनके जीवन के साथ स्वतः जुड़ गयीं। आचार्य श्री तुलसी के मन में आचार्य भिक्षु के प्रति प्रगाढ़ आस्था थी। उनकी आस्था के स्वर विभिन्न अवसरों पर भक्तिगीतों के रूप में उद्गीत होते रहते थे। चरमोत्सव एवं मर्यादामहोत्सव के अवसर पर जब वे किसी नये गीत का संगान करते तो लगता मानो वे भिक्षुमय बन गए हों। आचार्य भिक्षु के सम्पूर्ण जीवन को काव्यमय प्रस्तुति देने के लिए आचार्य श्री तुलसी ने तेरापंथ प्रबोध की रचना की।

तेरापंथ और आचार्य भिक्षु पर्याय हैं। दोनों को एक दूसरे से अलग करके नहीं समझा जा सकता है। इस कृति में आचार्य भिक्षु के जीवन-प्रसंगों के साथ-साथ तेरापंथ का इतिहास और सिद्धान्त भी निबद्ध हो गए

---

१. मां वदना, भूमिका, पृ. २।

हैं। इसकी भाषा इतनी सहज और सरल है कि कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि मानो बातचीत कर रहे हों। उदाहरण के रूप में इन दो पद्यों को रखा जा सकता है—

- दीपांबाई! थांरो बेटो, देख शेर ज्यूं गूंजैला।
  धूजैला थर-थर कायर, ओ कर्म-कटक स्यूं जूंझैला॥ पृ. १२
- अरे हेमड़ा! दीक्षा लेसी, के तूं म्हांरै मर्‌यां पछै,
  या जीते जी बोल्या भिक्षु, कह दे थारै जिसी जचै,
  हो संता! ललचावै यूं म्हांने क्यूं, ऊठसवार हो॥ पृ. २०

राजस्थानी भाषा के सहज और सुकुमार प्रयोग से प्रस्तुत काव्य में एक विलक्षणता उत्पन्न हो गयी है। इस काव्यकृति को निर्मित करने का उद्देश्य था— 'धम्म-जागरणा'। आषाढ़ी पूर्णिमा आदि विशिष्ट अवसरों पर लाखों व्यक्ति इसका संगान करते हैं। अल्पसमय में ही यह गीत इतना लोकप्रिय बन गया कि जन-जन के मुख पर थिरकने लगा। इस ग्रंथ की संपादिका महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी का मंतव्य है कि तेरापंथ प्रबोध आचार्य तुलसी की एक लोकप्रिय कृति है। यह न तो कोई आस्था गीत है और न आख्यान। इसे एक नया प्रयोग कहा जा सकता है। सरल भाषा, सरस शैली, भावों का प्रवाह, श्रृंखलाबद्ध इतिहास, संस्मरणों की मिठास और सैद्धान्तिक सार—कुल मिलाकर यह एक ऐसा रसायन है, जिसका गहरी आस्था के साथ नियमित सेवन किया जाए तो मन के सारे संताप दूर हो सकते हैं।''

यद्यपि अल्पकाल में ही तेरापंथ प्रबोध के अनेक संस्करण निकल चुके हैं पर महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी द्वारा संपादित तेरापंथ प्रबोध अपने आप में परिपूर्ण है। इसमें तीन परिशिष्ट संलग्न हैं। प्रथम परिशिष्ट में गीत में सांकेतिक घटनाओं का विवरण है, दूसरे परिशिष्ट में प्रबोध में सांकेतिक २९ गीतों का संकलन है तथा तीसरे परिशिष्ट में विशेष शब्दों का अर्थ दिया हुआ है।

स्वाभाविक, प्रवाहमय एवं परिमार्जित राजस्थानी भाषा में रचित यह काव्य कृति नि:संदेह रूप में हजारों भक्तों को भक्तिरस में सराबोर करती रहेगी।

नंदन निकुञ्ज

डब्ल्यू. एच. हुड्सन के अनुसार गीतिकाव्य कवि कल्पना की वह उड़ान है, जिसके द्वारा उसकी आत्मा असीम से मिल जाने का प्रयत्न करती है। वह अपनी भावनाओं को वास्तविक जीवन के माध्यम से व्यक्त करने की चेष्टा करता है।' नंदन निकुंज एक ऐसी ही कृति है, जिसमें भक्तिपरक गेय गीतों का उत्कृष्ट संकलन है।

यह ग्रंथ दो परिच्छेदों में बंटा हुआ है। प्रथम 'मर्यादा महोत्सव' उत्कीर्तना में मर्यादा महोत्सव के अवसर पर गाए गीतों का ऐतिहासिक क्रम से संकलन है। मर्यादा-महोत्सव तेरापंथ धर्मसंघ का सबसे बड़ा उत्सव है। आज के अनुशासनहीन और उच्छृंखल युग में हजारों भाई-बहिन और सैकड़ों साधु-साध्वी मर्यादामय और अनुशासित जीवन जीने का संकल्प दोहराते हैं। आचार्य तुलसी इस अवसर पर जो गीत गाते थे, वह इतना प्रेरक और भावपूर्ण होता था कि उसे सुनकर प्रत्येक व्यक्ति आनंद के सागर में निमज्जित हो जाता था। इस परिच्छेद में ५७ गीतों का समाहार है, जो मर्यादा और अनुशासन का महत्त्व उद्‌गीर्ण करते हैं। द्वितीय 'भिक्षु निर्वाण महोत्सव उत्कीर्तन' में आचार्य भिक्षु के स्वर्गारोहण (चरमोत्सव) के अवसर पर गाए गए गीतों का समावेश है। ये गीत भक्तिरस से आप्लावित तो हैं ही, साथ ही आचार्य भिक्षु की जीवन्त साधना की कथा भी प्रस्तुत करते हैं। इसमें भी ५८ गीतों का समाहार है। महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी के शब्दों में इन गीतों में इतिहास है, संस्मरण है, सिद्धान्त है और है श्रद्धा की मीठी सुवास। कुछ गीत ऐसे हैं, जो आस्था की ऋचाएं बनकर जन-जन की जुबान पर थिरक रहे हैं।'' गीतों में अनेक स्थलों पर कवि का प्रबल आत्मविश्वास बोल रहा है, साथ ही अनेक पंक्तियां सहज सूक्त के रूप में प्रकट हो गयी हैं—

- संगठन का दिव्य दीवट, दीप जीवन का जलाऊं।
  साधना के तेज से मैं, ज्योतिमय इसको बनाऊं॥ पृ. ३४
- अधर पर प्याला सुधा का, क्यों पिएं फिर कटुक हाला।
  क्यों कभी स्पर्धा सताए, क्यों अहं का नाग काला॥ पृ. ४५

लोकगीत एवं शास्त्रीय संगीत की विभिन्न रागों में रचित सौ से भी अधिक गीतों के इस संकलन में तेरापंथ धर्मसंघ के इतिहास एवं उसकी

सांस्कृतिक धरोहर की सुरक्षा की गई है। स्वयं कवि इस ग्रंथ के बारे में अपना मंतव्य प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—''इस संकलन में कोई आख्यान नहीं है, उपदेश नहीं है और नहीं है कल्पना-प्रवण अभिव्यक्ति। इसमें है धर्मसंघ के इतिहास की बिखरी हुई झलक और मेरे मन की धरती पर लहलहाती श्रद्धा की पौध।''

इस कृति में समाविष्ट गीतों का यह वैशिष्ट्य है कि साधारण भाव भी इतने मौलिक रूप से प्रस्तुत हैं कि वह नवीन सा प्रतीत होता है। यह कृति निश्चित ही संगायक एवं श्रोता को नंदनवन की हिलोरे देती रहेगी तथा जड़ मानस में भी नयी चेतना झंकृत करती रहेगी।

प्रस्तुत पुस्तक प्रथम संस्करण में 'श्री कालू उपदेश वाटिका' नाम से बृहद् आकार में थी फिर यह दो खंडों में विभक्त हो गई—नंदन-निकुंज और सोमरस। वर्तमान में समय-समय पर गाए जाने वाले 'संघीय गीत' 'उत्कीर्तना गीत' एवं 'औपदेशिक गीत' चार पुस्तकों में निबद्ध हैं—१. नंदन-निकुंज २. सोमरस ३. सुधारस ४. शासन सुषमा।

पानी में मीन पियासी

'सबसे बड़ी और उत्कृष्ट सृष्टि वह है, जो अनुभूति निरपेक्ष कल्पना से निष्पन्न होती है।'' किसी विचारक की यह उक्ति आषाढ़भूति काव्य पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। यह कथानक एक ऐसे आध्यात्मिक धर्मनेता का जीवन चरित्र प्रस्तुत करता है, जिसने स्वयं हजारों व्यक्तियों के आध्यात्मिक मार्ग को प्रशस्त किया, लाखों को अंधकार से प्रकाश की यात्रा करवाई, अनेक नास्तिकों के जीवन में आस्तिकता की ज्योति जलाई पर स्वयं छोटी सी घटना से दिग्मूढ़ हो गए। संदेह के चक्रवात में ऐसे फंसे कि धर्म-कर्म, आत्मा-परमात्मा, इहलोक-परलोक सब कुछ भूल गए।

यह घटना आध्यात्मिक पतन और उत्थान, अवरोह और आरोह का निर्देश तो करती ही है, साथ ही मानसिक उतार-चढ़ाव का भी सुंदर निदर्शन इस कथानक में हुआ है। इस प्रबंधकाव्य में मानव मन की अनुभूतियों और संवेदनाओं का सजीव और सुंदर चित्रण है। भावपूर्ण स्थिति की उद्भावना से यह काव्य उत्कृष्ट कोटि का बन पड़ा है। इसकी कथावस्तु भी अत्यन्त सुघटित और क्षिप्रगति वाली है।

आचार्य श्री तुलसी की काव्य-साधना इतनी सधी हुई थी कि हजारों व्यक्तियों की भीड़ में भी उनका मानस कवित्व के तारों से झंकृत हो जाता था। उन्होंने अनेक चरितकाव्य और मुक्तककाव्य लिखे पर प्रबंधकाव्य की श्रृंखला में आषाढ़भूति (पानी में मीन पियासी) का अपना एक विशिष्ट स्थान है। यह नास्तिकता पर आस्तिकता की विजय का रोचक आख्यान है। उत्तराध्ययन निर्युक्ति में आगत आषाढ़भूति का यह घटना प्रसंग रोचक और रोमांचक ही नहीं, अपितु प्रेरक और बोधदायक भी है। आचार्य तुलसी ने बीज रूप में वर्णित इस कथानक में कल्पना का पुट देकर वटवृक्ष बनाने का प्रयत्न किया है। इसे पढ़कर ऐसा लगता है कि काव्य शक्ति की कमनीयता से यह घटना निहाल हो गयी है, साथ ही घटना की मनोरमता से काव्य का रूप भी निखर उठा है।

संयम से मन विचलित होने के बाद आषाढ़भूति के हृदय में उठने वाले भावों का उद्रेक कवि की भाषा में पठनीय है—

मुझे क्या पता यह सारी ही, थी ढकोसलाबाजी।
अरस-विरस खा अंग सुखाया, ठंडे टुकड़े सूखी भाजी॥
चलते-चलते पैर घिस गए, कंधे भार उठाते।
सारे केश उड़ गए देखो, शिर का लोच कराते॥ पृ. ४९, ५०

आचार्य श्री के वक्तृत्व एवं कवित्व की यह विशेषता है कि वे घटना के दृश्य को श्रोता और पाठक के सम्मुख साक्षात् प्रस्तुत कर देते हैं। चित्रात्मक शैली में प्रस्तुत करने से वह घटना सजीव हो उठती है। श्रावकों के द्वारा पात्र में गहने देखे जाने पर आषाढ़भूति का अनुताप चित्र सा उपस्थित करता है—

फट जाए जो यह धरा, समा मैं जाऊं,
नभ टूट पड़े तो मैं उसमें छिप जाऊं।
लाखों के द्वारा था मैं पूजा जाता।
निर्भय हो कड़वी - मीठी सीख सुनाता,
अब शब्द बोलते भी मैं मन सकुचाऊं॥ पृ. ९५,९६

यह प्रबंध काव्य प्रकरणवक्रता का श्रेष्ठ उदाहरण है। इसमें कवि ने ऐतिहासिक कथा में कुछ परिवर्तन कर उसे सजीव और चमत्कारपूर्ण बना

दिया है। पृथ्वीकाय, अप्काय आदि स्थावर जीवों का मानवीकरण करके उनको आभूषणों से सज्जित करना कवि की मौलिक कल्पना है। काव्य की भाषा सरस, सरल एवं हृदयग्राही है। सुललित शब्द सौष्ठव, अर्थ-सौन्दर्य एवं रस-निष्पत्ति की दृष्टि से पानी में मीन पियासी एक उत्कृष्ट खंडकाव्य है। यह कथानक आज भी नास्तिकता के चौराहे पर भटके व्यक्ति के लिए आलोक-दीप का कार्य करेगा। प्रथम संस्करण में यह काव्य 'आषाढ़भूति' नाम से प्रकाशित हुआ था।

प्रेक्षा-संगान

अंतः सौन्दर्य को प्रकट करने का एक विशेष उपक्रम है—प्रेक्षाध्यान। यह अपने द्वारा अपने को देखने की विशिष्ट ध्यान-पद्धति है। यह अशांत विश्व को शांति की राह बताने का महान् उपक्रम है। प्रेक्षाध्यान की संक्षिप्त जानकारी देते हुए पूज्य गुरुदेव ने इसे काव्यबद्ध करने का संकल्प किया। काव्य को जितनी सुगमता से कंठस्थ किया जा सकता है, उतनी सुगमता गद्य को कंठस्थ करने में नहीं रहती। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर पूज्य गुरुदेव ने 'प्रेक्षासंगान' की संरचना की, जिसमें ३०० पद्यों के माध्यम से प्रेक्षाध्यान की विधि, स्वरूप तथा महत्त्व को स्पष्ट किया है। यद्यपि गुरुदेव के हर काव्य में कवित्व अधिक मुखर होता है लेकिन यह जन-साधारण के लिए लिखी गयी रचना है इसलिए सरल एवं सुबोध शैली में प्रेक्षाध्यान के तत्त्वों का निरूपण करने वाली है।

कृति के अंत में अनुप्रेक्षाओं का हृदयग्राही और मार्मिक विवेचन हुआ है। इसे आत्मसात् करके कोई भी साधक स्वयं को भावनाओं से भावित कर अध्यात्म के शिखर पर आरोहण कर सकता है। अनित्य अनुप्रेक्षा का एक अनुभवपूत पद्य सबकी अनुभूतियों को झंकृत करने वाला है—

खेले थे जिनके साथ, कभी बचपन में,
जिनके खातिर रहता, आकर्षण मन में।
वे भस्मीभूत हो गए, प्रियजन सारे,
अस्थिरता के संकट से, कौन उबारे?॥ ८७

प्रेक्षासंगान का हर शब्द अध्यात्म की अतल गहराई को प्रकट करने वाला है। आत्मबोध की दिशा में प्रस्थित साधकों के लिए यह

कृति कंठ्य ही नहीं, मननीय भी है। इन पद्यों पर प्रश्नोत्तरों के माध्यम से जो व्याख्या लिखी गई, वही 'प्रेक्षा : अनुप्रेक्षा' पुस्तक के रूप में रूपायित हुई है।

'प्रेक्षासंगान' के पद्यों की अनुप्रेक्षा करते समय ऐसा महसूस होता है, मानो गागर में सागर भर दिया गया हो। प्रस्तुत कृति अस्तित्व को समझने का नया दृष्टिकोण प्रस्तुत कर आत्मशक्ति को जगाने के सूत्रों को व्याख्यायित करती है। साथ ही आज के परिवेश में व्याप्त तनाव, अशांति एवं कुण्ठा की सलवटों को दूर करने तथा भौतिक एवं पदार्थवादी मनोवृत्ति के अन्धकार को प्रकाश में रूपान्तरित करने का एक रचनात्मक, सृजनात्मक एवं प्रायोगिक उपक्रम प्रस्तुत करती है।

भरत-मुक्ति

आचार्य श्री तुलसी सहज कवि थे। कविता लिखने के लिए उन्हें कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ा, नैसर्गिक रूप से काव्य का स्रोत उनके मुख से प्रवाहित होता रहा। वे स्वयं इस बात को स्वीकार करते थे— 'कविता की प्रसन्नता का प्रसाद पाने के लिए मैंने कभी प्रयत्न नहीं किया, उसका सहवर्तित्व ही मुझे हितकर लगा। परिणामत: बारह वर्ष की अवस्था में ही मैं कविता लिखने लगा। नीरवता और जनसंकुलता मेरे इस कार्य में न साधक हुई और न बाधक। जैसा नीरवता में कर पाया, वैसा जनसंकुलता में भी।'

आचार्य श्री तुलसी की पहली हिन्दी काव्यकृति 'भरतमुक्ति' है, जिसकी रचना १९५८ में की गयी। इससे पूर्व तेरापंथ धर्मसंघ में हिन्दी भाषा में काव्यों की रचना नहीं हुई थी। सवा मास में लिखी जाने वाली इस कृति की प्रशस्ति में कवि ने इसी तथ्य को काव्यमय अभिव्यक्ति दी है—

> लेकिन हिंदी के काव्यों का कुछ-कुछ अभाव-सा अखर रहा,
> उसकी प्रारम्भिक कलना में, यह भरत मुक्ति है निखर रहा।
> जो अनायास बातों-बातों में, सहजतया सम्पन्न हुआ,
> इस सवा मास के शुभ प्रयास से, मानस परम प्रसन्न हुआ॥
>
> पृ. १८२, १८३

अग्नि परीक्षा कृति की रचना का मुख्य उद्देश्य था— ऋषभपुत्र भरत चक्रवर्ती और बाहुबलि के चरित्र को काव्यशैली में प्रस्तुत करना। इस काव्य

का मुख्य आधार है—संस्कृत भाषा में निबद्ध भरत बाहुबलि महाकाव्य। प्रस्तुत काव्य में आचार्य श्री तुलसी ने प्राचीन एवं नवीन दोनों ही पद्धतियों का यथास्थान प्रयोग किया है। भाषा और शिल्प दोनों ही दृष्टि से यह काव्य विलक्षण बन पड़ा है। देशभक्ति से ओत:प्रोत निम्न गीत हरेक मानव में एक नया जोश और बलिदान की प्रेरणा भरने वाला है—

'रणचण्डी का खाली खप्पर, नर शोणित से भरना है,
मरना है तो युद्धभूमि में, लड़ते-लड़ते मरना है।
दाल न गलने देंगे हरगिज, अन्यायी शैतान की,
हम सबको रक्षा करनी है, मातृभूमि के मान की॥ पृ. ८३

वीररस के साथ-साथ बीभत्स, रौद्र और करुणरस का भी सुन्दर समाहार इस काव्य में हुआ है। युद्धभूमि का वर्णन साक्षात् बीभत्स रस को प्रस्तुत करने वाला है—

चारो ओर रक्त से लथपथ, हैं लाशों के ढ़ेर,
हाय! हो रहा जानबूझकर, आँख मूंद अंधेर।
कहीं हाथ हैं कहीं पांव तो, रुण्ड कहीं हैं मुंड,
समरांगण प्रत्यक्ष हो रहा, देखो रौरव-कुंड॥ पृ. ९१

प्रागैतिहासिक कथानक पर आधारित १३ परिच्छेदों में बंटा हुआ यह खंडकाव्य आद्य तीर्थंकर भगवान् ऋषभ के जीवन-प्रसंगों एवं उनके द्वारा किए गए सांस्कृतिक विकासों की सुंदर प्रस्तुति तो करता ही है, साथ ही सत्ता और वैभव के मद में दो भाइयों के बीच होने वाले टकराव और अप्रत्याशित बदलाव को भी सुंदर प्रस्तुति देता है। भरत और बाहुबलि के बीच होने वाला संघर्ष इस बात का द्योतक है कि संघर्ष और युद्ध मानव की मौलिक प्रवृत्ति है पर उसका रूपान्तरण भी किया जा सकता है। इस काव्य में कवि यही प्रेरणा देना चाहते हैं कि भोग की लिप्सा त्याग के सिंहासन पर आसीन होकर ही पूज्य हो सकती है।

इस काव्य की कथा तो सतयुग की है पर कल्पना के माध्यम से कवि ने अप्रत्यक्ष घटना को भी नव्य, रमणीय और चित्रात्मक बना दिया है। काव्य के माध्यम से की गयी चोटें आज भी समाज और परिवार में प्रचलित बुराइयों पर प्रहार करती हैं।

मानव सभ्यता के आदिकाल में प्रचलित द्वन्द्वयुद्ध के अन्तर्गत मुष्टियुद्ध, दृष्टियुद्ध, वाग्युद्ध और दंडयुद्ध का सजीव वर्णन इस काव्य में हुआ है। बारहवें सर्ग में दंडनीतियों का वर्णन उस समय की उच्चस्तरीय राजनैतिक स्थिति का चित्र प्रस्तुत करता है। प्रकृति की मनोहर छटा एवं षड्ऋतु का वर्णन इस काव्य को महाकाव्य की कोटि में रख देता है। तेरहवां सर्ग सत्ता के उच्च सिंहासन पर आसीन भरत की अनासक्ति एवं केवल ज्ञान के प्रेरक निमित्त को प्रकट करने वाला है।

यह कहा जा सकता है कि इस प्रबन्धकाव्य में कवि ने महलों में होने वाले राजाओं के विलास को नहीं उभारा, बल्कि ऐसे चरित्र को उकेरा है, जो कीचड़ में भी कमलवत् निर्लिप्त है। काव्य में कवि के चरित्र-चित्रण का कौशल दर्शनीय है। प्रत्येक चरित्र अपनी विरल चारित्रिक विशेषताओं के साथ प्रस्तुत हुए हैं। प्रस्तुत प्रबंध काव्य ओज, शौर्य एवं वीरता आदि तत्त्वों से परिपूर्ण है। भाव-सौन्दर्य, वाग्वैदग्ध्य और अभिव्यंजना-कौशल से परिपूर्ण यह काव्य अत्यन्त महनीय और कमनीय बन पड़ा है।

मगन चरित्र

तेरापंथ धर्मसंघ में अनेक ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व हुए हैं, जिन्होंने अपने समर्पण और विशिष्ट कर्तृत्व से सम्पूर्ण संघ पर अपना विशेष प्रभाव छोड़ा है, उन महान व्यक्तित्वों की श्रृंखला में मंत्रीमुनि श्री मगनलालजी का स्थान सर्वोपरि है। उन्होंने अपने विशेष गुणों से मंत्रीपद को प्राप्त किया।

तेरापंथ संघ में आचार्य का स्थान सर्वोपरि है। उनकी दृष्टि और इंगित में ही सब सदस्य अपने जीवन की यात्रा पूरी करते हैं। आचार्य के मुख से निकला एक वाक्य भी शिष्य के लिए धन्यता का कारण बन जाता है। मंत्री मुनि ऐसे भाग्यशाली व्यक्ति थे, जिनका पूरा जीवन-चरित्र गुरु ने स्वयं अपनी लेखनी से उकेरा। पूरी कृति में उनके वैयक्तिक गुणों को जिस ढंग से प्रस्तुत किया गया है, उससे पाठक को तो प्रेरणा मिलती ही है, साथ में गुरु की उदारता के भी दर्शन होते हैं। पुनरुक्ति सौन्दर्य के साथ मंत्री मुनि की विशेषता का आकलन निम्न पंक्तियों में कितने सुन्दर शब्दों में हुआ है—

शासन में है श्रद्धा रा केन्द्र मगनजी,
इतिहास पुरातन पोथी बण्या मगनजी।

अनुभव री खान विचार प्रधान मगनजी,
है स्मरण शक्ति री अनुपन शान मगनजी॥
परिमितभाषी अरु सहज विवेक मगनजी,
ज्यादा सुण कम बोलण में छेक मगनजी।
कृत कोल निभावण में दृढ़ टेक मगनजी,
गुरु-भक्ति साधना में अतिरेक मगनजी॥ पृ. ८४

मंत्री मुनि ने पांच आचार्यों का शासनकाल देखा था, इसी कारण कवि लेखक ने इस चरित काव्य को पांच युगों में विभक्त किया है। छठे विभाग में मंत्री मुनि के मधुर संस्मरणों का समावेश है। यह चरित काव्य घटना प्रधान है, इसलिए अत्यन्त रोचक बन पड़ा है। काव्य के बीच में प्रासंगिक रूप से प्राकृतिक दृश्यों तथा सांस्कृतिक तत्त्वों का भी मनोहारी और सजीव चित्रण है। मेवाड़ का वर्णन पढ़ते ही पाठक की आँखों में वहां का दृश्य सामने सन्मुख हो जाता है।

मोटा-मोटा है शैल जठै, वृक्षावलियां स्यूं हर्‌या भर्‌या,
नदियां नालां रो पार नहीं, तालाब जमीं स्यूं जड़्या पड़्या।
मोसम-मोसम में लड़ालुम्ब, बै खेत खड़्या लहरावै है,
कोयलिया कूजै कुहुक-कुहुक, पथिकां रो स्वागत गावै है॥ पृ. १

मगनचरित्र में कवि ने छंद की दृष्टि से नया प्रयोग किया है। संस्कृत के शार्दूलविक्रीडित आदि छंदों में हिंदी के पद्यों की रचना की है। उपजाति छंद में निबद्ध निम्न पद्य द्रष्टव्य है—

महादयालू मघवा महामुनी, कालू निहार्‌यो शुभ मींट में ही।
ईं स्यूं बड़ी बात न शिष्य रै हुवै, सदा निहारै गुरुदेव री दया॥ पृ. १६

मगन चरित्र की अभिव्यञ्जना शैली अत्यन्त प्रौढ़ है। शब्द-योजना ध्वनिपूर्ण और श्रुतिमधुर है।

मां वदना

किसी जीवनवृत्त को काव्य में रूपायित करके उसे सजीव बना देना कवि की विशिष्ट प्रतिभा की अभिव्यक्ति है। 'मां वदना' एक ऐसा ही सजीव जीवनवृत्त है, जिसे खंड काव्य के रूप में राजस्थानी भाषा में निबद्ध किया गया है। इसमें कवि ने एक सहज, सरल एवं निश्छल व्यक्तित्व को काव्यमय

आकृति प्रदान की है, जो उनकी संसारपक्षीया मां हैं। यह इतिहास की विरल घटना है कि किसी पुत्र ने स्वयं अपने हाथों से अपनी मां को दीक्षित किया हो। कृति के संदर्भ में कवि का कहना है कि मां वदना की अपार्थिव विशेषताओं को संजोकर रखने की दृष्टि से मैंने कलम हाथ में ली और वे स्वयं कागज पर उतरती गईं।[१]

इस कृति में मातुश्री वदनाजी के जीवन का एक सम्पूर्ण एवं बहुआयामी रेखाचित्र खींचा गया है। मातृउपकार की सहज अभिव्यक्ति भी स्थान-स्थान पर प्रकट हुई है। उदाहरण के रूप में निम्न पद्य की छटा दर्शनीय है—

'माता री उपकार याद कर, लेकर भिक्षापात्र,
वदना कर स्यूं पहली भिक्षा, बहरी पुलकित गात्र,
जाणक 'तुलसी' जननी ऋण री, पहली किश्त चुकाई॥ पृ. १९

इस चरित काव्य में सीधी-सादी भाषा में घटनाओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। कथोपकथन बहुत चुस्त, मार्मिक एवं बेजोड़ हैं। उन्हें पढ़कर ऐसा लगता है मानों वे घटना प्रसंग सामने सजीव हो उठे हों। दक्षिण यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय मां वदना के साथ हुए वार्तालाप का एक बिम्ब लावणी छंद में द्रष्टव्य है—

वदनाजी! ल्यो म्हैं तो अब दिक्खण जावां,
दिक्खण कै हुवै? सुदूर देश बतलावां।
कित्तोक दूर है? अब लौं गयो न कोई,
क्यूं आप पधारो किसी कमाई खोई?॥ पृ. ४२

यह काव्य कृति भाषा, साधना एवं स्मृति को सदा ताजगी एवं प्रेरणा देकर लोगों को मां के महत्त्व का दिग्दर्शन कराती रहेगी। ग्रंथ का सम्पादन महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी के कुशल हाथों से हुआ है।

माणक महिमा

काव्य एक ऐसी धारा है, जिसमें अवगाहन करने वाला बाह्य परिस्थितियों को भूलकर लोकोत्तर आनंद में डुबकी लगाता है इसलिए इसे ब्रह्मानंद सहोदर भी कहा गया है। आचार्य श्री तुलसी केवल कवयिता ही नहीं, संगायक भी थे। उन्होंने अपने पूर्वजों के ऋण को केवल काव्य-रचना करके ही नहीं उतारा वरन् जनता को भी बार-बार उसका रसास्वादन कराया।

उनका काव्य भारतीय संस्कृति का संवाहक है पर उसमें रूढिवादिता नहीं है।

"माणक महिमा" एक ऐसा काव्यमय जीवन चरित्र है, जिसमें जीवन के विविध परिवेशों का इतना मार्मिक, सरस एवं संवेदन युक्त चित्र खींचा गया है कि पढ़ते ही पाठक का मन भावविभोर हो उठता है। काव्य में समाविष्ट गीतों में केवल लयात्मकता ही नहीं, अद्‌भुत गतिशीलता भी है।

माणकगणी तेरापंथ धर्मसंघ के छठे आचार्य थे। बचपन में ही उनकी प्रतिभा विलक्षण थी। जयाचार्य द्वारा की गयी उज्ज्वल भविष्यवाणी उनकी विलक्षणता का निदर्शन है पर नियतियोग से उनका आचार्यकाल बहुत स्वल्प रहा। इस स्वल्पकाल में भी उन्होंने संघीय-विकास के अनेक नए आयाम खोले, जो भावी आचार्यों के लिए प्रेरणास्रोत बन गए।

राजस्थानी भाषा का काव्य होने पर भी इसमें प्राकृत एवं संस्कृत का प्रचुर प्रयोग किया है। आगम वाक्यों से युक्त निम्न उदाहरण दर्शनीय हैं—

एवं देवाणुप्पिया गंतव्वं सुजयं।
चिट्ठियव्वं निसियव्वं भुंजियव्वमभयं॥ पृ. ४३

आचार्य तुलसी का आत्मबल और साहस विलक्षण था। विनम्रता के साथ अपने पूर्वज आचार्य के दायित्वनिर्वाह की कमी की ओर निर्देश करने में भी वे नहीं चूके। यह भी कवि का उक्त वैचित्र्य है कि उपालम्भ भी अपने मुख से नहीं पर स्वर्गस्थ मघवागणी के मुख से दिलवाया है—

स्वर्गां में मघवा महाराज, देसी ओलम्भा दिल दाझ।
भले देखल्यो जातां पाण, मालिक क्यूं कर रखसी काण? पृ. ८८
थांरै तो होती असकेल, म्हांरै महाभारत रो खेल।
दो खांधां बहणो आसान, लाखां की मुट्ठी में जान॥ पृ. ८८

इस काव्य में जीवन-चरित के साथ-साथ नीति, लोक-व्यवहार तथा संस्मरण आदि का समावेश कवि की पैनी दृष्टि एवं सूक्ष्मदर्शिता के द्योतक हैं। काव्य की भाषा में सहज प्रवाह है। कवयिता की भाषा भावों और काल्पनिक चित्रों के साथ-साथ चलती है इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने स्वयं अपनी आंखों से वे घटनाएं देखी हों। जीवन-चरित के रूप में यह काव्य आने वाले राजस्थानी कवियों के लिए भी आदर्श बन सकेगा।

कृति का रचनाकाल वि. सं. २०१३ और रचना-स्थान सरदारशहर है। महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी ने अत्यन्त परिश्रम के साथ इसका सम्पादन

करके जनता तक पहुंचाने का प्रयत्न किया है। उनके श्रम की अभिव्यक्ति कवि की पंक्तियों में पठनीय है—

अति कियो परिश्रम 'कनकप्रभा' है कृति में कृति की परछाई। पृ. २३

मैं तिरूं म्हांरी नाव तिरै

सरस काव्य का आधार जीवन होता है। जीवन अनंत, अगम्य और अबोध होता है पर कवि की काल्पनिक अनुभूति में रंगकर वह सुबोध, सुगम्य और सरस हो जाता है। आचार्य तुलसी ने काव्य के माध्यम से जीवन और जगत् की नाना अनुभूति-तंरगों में डुबकी लगाकर सत्य-मुक्ता को खोजने का महान् उपक्रम किया। इसके लिए कहीं उन्होंने अतीत का सहारा लिया तो कहीं महान् चरित्रों को माध्यम बनाया। कहीं युगीन परिस्थितियों का चित्रण किया तो कहीं भक्तिरस में डूबकर अध्यात्म की सरिता बहाई।

आचार्य तुलसी ने अनेक जैन पौराणिक कथानकों को काव्य-रस से अनुप्राणित किया है। ''मैं तिरूं म्हांरी नाव तिरै'' पुस्तक के तीनों आख्यान उन्होंने अतीत के इतिहास से लिए हैं। अतीत की कथाएं मन में पौरुष भरती हैं, प्राचीन संस्कृति के प्रति एक विशेष गौरव पैदा करती हैं, गिरते मनोबल को उठाने की प्रेरणा देती हैं तथा परिस्थितियों से जूझने की अटूट शक्ति प्रदान करती हैं। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर कवि ने ऐतिहासिक आख्यानों को काव्यमय प्रस्तुति दी है। इन आख्यानों में उन्होंने अतीत की गोद में वर्तमान को संवारा है, जिससे भविष्य भी उसमें स्वत: प्रकाशित हो गया है। ये आख्यान भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष को प्रस्तुति देने वाले हैं। इन काव्यमय आख्यानों में भावों की विविधता और व्यापकता ही नहीं, शैलीगत सौन्दर्य भी द्रष्टव्य है।

आख्यानों के अतिरिक्त इस पुस्तक में संसार की नश्वरता को प्रकट करने वाला एक गीत है, जिसमें अनेक लोगों के उदाहरण द्वारा संसार की क्षणभंगुरता का साक्षात् चित्र सा प्रस्तुत कर दिया है। अंत में कवि ने अपने शासन काल में होने वाले ऐतिहासिक और अभूतपूर्व उपक्रम योगक्षेम वर्ष का इतिहास सुरक्षित किया है, जो 'शासन सुषमा' के नाम से प्रस्तुत है।

इस पुस्तक के नामकरण के बारे में स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य तुलसी लिखते हैं—''इस पुस्तक का नाम रखा है—'मैं तिरूं म्हांरी नाव तिरै'। पांच रचनाओं में एक आख्यायिका अतिमुक्तक का नाम यही है। यह नाम एक

कृति के साथ जुड़कर भी परोक्ष रूप में सब कृतियों के साथ जुड़ सकता है। अतिमुक्तक ने पानी में पात्र तैराकर उसका प्रतीकन नाव के रूप में किया। मूलतः उसकी भावना संसार-समुद्र को तैरने की थी। इसी भावना से प्रेरित होकर थावच्चापुत्र और मेघकुमार ने गृहत्याग किया था। योगक्षेम वर्ष का आयोजन भी युगीन समस्याओं का पार पाने के लिए हुआ था। कुल मिलाकर यह नाम सार्थक प्रतीत हुआ।'' यहां पुस्तक में गुम्फित आख्यानों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है—

काव्य सदैव कल्पना की मधुरिमा से संसार को अनिंद्य सुषमा प्रदान करता रहता है। उसमें भी श्रेष्ठ कवि का साहचर्य पाकर कविता सप्राण हो उठती है। 'नवयुग रो नचिकेता' आख्यान में थावच्चापुत्र का मार्मिक कथा प्रसंग है, जो संसार की वास्तविक स्थिति का उद्‌घाटन करता है। जिस घर में जन्म की शहनाइयां बज रही थीं, वहीं क्षण भर में मौत की करुण चीत्कार सुनाई देने लगी। संयोग और वियोग का चित्रण प्रस्तुत करने वाला यह छोटा सा कथानक कवि की कल्पना की तूलिका से रंगकर बहुत कमनीय बन गया है। इसमें मां और बेटे का संवाद साक्षात् चित्र सा प्रस्तुत कर देता है। प्रस्तुत कृति में कवि ने मार्मिक स्थलों का बखूबी चित्रण किया है, यही कारण है कि पाठक कहीं भी नीरसता का अनुभव नहीं करता। वाणी की मिठास एवं कड़वाहट को प्रकट करने में कवि का उक्ति वैचित्र्य नयी प्रेरणा देने वाला है—

मीठा बोली हीरां तोली, कोयल घणी सुहावै,
कांव कांव कर अरे! कागला, किंयां कान खा ज्यावै॥ पृ. ७

बुढ़ापे का एक चित्र कवि की तूलिका से सजीव बन पड़ा है—

इन्द्र्यां हीण, खीण तनशक्ती, हाथ पैर सब कांपै।
चलतां श्वास फूल ज्यावै, हाल्यां सो सीनो हांपै॥ पृ. १२

यह काव्य उन लोगों के लिए प्रेरणादीप बनेगा, जो अनुकूल संयोग में प्रसन्न एवं वियोग में विषण्ण बन जाते हैं। विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध इस आख्यान की भाषा सहज, सरल एवं अलंकृत है। प्रसंगवश अनेक सांस्कृतिक तत्त्वों का समावेश कवि के प्रतिभा-चातुर्य का परिचायक है। इस काव्य में मानव-मन के उन्नयन को लक्ष्य में रखकर उत्तम भावनाओं का समावेश हुआ है। हर तनावग्रस्त एवं अशांत मानव को यह आख्यान शांति का संगीत सुना

सकेगा, ऐसा विश्वास है।

दूसरे आख्यान 'छद्मस्थ री छोल' में एक ऐसे राजकुमार का कथानक है, जो दीक्षित होकर प्रथम रात्रि में ही संयम में अस्थिर हो गया। साधुत्व छोड़कर घर जाने के लिए उत्कंठित हो गया। भगवान महावीर ने चित्रपट की भांति पूर्वजन्म की स्मृति कराकर उसे पुनः संयम के मार्ग पर सुस्थिर किया। मेघकुमार का पूरा कथानक रोचक ही नहीं, प्रेरक भी है। कवि ने अपने प्रतिभा-वैशिष्ट्य से घटना को साक्षात् बिम्ब के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। संयम में अस्थिर होने वाले साधकों को यह आख्यान नई प्रेरणा देता रहेगा।

मेघकुमार के संन्यास की भावना जागृत होने पर राजस्थानी लोकगीत की लय में बोलचाल की भाषा में मां बेटे का जो संवाद कवि ने प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त रोचक और मार्मिक है। मां की ममता एवं बेटे की दृढ़ता का जो बिम्ब कवि ने अपनी कल्पना शक्ति से प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त हृद्य एवं मनोरम बन पड़ा है। मां की उत्कृष्ट इच्छा से मेघकुमार एक दिन के लिए राजा बना है। चौपई छंद में राज्याभिषेक का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

हुयो राज्य अभिषेक उमंगे,
हय गय रथ पलटण रस रंगे।
सध्वज छत्र चमर बींजीजै,
जय जय धुन जन-जन मन रीझै॥ पृ. ४६

मेघकुमार की दीक्षा के समय ममता के वशीभूत होकर मेघकुमार की मां अरिष्टनेमि से विरोधी शैली में अपने पुत्र के बारे में कहती है—

कुसुम सुकोमल इण रो गात।
वज्र कठिन संजम विख्यात॥
क्यूं चिंता मैं करूं, स्वयं शरणागत रक्षक आप।
योगक्षेमी आप, आप मां बापां रा मां बाप॥ पृ. ४७,४८

इस कृति का वैशिष्ट्य है संक्षिप्तता और संगीतात्मकता। उचित पदविन्यास और अलंकार भी आख्यान को गरिमामय रूप प्रदान करते हैं।

तीसरा 'मैं तिरूं म्हांरी नाव तिरै' आख्यान भगवान महावीर के समय घटी घटना का साक्षात् चित्र प्रस्तुत करता है। अभिव्यक्ति की अकृत्रिमता ने इस काव्य को उच्चकोटि का बना दिया है। एक बाल साधु

१. सुधारस ; स्वकथ्य, पृ. १।

की बालसुलभ क्रीड़ा के दृश्य को कवि ने बहुत सहज अभिव्यक्ति दी है। साथ ही महावीर के भविष्य-दर्शन का प्रस्तुतीकरण भी हर व्यक्ति में अनंत संभावनाओं को प्रकट करने वाला है। यह कथानक जीवन्त प्रेरणा देता है कि आज जो सामान्य है, वह कल विशिष्ट बन सकता है, निर्बल सबल बन सकता है तथा भक्त भगवान बन सकता है। यद्यपि यह इतिहास की छोटी सी घटना है पर साहित्यिक रूप देने से इसमें एक नयी चेतना, नया स्पंदन तथा गतिमयता पैदा हो गई है।

यह लघु काव्य कृति इतनी हृदयस्पर्शिनी एवं प्रभावशालिनी बन गई है कि बाल, प्रौढ़ एवं वृद्ध सभी अपने-अपने कोण से इससे कुछ प्रेरणा ग्रहण कर सकेंगे। राजस्थानी में निबद्ध होने पर भी इसकी भाषा विशुद्ध एवं परिमार्जित है। पदविन्यास, अर्थगाम्भीर्य एवं स्वाभाविक बोलचाल आदि गुणों से युक्त भाषा के कारण यह काव्य रमणीय बन गया है।

आचार्य तुलसी की काव्य कृतियों में एक महत्त्वपूर्ण कृति है—शासन-सुषमा। योगक्षेम वर्ष में आचार्य श्री ने एक ऐसी ऊर्ध्वारोहण की यात्रा प्रारम्भ की, जिसकी ऊंचाई को माप पाना सामान्य व्यक्ति के वश की बात नहीं थी। योगक्षेम वर्ष के उपलक्ष्य में रचित गीत में भी उन्होंने इसी संकल्प को दोहराया हैं—'आगे अब चरण बढ़ेंगे, हिमगिरी के शिखर चढ़ेंगे'। आचार्य श्री ने यह हिमालयी चढ़ाई अकेले नहीं, अपितु एक बहुत बड़े समुदाय के साथ की, यह इतिहास की एक आश्चर्यपूर्ण घटना है। पूरे साल सैंकड़ों व्यक्तियों को निर्मित करने हेतु अनेक उपक्रम चले, प्रवचनों एवं आगमवाचना का क्रम भी बहुत मर्मस्पर्शी और प्रेरक था। अनेक आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक विषयों पर चर्चाएं चलीं।

आचारांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक एवं ठाणं जैसे आगमों की आधुनिक प्रस्तुति भी इस वर्ष का एक आकर्षक कार्यक्रम था। योगक्षेम वर्ष की आयोजना में मुख्य प्रेरक बनीं हैं—साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी। इस बात की प्रस्तुति इस काव्य में बहुत सरल शैली में व्यक्त हुई है। महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा जी के प्रति कवि के मन में अगाध वात्सल्य था। उसका कारण था उनके विनम्रता, सौम्यता, सहनशीलता और गंभीरता आदि गुण। कवि ने अलग-अलग स्थलों पर उनके इन गुणों को अनेक रूपों में प्रस्तुति दी है—

- महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा आगै-आगै।
  साकार विनय की जंगम प्रतिमा लागै॥ पृ. ११९
- महाश्रमणी मनहरती, भरती मधुरी सी मुस्कान।
  कर जोड़्यां शिर मोड्यां देती, सारां नै सम्मान॥ पृ. १३५
- मुनियां री दुनियां में महाश्रमणी हित मान बढ़्यो है। पृ. १३५

कुल मिलाकर यह काव्य कृति तेरापंथ के इस महायज्ञ की युग-युगों तक स्मृति कराती रहेगी तथा जन-जन के होंठों पर इसकी कुछ पंक्तियां गूंजती रहेंगी, ऐसा विश्वास है।''

सम्पूर्ण कृति में भाषा-शैली का अपूर्व वैभव बिखरा पड़ा है। हृदयस्पर्शी भाषा में मार्मिक भावों का व्यक्तीकरण पाठक और श्रोता को आंनद से आप्लावित कर देता है। पुस्तक के बारे में महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा का मंतव्य है कि प्रस्तुत पुस्तक आकार में छोटी हैं पर वाच्यार्थ में बहुत बड़ी हैं। एक एक पद्य या पंक्ति का तात्पर्य समझाया जाए तो प्रत्येक कृति अपने आपमें एक स्वतंत्र ग्रंथ बन सकती है।

व्यवहार बोध

'समस्त उत्तम साहित्य का रहस्य है— सद्विवेक। सद्विवेक के बिना उत्तम साहित्य की रचना नहीं हो सकती।' पाश्चात्त्य विचारक होरेस की ये पंक्तियां आचार्य तुलसी द्वारा रचित व्यवहार बोध पर पूर्णतया चरितार्थ होती हैं। यह कृति व्यक्ति के विवेक चक्षु का उद्घाटन कर उसे अध्यात्म का व्यावहारिक प्रशिक्षण देती है। प्रत्येक पद्य में कवि का उक्ति-वैचित्र्य, गहन अनुभूति एवं वाग्वैदग्ध्य मन को आकृष्ट करने वाला है।

व्यवहार बोध की रचना के प्रयोजन के बारे में पूज्य गुरुदेव का अभिमत पठनीय है—''विज्ञान ने सुख-सुविधाओं के अंतहीन साधन जुटा दिए हैं फिर भी ये सब व्यर्थ हैं, यदि वह जीने की कला नहीं जानता। प्राथमिक रूप में जीवन की कला का बोध देने के लिए मैंने एक छोटी-सी कृति व्यवहार-बोध की रचना की। व्यवहार एक आईना है, जिसमें समूचा जीवन प्रतिबिम्बित होता है। व्यवहार-बोध को पढ़ें, अपने आपको देखें, भीतर झांकें, स्वयं को बदलें और जीने की कला सीखें।''

इस लघु कृति में कवि ने अपने जीवन के अनुभवों का निचोड़ भर दिया

है। अनुभूति का योग होने से इस काव्य में सहजता और प्रभान्विति का योग हो गया है। सहनशीलता सफल जीवन का सबसे बड़ा आध्यात्मिक मूल्य है पर आज सर्वत्र इसकी कमी नजर आ रही है। क्यों सहा जाए, दूसरों को कैसे सहा जाए, इसकी मनोवैज्ञानिक प्रस्तुति प्रस्तुत काव्य में द्रष्टव्य है—

मेरी हरकत सहे सहज वह, मैं भी उसकी क्यों न सहूं।
साथी रूप निभाना है, तो सहिष्णुता के साथ रहूं॥ पृ. ११७

साधु होकर भी यदि व्यक्ति संग्रह करता है तो समाज को अपरिग्रह की प्रेरणा कौन देगा? साधु को इसी सत्य का प्रतिबोध देने वाली निम्न पंक्तियां सरस एवं सरल होते हुए भी कितनी वेधक बन पड़ी हैं —

असंग्रही मुनि सतियां, संग्रहवृत्ति बढ़े क्यों?
अनपेक्षित आशंका का, सिर भूत चढ़े क्यों?
यदि लघुभूतविहारी भारी बन जाएगा,
फिर मस्ती का जीवन कैसे जी पाएगा? पृ. १२४

प्रस्तुत कृति में अनेक जीवन्त घटना प्रसंगों एवं रूपकों के माध्यम से भी आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा दी गयी है। आचार्य महाप्रज्ञ को प्रेरक आदर्श मानने की बात कहते हुए कवि का कहना है—

महाप्रज्ञ को सम्मुख रख शम सम श्रम साधें,
दर्शन ज्ञान चरित्र त्रिवेणी को आराधें। पृ. १३१

आचार्य तुलसी ने अनेक स्थानों की अनुभूति और चिन्तन को पचाकर इसकी रचना की इसलिए इसका प्रत्येक पद्य सहज संवेद्य एवं पारदर्शी बन गया है। प्रत्येक पद्य अध्यात्म और व्यवहार की नई प्रेरणा से चेतना को स्पंदित और तरंगित करने वाला है। १०१ पद्यों की यह लघु कृति समाज के हर वर्ग के दृष्टिकोण का परिमार्जन करने में अहं भूमिका निभाएगी, ऐसा विश्वास है। इस कृति का संकलन 'सम्बोध' नामक पुस्तक में है।

शासन सुषमा

सफल नेतृत्व वही होता है, जो अपने इष्ट एवं पूर्वजों के गुणों को स्मृति में रखे तथा उन गुणों को दूसरों में संप्रेषित करे। पुस्तक के स्वकथ्य में आचार्य तुलसी कहते हैं—''गाने में मुझे आनंद मिलता है। वह आनंद शतगुणित हो जाता है, जब किसी के गुणोत्कीर्तन का अवसर मिलता है।'' 'शासन

सुषमा' आचार्य तुलसी द्वारा निर्मित ऐसे गीतों का संकलन है, जिसमें देव, गुरु, धर्म, तेरापंथ शासन में होने वाली साध्वी प्रमुखाओं तथा विशिष्ट व्यक्तियों के गुणों का उत्कीर्तन किया गया है। अर्हत् उत्कीर्तना, आचार्य उत्कीर्तना, धर्म उत्कीर्तना, साध्वीप्रमुखा उत्कीर्तना, मातृ गुणोत्कीर्तना एवं गुणोत्कीर्तना— इन छह खंडों में विभक्त इस ग्रंथ में अनेक राग-रागिनियों में लगभग १२१ गीतों का समाहार है। कवि ने लोकगीत, शास्त्रीय संगीत की रागिनियों का अधिक प्रयोग किया है।

'धर्म उत्कीर्तना' के सभी गीत धर्म की महत्ता और उसमें रमण करने की प्रेरणा से गुम्फित हैं। कवि ने इन गीतों में धर्म के क्रांतिकारी स्वरूप को अभिव्यक्त किया है—

वर्ण जाति का भेद न जिसमें,
लिंग रंग का छेद न जिसमें,
निर्धन धनिक विभेद न जिसमें॥ पृ. ९५

पुस्तक के संदर्भ में अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हुए महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी कहती हैं— 'शासन-सुषमा' एक ऐसी कृति है ,जो अपने रचनाकार की आस्था और प्रमोद भावना को एक साथ उजागर करने वाली है। इसके एक-एक गीत इतने भावपूर्ण हैं, जिनको पढ़ने और सुनने वाला सतत प्रवहमान गीतों के निर्झर के सामीप्य का अनुभव कर सकेगा और यह सोचकर विस्मित हुए बिना नहीं रहेगा कि एक व्यक्ति अपने जीवन में इतने व्यक्तियों की विशेषताओं का इतने रूपों में मूल्यांकन कैसे कर सकता है? मंत्री मुनि मगनलालजी की चारित्रिक विशेषताओं को विविध उपमाओं से उपमित करते हुए कवि कहते हैं—

मधु सो मधुर, कुटक सो कड़वो, कोमल ज्यूं अकतूल।
वज्र कठोर, समय लख बरत्यो, सुगुरु दृष्टि अनुकूल॥ पृ. १५७

ज्येष्ठ भ्राता चम्पालालजी स्वामी के वैशिष्ट्य को उजागर करने में कवि का विशेषण-चयन द्रष्टव्य है—

शिशु सो सहज, जोश युवकां सो, दानां सो दाठीक।
सेवाभावी, सरलस्वभावी, निर्मायी, निर्भीक॥
म्हांरो उपकारी, अधिकारी, संरक्षक, सहचार।

ज्येष्ठ सहोदर, श्रेष्ठ सहायक, कोमल विमल विचार॥ पृ. १५९

कहा जा सकता है कि अध्यात्म और संघनिष्ठा के परिप्रेक्ष्य में सीधी सरल भाषा में लिखे गए ये भावपूर्ण गीत गायक और श्रोता दोनों को तन्मय बनाने वाले हैं।

श्रावक सम्बोध

काव्य यथार्थ में आत्मा की मनोरम संकल्पात्मक अनुभूति है। यह अनुभूति कवि की कल्पना का साहचर्य पाकर सजीव हो उठती है। एक समझदार, संवेदनशील और संस्कारवान् श्रावक समाज का निर्माण करने के उद्देश्य से लिखी गयी श्रावक सम्बोध कृति गृहस्थ जीवन की सम्यग् आचार संहिता और युगीन समस्याओं का समाधान देने वाली है। इस कृति में श्रावक की चर्या, उपासना, बारह व्रत तथा अनेक सैद्धान्तिक तत्त्वों का विवेचन है। अंत में ऐतिहासिक एवं वार्तमानिक कुछ श्रावक श्राविकाओं की विरल विशेषताओं का उल्लेख है, जिससे सामान्य व्यक्ति प्रेरणा ग्रहण कर अपने जीवन को विशिष्ट बना सके। प्रस्तुत पुस्तक के दोनों खण्डों में भारतीय संस्कृति के अनेक उज्ज्वल पक्ष चित्रित हुए हैं। आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में ''श्रावक सम्बोध'' की रचना का एक विशिष्ट मूल्य हैं। वर्तमान में बारह व्रतों, प्रतिमाओं तथा समग्र श्रावकाचार के प्रति उदासीनता की जो मनोवृत्ति पनप रही हैं, उसे बदलने में यह ग्रंथ प्राणवायु का काम करेगा।''

कृति के प्रथम खण्ड में संदृब्ध जैन जीवन शैली का सम्पूर्ण गीत इक्कीसवीं सदी में स्वस्थ जीवन शैली की कलात्मक प्रस्तुति करने वाला है। अहिंसा और इच्छा-परिमाण को स्पष्ट करते हुए कवि श्रावकों को नया प्रकाश देते हैं—

- बचें अनावश्यक हिंसा से, अनाक्रमण की वृत्ति,
  आत्महनन या भ्रूण-हनन की, क्यों हो क्रूर प्रवृत्ति,
  विकसित हो कारुण्य चेतना, अपनी सजग सहेली॥ पृ. ११७
- इच्छा का परिमाण, भोग संग्रह का सीमाकरणं,
  हिंसाजन्य प्रसाधन सामग्री का अस्वीकरणं,
  अर्जन साथ विसर्जन हो, यह अनासक्ति अलबेली॥ पृ. १२१

श्रावक जीवन में व्यक्तिगत संयम की प्रेरणा और पर्यावरण सुरक्षा के प्रति सजग दृष्टिकोण निम्न पंक्तियों में पठनीय है—

खाद्यों की सीमा, वस्त्रों का परिसीमन,
पानी बिजली का हो न, अपव्यय धीमन्!
यात्रा-परिमाण मौन, प्रतिदिन स्वाध्यायी,
हर रोज विसर्जन, अनासक्ति वरदायी॥ पृ. १०४

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी के निवेदन पर जीवन के सान्ध्य काल में लिखी गयी यह अंतिम कृति केवल शब्दपुंज ही नहीं अपितु मोहाविष्ट गृहस्थ को अध्यात्म के पथ पर बढ़ने की प्रेरणा देने वाली है। इसमें भावों की प्रौढता, विचारों की गंभीरता एवं कल्पना की अभिव्यञ्जना पदे पदे द्रष्टव्य है। आचार्य महाप्रज्ञजी ने इस कृति पर विस्तृत भाष्य लिखा है। उनके शब्दों में प्रस्तुत ग्रंथ आकार में छोटा किंतु प्रकार में बड़ा है। यह कृश शरीर में स्थूल आत्मा के निवास जैसा लग रहा है।''

शैक्षशिक्षा

गुरुदेव श्री तुलसी एक जागरूक अनुशास्ता थे। अपने अनुयायियों को आध्यात्मिक प्रेरणाएं देने के लिए वे नई-नई विधाओं में साहित्य-सर्जन करते रहते थे। उन्होंने लगभग १००० व्यक्तियों को अपने हाथों से संन्यास के मार्ग पर प्रस्थित किया अतः नवदीक्षित साधु-साध्वियों को संयम, अनुशासन, सहिष्णुता आदि जीवनमूल्यों की प्रेरणा देने हेतु उनकी एक महत्त्वपूर्ण संकलित कृति है—शैक्षशिक्षा।

सोलह अध्यायों में विभक्त इस कृति में आगम तथा आगमेतर अनेक ग्रंथों के पद्यों का सानुवाद उद्धरण है। इसमें जयाचार्य द्वारा रचित महत्त्वपूर्ण गेय गीतों का समावेश भी है।

इस ग्रंथ में अनेक विषयों से सम्बन्धित जानकारी एक ही स्थान पर मिल जाती है, जैसे—स्वाध्याय से सम्बन्धित प्रकरण में स्वाध्याय, उसके भेद, स्वाध्याय का महत्त्व आदि अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का समाहार हो गया है। यह अप्रकाशित कृति साधु जीवन को तेजस्वी बनाने एवं मानवीय मूल्यों को संचरित करने में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

संस्कार बोध

जीवन को परिमार्जित करने की प्रक्रिया का नाम संस्कार है। आचार्यश्री तुलसी का मानना है कि जब तक संस्कारों को शुद्ध, परिमार्जित और सुंदर बनाने का प्रयास नहीं किया जाएगा, तब तक समाज एवं देश की सर्वांगीण उन्नति असम्भव है। मूल संस्कारों का हनन व्यक्ति या समाज के लिए ही नहीं, अपितु पूरी मानव जाति के लिए खतरा है। जीवन में उच्च संस्कारों का वपन हो, इस उद्देश्य से इस काव्यकृति की रचना हुई है। संस्कारों की सुंदरता, सुघड़ता एवं परिपक्वता आचार एवं विचार को प्रभावित करती है, इसलिए इसमें अनेक ऐतिहासिक उदाहरणों द्वारा अनुशासन एवं सत्संस्कारों को बनाए रखने की प्रेरणा दी गयी है। इस लघुकाय कृति में सत्यं शिवं सुंदरं की अभिव्यक्ति हुई है।

इस कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रत्येक दोहे में ऐसी भाषा का प्रयोग हुआ है, जो साधारण बोलचाल के अन्तर्गत आती है, जैसे—

प्राणार्पण से भी मिलें, तो लें शुभ संस्कार।
इससे बढ़कर है नहीं, जीवन का आधार॥
संस्कारों की सम्पदा, है उत्कृष्ट अमूल्य।
धन वैभव संसार का, रखता है क्या मूल्य॥ पृ. ३८

धर्मनेता होने के कारण सरल एवं सुबोध तरीके से अपने अनुयायियों को संस्कारित जीवन जीने का दिशादर्शन इस कृति में गुंफित है। इसमें जीवन की छोटी से छोटी आवश्यकता एवं व्यवहार को कलात्मक ढंग से पूरा करने का दिशानिर्देश है, जैसे—

भोजन वेला में रहें, जितना संभव मौन।
सरस-अरस में उलझकर, दोष लगाए कौन?॥ पृ. ३८
सुनें, पढ़ें, बोलें, लिखें, ऐसे वृत्त चरित्र।
मिले सहज ही प्रेरणा, जीवन बने पवित्र॥ पृ ३९
आकस्मिक जो कान में, आए नूतन बात।
करें नहीं चर्चा कहीं, परखें निज औकात॥ पृ. ४०

इस लघुकृति में ७२ पद्य हैं, जो विविध छंदों में निबद्ध हैं। मुख्य रूप से दोहे छंद का प्रयोग अधिक हुआ है। आचार्य तुलसी ने इस कृति के माध्यम से अनुभूतियों को संवेद्य बनाकर पाठक और श्रोता को भी संवेदनशील

बनाया है। यह लघु कृति जीवन की जड़ता को तोड़कर चैतन्य की धारा को प्रवाहित करती है तथा मानसिक प्रदूषण को दूर कर सामुदायिक जीवन में सुख, शांति और आनंदप्रद जीवन जीने के सूत्रों का उल्लेख करती है। जीवन-व्यवहार से जुड़ी अनेक विसंगतियों को दूर कर प्रेरक जीवन जीने की प्रेरणा देने वाली वह कृति सभी के लिए कंठग्राह्य है, जिससे इसका बार-बार पारायण करके प्रेरणा ग्रहण की जा सके। यह लघु कृति 'सम्बोध' नामक प्रस्तुत में संगृहीत है।

सम्बोध

पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी के जीवन में अध्यात्म और व्यवहार की ज्योति सतत विकीर्ण होती रहती थी। उन्होंने जो कुछ पढ़ा, समझा, जीया और अनुभव किया, उसे साहित्य में उतार दिया। उनका प्रायः लेखन दूसरों को सम्बोध एवं प्रेरणा देने के लिए हुआ। आचार हमारे व्यवहार को प्रभावित करता है और उसी के अनुसार हमारे संस्कार बन जाते हैं। आचार्य तुलसी ने इन तीनों का बोध देने के लिए आचारबोध, व्यवहारबोध और संस्कारबोध— इन तीन लघुकृतियों की रचना की। सम्बोध में इन तीनों कृतियों का संकलन है। आचार्य महाप्रज्ञजी के शब्दों में इन लघुकाय ग्रंथों में साठ वर्ष के अनुभव एवं ज्ञान-राशि का समुच्चय हुआ है।'' स्वतंत्र रूप से इन कृतियों का परिचय अनुक्रम के क्रम में दिया हुआ है।

सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति

संयम, शील, शालीनता, समर्पण और सहिष्णुता की सुरक्षा -पंक्तियों में रहकर ही नारी गौरवशाली इतिहास का सृजन कर सकती है। 'आचार्य श्री तुलसी की यह प्रेरक उक्ति साध्वीप्रमुखा महासती लाडांजी के जीवन पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। उन्होंने लाडनूं के खटेड़ कुल में जन्म लिया। विवाह के एक वर्ष पश्चात् ही वैधव्य का पहाड़ टूट पड़ा। दुःख की इन घड़ियों ने उन्हें संसार से विरक्त बना दिया। अपने छोटे भाई तुलसी के साथ उन्होंने कालूगणी के चरणों में संन्यास का पथ स्वीकार कर लिया। अधिक पढ़ी-लिखी न होने पर भी सहज सहिष्णुता, गंभीरता और उदारता आदि गुणों से शीघ्र ही उन्होंने साध्वी समाज में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। आचार्य तुलसी ने महासती झमकूजी के बाद उनको साध्वीप्रमुखा के पद पर मनोनीत

किया। शरीर में भयंकर वेदना होने पर भी उन्होंने अतुल मनोबल और सहनशीलता का परिचय दिया। आचार्य तुलसी ने उनको 'सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति' सम्बोधन से सम्बोधित किया। कवि ने इसी सम्बोधन को ही कृति का नाम दे दिया है।

आदि मंगल के रूप में तीर्थंकर, गणधर या आचार्यों की स्तुति की जाती है लेकिन इस ग्रंथ की एक विशेषता है कि कवि ने स्त्री तीर्थंकर मल्लिनाथ के बाद विशिष्ट नारियों का स्मरण किया है, जैसे-मरुदेवा, राजीमती, चंदनबाला आदि।

चरित नायिका लाडनूं से संबंधित है अत: कवि ने लाडनूं के इतिहास का चित्र सा प्रस्तुत कर दिया है। लाडनूं में पत्थर की खाने हैं, इस बात को विशुद्ध राजस्थानी भाषा में प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

आसपास रा गांव बस्या है, आं पट्‌यां आं खण्डा स्यूं,
तांगा ताबड़तोड़ बहै, ऊंटां री ओल अखण्डां स्यूं।
पाणी-पथरां रो निर्यात,
शहर लाडनूं रो विख्यात,
कद स्यूं चाल्यो कद तक चलसी, कुण ओ प्रवा चलायो है॥ पृ. २

लाडनूं नगर की हवेलियों एवं गलियों को सानुप्रासिक भाषा में बांधते हुए कवि का काव्य-कौशल दर्शनीय है—

ऊंची हेल्यां नई नवेल्यां, देहल्यां खेलै अठखेल्यां,
सखी-सहेल्यां रंगरेल्यां में, सुलझावै आड्यां-प्हेल्यां।
पिछली पट्यां घट्टी-मट्टी,
पिण सहु बाजै आधी पट्टी,
और मुहल्ला खुल्ला, संकड़ो-सो बाजार बसायो है॥ सहिष्णुता पृ. ३

प्रसंगवश कवि ने इसमें दीक्षा के अवसर पर गाए जाने वाले वैरागियों के लोकगीतों का भी सुंदर समाहार कर दिया है। ये लोकगीत आज भी दीक्षा के अवसर पर राजस्थानी महिलाओं के द्वारा गाए जाते हैं।

राजस्थानी भाषा में लिखे इस चरितकाव्य की भाषा भावानुगामिनी, सुसंगठित और अलंकृत है।

सुधारस

आचार्य तुलसी द्वारा रचित काव्य ग्रंथ

(प्रयुक्त आधार ग्रंथ सूची)

अग्नि—अग्नि परीक्षा, आदर्श साहित्य संघ, द्वि. सं. १९७२।

अणु—अणुव्रत गीत, आदर्श साहित्य संघ, द्वि. सं. १९९७।

अध्यात्म पदावली, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. २००१।

अर्हत्वाणी, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. २००१।

आचार बोध, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. १९९८।

आत्मा—आत्मा के आसपास, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. २००१।

कालू—कालूयशोविलास भा. १,२, आदर्श साहित्य संघ, द्वि. सं. २००४।

चंदन—चंदन की चुटकी भली, आदर्श साहित्य संघ, तृ. सं. १९८९।

डालिम—डालिम चरित्र, आदर्श साहित्य संघ , द्वि. सं. १९८५।

तेरापंथ—तेरापंथ प्रबोध, आदर्श साहित्य संघ, चतुर्थ सं. १९९७।

नंदन—नंदन निकुञ्ज, आदर्श साहित्य संघ, छट्ठा सं. १९९५।

पानी—पानी में मीन पियासी, आदर्श साहित्य संघ, प्र सं. १९८०।

प्रेक्षा-संगान, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. २००१।

भरत—भरत-मुक्ति, आदर्श साहित्य संघ, द्वि. सं. १९८०।

मगन—मगन चरित्र, आदर्श साहित्य संघ, द्वि. सं. १९८५।

मां—मां वदना, आदर्श साहित्य संघ, १९९१।

माणक—माणक महिमा, आदर्श साहित्य संघ, द्वि. सं. १९८५।

मैं तिरूं—मैं तिरूं म्हांरी नाव तिरै, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. १९९५।

व्यवहार बोध, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. १९९६।

शासन—शासन सुषमा, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. १९९५।

शैक्ष शिक्षा (अप्रकाशित)।

श्रावक—श्रावक संबोध, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. १९९८।

संस्कार बोध, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. १९९६।

सम्बोध—सम्बोध, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. १९९६।

सहिष्णुता—सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति, आदर्श साहित्य संघ प्र. सं. २००३।

सुधा—सुधारस, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. १९९५।

सेवा—सेवाभावी, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. १९९३।

सोम—सोमरस, आदर्श साहित्य संघ, प्र. सं. २०००।

प्रयुक्त सहायक ग्रंथ सूची

अज्ञेय : कवि और काव्य, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. २००१।

अणुव्रत: गति-प्रगति, आचार्य तुलसी, आदर्श साहित्य संघ, चतुर्थ सं. १९९७।

अमृत संदेश, आचार्य तुलसी, आदर्श साहित्य संघ।

अशोक के फूल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, दशम सं. १९७०।

अस्मिता के लिए, विद्यानिवास मिश्र।

आचार्य तुलसी की साहित्य-संपदा, समणी कुसुमप्रज्ञा, जैन विश्व भारती, प्र.सं. १९९४।

आचार्य तुलसी के पत्र भा.-३, सं. साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, आ. साहित्य संघ, प्र.सं. १९९९।

आचार्य तुलसी के संदेश भा.१-३, सं. साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, आ. साहित्य संघ, प्र.सं. २००१।

आचार्य तुलसी : विचार के वातायन में, सं. साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, आ. साहित्य संघ, प्र.सं. १९९८।

आचार्य तुलसी साहित्य : एक पर्यवेक्षण, समणी कुसुमप्रज्ञा, जैन विश्व भारती, प्र.सं. १९९४।

आदिवचन, सं. साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, आदर्श साहित्य संघ, चूरू, प्र.सं. १९९८।

आधुनिक कवि, सुमित्रानंदन पंत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पंचम सं. १९५३।

आधुनिक निबंध, रामप्रसाद किचलू, राजकिशोर प्रकाशन, द्वादश सं. १९७४।

आधुनिक मनोविज्ञान और सूरकाव्य, डॉ. कमला आत्रेय।

आधुनिक साहित्य, आ. नंद दुलारे वाजपेयी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६९।

आधुनिक हिन्दी कविता, विश्वनाथप्रसाद तिवारी, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. १९७७।

आधुनिक हिन्दी कविता में गीति तत्त्व, डॉ. सच्चिदानन्द तिवारी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्र.सं. १९८४।

आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब-विधान, केदारनाथ सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र.सं. १९७२।

आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, डॉ. कैलाशनाथ वाजपेयी, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली १९६३।

आधुनिक हिन्दी कविता में सौन्दर्य और प्रेमभावना, डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।

आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक विधान, डॉ. नित्यानन्द शर्मा।
आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास, आशा किशोर, विश्वविद्यालय प्रकाशन, बनारस, प्र.सं. १९७१।
आयारो, वा. प्र. आचार्य तुलसी, सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती, लाडनूं प्र.सं. २०३१।
आस्था के चरण, डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, प्र.सं. १९८०।
एक बूंद : एक सागर, आचार्य तुलसी, सं. समणी कुसुमप्रज्ञा, जैन विश्व भारती, द्वि.सं. २००६।
कबीर, सं. विजयेन्द्र स्नातक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, अष्टम सं. १९९८।
कबीर के काव्य में प्रतीक-योजना।
कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. आर्याप्रसाद त्रिपाठी, किताबघर, दिल्ली, प्र.सं. १९८२।
कवि का सत्य, डॉ. भगीरथ मिश्र।
कवि की दृष्टि, भारत भूषण अग्रवाल, द मैकमिलन कम्पनी, प्र.सं. १९७८।
कवि की दृष्टि में उसकी सृष्टि, गोपाल कृष्ण कोल।
कविता का समाजशास्त्र, डॉ. प्रेमशंकर।
कविता के नए प्रतिमान, नामवरसिंह, राजकमल प्रकाशन तृ.सं. १९८२।
कवित्रय समाज दर्शन।
कवि दिनकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, एस. के पद्मावती, जवाहर पुस्तकालय, प्र.सं. १९६७।
कवि श्रीशिवमंगलसिंह सुमन और उनका काव्य, डॉ. के.जी.कदम, साहित्य भवन, इलाहाबाद, प्र.सं. १९९५।
कालिदास और उसकी काव्यकला, वागीश्वर विद्यालंकार, मोतीलाल बनारसीदास, द्वि.सं. १९८८।
काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, षष्ठ सं. १९६९।
काव्य की भूमिका, दिनकर, उदयाचल, पटना।
काव्य दर्पण, पं. रामदहिन मिश्र, ग्रंथमाला कार्यालय, पटना, द्वि.सं. १९८३।
काव्य बिम्ब, डॉ नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र.सं. १९७१।

काव्य में अप्रस्तुत योजना, रामदहिन मिश्र, ग्रंथमाला कार्यालय, पटना, १९५६।
काव्य में सौन्दर्य और उदात्त तत्त्व, शिवबालक राय, वसुमती प्रकाशन, प्र.सं. १९६८।
काव्यानुवाद की समस्याएं, सं. डॉ. भोलानाथ तिवारी, महेन्द्र चतुर्वेदी, शब्दकार, दिल्ली, प्र.सं. १९८०।
कुछ विचार, प्रेमचन्द्र, सरस्वती प्रेस, बनारस, चतुर्थ सं. १९४९।
क्रांतिकारी कवि निराला, डॉ. बच्चनसिंह, नंद किशोर एण्ड संस, बनारस, तृ.सं. २१००।
क्षणदा, महादेवी वर्मा, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, वि. सं. २०१३।
खुशबू के शिलालेख, दिनकर।
घर का रास्ता, आचार्य तुलसी, जैन विश्व भारती, प्र.सं. १९९३।
चक्रवाल, रामधारीसिंह दिनकर, उदयाचल, पटना, प्र.सं. १९५६।
चिंतामणि भा. १, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, प्रयाग, १९६५।
छायावाद का पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानन्दन पंत, लोकभारती प्रकाशन, प्र.सं. १९६५।
जो सुख में सुमिरन करे, आचार्य तुलसी, आदर्श साहित्य संघ, प्र.सं. १९९४।
ज्योति जले : मुक्ति मिले, आचार्य तुलसी, जैन विश्व भारती, १९९९।
ढोला मारु रा दोहा।
तुलसी, सं. उदयभानुसिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, षष्ठ सं. १९९३।
तुलसी काव्य में प्रकृति, भूगोल तथा खगोल, डॉ. जनक खन्ना, सूर्य भारती, दिल्ली, प्र.सं. १९९८।
दादा कामरेड, दो शब्द।
दिनकर काव्य में युगचेतना, डॉ. पुष्पा ठक्कर, अरविन्द प्रकाशन, प्र.सं. १९८६।
दिनकर की काव्य भाषा, डॉ. यतीन्द्र तिवारी, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र.सं. १९७६।
दिनकर की डायरी, रामधारीसिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन, पटना, प्र.सं. १९७३।
दिनकर की साहित्य-दृष्टि, सुशीला मिश्रा, अनुपम प्रकाशन, प्र.सं. १९८३।
दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता, डॉ. जयसिंह 'नीरद', अनुराधा, १०५ फूलबाग कॉलोनी, प्र.सं. १९८४।
दिनकर : सृष्टि और दृष्टि, डॉ. छोटेलाल दीक्षित, अभिलाषा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. १९७८।
नई कविता की भूमिका, डॉ. प्रेमशंकर, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र.सं. १९८८।

नई समीक्षा : नए संदर्भ, डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, १९७०।
नयी कविता : स्वरूप और समस्याएं, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९६८।
नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, गजानन माघव 'मुक्ति बोध', दिल्ली, प्र.सं. १९७१।
निराला : आत्महंता आस्था, डॉ. दूधनाथसिंह, नीलाभ प्रकाशन, प्र.सं. १९८२।
निराला का काव्य, जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र.सं. १९७४।
निराला काव्य में मानव-मूल्य और दर्शन, डॉ देवेन्द्र नाथ त्रिवेदी, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, प्र.सं. १९९२।
निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना, जगदीशचन्द्र, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. १९७९।
निराला की काव्य-भाषा, वीणा शर्मा, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, प्र.सं. १९८९।
निराला के काव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, डॉ. वेदव्रत शर्मा, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, १९७९।
पल्लव, सुमित्रानन्दन पंत, राजकमल प्रकाशन, १९६७।
पाश्चात्त्य काव्य शास्त्र, डॉ. विजयपाल सिंह, जयभारती प्रकाशन, प्र.सं. १९९९।
पाश्चात्त्य काव्यशास्त्र : इतिहास सिद्धान्त और वाद, डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्र.सं. १९९६।
पाश्चात्त्य काव्यशास्त्र की परम्परा, डॉ. सावित्री सिन्हा, दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन।
पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ।
प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त।
प्रेमचन्द, नरेन्द्र कोहली, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. १९९१।
बिहारी : एक नव्य बोध, गुरुदेव नारायण, बालोदय प्रकाशन, लखनऊ, प्र.सं. १९७९।
बीति ताहि विसारि दे, आचार्य तुलसी, आदर्श साहित्य संघ, तृ.सं. १९९५।
बुनी हुई रस्सी, भवानी प्रसाद मिश्र, नेताजी नगर, प्र.सं. १९७१।
भवानीप्रसाद मिश्र की काव्यभाषा का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, डॉ. नीलम कालड़ा, अनुराग प्रकाशन, प्र.सं. १९९५।
भारतीय एवं पाश्चात्त्य काव्य शास्त्र, डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९८४।
भारतीय काव्यशास्त्र के नए क्षितिज, राममूर्ति त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
भारतीय काव्य सिद्धांत, आचार्य काका कालेलकर, डॉ. नगेन्द्र, लोकभारती प्रकाशन,प्र.सं. १९६९।

भारतीय भाषाशास्त्रीय चिन्तन, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्र.सं. १९७६।
भारतीय संस्कृति की रूपरेखा।
मनहंसा मोती चुगे, आचार्य तुलसी, आदर्श साहित्य संघ, प्र.सं. १९९२।
महादेवी के काव्य में लालित्य-विधान, डॉ. मनोरमा शर्मा, साहित्य संस्थान, कानपुर, १९७६।
महादेवी वर्मा की काव्य-साधना, प्रो. कृष्णदेव शर्मा, प्रेम प्रकाशन।
मिट्टी की ओर, दिनकर, उदयाचल प्रकाशन, पटना, प्र.सं. १९४६।
मिथक और साहित्य, डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, १९८०।
मेरा जीवन : मेरा दर्शन भा. १-३, आचार्य तुलसी, आ. सा. संघ, प्र.सं. १९९९।
मेरा जीवन : मेरा दर्शन, भा. ६-८ आचार्य तुलसी, आ. सा. संघ, द्वि.सं. २००४।
रहस्यवाद, राममूर्ति त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. १९६६।
रहीम काव्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, डॉ. मंजु शर्मा, साहित्य रत्नालय, कानपुर, प्र.सं. १९८९।
राजपथ की खोज, आचार्य तुलसी, आदर्श साहित्य संघ, चूरू, द्वि.सं. १९८८।
रीतिकाल का मूल्यांकन।
रीति और शैली, नंद दुलारे वाजपेयी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. १९७९।
रीतिकाव्य की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र।
रीतिविज्ञान, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९७३।
विचार-विमर्श, महावीर प्रसाद द्विवेदी।
व्यावहारिक शैली विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, शब्दकार, दिल्ली।
शेष: नि:शेष, रामधारीसिंह दिनकर, पूर्वोदय प्रकाशन, प्र.सं. १९८५।
शैलीविज्ञान, डा. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र.सं. १९७९।
शैलीविज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, शब्दकार, दिल्ली, १९७७।
संदेश, आचार्य तुलसी, आदर्श साहित्य संघ, चूरू।
संरचनात्मक शैली विज्ञान, डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, १९७९।
संस्कृति के चार अध्याय, रामधारीसिंह दिनकर, पटना, पंचम सं. १९७०।
समकालीन कविता और विचार कविता, डॉ. रमेश कुंतल मेघ।
समीक्षा के आयाम, डॉ. प्रतापसिंह चौहान, साहित्य भारती प्रकाशन।

समीक्षा सिद्धान्त, डॉ. रामप्रकाश, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, सं. १९७३।
साहित्य और समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया, सं. सच्चिदानंद वात्स्यायन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र.सं. १९८५।
साहित्य और समीक्षा, बाबू गुलाबराय, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, सं. १९५६।
साहित्य और सामाजिक परिवर्तन, सं. बद्रीनारायण, अनंतराम मिश्रा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. १९९७।
साहित्य का मर्म, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।
साहित्य का मूल्यांकन, प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र.सं. १९७६।
साहित्य का श्रेय और प्रेय, जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, द्वि.सं. १९६१।
साहित्य के त्रिकोण, डॉ. नरेन्द्र भानावत, अनुपम, जयपुर, प्र.सं. १९६८।
साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, प्र.सं. १९८९।
साहित्य-दर्पण, पं. विश्वनाथ, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९७९।
साहित्य विवेचन की भूमिका, आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी।
साहित्य समालोचना, डॉ. रामकुमार वर्मा, दिल्ली भवन, इलाहाबाद, वि.सं. २०१४।
साहित्य सहचर।
साहित्य-साधना और समाज, डॉ. भगीरथ मिश्र।
साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, महादेवी वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, द्वि.सं. १९६६।
साहित्यालोचन, डॉ. श्यामसुन्दर दास, इंडियन प्रेस, प्रयाग, वि.सं. २०१४।
साहित्यिक निबंध, गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां सं. १९९६।
सिद्धान्त और अध्ययन, बाबू गुलाबराय, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, सं. १९५४।
सुमित्रानन्दन पंत की भाषा, ऊषा दीक्षित।
सूर की सौन्दर्य चेतना, एस. टी. नरसिंहाचारी राधाकृष्ण, प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. १९९३।
सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व : डा. विमलकुमार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. १९६७
हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावलि-७, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९८१।

हिन्दी गद्य रत्नावली।
हिन्दी छंद प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री, राजपाल एण्ड सन्स।
हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, राजपाल एण्ड संस, २००३।
हिन्दी साहित्य की भूमिका, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी।
हिन्दी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड बनारस, तृ.सं. १९८५।
हिन्दी साहित्य में विभिन्न वाद, रामजीलाल बघौतिया, विनोद पुस्तक मन्दिर, प्र.सं. १९५८।

अंग्रेजी-साहित्य

ए हिस्ट्री ऑफ मार्डन डिटिसिज्म
कल्चर एण्ड एनार्की
थियोरी ऑफ लिटरेचर
लोसाई क्रिटीकाई, भाषण शास्त्र पुस्तक ३
शेक्सपीयर्स इमेजरी एण्ड व्हाट इट टेल्स अस
स्टुअर्स चेज द प्रापर स्टडी ऑफ मेनकाइंड

पत्रिकाएं

अणुव्रत
आलोचना
जागरण
जैन भारती
धर्मयुग
नई कविता
मधुमती
राष्ट्र भारती
विज्ञप्ति
समलोचक
सम्पर्क सम्मेलन
सरस्वती

महात्मा गांधी कहा करते थे कि मधुर संगीत आत्मा के ताप को शांत कर देता है।'' यह उक्ति पूज्य गुरुदेव के गीत संकलन सुधारस पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। पुस्तक के स्वकथ्य में पूज्य गुरुदेव ने इसी भावना को प्रस्तुति दी है —''संगीत शांति का सर्जक है। सभा में शोरगुल होता हो, वहां संगीत की स्वर-लहरी से सन्नाटा छा जाता है। संगीत में शक्ति है, उससे वातावरण को बदला जा सकता है। अधिक गर्मी या अधिक सर्दी के समय संगीत में डूबने वाला गर्मी और सर्दी की अनुभूतियां खो देता है। संगीत में तुष्टि है, कभी कोई व्यक्ति एकाकीपन या वीरानेपन का अहसास करता हो, उसे संगीत गाने या सुनने का अवसर उपलब्ध हो जाए तो उसे अपने आसपास रौनक दिखाई देने लगती है। संगीत विस्मृति है, किसी त्रासदी को भोगने वाला व्यक्ति शांत या वैराग्य रस से अनुप्राणित संगीत सुनकर एक बार तो उस त्रासदी को भूल जाता है। संगीत साधना है, ध्यान की साधना से एकाग्रता आती है। उसी प्रकार संगीत का साधक गाते-गाते बहुत गहराई में उतर जाता है।''[१]

सुधारस दो चषकों में विभक्त है। प्रथम चषक के ४० गीतों में अनित्य, अशरण आदि भावनाओं का भावपूर्ण चित्रण हुआ है। द्वितीय चषक के २७ गीतों में १८ प्रवचन माता तथा कुछ स्फुट गीतों का संकलन है। प्रत्येक गीत अध्यात्म और शांत रस से सराबोर हैं तथा गायक और श्रोता को अतिरिक्त शांति, शक्ति, तुष्टि और साधना की अनुभूति कराने वाले हैं। पूज्य गुरुदेव प्रवचन में जब इन गीतों का संगान करते थे तो एक समां सा बंध जाता था और सहज रूप से अतीन्द्रिय लोक की यात्रा हो जाती थी। कवि अपना अनुभव लिखते हुए पुस्तक के स्वकथ्य में कहते हैं—'छह दशक के अनुभवों के आधार पर मेरी यह मान्यता बन गई है कि वह प्रवचन अधूरा है, जिसमें संगीत नहीं होता।' आचार्य तुलसी का आध्यात्मिक ओज सहज, सरल भाषा में इन गीतों में प्रकट हुआ है। सांसारिक प्राणियों की धन के प्रति आसक्ति पुनरुक्ति सौन्दर्य के साथ पठनीय है—

बिन मतलब ही प्राणी ढोवै, म्हांरापण रो भार।
हा! धन हा! धन धुन में कित्ता, बणग्या मौत शिकार॥ सुधा पृ. १६

वैभव की अनित्यता का चित्र राजस्थानी भाषा में द्रष्टव्य है—

पहले दिन सुर-सुख री आभा।
दूजै दिन नहीं तन पर गाभा॥ पृ. १५

आत्मस्थ व्यक्तियों के लिए प्रतिदिन स्वाध्याय गीत के रूप में इन गीतों का विशेष महत्त्व है। हर गीत नए भावोत्कर्ष के साथ नई स्वरलहरी में निबद्ध है। यह कृति आत्मा के तारों को झंकृत कर अतीन्द्रिय और अलौकिक आनंद की अनुभूति देने वाली है।

सेवाभावी

कीट्स का कहना है कि सुन्दर वस्तु सदैव आह्लाद की वर्षा करती है।'' सेवाभावी एक ऐसा ही सुंदर चरित काव्य है, इसे जब कभी पढ़ा जाए, आनन्द की अनुभूति होगी।

आचार्य तुलसी की काव्यधारा अनेक रूपों में प्रवाहित हुई—खंड-काव्य, मुक्तक काव्य, महाकाव्य आदि। लेकिन चरित-साहित्य पर उनकी लेखनी अबाध गति से चली है। उन्होंने सबसे पहला जीवन-चरित लिखा—कालूयशोविलास। इसे महाकाव्य की कोटि में भी रखा जा सकता है।

'सेवाभावी' काव्य उनकी काव्यात्मक प्रतिभा का उत्कृष्ट नमूना है। इसके चरित नायक मुनि श्री चंपालालजी उनके ज्येष्ठ सहोदर हैं। इस काव्य में अनेक छंदों एवं लयों में मुनि श्री चंपालालजी की अनेक चारित्रिक विशेषताओं को घटनाओं एवं प्रसंगों के माध्यम से उभारा गया है।

सम्पूर्ण ग्रंथ में घटना प्रसंग इतने सजीव और संवादात्मक हैं कि श्रोता और पाठक के समक्ष चित्र सा उपस्थित हो जाता है। जब भाईजी महाराज को कालूगणी ने प्रथम बार अग्रगण्य बनकर विचरण करने का आदेश दिया तो उन्होंने कालूगणी को निवेदन किया—

बा बड़ी परखदा, कुण व्याख्यान सुणावै,
मन्नै पूरो नोकार न कहणो आवै।
गुरुवर! मैं जा के करस्यूं बठै बताओ,
भणिया-गुणियां संतां नै आप पठावो॥ पृ. २२

कालूगणी ने उन्हें समझाते हुए उत्तर दिया—

सुण स्वयं कोटवाली तो गाम सिखावै,

हुंसियारी बाहर गयां बिना नहिं आवै।
हो जाओ त्यार नहीं करणी निबलाई,
सेवाभावी री बात सुणो सुखदाई॥ पृ. २३

चरित नायक में गुण कहीं थोपे नहीं गए अपितु सहज रूप में उभर कर आए हैं। मुनि श्री चम्पालालजी में सेवा का विशिष्ट गुण था अतः इसी चारित्रिक विशेषता के आधार पर ग्रंथ का नाम 'सेवाभावी' रख दिया गया है। पूरे ग्रंथ में विविध रागिनियों में भी अनेक घटनाओं का गुम्फन हुआ है। सेवाभावीजी से जुड़े सैकड़ों व्यक्तियों का इतिहास इसमें सुरक्षित हो गया है। चरित के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ-साथ परिमार्जित, आनुप्रासिक तथा सजीव भाषा से इस काव्य में चमत्कार की सृष्टि हो गयी है।

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी का सम्पादन-कौशल पदे पदे दर्शनीय है। ग्रंथ के संदर्भ में उनका अपना अभिमत है कि 'सेवाभावी' में आचार्य तुलसी ने श्रम के स्वस्तिक रचे हैं, समर्पण की ऋचाएं पढ़ी हैं और बौद्धिकता के बियावान में भावात्मक संबंधों की सुषमा बिखेरी है।''

सोमरस

'मनोव्यथा जब असह्य और अपार हो जाती है, जब उसे कहीं त्राण नहीं मिलता, जब वह रुदन और क्रन्दन की गोद में भी आश्रय नहीं पाती तो वह संगीत के चरणों में जा गिरती है।' प्रेमचंद की यह अनुभूति गुरुदेव तुलसी द्वारा गेय गीतों में पूर्णतः चरितार्थ होती है। 'सोमरस' गुरुदेव श्री तुलसी द्वारा रचित अध्यात्म रस से भरपूर गीतों का संकलन है, जिसकी मिठास श्रोताओं के पौर-पौर में एक पुलकन पैदा कर देती है। इसका प्रत्येक गीत किसी एक विशेष भाव को व्यक्त करने वाला है।

कलश में निहित सोमरस का पान करने के लिए चषक की आवश्यकता रहती है अतः इसके साथ दो चषकों की संयोजना है। प्रथम चषक भक्तिपूर्ण गीतों एवं स्तुतियों से भरा हुआ है। इसमें स्वर्ग-नरक, अर्हत्, गुरु आदि विषयों पर गीतों की संरचना हुई है। द्वितीय चषक में काम, क्रोध आदि अठारह पापों का सुंदर एवं लयात्मक रूपांकन हुआ है। सम्पूर्ण कृति ७३ गीतों को अपने भीतर समेटे हुए है। प्रथम चषक में ३८ तथा द्वितीय चषक में ३५ गीतों का संकलन है। इन गीतों में व्यक्ति-व्यक्ति की अंतस्थ भावनाओं

को जागृत करने की अद्‌भुत शक्ति है। शरीर और चेतन के नश्वर सम्बन्ध को उदाहरणों द्वारा समझाते हुए कवि कहते हैं—

चीवर ज्यूं जीरण रे, तज मानव नव नव पहरै।
त्यूं चेतन प्राक्तन रे, तज नूतन तन हित धावै॥
ज्यूं बाट बटाऊ रे, लै बीच सराय बसेरो।
त्यूं चेतन तन में रे, आखिर नव वास बसावै॥
दिनकर नै देखो रे, हो उदय शाम का आंथै।
त्यूं दुनिया सारी रे, कुण कुण कब स्थिरता पावै॥ पृ. ३२

राजस्थानी भाषा में रचित सोमरस के प्राय: गीत प्रवचन एवं व्याख्यान में प्रयोग करने हेतु रचे गए हैं अत: इन गीतों में अनेक कथानकों के संकेत भी दिए गए हैं। संपादिका महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा श्री कनकप्रभाजी ने उन कथानक रूढ़ियों का स्पष्टीकरण परिशिष्ट में संलग्न कर दिया है, जिससे इसकी महत्ता द्विगुणित हो गयी है।

कवि आत्मा का चित्रकार है। डिजरायली की यह सूक्ति सोमरस के प्रत्येक गीत में पदे-पदे देखी जा सकती है। प्रत्येक गीत एक नयी भावभंगिमा के साथ प्रस्तुत है। पूज्य गुरुदेव ने इसी विश्वास के साथ इन गीतों की रचना की है कि ये गीत लोगों की वैराग्य-वृद्धि एवं आध्यात्मिक चेतना के जागरण में निमित्त बनेंगे।

आचार्य तुलसी ने इस कृति में जीवन के सनातन सत्यों को व्यावहारिक प्रस्तुति दी है। इन गीतों में कहीं रहस्यात्मकता की पुट है तो कहीं दार्शनिकता की, कहीं मनोवृत्तियों का सूक्ष्म चित्रण है तो कहीं संसार और आत्मा के स्वरूप का यथार्थ निदर्शन है। कवि ने जीवन की क्षणभंगुरता को अनेक रूपकों से रूपायित किया है। यह गीत संकलन हर अध्यात्म प्रेमी व्यक्ति को सोमरस का पान कराकर अमरता की अनुभूति कराता रहेगा, ऐसा विश्वास है।

प्रथम संस्करण में यह पुस्तक 'श्रद्धेय के प्रति' नाम से प्रकाशित थी। बृहत्काय होने के कारण सोमरस पुस्तक भी अग्रिम संस्करणों में 'सोमरस' और 'सुधारस' इन दो भागों में प्रकाशित हो गयी है।

संस्कृत साहित्य

हिन्दी और राजस्थानी की भांति आचार्य तुलसी ने संस्कृत भाषा में भी अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया है। संस्कृत भाषा में उन्होंने कुछ ग्रंथ नीति एवं उपदेश प्रधान तथा कुछ ग्रंथ सूत्रात्मक शैली में लिखे हैं। सूत्रात्मक ग्रंथ लिखने में वे ही लेखक सफल हो सकते हैं, जो भावों को भलीभांति पचाकर उसके अनावश्यक विस्तार को कम करने में प्रवीण हों। आचार्य तुलसी ने जैन दर्शन, जैन न्याय और जैन योग जैसे दुरूह विषयों पर तीन सूत्रात्मक ग्रंथ लिखे। जैन सिद्धान्त दीपिका, श्रीभिक्षुन्याय कर्णिका एवं मनोनुशासनम्—ये तीनों ग्रंथ उनकी तत्त्वाभिनिवेशिनी प्रतिभा को प्रकट करने वाले हैं। इन ग्रंथों में संदृब्ध परिभाषाओं में सूत्रात्मक संक्षिप्तता, सौष्ठव और सुसम्बद्धता का सौन्दर्य देखने को मिलता है। यद्यपि संस्कृत के कुछ ग्रंथों को काव्य-साहित्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता लेकिन एक विशेष उद्देश्य के साथ संस्कृत साहित्य का परिचय इस ग्रंथ के साथ योजित किया है। हिंदी गद्य साहित्य की सभी पुस्तकों का परिचय 'आचार्य तुलसी साहित्य: एक पर्यवेक्षण' तथा 'आचार्य तुलसी की साहित्य संपदा' पुस्तक में निर्दिष्ट है अत: संस्कृत साहित्य के लिए अलग पुस्तक न लिखकर संक्षिप्त में इसी पुस्तक में परिचय दिया जा रहा है।

कर्त्तव्य षट्त्रिंशिका

यह कृति एक दिन में निर्मित की गयी मात्र ३६ श्लोकों का संग्रह है। साधु-साध्वियों को आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक प्रेरणा देने के लिए इसकी रचना की गयी है। सर्व सामान्य को भी यह करणीय और अकरणीय का बोध देने में सक्षम है। इस लघु कृति को सुभाषित के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। प्रत्येक पद्य स्वतंत्र रूप से गागर में सागर की उपमा को चरितार्थ करते हैं। कृति के प्रारम्भ में ही मनुष्य और पशु की भेदरेखा स्पष्ट करते हुए कवि कहते हैं—

कृत्याकृत्यविवेको हि, नृपश्वोरन्तरं विदुः।

आचार्य तुलसी को इस बात में पूरा विश्वास था कि उपदेश तब दिया जाए, जब वह बात अपने जीवन में हो। बिना आचरण के दिया गया उपदेश हास्यास्पद और विडम्बना का कारण बन जाता है। इसी बात की अभिव्यक्ति कितने सरल एवं सटीक शब्दों में हुई है—

दद्याच्छिक्षां यथान्यस्मै, तथैवाचरणं निजम्।

केवलेनोपदेशेन, निश्चितं वाग्विडम्बना॥

आज के उच्छ्रंखल और अनुशासनहीन युग में मर्यादा और आत्मानुशासन के स्वर को एक आत्मबली साधक ही बुलन्द कर सकता है। मर्यादा की उपेक्षा स्वयं की उपेक्षा है, इस बात को प्रकट करते हुए उनकी वाणी कितनी चमत्कृत हो उठी है—

कुर्यात्तुच्छत्वबुद्धिं यो, मर्यादायां महामदः।
तुच्छत्वं प्राप्नुयाल्लोके, सोऽतिशीघ्रं समन्ततः॥

विवेक-चेतना को जागृत करने वाली यह लघु कृति हेय और उपादेय का सम्यक् अवबोध कराती है तथा गुरु के प्रति अनन्य आस्था के भाव भरती है।

जैन सिद्धांत दीपिका

दर्शन जीवन और जगत् की समस्याओं से जूझने की दृष्टि देता है। भारतीय मनीषियों एवं ऋषियों ने दर्शन एवं तत्त्व को स्पष्ट करने के लिए अपनी-अपनी दृष्टि से अनेक ग्रंथ लिखे पर वह सहज गम्य नहीं हो सका।

दर्शन के इतिहास में जैन दर्शन एवं सिद्धांत का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन दर्शन एवं सिद्धांत विषयक अनेक ग्रंथ आज उपलब्ध हैं पर आचार्यश्री तुलसी ने सरल, सहज एवं संस्कृत भाषा में संक्षिप्त शैली में जैन दर्शन एवं सिद्धांत की संपूर्ण जानकारी 'जैन सिद्धांत दीपिका' में दे दी है।

आलोच्य ग्रंथ में गहन से गहन विषय की प्रस्तुति भी इतनी सरलता से हुई है कि सामान्य पाठक भी इसका स्वाध्याय करते हुए घबराता या ऊबता नहीं है। इस प्रौढ़ ग्रंथ ने अनेक विद्वानों और मनीषियों का ध्यान आकृष्ट किया है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान् सतकोडी मुखर्जी इस पुस्तक के बारे में अपनी सम्मति प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—"मैं इस पुस्तक का अत्यन्त ऋणी हूं, जिसको पढ़ने से मेरी समझ परिमार्जित हुई और मेरी उलझनें दूर हुई हैं।"

इस पुस्तक के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम संस्करण में इसका आकार बृहद् था पर अब इसे लघु आकार में प्रकाशित किया गया है। इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। पूरा ग्रंथ दस प्रकाशों में

विभक्त है। प्रथम प्रकाश षट्द्रव्य, गुण एवं पर्याय पर विस्तृत प्रकाश डालता है। दूसरा प्रकाश ज्ञान के भेद, इन्द्रिय तथा भाव आदि की व्याख्या करता है। तीसरे प्रकाश में जीव-अजीव, उनके भेद, प्राण, पर्याप्ति, जन्म एवं योनि आदि का वर्णन है। चतुर्थ प्रकाश जैन दर्शन के कर्मवाद, पुण्य, पाप, आस्रव आदि की विशद जानकारी देता है। पंचम प्रकाश संवर और मोक्ष के स्वरूप को स्पष्ट करता है। छठा प्रकाश रत्नत्रय, महाव्रत, समिति, गुप्ति तथा निर्जरा के भेदों की विस्तृत अवगति प्रदान करता है। सप्तम प्रकाश में जीवस्थान, गुणस्थान, शरीर तथा समुद्घात आदि का निरूपण है। अष्टम प्रकाश देव, गुरु और धर्म से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रकट करता है। नवम प्रकाश में तेरापंथ के मौलिक सिद्धान्तों की आधुनिक परिवेश में प्रस्तुति हुई है। दशम प्रकाश प्रमाण, नय, निक्षेप आदि न्याय एवं जैन दर्शन के पारिभाषिक शब्दों का स्पष्ट विवेचन करता है।

पंचसूत्रम्

संस्कृत साहित्य में सूक्त और सुभाषित प्रचुर मात्रा में रचे गए हैं। कई स्वतंत्र ग्रंथ भी सुभाषितों के रूप में मिलते हैं, जैसे—नीतिशतकम्, वैराग्य-शतकम् आदि। गुरुदेव तुलसी द्वारा रचित 'पंचसूत्रम्' सुभाषित के रूप में एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ रत्न कहा जा सकता है। यद्यपि यह कृति साधु-साध्वियों को विशेष लक्ष्य करके बनायी गई है पर इसमें निबद्ध विषय सार्वभौम हैं। यह ग्रंथ व्यवहार-परिष्कार के अनेक सूत्रों का उल्लेख करता है।

इसमें पांच सूत्र हैं। प्रथम 'अनुशास्ति सूत्र' में गुरु शिष्य के वार्तालाप के माध्यम से अनुशासन की अनिवार्यता एवं उसके महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। गुरु और शिष्य के तादात्म्य संबंध की सुंदर प्रस्तुति इस सूत्र में हुई है। आज के मर्यादाहीन और विश्रृंखल युग में मर्यादा और अनुशासन का बोध देने में यह सूत्र विशिष्ट भूमिका अदा कर सकता है। दूसरे 'व्यवस्था सूत्र' में तेरापंथ संगठन की मौलिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति है। तीसरे 'चर्या सूत्र' में अध्यात्म पथ पर प्रस्थित मुमुक्षुओं के लिए करणीय कार्यों की सूची है। मोक्ष मार्ग में प्रस्थित साधकों के लिए साधना के अनेक मार्गों का निरूपण इस सूत्र में हुआ है। चौथे 'आलम्बन सूत्र' में लगभग पद्य अन्य ग्रंथों से उद्धृत हैं पर उनका चयन बहुत सुंदर हुआ है। प्रत्येक पद्य जीवन-रूपान्तरण की

नवीन प्रेरणा देने वाला है।

पांचवें 'शान्तसहवाससूत्रम्' में सामुदायिक जीवन में शान्तिपूर्ण सहवास के सूत्रों का उल्लेख है। ये सूत्र पारिवारिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक दृष्टि से ही नहीं, आध्यात्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

पांचों सूत्रों में लगभग २३२ श्लोकों का समाहार है। अनेक विषयों को अपने भीतर समेटे हुए संस्कृत भाषा में लिखी गयी यह कृति अनेक साधकों का मार्ग प्रशस्त करने वाली है। यह लघु कृति संगठन को सुदृढ़ और व्यवस्थित बनाए रखने का राज प्रस्तुत करती है अतः सामाजिक दृष्टि से भी इस पुस्तक की मूल्यवत्ता को नकारा नहीं जा सकता।

मनोनुशासनम्

'मन को अनुशासित करने का मार्ग न जानने के कारण व्यक्ति स्वयं को कभी निर्बल, कभी दुःखी और कभी अज्ञानी अनुभव करता है, इस अवस्था को मैं धनवान की गरीबी कहता हूं।' आचार्यश्री तुलसी की यह सूक्ति मन को प्रशिक्षित करने की अनिवार्यता प्रकट कर रही है। जिसने मन पर शासन कर लिया, उसका सारे संसार पर एक छत्र राज्य हो जाता है। वैज्ञानिक युग में प्रशिक्षण के अनेक केन्द्र खुल रहे हैं पर मन को प्रशिक्षित किए बिना सारे प्रशिक्षण अधूरे हैं। सूत्रात्मक शैली में लिखा गया यह ग्रंथ मन को प्रशिक्षित एवं संतुलित करने के सूत्रों का विवेचन करता है। यह ग्रंथ संस्कृत भाषा में निबद्ध है इसका कारण बताते हुए ग्रंथ-कर्ता कहते हैं कि इसकी भाषा मैंने संस्कृत इसलिए रखी कि संस्कृत में थोड़े में जितना अधिक कहा जा सकता है, उतना दूसरी भाषा में कहना कठिन है। इसकी सूत्रात्मक शैली के पीछे यही संक्षेपीकरण का दृष्टिकोण रहा है।''

सम्पूर्ण ग्रंथ सात प्रकरणों में विभक्त है। प्रथम प्रकरण में आत्मा का स्वरूप, आहार, इन्द्रिय, शरीर, वाणी और मन आदि की शुद्धि के उपाय बताए गए हैं। दूसरे प्रकरण में मन के छह प्रकार तथा उसके निरोध के साधनों की चर्चा की गयी है। तीसरे प्रकरण में ध्यान तथा उसके सहायक तत्त्वों का निर्देश है। ध्यान में आसन विशेष सहयोगी बनते हैं अतः उनकी विस्तृत चर्चा है। चौथे प्रकरण में ध्याता, ध्याता की विशिष्ट योग्यताएं, ध्यान की मुद्रा, ध्यान का स्थान तथा ध्यान के भेद-प्रभेदों की विस्तृत चर्चा है। पांचवें प्रकरण में पांच प्राणवायु, उनके स्थान

तथा उनके जय से होने वाले लाभों का संकेत है। छठे प्रकरण में महाव्रत, अणुव्रत, क्षमा आदि दश श्रमण धर्मों की व्याख्या है तथा अंतिम सातवें प्रकरण में जिनकल्पी की पांच भावनाओं का विस्तृत विवेचन है।

योग-विद्या के ज्ञान एवं अभ्यास हेतु यह ग्रंथ अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस ग्रंथ की व्याख्या मुनिश्री नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञजी) ने की है। यह व्याख्या केवल शाब्दिक नहीं अपितु अनुभवयुक्त है तथा इसके साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं का भी भरपूर उपयोग किया गया है। मुनि नथमलजी के बारे में आचार्यवर ने अपनी भूमिका में जिन गुरुतर शब्दों का प्रयोग किया है, वह पठनीय है— 'योग में उनकी सहज गति है। ज्ञान के अभ्यासी होने के कारण उनकी भाषा में वेधकता है। दर्शन के अभ्यासी होने के कारण दार्शनिक तत्त्वों को भी उन्होंने सहजगम्य बनाने का प्रयत्न किया है।''

आचार्य महाप्रज्ञजी के शब्दों में यह जैन साधना पद्धति का प्रतिनिधि ग्रंथ है। यह आकार में लघु है पर प्रकार में गुरु। इसमें योगशास्त्र की सर्वसाधारण द्वारा अग्राह्य सूक्ष्मताएं नहीं हैं किन्तु जो है, वह अनुभव योग्य और बहुजनसाध्य है। मानसिक शिथिलता के इस युग में मन को प्रबल बनाने की साधन-सामग्री प्रस्तुत कर आचार्यश्री ने मानव-जाति को बहुत ही उपकृत किया है। मन से हारे हुए तथा अनियंत्रित मन वाले लोगों के लिए यह ग्रंथ निश्चित रूप से मार्गदर्शक का कार्य करेगा क्योंकि इसमें लेखक ने सूक्तपरक शैली में अर्न्तमन को छूने वाली तथा अपायदर्शन कराने वाली शैली को अपनाया है। मानसिक शक्ति का विकास एवं ह्रास के कारणों का विश्लेषण करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

- परानिष्टचिंतनेन मनोविघातः।
- आत्मौपम्यचिन्तनेन मनोविकासः।

अर्थात् दूसरों का अनिष्ट चिंतन मानसिक शक्ति को क्षीण करता है तथा प्राणी मात्र के प्रति आत्मौपम्य के चिन्तन से मानसिक विकास होता है।

इस ग्रंथ की रचना-शैली में आचार्य तुलसी ने पतञ्जलि का अनुसरण किया है पर अनेक स्थानों पर मौलिकता एवं नवीनता के दर्शन भी होते हैं। योग के सूक्ष्म रहस्यों को प्रकट करने वाली यह पुस्तक एक कालजयी कृति के रूप में सदा-सर्वदा लोगों को आलोक देती रहेगी।

श्रीभिक्षुन्यायकर्णिका

भारतीय न्याय शास्त्र में जैन न्याय का अपना विशिष्ट स्थान है। इसका

लक्ष्य केवल तार्किक शक्ति का विकास ही नहीं अपितु क्षीर-नीर विवेक की दृष्टि जागृत करना है, जिससे पदार्थों का सम्यक् ज्ञान हो सके।

जैन न्याय में प्रवेश पाने वालों के लिए श्रीभिक्षुन्यायकर्णिका ग्रंथ में सरल पद्धति से न्याय के विविध अंगों का निरूपण किया गया है। अनेक न्याय ग्रंथों के पारायण के पश्चात् आचार्य श्री तुलसी ने इसे सरल व सहज भाषा में प्रस्तुत किया है।

सात भागों में विभक्त इस ग्रंथ में न्याय, लक्षण, प्रमाण, हेतु, हेत्वाभास, कारण, आप्त, स्याद्वाद, नय, प्रमाता आदि विषयों के बारे में सूत्रात्मक शैली में विवेचन हुआ है। अंत में पृथ्वी, पानी आदि स्थावर कायों में चेतना-सिद्धि के अनेक हेतु दिए गए हैं।

संक्षिप्त शैली में संस्कृत भाषा में लिखी गयी यह कृति जैन न्याय का दिग्दर्शन कराने में अहं भूमिका निभाती है। इसकी भाषा सरल है अत: न्याय जैसा दुरूह विषय भी आसानी से समझा जा सकता है। इस ग्रंथ का वैशिष्ट्य इसलिए भी है कि यह पारिभाषिक ग्रंथ है। लगभग सभी शब्दों की इसमें सटीक, संक्षिप्त एवं बुद्धिगम्य परिभाषाएं दी गई हैं।

पुस्तक के अंत में ११ प्रशस्ति श्लोक हैं, जिसमें स्यादवाद्, महावीर तथा तेरापंथ के ८ आचार्यों की स्तुति और प्रस्तुत कृति का इतिहास गुंफित है।

शिक्षा षण्णवति

संस्कृत भाषा में साहित्य-सृजन की परम्परा आज लुप्त प्राय: हो रही है किन्तु आचार्यश्री ने मृतप्राय समझी जाने वाली इस भाषा को भी जीवित और गतिशील बनाने का प्रयत्न किया है।

'शिक्षा षण्णवति' आचार्य मानतुंग कृत भक्तामर के एक-एक चरण के आधार पर समस्या-पूर्ति के रूप में लिखा गया अद्‌भुत काव्य ग्रंथ है। इसमें उपदेश की बहार ही नहीं, काव्य का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

आचार्यश्री तुलसी का मानस साध्वियों के प्रति सहज ही करुणार्द्र था। साध्वी-शिक्षा की जो स्रोतस्विनी उन्होंने अपने संघ में बहाई, वह अन्य लोगों के लिए आश्चर्य का विषय है। इस महत्त्वपूर्ण कृति की रचना भी साध्वियों को विशेष रूप से संस्कृत भाषा का ज्ञान कराने के लिए की गई, ऐसा ग्रंथ कर्त्ता कृति के अंत में उल्लेख करते हैं।

इसमें देव, गुरु, धर्म, पांच महाव्रत, विरति, श्रद्धा तथा स्याद्वाद आदि विषयों पर लेखक ने नए ढंग से अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। इस काव्य में

उपमा-वैचित्र्य सर्वत्र दर्शनीय है तथा अनुप्रास की छटा भी यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है। भाषा भी भावों के अनुकूल बन पड़ी है।

भारतीय परम्परा में गुरु का सर्वोच्च स्थान है। उनके प्रति श्रद्धा मूक को वाचाल बना देती है पर इसके लिए शिष्य में अर्हता का होना आवश्यक है। अन्यथा ग्राहक शक्ति की तरतमता से एक ही ज्ञान परिणति में बहुत बड़ा अन्तर ला देता है। इस बात की प्रस्तुति में कवि का वाग्वैदग्ध्य एवं उक्ति-वैचित्र्य दर्शनीय है—

आकर्ण्य कर्णकुहरे सदृशीं गुरूक्तिं
लाभस्तु तत्र निजयोग्यतयैव लभ्य:।
आम्रांकुरान् कवलयन् कटुकौति काको
यत् कोकिल: किल मधौ मधुरं विरौति॥

यह काव्य इतनी सरल एवं सरस भाषा में रचित है कि पढ़ते-पढ़ते ही पाठक आनंदविभोर हो उठता है। संस्कृत के सुभाषित ग्रंथों में इस ग्रंथ का अपना विशिष्ट स्थान है।